कानपुर का इतिहास

सम्पादक

श्री लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी
श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा

कानपुर-इतिहास समिति
कानपुर

प्रथम बार
१९५०

मूल्य—दस रुपया

प्रकाशकः—
कानपुर-इतिहास समिति
पटकापुर, कानपुर

मुद्रकः—
श्री सत्यभक्त, सतयुग प्रेस
बहादुरगंज, इलाहाबाद



श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा

सम्पादकीय वक्तव्य

इस देश में स्थानीय इतिहास लिखने की प्रथा का अभी बहुत कम प्रचार है। जब कानपुर के विस्तृत इतिहास लिखने के लिए आवश्यक सामग्री जुटाने और तत्सम्बन्धी आवश्यक शोध एवं अनुसन्धान करने के लिए हम लोगों ने कुछ उत्साही मित्रों के सहयोग से "कानपुर-इतिहास समिति" की स्थापना की, तो अनेक सुशिक्षित एवं सम्भ्रान्त व्यक्तियों ने इस योजना को उपहासास्पद मान कर उसकी उपेक्षा की। कुछ ने इसे स्थानीयता-वाद की चरम सीमा तथा हम लोगों की सनक समझ कर मन्दहास किया। उपयुक्त सामग्री के एकत्र करने में यह तटस्थता की भावना भी बहुत कुछ बाधक सिद्ध हुई। किन्तु, जैसा हमने ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में बताया है, स्थानीय इतिहास के शास्त्रीय अध्ययन का विशिष्ट महत्व है। राष्ट्र के इतिहास का ढाँचा स्थानीय इतिहास ही के द्वारा बनता है। उसकी विशाल इमारत की यही आधार-शिला है। अन्य देशों में स्थानीय इतिहास के अध्ययन के लिए विशिष्ट समितियाँ स्थापित हैं। उनके अपने पत्र भी निकलते हैं और तत्सम्बंधी प्रचुर साहित्य का भी प्रकाशन होता है।

कानपुर जैसे नगर तथा परिवर्ती भूभाग के इतिहास के विस्तृत अध्ययन के महत्व के सम्बन्ध में तो संदेह और विवाद की और भी गुञ्जाइश नहीं है। इधर २०-२५ वर्षों के भीतर उसकी अभूतपूर्व उन्नति हुई है। अब कलकत्ता और बम्बई की श्रेणी में ही उसकी गणना करनी चाहिए। भविष्य की पीढ़ियों की स्वाभाविक उत्कंठा और जिज्ञासा की तुष्टि के निमित्त हमारी पीढ़ी के शिक्षित व्यक्तियों का यह कर्तव्य है कि वे कानपुर के प्राचीन और आधुनिक इतिहास को लिपि-बद्ध कर जायँ। अन्यथा भविष्य के इतिहासकारों को अनेक अनावश्यक गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास करना पड़ेगा। स्वर्गीय लाला दरगाहीलाल ने सन् १८७५ में "तारीख़े-ज़िला-कानपुर" का प्रकाशन इसी सदुद्देश्य से किया। अब ठीक ७५ वर्ष उपरान्त इस ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है। इस बीच में सन् १६०६ में श्री नेविल आई. सी. एस. का लिखा हुआ "कानपुर गज़ेटियर" प्रकाशित हुआ। अब वह भी पुराना हो गया है। उसके लेखक का दृष्टिकोण भारतीय नहीं था। और "तारीख़े-कानपुर" यदि प्रायः अप्राप्य है, तो "कानपुर गज़ेटियर" भी दुर्लभ अवश्य है। इसी लिए कानपुर के इतिहास को परिवर्द्धित एवं संशोधित रूप में प्रकाशित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। अन्य प्रकाशित ग्रन्थों में भी कानपुर के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली सामग्री यत्र-तत्र फैली पड़ी है। उनकी चर्चा "सहायक ग्रन्थों" की सूची में अन्यत्र की गई है। विभिन्न प्रकार की अप्रकाशित सामग्री भी खोज से मिली है। वृद्ध व्यक्तियों से भी मौखिक सामग्री प्राप्त हुई है। अनेक सनदें, लेख



श्री लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

और वंशावलियाँ परिवारों के पास सुरक्षित हैं। उन सबका यथा-सम्भव उपयोग हमने किया है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन को सुकर करने में हमारे उदार संरक्षक ने जो कृपा "कानपुर-इतिहास समिति" के ऊपर की है, उसे हम कभी भूल नहीं सकते। इतने बड़े ग्रन्थ को इस सजधज से छपाने में समिति को इन सज्जनों से जो प्रोत्साहन मिला है उसके लिए हम उनके विशेष प्रकार से आभारी हैं।

ग्रन्थ के इस प्रथम भाग के लिए सामग्री जुटाने के कार्य में सर्वप्रथम हमारी मंडली के चिरस्मरणीय सदस्य दिवंगत पंडित श्यामविजय पाण्डेय ने अथक उत्साह एवं परिश्रम का प्रदर्शन किया। सन् १६४६ के अंतिम महीनों में इस कार्य का सूत्रपात भाई श्यामविजय के परामर्श से हुआ। वे इसमें अपनी स्वभावजनित उत्सुकता और लगन से जुट गये। स्वास्थ्य खराब होने पर भी वे इस कार्य में लगे रहे। अन्त में कराल काल ने इस अधखिले फूल को ३५ वर्ष की अल्पायु में ही विनष्ट कर दिया। इस साथी के विछोह से हमारी क्षति तो अत्यधिक हुई, किन्तु हतोत्साह न होकर हम लोगों ने उनके प्रिय कार्य को और भी अधिक परिश्रम और गति से अग्रसर किया। आज यदि श्यामविजय जीवित होते तो इस ग्रन्थ को प्रकाशित देखकर उछल पड़ते और नगर भर में इसकी प्रति लेकर अपनी विशाल मित्र-मंडली को दिखा आते। इस भाग के अन्त में दी हुई जीवनियों में से नाना साहब और तात्या टोपे की जीवनियाँ श्री श्यामविजय पाण्डेय की ही लिखी हुई हैं। उनसे उनकी गवेषणा-शक्ति और शैली का थोड़ा-बहुत परिचय प्राप्त हो सकता है।

ग्रन्थ के प्रणयन में हमें अन्य मित्रों से भी विशेष सहायता मिली है। अमरौधा-निवासी श्री ब्रजबिहारी मेहरोत्रा ने यमुना के किनारे की गढ़ियों का विस्तृत वर्णन लिखा है और भोगनीपुर-तहसील के अनेक स्थानों के सम्बन्ध में भी उपयोगी सामग्री से हमारे ज्ञान की वृद्धि की है। उनकी इस कृपा के लिए हम उनके विशेष प्रकार से कृतज्ञ हैं।

कानपुर के ऐडवोकेट और दयानन्द एंग्लो-वैदिक कालेज कानपुर के क़ानून-विभाग के अध्यापक, पं० श्रीधर वाजपेयी, एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल., बी. के पौराणिक परिज्ञान की एक झाँकी उनके लिखे हुए पौराणिक-गाथा-काल के इतिहास से मिल सकती है। अज़ीमुल्ला की जीवनी भी वाजपेयी जी की ही लिखी हुई है। एतदर्थ वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

"दैनिक प्रताप" कानपुर के सहकारी सम्पादक श्री अर्जुनप्रसाद शुक्ल, बी. ए. की अमूल्य सेवाओं से हम अत्यधिक उपकृत हुए हैं। संगृहीत सामग्री की सहायता से इस प्रथम भाग के बहुत से खंड की पाण्डुलिपि प्रस्तुत करने में जो सहायता हमें उनसे मिली है उसके लिए हम उनके विशेष प्रकार से आभारी हैं। वास्तव में यदि वे इस कष्टसाध्य कार्य में हमारा हाथ न बटाते तो ग्रन्थ के प्रणयन में और अधिक समय लग जाता।

हमारे चित्रकार श्री उमाशंकर जी दुबे ने अथक परिश्रम और उत्साह से नगर व ज़िले के अनेक निर्दिष्ट स्थानों में जाकर फ़ोटो लिए। बहुधा तो अपने केमरा को लेकर उन्हें अकेले मीलों पैदल यात्रा तक करनी पड़ी और कड़ी धूप का सामना करना पड़ा। यदि

वे इस गहन और महत्वपूर्ण कार्य के सम्पादन का भार अपने ऊपर न लेते, तो हमारे ग्रन्थ का चित्र-विभाग सर्वथा अपूर्ण रह जाता। हम उन्हें हृदय से धन्यवाद देते हैं।

इस ग्रन्थ के मुद्रक श्री सत्यभक्त जी हमारे चिरपरिचित मित्र और हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक हैं। उन्होंने जिस अदम्य उत्साह और अध्यवसाय से इस ग्रन्थ के मुद्रण और प्रकाशन में कार्य किया है उसकी प्रशंसा हम किन शब्दों में करें ? उनके सक्रिय सहयोग के बिना यह ग्रन्थ इस सुन्दर आकार-प्रकार में कदापि प्रस्तुत न हो सकता।

हमारी प्रार्थना पर कुछ अन्य महानुभावों ने भी उपयोगी सामग्री हमारे पास भेजकर हमें बाधित किया। इनमें से कहिंजरी-निवासी श्री ठाकुर गुलालचन्दसिंह गौड़, नरवल के श्री ठाकुर श्यामसिंह चौहान एवं पंडित मोतीलाल अवस्थी बी. ए., अकबरपुर के श्री चन्द्रदत्त त्रिपाठी, जिनई के डाक्टर शम्भूदयाल तिवारी, पुखरायाँ के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता और लोक सेवक श्री रामस्वरूप गुप्त एम. ए., एम. एल. ए. आदि के नाम विशेष उल्लेख के योग्य हैं। कानपुर-नगर के प्राचीन परिवारों और व्यक्तियों के बारे में अनेक सज्जनों ने अपने ज्ञान से हमें लाभान्वित किया है इन सभी सज्जनों को अनेक धन्यवाद !

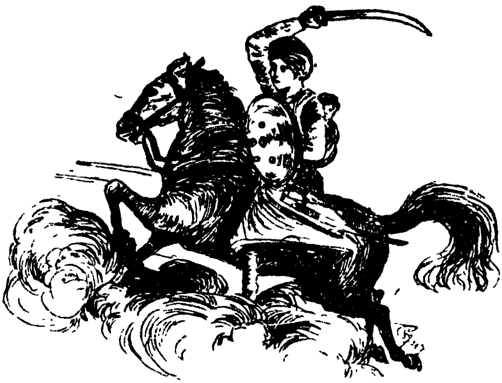
जब इस ग्रन्थ की प्रथम रूप-रेखा तैयार की गई थी, तो हमारा यह स्वप्न में भी अनुमान नहीं था कि इस ग्रन्थ का इतना अधिक विस्तार हो जायगा। पर जैसे ही इस विषय के अध्ययन का क्रम आगे बढ़ा, इसकी विशालता और व्यापकता का अन्दाज होने लगा। परिणाम यह हुआ कि ग्रन्थ को दो भागों में विभक्त करना पड़ा। प्रथम भाग पाठकों के सामने है और द्वितीय की संक्षिप्त

रूप-रेखा अन्त में दी हुई है। हम जानते हैं कि उसका विस्तृत रूप भी पहले भाग से कदापि कम न होगा। उसके सम्बन्ध में उपयुक्त सामग्री भेजने की अपील इस प्रस्तावना के द्वारा हम शिक्षित वर्ग से करते हैं और आशा करते हैं कि उसे हम इस भाग से भी अधिक उपयोगी और उपादेय बना सकेंगे। पर यह तभी सम्भव होगा जब हमारे दयालु पाठक और हितैषी हमारे साथ सहयोग करें। वर्ण्य विषय की सामग्री इतनी अधिक फैली हुई है और स्थानीय और आधुनिक होने के कारण वह हमारे निकटस्थ होने पर भी हमसे दूर है, क्योंकि हमने उसको सुचारु रूप से क्रमबद्ध और लिपिबद्ध करने का कभी प्रयास नहीं किया। काल की गति से हम उसे भूलते जा रहे हैं। प्रत्येक वर्ष उसके ऊपर विस्मृति के आवरण को गहरा करता जा रहा है।

प्रस्तुत भाग में, हम जानते हैं, अनेक भद्दी भूलें रह गई होंगी। यद्यपि यथासम्भव प्रत्येक बात छानबीन और सोच-समझ कर विश्वस्त प्रमाणों के आधार पर लिखी गई है, किन्तु फिर भी भूलों का होना स्वाभाविक है। उदार पाठकों से प्रार्थना है कि वे हमारे पास इन भूलों के निराकरण के लिए सूचना भेजने की कृपा करें, जिससे द्वितीय भाग में ही उनका संशोधन किया जा सके।

अन्त में भूमिका लेखक श्रीमान् डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी को हम उनकी महती कृपा के लिए अनेक धन्यवाद देते हैं। सन् १९४९ के भारतीय इतिहास सम्मेलन के मनोनीत सभापति एवं प्रयाग विश्व-विद्यालय के इतिहास-विभाग के अध्यक्ष डाक्टर त्रिपाठी

इतिहास के लब्धप्रतिष्ठ एवं प्रकाण्ड विद्वान् हैं। आपनी अत्यधिक व्यस्तता की अवस्था में भी आपने इस ग्रन्थ की भूमिका लिखकर जो अनुग्रह हमारे ऊपर किया है उसकी प्रशंसा के लिए हमारे पास शब्द नहीं हैं। पर सौभाग्य से आपका पैतृक निवास-स्थान कानपुर ज़िले का ही भूखंड है। इस नाते तो हमारा कुछ अधिकार भी उनके ऊपर है।





डा० रामप्रसाद त्रिपाठी

भूमिका

श्री लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी इतिहास के पुराने अनुभवी एवं प्रतिष्ठित प्रोफ़ेसर हैं। आपकी शिक्षा तथा अध्यापन-कार्य कानपुर ही में प्रायः रहा है। अतएव उस समृद्धिशाली नगर के प्रति उनका विशेष अनुराग होना स्वाभाविक है। लगभग पच्चीस वर्ष के अध्यापन काल में उन्होंने केवल अच्छे शिक्षक होने का ही यश नहीं कमाया वरन् अपने लेखों द्वारा साहित्य तथा इतिहास के गम्भीर मनन का भी प्रमाण दिया।

त्रिपाठी जी सम्भवतः इस परिणाम पर पहुँचे कि इतिहास के विशद प्रासाद का सुदृढ़ निर्माण तब तक संभव नहीं जब तक कि स्थानीय इतिहास की ईंटें अच्छी तरह गढ़ कर एकत्रित न करली जायँ। इस उद्देश्य से उन्होंने उड़ान-उकान का प्रलोभन संवरण करके अपने ज़िले के इतिहास की गवेषणा में अपना समय और ध्यान दिया। उसका फल "कानपुर का इतिहास" है जो वे हिन्दी इतिहास-साहित्य तथा हिन्दी प्रेमिओं को भेंट कर रहे हैं।

स्थानीय इतिहास की आवश्यकता आधुनिक काल के ही नहीं वरन् भविष्य के इतिहास-प्रेमिओं को होगी। यद्यपि ऐतिहासिक सामग्री अंगरेज़ी ग्रन्थों में इधर-उधर बिखरी पड़ी है, तथापि अंगरेज़ी भाषा में भी उसका यथेष्ठ संकलन तथा ऐतिहा-

सिक निरूपण नहीं मिलता। यह सौभाग्य की बात है कि यह कार्य एक कानपुर-निवासी इतिहासज्ञ ने किया और हिन्दी-भाषा के आवरण से उसको सुशोभित किया। उस कृति के लिए हम उनके दोहरे ऋणी हैं।

त्रिपाठी जी को जो कुछ गजेटियरों तथा इतिहास की पुस्तकों से मिला वह सब कानपुर के इतिहास में है। किन्तु उससे भी अधिक महत्व की बात यह है कि उन्होंने अपने निजी अनुसन्धान तथा खोज से ज़िले तथा नगर के विकास और वहाँ के निवासियों के सम्बन्ध की अनुश्रुतिओं एवं साम्प्रतिक घटनाओं और व्यक्तिओं का भी कुछ उल्लेख किया है जो आगे चलकर अधिकाधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। सतर्क एवं सुशिक्षित व्यक्ति द्वारा अपने काल की घटनाओं का वर्णन इतिहास की अमूल्य सामग्री समझी जाती है। यदि समसामयिक घटनाओं को वे दूसरे संस्करण में विशद रूप से वर्णित करें तो पुस्तक की उपादेयता बहुत बढ़ जायगी।

इस इतिहास में केवल राजनैतिक घटनाओं का उल्लेख नहीं वरन् आर्थिक एवं वांशिक विषयों को भी अच्छा ख़ासा स्थान दिया गया है। अतएव कानपुर के सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य बातों का पता सुलभता-पूर्वक साधारण पाठकों को मिल सकेगा।

त्रिपाठी जी की कृति से संभव है कि हमारे देश या प्रान्त के ऐसे इतिहास-प्रेमी जिनको समयाभाव, साधनाभाव अथवा अन्य कारणों से इतिहास के विशाल क्षेत्र में स्थाई कार्य करने का

अवसर न प्राप्त हो सके वे अपने अपने मण्डल, अथवा जिला का स्थानीय इतिहास लिखकर भी कृतकार्य हो सकते हैं। योरोप और अमेरिका में स्थानों और नगरों की कौन कहे क़सबों तक के इतिहास लिखे गये हैं और लिखे जाते हैं। वे बड़े आकर्षक और उपयोगी सिद्ध हुए हैं। भारत ऐसे देश में तो सैकड़ों ऐसे स्थान हैं जिनका हमारे इतिहास और संस्कृति में बड़ा महत्व-पूर्ण स्थान है। पुस्तकस्थ संकेतों के सिवा स्थानिक अनुश्रुतियाँ तथा परम्परागत वंशकीर्तन आदि से बहुत कुछ सामग्री प्राप्त हो सकती है। उनकी संरक्षा करना और उनसे ऐतिहासिक तथ्य निकालना एक प्रकार की लोक तथा साहित्य की सेवा है। ऐसे शुभ कार्य में जो लोग संलग्न हों उनकी सब प्रकार से सहायता करना पंचायतों, ज़िला तथा म्यूनिसिपल बोर्ड और सहृदय नागरिकों का परम कर्तव्य है। बिना अपने देश के जन्म-पत्र अथवा इतिहास के यथार्थ आत्म-ज्ञान प्राप्त करना दुःसाध्य है।

अन्त में मैं श्री लक्ष्मीकान्त को उनकी उपयोगी कृति तथा मार्ग-प्रदर्शन के लिए बधाई देता हूँ। आशा है कि हिन्दी और विशेषतः इतिहास के प्रेमी उनके कृतज्ञ होंगे और उनकी कृति का सादर स्वागत करेंगे। शुभमस्तु।

रामप्रसाद त्रिपाठी

प्रयाग विश्वविद्यालय
२२-१२-४६

विषय-सूची



चित्र-सूची

कानपुर का इतिहास

[प्रथम भाग]



प्रथम अध्याय

स्थानीय इतिहास की महत्ता

जब से बालक जन्म लेता है, वह अपने चारों ओर की वस्तुओं का निरीक्षण करने लगता है। उसके जीवन के लिए अनिवार्य वायु तथा भोजन, और भिन्न-भिन्न दृश्य, जिनके संपर्क में वह आता है, उसके कोमल मस्तिष्क पर प्रभाव डालना शुरू कर देते हैं। उसके आसपास की पर्वत-श्रेणियाँ, घाटियाँ, नदियाँ, वन और उद्यान उसके मस्तिष्क को निश्चित स्वरूप दे देते हैं। उसी बालक को जब वह युवक होता है अध्ययन और भिन्न-भिन्न स्थानों की यात्रायें विस्तृत दृष्टिकोण प्रदान करती हैं, क्योंकि उसके निरीक्षण और अध्ययन का क्षेत्र विस्तीर्ण हो जाता है। किन्तु प्रारंभिक प्रभाव कभी उसके मस्तिष्क से विलीन नहीं होने पाते तथा वे उसके विकास के साथ मूलतः नष्ट नहीं हो जाते। वे संस्कार उसके जीवन में सदैव बने रहते हैं और उसकी प्रकृति, उसके विचार, और

उसकी भावनाओं को प्रभावित करते रहते हैं। प्राचीन युग में मानव की गति सीमित थी और अपनी जन्म-भूमि ही उसका कार्यक्षेत्र थी। उसी स्थान पर उत्पन्न होकर वहीं उसकी मृत्यु हो जाती थी। अपनी जन्म-भूमि का ही उपयोग वह करता था और उन्हीं देवताओं का पूजन करता था जिनका उसे ज्ञान होता था। इसके अतिरिक्त अपनी परंपरागत रूढ़ियों का अनुकरण कर, अपने जीवन को अपने तक ही सीमित रख कर, वह उसे समाप्त कर देता था। वातावरण की इस विभिन्नता ने ही उसके जातीय जीवन में अंतर ला खड़ा किया। भिन्न-भिन्न जातियों की पृथक्-पृथक् विशेषताओं का यही कारण है। उनके आर्थिक जीवन, उत्पादन और वितरण के साधनों में विभिन्नता होने के कारण उनके दैनिक व्यवहार में विशेष अंतर आ जाता है और स्थानीय भूगोल का उन लोगों के जीवन से एक गहरा संबन्ध स्थापित हो जाता है।

वर्तमान समय में संसार के लगभग सभी भागों और सभी वस्तुओं में महान् परिवर्तन हो गया है। मानव का प्रकृति के ऊपर अधिकार पहले से कहीं अधिक है। आवागमन के साधनों में भी अत्यधिक उन्नति हुई है। मनुष्य अपने आसपास के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है, साथ ही वह उन परिस्थितियों का सर्वथा दास भी नहीं है जो इस सीमित क्षेत्र के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि स्थानीय भूगोल, जलवायु और जाति-विभेद ने उसके दृष्टि-कोण पर प्रभाव डालना बंद कर दिया है, परन्तु फिर भी अब वह उतनी संकुचित स्थानीय विचार-धारा के वशीभूत नहीं है, तथा अपने को

संसार के एक नागरिक के स्वरूप में अधिक देखता है। टुंड्रा-प्रदेश, फ़िजी और आइसलैंड के निवासियों पर भी इस युग की हलचल का उसी प्रकार प्रभाव पड़ा है जैसे कि एक सभ्य देश पर। पूर्ण पार्थक्य की भावना अतीत का स्वप्न हो गई है।

मानव-इतिहास में इस मौलिक परिवर्तन के होते हुए भी मनुष्य अपने जातीय और राष्ट्रीय दृष्टिकोण को अपने जीवन से मूलतः नष्ट न कर सका। विश्वशांति के लिए कितने ही प्रयत्न किये गये। व्यक्तिगत सम्पत्ति का लोप, मानव-व्यवहार से लाभ की भावना का नाश तथा चिरवाञ्छित विश्व-शांति का स्थापन भी इस स्वभावगत भावना का सर्वथा नाश नहीं कर सकेंगे। 'गंगामाता,' 'भगवान् कृष्ण,' 'हमारे प्रभु यीसु,' 'स्टालिनग्राड,' 'ट्राफ़ल्गार,' 'पवित्र काशी और मक्का,'—इनका गौरव सदा अक्षुण्ण रहेगा तथा इन सबके पीछे निहित विचारधारा क़ायम रहेगी। देश-प्रेम, पारिवारिक बंधन, और स्थानीय भूगोल के प्रति मनुष्य का मोह, सदैव मनुष्य के हृदय को उच्छ्वसित करता रहेगा। हम अपने नित्यप्रति के वातावरण से सर्वथा भिन्न नहीं हो सकते। वास्तव में हम तो उसके ऋणी हैं क्योंकि हम उससे सदैव नाना प्रकार की प्रेरणायें प्राप्त करते रहते हैं। जब हम दैनिक परिश्रम से उकता जाते हैं तो श्रम दूर करने के लिए उसकी ओर बढ़ते हैं और वह हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर प्रभाव डालता है। ये सब बातें स्थानीय इतिहास के अध्ययन की आवश्यकता उपस्थित कर देती हैं।

हमारे देश के विश्वविद्यालयों और पाठशालाओं में स्थानीय इतिहास के अध्ययन की आवश्यकता को कोई महत्व नहीं दिया जाता। सिंध, पश्चिमोत्तर सीमा-प्रांत तथा त्रावन्कोर, कोचीन आदि प्रदेश भी, जिन्होंने अपना स्वतंत्र रूप से राजनैतिक विकास किया तथा भारतीय इतिहास से जिनका कम संबंध रहा है, स्थानीय इतिहास के अध्ययन के प्रति उदासीनता प्रदर्शित करते रहे हैं। कदाचित् इसका कारण यह है कि वे अखिल भारतीयता के आधार पर ही रहना पसन्द करते रहे हैं। परन्तु यह निष्प्राण एवं कृत्रिम ऐक्य-भावना जिससे हमारे स्थानीय जीवन को आघात पहुँचता है भयंकर सांस्कृतिक क्षुधा उत्पन्न कर देगी। जिस प्रकार से अंतर्राष्ट्रीयता में आदर्श राष्ट्रीयता की भावना निहित रहती है उसी प्रकार राष्ट्रीय एकता का आधार स्वस्थ एवं सहयोगात्मक प्रांतीयता और स्थानीयता पर ही निर्भर है। स्थानीयता की भावना अवश्य होनी चाहिए परन्तु वह राष्ट्र-विरोधी न हो। इसका प्रचार वहीं तक आवश्यक है जहाँ तक वह हमारी स्थानीय भावनाओं के प्रेम का पोषण करती है। स्थानीयता की स्वस्थ भावना स्थानीय स्वशासन के समान रचनात्मक कार्यों के लिए अत्यन्त उपयोगी प्रमाणित हो सकती है। अपने निकटवर्ती क्षेत्र के लिए जिस श्रद्धा एवं प्रेम की भावना का उदय होगा उसका विस्तार आगे चलकर देश-प्रेम में हो सकता है। कलकत्ते के एक अच्छे नागरिक को बुरा बंगाली होना आवश्यक नहीं। एक अच्छे बङ्गाली को देश-द्रोही भारतीय होना आवश्यक नहीं है।

इसी प्रकार एक अच्छा राष्ट्रीयतावादी भारतीय श्रेष्ठ अंतर्राष्ट्रीयतावादी हो सकता है। इसलिए स्थानीय इतिहास के अध्ययन को हमारे स्कूल-कालेजों में प्रोत्साहन देने में कोई भय नहीं है। उसका अध्ययन हमारी ऐतिहासिक एवं गवेषणात्मक प्रवृत्ति को विकसित करेगा। इतिहास की कितनी ही मूल्यवान् सामग्री प्राचीन मंदिरों एवं उनमें रक्खे हुए ग्रन्थों तथा पंडों के रजिस्टरों में, जो भारत के तीर्थ-स्थानों, जैसे मथुरा, बनारस, पुरी, द्वारका, रामेश्वरम् आदि, में मिलेंगे, प्राप्त हो सकती है। इस सबका अन्वेषण स्थानीय इतिहास से संबंध रखने वाले विद्यार्थी ही कर सकते हैं। बहुत सी स्थानीय ऐतिहासिक इमारतें अथवा खँडहर अब तक लोगों को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सके हैं। उसका कारण केवल यही है कि स्थानीय होने से उन्हें महत्व नहीं दिया जाता है। इसके अतिरिक्त भारतीय पुरातत्व-विभाग, जिसके साथ देश की विदेशी सरकार ने सौतेली संतान की तरह व्यवहार किया था, पर्याप्त साधनों के अभाव के कारण इस कार्य को पूर्ण न कर सका। स्थानीय इतिहास के अध्ययन के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली स्थानीय देश-भक्ति का उपयोग स्थानीय ऐतिहासिक समितियों एवं अनुसंधान-समितियों के निर्माण तथा स्थानीय संग्रहालयों एवं पुस्तकालयों की स्थापना के लिए आवश्यक धन-संग्रह करके किया जा सकता है। स्थानीय इतिहास के विद्वान् स्थानीय ऐतिहासिक स्थलों एवं प्राचीन प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषों के संबंध में साहित्य भी प्रकाशित करेंगे। वास्तव में स्थानीय घटनाओं के संबंध में उनका निकट

तथा गहन ज्ञान उन्हें इन चीज़ों को बाहरी लोगों की अपेक्षा अधिक सुगमता से समझने में सहायता प्रदान करेगा। उनकी खोज तथा अनुसंधान की हुई सामग्री जब एकत्रित की जायगी तो वह विद्वान् इतिहासज्ञों की उन भूलों को सुधार देगी जो वे स्थान-विशेष के भौगोलिक विवरण से परिचित न होने के कारण कभी-कभी कर बैठते हैं और जो अत्यन्त हास्यास्पद प्रतीत होती हैं। ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। स्थानीय इतिहास के अध्ययन को इस प्रकार प्रोत्साहन देने से आगे चलकर होने वाले उच्च अनुसंधान-कार्य के लिए एक दृढ़ आधार प्राप्त होगा।

स्थानीय इतिहास की शोध करने वाले के लिए उपर्युक्त पुराने पारिवारिक काग़ज़ातों, स्थानीय इमारतों, प्राचीन स्थलों के अतिरिक्त अध्ययन के अनेक अन्य साधन भी हैं। अनेक जातियाँ तथा क़बीले पाये जाते हैं जिनकी उत्पत्ति, विस्तार, पार्थक्य तथा दूसरों के साथ सम्मिलन के इतिहास का अध्ययन, उनके स्थानीय रस्म-रिवाज, पञ्चायत की प्रणाली तथा अन्य संस्थायें इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करेंगी। यह अत्यन्त लज्जा की बात है कि अधिकतर यूरोपीय विद्वानों ने ही इस दिशा में कार्य किया है। हम इसकी बहुत दिन उपेक्षा कर चुके। हमारी शिक्षा-पद्धति के पूर्णतः विदेशी ढंग पर निर्मित होने तथा हमारे राष्ट्रीय-जीवन के मूल-स्रोत से उसके पूर्णतया पृथक् होने के कारण वह हमें कभी भी इस क्षेत्र की ओर न आकर्षित कर सकी। अपनी नागरिक सभ्यता के

अभिमान में पड़कर अपने इस ग्राम्य-दाय की हमने खेदपूर्ण उपेक्षा की है। हम अपने पुराने लोक-गीतों, कहावतों ग्राम्य-साहित्य तथा बोलियों को भूल गये हैं। डा० ग्रियर्सन को हमारे देश में भाषा सम्बन्धी छान-बीन क्यों करनी पड़ी? रिसले, क्रुक्स, नेसफ़ील्ड, पादरी एलविन्स तथा अन्य विदेशियों को हमारी जातियों तथा कुटुंबों के इतिहास का अध्ययन क्यों करना पड़ा? अपनी खोज तथा परिश्रम के लिए ये यूरोपीय विद्वान् पूर्ण सम्मान के पात्र हैं परन्तु प्रश्न यह है कि इस दिशा में हमने क्या किया?

अब हमारे विश्वविद्यालयों में समाज-विज्ञान तथा नृतत्व के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जा रहा है और इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि स्थानीय विद्वान् स्थानीय इतिहास, रस्म-रिवाज तथा लोक-गीतों के अध्ययन में अपना समय लगावें तो विश्वविद्यालयों में अनुसंधान-कार्य में लगे हुए लोगों को बहुत सी उपयोगी सामग्री सरलता से ही प्राप्त हो जायगी। सर्वप्रथम हमें स्थानीय अनुसंधान के प्रति लोगों में रुचि उत्पन्न करने के लिए स्थानीय इतिहास को गावों की प्राथमिक तथा माध्यमिक पाठशालाओं के पाठ्य-क्रम में सम्मिलित कर देना चाहिए। इसके लिए समुचित पाठ्य-पुस्तकों की आवश्यकता पड़ेगी परन्तु उनका लिखा जाना कठिन नहीं है। आज हमारे पाठ्य-क्रम में क्या मिलता है? युक्तप्रांत में बेसिक-शिक्षा के अंतर्गत ८-९ वर्ष की अवस्था वाले बालकों को कोलम्बस, राजा आर्थर, सिकन्दर, प्लेटो आदि के जीवन-चरित्र, पिरामिड

आदि के वर्णन तथा जिराफ़ और शुतुरमुर्ग का हाल पढ़ाया जाता है। भारत के अतीत तथा वर्तमान स्थिति के विषय में उन्हें बहुत ही कम बतलाया जाता है। अपने समीपवर्ती क्षेत्र तथा वहाँ के ऐतिहासिक स्थलों एवं पुराने प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषों के विषय में बिलकुल ही नहीं बतलाया जाता। यह तथाकथित बेसिक या आधारभूत शिक्षा छोटे लड़कों के गले के नीचे किस प्रकार जबर्दस्ती उतारी जाती है—यह बहुत से लोगों को अच्छी तरह मालूम है। हम अपने बालकों को उनके स्थानीय इतिहास तथा वातावरण से बिल्कुल अनजान रखकर उचित समय के बहुत पूर्व ही उन्हें विश्व से संपर्क रखने वाला तथा अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण-संपन्न बना डालने की चेष्टा कर रहे हैं। यह बेसिक शिक्षा के मौलिक उद्देश्यों का उपहास करना है। जिस प्रकार किसी स्थानीय दस्तकारी को बेसिक शिक्षा का केन्द्र-विन्दु मान लिया जाता है उसी प्रकार स्थानीय क्षेत्र, उसका इतिहास, वहाँ होनेवाले प्रसिद्ध पुरुष उसका साहित्य तथा वहाँ के लोगों को ही आधार बना कर बच्चों की समस्त शिक्षा तथा ज्ञान का ताना-बाना इन्हीं के चारों ओर निर्मित होना चाहिए। टुंड्रा, उत्तरी ध्रुव तथा सहारा से भारतीय बच्चों की शिक्षा का प्रारंभ करना छड़ी को ग़लत सिरे पर पकड़ने के समान है और शिक्षा की दृष्टि के यह भयंकर अत्याचार है।

हमारा दावा है कि कानपुर जैसे अत्यन्त द्रुतगति से बढ़ने वाले नगर में भी और उसके समीपवर्ती क्षेत्र को बेसिक शिक्षा का आधार बनाया जा सकता, है और बच्चों

को इतिहास, भूगोल, साहित्य, धर्म, तथा मस्तिष्क के विकास की शिक्षा इसी के आधार पर प्रदान की जा सकती है। कानपुर के अपने स्थानीय प्रसिद्ध पुरुषों की परंपरा सतयुग के पुराण-कालीन बालवीर ध्रुव, त्रेतायुग के रामायण के प्रणेता आदिकवि वाल्मीकि तथा द्वापर में भगवान् कृष्ण के समय से प्रारंभ होती है, जिनके नाम पर ही इस स्थान का नाम पहले कान्हपुर पड़ा। जाजमऊ में एक टीला है जिसके संबन्ध में बतलाया जाता है कि वह राजा ययाति का क़िला था जिन्होंने अत्यन्त वृद्धावस्था में अपना दूसरा विवाह शुक्राचार्य की पुत्री शर्मिष्टा से किया था। हमारे भू-भाग को भगवान् बुद्ध ने पवित्र किया था। हमारा यह ज़िला मौर्य-साम्राज्य, पाटलिपुत्र के गुप्त-वंश तथा कन्नौज के हर्षवर्धन के साम्राज्य में शामिल था। इसके बाद हमने एक बार पुनः राजा मिहिर भोज तथा जयचन्द्र के समय में कन्नौज के गौरव को देखा और इसके बाद उत्तरी भारत के अन्य भागों की भाँति हमने भी मुसलमानों से राजपूतों के हार जाने के बाद दिल्ली के तुर्की सुल्तानों की दासता स्वीकार की। तत्पश्चात् शेरशाह और मुग़ल सम्राटों ने हमारे ऊपर शासन किया।

मुग़ल-साम्राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने के बाद हमारा ज़िला अवध के स्वतन्त्र इलाक़े का एक अङ्ग रहा। सन् १८०१ में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने उसे अवध से छीन लिया। १८५७ के विद्रोह का चरम-रूप हमने देखा। झाँसी की रानी, नाना साहब, तात्या टोपे, अज़ीमुल्ला, राजा सतीप्रसाद चंदेल (शिवराज-

पुर) तथा इसके कुछ ही समय पूर्व राजा हिंदूसिंह (सचेंड़ी) आदि के जन्म-स्थल अथवा क्रीड़ा-स्थल होने का हमारी भूमि को सौभाग्य रहा है। सन् १८५८ के बाद कानपुर ने अपना वर्तमान औद्योगिक रूप प्राप्त किया। वाल्मीकि के अतिरिक्त अन्य कई प्रथम श्रेणी के कवियों को भी उत्पन्न करने का इस ज़िले को श्रेय प्राप्त है। हिन्दी काव्य-साहित्य के 'नवरत्नों' में परिगणित होने वाले महाकवि भूषण और मतिराम इसी ज़िले में उत्पन्न हुए थे। राजा बीरबल यहीं के निवासी थे। निकट अतीत में कानपुर को जिन प्रसिद्ध व्यक्तियों के निवासस्थान होने का श्रेय प्राप्त है उनमें पं० प्रतापनारायण मिश्र, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' तथा अमर-शहीद गणेशशङ्कर विद्यार्थी प्रमुख हैं। विद्यार्थी जी का हिंदू-मुस्लिम एकता की बेदी पर अमर बलिदान भारतीय इतिहास में सदैव स्वर्णाक्षरों में अङ्कित रहेगा।

हमारे ज़िले में कुछ अत्यन्त प्राचीन इमारतें भी हैं। भीतर-गाँव, बेहटा तथा रिंद नदी के पास अन्य स्थानों के प्राचीन-मन्दिर हमारी स्थापत्य-कला तथा शिल्प-कला के गौरवपूर्ण अतीत का स्मरण दिलाते हैं। तुर्क तथा मुग़ल भी कुछ मक़बरों, कोट (प्राचीर) युक्त गावों, पक्के पुलों तथा सरायों के रूप में अपने शासन के प्रतीक छोड़ गये हैं।

ब्रिटिश शासन ने अन्य स्थानों की भाँति हमारे ज़िले को भी कलात्मक दृष्टि से कोई महत्वपूर्ण वस्तु नहीं प्रदान की।

परन्तु वह रेलवे, कचहरी, जेल, पक्की सड़कें, गङ्गा तथा यमुना पर लोहे के पुल, सूती तथा चमड़े के मिल तथा एक अत्यन्त गन्दे शहर और साम्प्रदायिक विद्वेष की विरासत छोड़ गया है। अपना वर्तमान विस्तृत आकार-प्रकार धारण करने के लिए हमारे नगर ने आसपास के देहात की आबादी तथा समृद्धि अपने यहाँ समेट ली है।

भारतीय भाषा-विज्ञान के विद्यार्थी के लिए भी कानपुर ज़िला अत्यन्त आकर्षण एवं रोचकता का क्षेत्र हो सकता है, क्योंकि अवधी तथा ब्रजभाषा की सीमाएँ लगभग इस नगर में ही मिलती हैं। यदि इस ज़िले के पूर्वी भाग में बोली जाने वाली बोली की तुलना पश्चिमी तथा दक्षिणी भागों में बोली जाने वाली बोलियों से की जाय तो स्वर, उच्चारण तथा मुहावरों में बहुत बड़ा अन्तर स्पष्ट मालूम पड़ जायेगा।

मकनपुर में शाह मदार का मक़बरा मुस्लिम सूफ़ी सन्तों तथा उनके विभिन्न सिलसिलों के कार्यों का स्मरण दिलाता है। देव-समाज के प्रवर्तक भगवान् देवात्मा अकबरपुर में एक अग्निहोत्री ब्राह्मण-परिवार में उत्पन्न हुए थे। १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मैथा के स्वामी भास्करानन्द ने अपनी विद्वत्ता तथा उच्च धार्मिकता के लिए काशी में अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त की थी। विभिन्न क्षेत्रों में ख्याति-प्राप्त अनेक व्यक्ति अनेक युगों में यहाँ पधारे जिनमें भगवान् गौतम बुद्ध, ह्वेनसांग, शेरशाह, अकबर, औरंगज़ेब तथा अन्य अधिकांश भारतीय सम्राटों के हमारी भूमि पर पदार्पण करने का ऐतिहासिक प्रमाण है।

स्वामी दयानन्द जी, महात्मा गांधी तथा आधुनिक समय के प्रायः सभी सम्मान्य नेता एवं प्रसिद्ध पुरुषों ने कानपुर आकर इसे गौरव-दान किया है।

कानपुर के स्थानीय इतिहास की इस संक्षिप्त रूप-रेखा से यह ज्ञात हो गया होगा कि हमारे इस भू-खंड का इतिहास हमें अत्यन्त आदिकाल से लेकर वर्तमान समय तक के भारतीय इतिहास की रूप-रेखा प्रदान कर सकता है। इससे हमें यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि अपने स्थानीय इतिहास में हम समस्त देश के इतिहास की संक्षिप्त झलक देख सकते हैं। हमारी समझ में अब वह समय आ गया है कि हम स्थानीय इतिहास के अध्ययन की ओर गम्भीरतापूर्वक बढ़ें। इस उद्देश्य के लिए विभिन्न डिग्री तथा इंटरमीजिएट कालेजों एवं हाई स्कूलों की इतिहास-परिषदों से काम लिया जा सकता है। स्थानीय इतिहास तथा लोक-गीतों की छानबीन से अंडर-ग्रेजुएटों तथा ग्रेजुएटों को शोध-कार्य के लिए एक रोचक एवं अत्यन्त व्यावहारिक कार्य-क्षेत्र प्राप्त हो जायगा। जिले का ऐतिहासिक तथा नृतत्व-संबंधी पूर्ण निरीक्षण हो जाने के बाद उक्त समस्त संकलित सामग्री को विश्वविद्यालयों या भारत सरकार के पुरातत्व-विभाग के पास भेज कर उस संबंध में विशेषज्ञों की सहायता प्राप्त की जा सकती है। किन्तु यह हो जाने के बाद भी अभी और शोध की आवश्यकता बनी रहेगी क्योंकि नवीन बातें तथा नवीन स्थलों का किसी समय पता लग सकता है। हमें यह काम सेवा की भावना लेकर करना

होगा जिस प्रकार महाराष्ट्र में स्वर्गीय राजवाड़े ने किया था। उन्होंने बिना किसी प्रकार की सहायता या प्रोत्साहन के अपना सारा जीवन इसी कार्य में लगा दिया। रावबहादुर सखाराम गोविंद सरदेसाई ने राजवाड़े द्वारा प्रकाश में लाई गई इस सामग्री का बहुत अधिक उपयोग किया है। अभी कितने ही घरों एवं परिवारों में हस्तलिखित प्रतिलिपियों के रूप में बहुत सी सामग्री सुरक्षित पड़ी हुई है यद्यपि उसकी ओर यहाँ कोई ध्यान नहीं दिया जाता। अनेक परिवारों की वंशावलियाँ अब भी मिल सकती हैं और उनसे महत्वपूर्ण कार्य निकल सकता है। तथाकथित दलित एवं खानाबदोश जातियों के रस्म-रिवाजों के संबंध में हमारा अध्ययन अब भी प्रारंभिक अवस्था में ही है। इन सब के लिए हमें विदेशी विद्वानों तथा पुरातत्व-विभाग के अधिकारियों के ऊपर निर्भर न रहना चाहिए। हमें इसकी गाड़ी आगे बढ़ाने के लिए अपना कंधा लगाना पड़ेगा और यदि हमने इस क्षेत्र में ईमानदारी से काम किया तो हमारा निश्चित विश्वास है कि हमारे परिश्रम का बहुत बड़ा पुरस्कार मिलेगा। हम देखेंगे

वृक्षों में भी जिह्वा होगी पत्थर में उपदेश,
झरते निर्झर बन जायेंगे पुस्तक विमल अशेष।

दूसरा अध्याय

भौगोलिक और प्राकृतिक वर्णन

विस्तार और सीमा

युक्तप्रान्त में गंगा-यमुना के दोआब के अधोभाग में कानपुर का जिला अवस्थित है। आकार में यह एक असम चतुर्भुज है, जिसके कोण उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम की ओर हैं। इस चतुर्भुज की चौड़ाई उत्तर से दक्षिण तक अधिक से अधिक लगभग ७० मील और लंबाई पूर्व से पश्चिम तक ६४ मील है। इसका विस्तार २५° – २६′ और २६° – ५८′ के उत्तर अक्षांशों, और ७६° – ३१′ व ८० – ३४′ देशान्तर रेखाओं के अन्तर्गत है। उत्तर-पूर्व गंगापार अवध के हरदोई और उन्नाव के जिले, और दक्षिण में यमुनापार हमीरपुर और जालौन के जिले इसे घेरे हुए हैं। इसके दक्षिण-पूर्व में फ़तेह-पुर ज़िले की खजुहा तहसील, और पश्चिम और पश्चिमोत्तर में इटावे की औरैया तहसील, तथा फ़र्रुख़ाबाद की तिर्वा और

कन्नौज तहसीलें हैं। समस्त ज़िले का क्षेत्रफल लगभग २३७२ वर्गमील है।

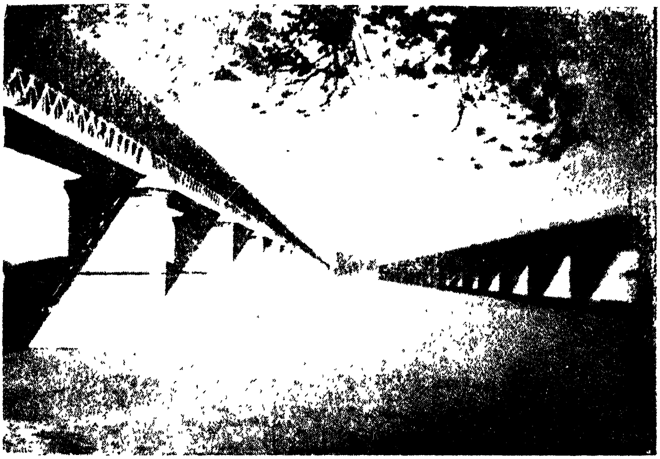
ढाल

इस ज़िले में पानी के बहाव का ढाल पश्चिमोत्तर से दक्षिण-पूर्व की ओर है। इसी दिशा में यहाँ की मुख्य नदियों का बहाव है। यह समस्त भू भाग नदियों की लाई हुई मिट्टी के बिछाव से बना है। ढाल बहुत हलका है। गंगा की नहर जहाँ पर कानपुर ज़िले में प्रवेश करती है, वहाँ की भूमि समुद्र की सतह से ४५१ फ़ुट ऊँची है, बिल्हौर तहसील के बीच में ४४० फ़ुट, कानपुर तहसील के करसौली गाँव के पास ४३० फ़ुट और फ़तेहपुर-शाखा के संगम पर ४२० फ़ुट है। पर यमुना की तलेटी की सतह गंगा की तलेटी की अपेक्षा लगभग ३० फ़ुट अधिक नीची है।

नदियाँ

गंगा—गंगा इस ज़िले की उत्तरी-पूर्वी तथा पूर्वी सीमा पर बहती है। इसकी तलेटी रेतीली और चौड़ी है, जिसमें इसकी धार घूमती रहती है। बरसात में इसका पाट कहीं-कहीं पर दो-डेढ़ मील तक हो जाता है, पर जाड़े में वह बहुत सिकुड़ जाता है, और अनेक स्थानों में तो लोग बिना तैरे ही उसे पार कर लेते हैं। इसीलिए गंगा में बारह मास नाव चलाना कठिन हो जाता है। पानी की इस कमी का मुख्य कारण इसकी नहरें हैं, जो जाड़े में इसका बहुत सा पानी खींच लेती हैं। गंगा के

किनारे अधिकतर कई मीलों तक रेतीली *कटरी* फैली हुई है, जिसमें खेती नहीं हो सकती, केवल झाऊ के झाड़ दिखाई पड़ते हैं। पर बिठूर और कानपुर के बीच जो भूमि गंगा के किनारे-किनारे है वह चिकनी मिट्टी की बनी है और बहुत उपजाऊ है। उसे *कछार* कहते हैं। कहीं-कहीं पर, जैसे जाजमऊ और तरी-दुर्गापुर के पास, बड़े ऊँचे *कगार* हैं। बिठूर भी ऐसे ही कगारों पर बसा है। ये कगारें कहीं-कहीं अति रमणीय हैं। पानी से लगातार कटते रहने के कारण इनकी यह दशा हो गई है, और ये खेती के लिए उपयुक्त नहीं हैं। इनकी मिट्टी कड़ी और भुरभुरी हो गई है और इनकी उर्वरा-शक्ति नष्ट हो गई है। किन्तु बबूल आदि के पेड़ लगा कर तथा अन्य वैज्ञानिक उपायों से सैकड़ों वर्गमील की यह भूमि उपयोगी बनाई जा सकती है। गंगाजल की पवित्रता शास्त्रों में प्रसिद्ध है। वैज्ञानिकों ने भी गंगाजल का विश्लेषण कर यह बताया है कि उसमें रोगों के कीटाणुओं के संहार की अनुपम शक्ति विद्यमान है। कलकत्ते से जो जहाज हुगली का छना हुआ जल अपने कुंडों में भर कर ले जाते हैं उन्हें उसके अदन में बदलने की जरूरत नहीं होती, क्योंकि वह इतने दिनों की यात्रा के बाद भी शुद्ध बना रहता है, परन्तु माल्टा अथवा अदन का लिया हुआ पानी कुछ ही दिनों में बदबू देने लगता है। मुग़ल-सम्राट् इसी कारण अपने पीने के लिए हरद्वार से शुद्ध गंगाजल मँगवाते थे, जो मुहरबंद बोतलों में लाया जाता था। अकबर ने इसे 'आबे-हयात' अर्थात् जीवन-जल, नाम



कानपुर में गंगा पर रेल के दोनों पुल
(पृष्ठ १९)



कालपी में यमुना का पुल
(पृष्ठ २३)

दिया था। हिन्दू-परिवारों में गंगाजल महीनों सुरक्षित रहता है और मरणासन्न पुरुषों को वही अंतिम औषध के रूप में दिया जाता है। यह निरा भक्तिजनित मूढ़-विश्वास नहीं है।

गंगा-तट के प्रसिद्ध तीर्थ और स्थान—वर्तमान कानपुर ज़िले की भूमि में पुण्यतोया गंगा के किनारे अनेक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान और तीर्थ रहे हैं। आजकल तो कानपुर नगर ही इस भू-भाग में गङ्गा-तट का सब से बड़ा और प्रसिद्ध स्थान है, पर प्राचीन काल में कन्नौज-नगर, जो सन् १८०१ से १८३६ तक इसी ज़िले के अन्तर्गत था और जो अब ज़िले की सीमा से कुछ ही दूर है, महाभारत-युग से लेकर राजा जयचन्द्र "कनौजीराय" के समय तक समस्त भारत में प्रसिद्ध रहा। उसके उजड़ने पर, जैसा एक अगले अध्याय में विस्तारपूर्वक बताया जायगा, हमारे भू-भाग की ऐतिहासिक महत्ता क्षीण-प्राय हो गई। फिर आँकिन, नानामऊ, राधन, सैबसू, काकूपुर, तरी-दुर्गापुर, बंदिमाता (अटवा), बिठूर, पुराना कानपुर, जाजमऊ, नजफ़गढ़, डोमनपुर आदि स्थान मध्यकालीन युग से आज तक अधिकाधिक प्रकार से प्रसिद्ध रहे हैं। प्रायः इन सभी स्थानों पर प्राचीन घाट और मंदिर हैं और गंगापार जाने के लिए उतराई की सुविधा है। इस पुस्तक के अन्तिम अध्याय में इन सब स्थानों का विस्तृत वर्णन मिलेगा। जब से कानपुर-नगर की महिमा बढ़ी यहाँ भी खेउरा के निकट जागेश्वर-घाट से लेकर जाजमऊ तक अनेक पक्के घाट बन

गये हैं, जिनका वर्णन अन्यत्र मिलेगा। मालूम नहीं पंडितराज जगन्नाथ ने अपनी 'गङ्गालहरी' की रचना किस स्थान में बैठ कर की, पर कविवर पद्माकर ने अपनी हिंदी 'गङ्गालहरी' को तो अवश्य पुराने कानपुर के किसी प्राचीन घाट पर लिखा। पद्माकर सन् १८१६ से १८२३ तक वहीं रहे और वहीं उनका प्राणांत हुआ। उनकी 'गङ्गालहरी' में प्राचीन शैली के अनुसार यमक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि की अनुपम छटा तो अवश्य है, पर गंगाजी की प्राकृतिक शोभा का वर्णन बहुत कम है। फिर भी नीचे उनके दो छन्द उदाहरणार्थ दिये जाते हैं :—

(१)

कैधौं तिहुँलोक की सिंगार की बिसाल माल,
कैधौं जागी जग में जमाति तीरथन की।
कहै पदमाकर बिराजै सुर - सिंधु - धार,
कैधौं दूध-धार कामधेनु के थनन की॥
भूपति भगीरथ के जस की जलूस कैधौं,
प्रकटी तपस्या कैधौं पूरी जह्नु जन की।
कैधों कछु राखै राकापति सों इलाका भारी।
भूमि की सलाका पै पताका पुन्यगन की॥

[२]

रेणुका की रासन मैं, कीच कुस कासन मैं,
निकट निवासन मैं आसन लदाऊ के।
कहै पदमाकर तहाई मंजु सूरन मैं,
धौरी धौरी धूरन मैं पूरन प्रभाऊ के॥

पारन मैं बारन मैं देखहू दरारन मैं,
नाचति है मुकुति अधीन सब काऊ के।
कूल औ कछारन मैं, गंगाजल धारन मैं,
मँझरा मँझारन मैं झारन मैं झाऊ के॥

इस ज़िले में गंगा पर कानपुर-नगर ही में दो पक्के फौलादी पुल हैं। पुराना पुल सन् १८७५ में अवध व रुहेल-खंड रेलवे द्वारा बनाया गया, पर सन् १६२४ से उसकी रेल की पटरियाँ उखाड़ दी गई और अब ऊपर सीमेंट की सड़क से मोटर, बैलगाड़ी आदि का रास्ता है और नीचे वाली लकड़ी के तख्तों की सड़क से आदमियों और जानवरों के आने-जाने का मार्ग है। दूसरा पुल पुराने पुल से ३०-४० फुट पूर्व में है। इसका निर्माण केवल रेलों के लिए हुआ था। पहले इस पर केवल बड़ी लाइन की पटरियाँ थीं। पर १६२४ से छोटी लाइन की पटरियाँ भी इसी पर ले जाई गई हैं। कानपुर से लखनऊ जाने के लिए यही पुल है।

गङ्गा की सहायक नदियाँ—इस ज़िले में बहने वाली गंगा की केवल ४ ही सहायक नदियाँ हैं, जिनमें *यमुना* सब से प्रधान और हमारे ज़िले के विचार से एक स्वतंत्र नदी के रूप में है। गंगा-यमुना का संगम प्रयागराज में प्रसिद्ध ही है। *पाण्डव* (पाँडो) नदी कानपुर ज़िले की सीमा से ३ मील आगे बढ़कर फ़तेहपुर ज़िले के शिवराजपुर ग्राम के पास गंगा में मिलती है। केवल *ईशान* (ईसन) और *उत्तरी नोन* ही इस ज़िले की सीमा के अंतर्गत गंगा में गिरती हैं। ईसन भी इस

जिले में कुल १३ मील ही टेढ़ी-मेढ़ी बहकर मकनपुर के पास से होती हुई महगवाँ (तहसील बिल्हौर) के समीप गंगा से जा मिली है। ईसन का निकास अलीगढ़ जिले में है, और एटा, मैनपुरी और फ़रुखाबाद से जिलों को पार करती हुई वह हमारे जिले में प्रवेश करती है। *उत्तरी नोन* हन्नू अथवा हरनू और बीरामऊ (तहसील बिल्हौर) के मध्य स्थित झाबर से निकल कर कुछ मील ही की संक्षेप यात्रा कर बिठूर के नीचे गंगा में मिलती है। *पांडों* फ़रुखाबाद जिले में निकलती है और अपनी यात्रा में गंगा के लगभग समानांतर बहती हुई फ़तेहपुर जिले में, जैसा ऊपर कहा गया है, गंगा में मिलती है। इस नदी के किनारे अनेक प्राचीन राज-वंशों की राजधानियाँ तथा ब्राह्मणों के स्थान हैं, जिनका वर्णन उचित स्थान पर किया जायगा। *नई, लोखा, भौंरो* और *पधैया* नामक बरसाती नाले इसकी सहायक नदियों के रूप में हैं।

यमुना और उसकी सहायक नदियाँ—यमुना की सहायक नदियाँ जो इस जिले के अंतर्गत हैं उनमें से *दक्षिणी नोन* इसी जिले में निकलती है। यह अकबरपुर तहसील के दक्षिणी भाग में स्थित रसूलपुर-गोगेमऊ से निकलती है। तीन और नालों के पानी घाटमपुर तहसील में मिलकर इसके आकार की वृद्धि करते हैं। इनमें से नूर नामक नाला तिलौंची (तहसील अकबरपुर) के झाबर से शुरू होता है। अकबरपुर तहसील के उत्तरी भाग में स्थित नरीहा ग्राम के पास से इसका दूसरा सहायक नाला निकलता है।

ीसरा मनेथू (तहसील अकबरपुर) के पास निकलता है। ानपुर ज़िले से बाहर १० मील फ़तेहपुर ज़िले में बहकर ःक्षिणी नोन यमुना में गिरती है। यमुना की दो और सहायक ादियाँ इस ज़िले से होकर बहती हैं, जिनके नाम *रिंद* और ंगुर हैं। *रिंद*, जिसे 'आईने-अकबरी' में *अरिंद* कहा गया है, प्रलीगढ़ ज़िले से निकलकर एटा, मैनपुरी, फ़र्रुख़ाबाद और ःटावा ज़िलों से होती हुई नार नामक गाँव के पास कानपुर ज़ेले में प्रवेश करती है, और डेरापुर, अकबरपुर, कानपुर और ाटमपुर की तहसीलों को पार करती हुई फ़तेहपुर ज़िले में ामुना में गिरती है। इसकी गति अत्यंत कुटिल है और केवल ःस ज़िले के अन्तर्गत इसके बहाव की लम्बाई १०५ मील है। ःसके कगार बहुत ऊँचे और किनारे की भूमि कहीं-कहीं पर ो मीलों तक बहुत टूटी-फूटी और ऊँची-नीची है। इसके दोनों प्रोर बीहड़ बहुत हैं, जिनमें ढाक, रियाँ, बबूल आदि के ःरख़्त बहुतायत से हैं। कगारों के पीछे लाल मिट्टी है जो ाहुत उपजाऊ है। रिंद के किनारे अनेक प्राचीन मंदिर हैं, जेनसे शायद यह अनुमान करना चाहिए कि यह नदी भी केसी समय में पवित्र मानी जाती थी। इसकी सहायक नदियाँ ाब बायें तरफ़ से आती हैं। उनमें से *सियारी* इटावा से आती है। *छोहा*, जो *छरैया* और *नरिया* से मिलकर बनी है, बिल्हौर ाहसील के पश्चिमी भाग का पानी इसमें लाती है। *सूपा* प्रौनहाँ के पास निकलती है और काशीपुर के पास रिंद में आ मेलती है। *सतबिधई*, *मटरू* और *गड़रहा* भी बरसाती नालों

की शक्ल में रिंद में मिलते हैं। *सेंगुर* भी ईसन और रिंद की भाँति अलीगढ़ के ज़िले से आती है और एटा, मैनपुरी व इटावा के ज़िलों को पार करती हुई डेरापुर तहसील की पश्चिमी सीमा में घुसती है। फिर पूर्व की ओर मुड़कर और डेरापुर, अकबरपुर और भोगनीपुर के इलाक़ों से गुज़र कर, मुहम्मदपुर (मलासा स्टेशन जी० आई० पी० रेलवे) के पास दक्षिण की ओर घूमकर मूसानगर से कुछ दूर ऊपर केंवटरा के पास यमुना में गिरती है। इसके भी दोनों किनारों पर ऊँचे कगार तथा बहुत ऊँची-नीची ज़मीन है, और इसके दोनों ओर के जंगल रिंद के बीहड़ से भी अधिक चौड़े हैं और उनमें अनेक प्रकार के छोटे छोटे पेड़ व झाड़ियाँ हैं, जिनमें अनेक जंगली जानवरों का निवास है। हिंसक जंतुओं में भेड़िये के सिवाय कहीं-कहीं पर तेंदुआ भी रहता है। *धरिया*, *रतबहा* और *लीलझी* इसके सहायक नाले हैं।

यमुना

यमुना इस ज़िले में भोगनीपुर तहसील के ठीक पश्चिम में प्रवेश करती है, और अधिकतर दक्षिण-पूर्व की ओर बहती हुई कानपुर ज़िले को जालौन और हमीरपुर के ज़िलों से अलग करती है। इसकी तलेटी बहुत नीची और और इसके किनारे की कगारें ऊँची हैं। इसके किनारों की भूमि रिंद और सेंगुर के तटों की भूमि से अधिक टूटी-फूटी है। कगारों और पानी की धार के बीच की भूमि, अर्थात् *रेती*,

कहीं-कहीं तो बहुत उपजाऊ है और उसके ऊपर का *कछार* भी अच्छा है। यमुना की रेत गंगा जैसी नहीं है। इसमें चिकनी मिट्टी का अंश काफ़ी है। पर कहीं-कहीं, और विशेष कर काल्पी के सामने चौड़ा स्टेशन के नीचे की रेत, जिसे *मोरम* कहते हैं, सीमेंट के साथ मिलाकर मकान और सड़क आदि बनाने के काम में आती है। यमुना भी पवित्रता में गंगा से कुछ ही कम मानी जाती है और अनेक स्थानों में इसमें स्नान करने लिए पक्के घाट बने हुए हैं। काल्पी के पास झाँसी जाने वाली जी० आई० पी० रेलवे का फ़ौलादी पुल यमुना के ऊपर बना हुआ है, जो सन् १८८८ में बनकर तैयार हुआ था। जी० आई० पी० की दूसरी शाखा कानपुर-बाँदा लाइन, जो पहले पहल सन् १६१४ में खुली थी, यमुना पार करती है और हमीरपुर रोड स्टेशन के आगे इसका फ़ौलादी पुल बना हुआ है। इन दोनों पुलों में मोटर, गाड़ी आदि के निकलने की जगह नहीं है। बरसात के महीनों के सिवाय अन्य महीनों में पीपों के पुल से यह काम लिया जाता है और बरसात में नावों से। काल्पी वाला पुल २६२६ फ़ुट लंबा है और इसमें १० कोठियाँ हैं। इसके निर्माण में २५ लाख ६६ हज़ार रुपये लगे थे।

पांच दोआब और उनकी मिट्टी—कानपुर ज़िले की भूमि का वैभव इन्हीं दो प्रधान नदियों, गंगा और यमुना, तथा उनकी सहायक नदियों की देन है। उन्हीं की फैलाई हुई मिट्टी ने इसे उर्वरा बनाया है, और हज़ारों बरसों से हम इसी के उपजे हुए अन्न से अपना उदर पोषण कर रहे हैं। पर इस

मिट्टी के कई रूप और प्रकार हैं। इस ज़िले की भूमि स्वयं एक दोआब है और इस दोआबे के अन्तर्गत और उसी की लम्बाई के साथ चलने वाले ५ छोटे-छोटे दोआबे हैं, क्योंकि गंगा और यमुना की सहायक नदियाँ, जो इस भूमि में हैं, इन्हीं के समानान्तर बहती हैं।

पहला दोआब ईसन और गंगा के बीच में है, जिसका केवल अधोभाग हमारे ज़िले की सीमा के अन्तर्गत है। इसकी सतह हमवार है और इसकी मिट्टी चिकनी और रेतीली मिश्रित अर्थात *दुमट* है जो कुछ हलकी तो अवश्य है, पर काफ़ी उपजाऊ है और परिश्रमी कुर्मी जाति के अध्यवसाय के कारण यह भाग जो "कुर्मीयत" के नाम से प्रसिद्ध है, ज़िले के सबसे अधिक उपजाऊ भागों में गिना जाता है।

दूसरा दोआब पूर्व की ओर ईसन और गंगा की रेखाओं और पश्चिम ओर पांडव के बीच में है और इसका विस्तार पूरे ज़िले में उत्तर से दक्षिण तक है। इसके मध्य में उत्तरी नोन का छोटा सा काँठा भी है। इस दोआब का उत्तरी भाग हमवार है और *दुमट* से बना है, जो पूर्व की ओर ईसन के किनारे पर अधिक *भुर्रा* या रेतीला है, पर पश्चिम अर्थात् पांडव के किनारे इसकी मिट्टी में चिकनापन अधिक है। हरनू के आसपास जिस *झाबर* से उत्तरी नोन निकली है वह *ऊसर* है और उसमें तथा नोन के छोटे से काँठे में *रेह* की बहुतायत है। नोन के काँठे के दक्षिण भाग में मिट्टी

में *चिकनी दुमट* है, जो आगे चलकर हलका और *भुरा* और रंग में *ललखुर* होता गया है। दोआब के अन्तिम भाग में फिर वही उत्तर वाली दुमट दिखलाई देती है, पर बीच-बीच यत्र-तत्र *ऊसर* और *झाबर* भी हैं।

तीसरा दोआब भी, जो पांडव और रिन्द के बीच में स्थित है, ज़िले की पूरी लंबाई में फैला हुआ है। पांडव के पश्चिम की भूमि वैसी है जैसी उसके पूर्वी किनारे पर। लेकिन जैसे ही हम पश्चिम की ओर बढ़ते हैं, तो *ऊसर* बहुत मिलता है, जिसमें बीच-बीच में उपजाऊ टुकड़े और छिछली *झीलें* भी हैं। ज़िले के अधबिच में इस *ऊसर* की चौड़ाई घट जाती है और उसके स्थान में रिन्द काँठे की *ललखुर मिट्टी* दिखाई पड़ती है। पर बीच-बीच में भूरी *दुमट* और *ऊसर* के दर्शन कभी-कभी होते हैं।

चौथा दोआब रिंद और सेंगुर के बीच में है। इसका ऊपरी भाग हलकी *दुमट* का बना हुआ है और उसमें *ऊसर* कम है। जो कुछ *ऊसर* है भी उसमें *रेह* की मात्रा कम होने से *ढाक के जंगल* बहुत हैं। सेंगुर के पास की मिट्टी *ललखुर* है। इसके बीच वाले भाग में ज़मीन की सतह नीची हो जाती है और इसलिए पानी भर जाता है। ऐसे स्थानों में *ऊसर* काफ़ी है जिसमें *काँस* आदि के *झाबर* हैं। इस दोआब के निचले भाग में *हलकी दुमट* के फिर दर्शन होते हैं, पर कहीं-कहीं, और विशेषतर दक्षिणी नोन के पूर्वी भागों में, *ऊसर* और बलुए टीले भी हैं।

जिले के शेष भाग में सेंगुर और यमुना के बीच वाला पाँचवा दोआब फैला हुआ है। इसके दोनों ओर, अर्थात् सेंगुर और यमुना के किनारों पर, बहुत ऊबड़-खाबड़ *कगारें* हैं, पर बीच में ज़मीन बराबर है। पुखरायाँ से शुरू होकर पश्चिमोत्तर की ओर कुछ दूर तक फैली हुई भूमि में *ऊसर* है। दोआब के ऊपरी भाग की मिट्टी खेती के लिए बहुत अच्छी है, पर जैसे ही यमुना की ओर बढ़ते जाइए उसकी उद्भिज शक्ति कम होती जाती है। इस भूमि में कुएँ का पानी बहुत गहराई में मिलता है। इसलिए इसकी सिंचाई कुओं से आसानी से नहीं की जा सकती और जहाँ नहर या बंबे नहीं हैं वहाँ खेती के लिए क्या जानवरों के पीने के लिए भी सूखे मौसम में पानी का विशेष कष्ट है।

मिट्टी

जिन मिट्टियों की चर्चा ऊपर हो चुकी है उनमें से *दुमट* उस मिट्टी को कहते हैं जिसमें *चिकनी* और *भुर्रा* मिट्टी मिली होती है। चिकनी की अधिकता होने से उर्वरा शक्ति भी अधिक होती है, पर बिना कुछ भुर्रा की मात्रा के वह अधिक उपयोगी नहीं होती। यमुना और सेंगुर की कगारों के किनारों पर एक प्रकार की कँकरीली मिट्टी मिलती है जिसे यहाँ *राकड़* कहते हैं। चिकनी काली मिट्टी, जिसे *कबाड़* कहते हैं, और *भुर्रा* भी उन कगारों के बीच बराबर भूमि में मिलती है। कगारों के ऊपर एक *ललखुर* मिट्टी पाई जाती है, जिसे *परवा* कहते हैं, और जो

चटख़ बहुत जल्दी जाती है, क्योंकि उसमें रेत की मात्रा अधिक होती है। कपास की खेती के लिए उपयुक्त काली मिट्टी बहुत कम स्थानों में है। इसे *मार* कहते हैं। ये मिट्टियाँ अधिकांश में यमुना-सेंगुर दोआबे में हैं और ये यमुना-पार बुंदेलखंड की मिट्टियों की तरह हैं। ज़िले के अन्य भागों में ऊंची जगहों पर *भुर्रा* या *भूर*, नीची जगहों में *मटियार* या *कचिला*, और बराबर ज़मीन में *दुमट* पाई जाती हैं। *दुमट* की कई क़िस्में हैं, *ख़ाली*, *ललखुर* और *पीली*। पीली दुमट को *पीलिया* कहते हैं। नदियों की बाढ़ से जिन ज़मीनों पर प्रतिवर्ष पानी भर जाता है उनको *कछार* कहते हैं। गावों के आसपास की ज़मीन को *गौहान*, उसके आगे की ज़मीन को *मंझा* और उसके भी आगे की ज़मीन को *बरहट* कहते हैं।

खनिज

इस ज़िले में कोई उल्लेखनीय खनिज पदार्थ नहीं निकलता। केवल कुछ स्थानों में *कंकड़* की खानें हैं, जिन्हें खोदने से कंकड़ अथवा कहीं-कहीं पर कंकड़ों से जमे हुए पत्थर के टुकड़े भी मिलते हैं। कंकड़ की खानें थोड़ी-बहुत मात्रा में प्रायः सब तहसीलों में पाई जाती हैं।

ज़िले के अनेक नीचे स्थलों में, जहाँ बरसात में पानी जमा हो जाता है, *रेह* के मैदान हैं, जिनसे सज्जी, नमक और शोरा बनाये जाते हैं। परन्तु अधिक परिमाण में यह उद्योग कभी नहीं चलाया गया।

झीलें

किन्हीं-किन्हीं स्थानों में भूमि की सतह अत्यधिक नीची होने के कारण वहाँ वर्षा-ऋतु में काफ़ी दूर तक पानी भर जाता है। इस प्रकार की कुछ प्रमुख छिछली झीलें घाटमपुर तहसील में जहाँगीराबाद, नरवल के पास रहनस में, बिल्हौर की तहसील में हरनू, इटैली और नैला में, अकबरपुर तहसील में नरिहा, रसूलपुर तथा गोगेमऊ में, कानपुर तहसील में मछरिहा में, और भोगनीपुर तहसील में सुनाव नामक स्थानों में हैं।

जल-वायु

इस ज़िले का जल-वायु दोआबे के अन्य भागों की भाँति है। मार्च से लेकर वर्षा आरंभ होने तक जल-वायु शुष्क रहता है और मई व जून में भयानक गर्मी पड़ती है। पश्चिम से आने वाली (*पछियाव*) गर्म लू के रूप में चलती है तथा अंधड़ आते हैं। तापमान कभी-कभी ११५° से भी ऊपर ११८° तक पहुँच जाता है। वर्षा आरम्भ होने पर हवा का रुख़ पूर्व को हो जाता है। इस हवा को *पुरवाई* कहते हैं, और लोकोक्तियों और लोक-गीतों में इसकी बड़ी महिमा है। जब तक पानी बरसना प्रारम्भ नहीं हो जाता मौसम बहुत ही कष्टकर रहता है। बीच में जब पानी बरसना बन्द हो जाता है, और ऐसा प्रायः होता रहता है, और कभी-कभी काफ़ी दिनों तक बीच में पानी नहीं गिरता, तो इसी प्रकार भयंकर उमस तथा गर्मी पड़ती है। वर्षा-ऋतु के

अन्त में सितम्बर तथा अक्टूबर के महीनों में बीमारियाँ ज़ोर पकड़ती हैं। बुख़ार तथा पेचिश का विशेष ज़ोर रहता है। जाड़े की ऋतु अक्टूबर के अन्त से प्रारम्भ होती है और तापक्रम धीरे-धीरे गिरता है। जनवरी में यह सबसे कम हो जाता है और उस समय सबसे अधिक जाड़ा पड़ता है। इस समय प्रायः पाला भी पड़ जाता है और रात में तापमान कम से कम ४०° या इससे भी कम हो जाता है। लगभग १५ फ़र्वरी से फिर तापमान बढ़ने लगता है और मार्च के दूसरे अथवा तीसरे सप्ताह से बिजली के पंखों के चलाने की आवश्यकता पड़ने लगती है। ज़िले के सभी भागों में मौसम प्रायः एक-सा है। परन्तु नदियों के किनारे तथा सघन वाटिकाओं के आसपास स्थित स्थानों में गर्मी की मात्रा कुछ कम मालूम होती है। बुंदेलखंड से मिले हुए इलाक़े में, अर्थात् यमुना के किनारे के भागों में, भूमि, वृक्ष तथा जल-वायु में कुछ बुंदेलखंडी प्रभाव है जो ग्रीष्म ऋतु में अपनी विशेष उग्रता दिखाता है।

वर्षा

इस ज़िले की वार्षिक वृष्टि का वर्तमान औसत २८-१८" है। सन् १८६४ से सन् १९०६ तक ४४ वर्षों का जो वार्षिक औसत निकाला गया था वह ३२.४७ इंच था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कानपुर ज़िले में अब धीरे-धीरे वर्षा कम होती जा रही है। इस सम्बन्ध में एक बात और उल्लेखनीय है कि यमुना के किनारे के कुओं की गहराई बढ़ती जा रही है। पानी

पहले से अधिक गहराई पर चला गया है। लखनऊ विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र-विभाग के प्रधान डा० राधाकमल मुकर्जी का, जिन्होंने इस सम्बन्ध में काफ़ी खोज की है, कहना है कि धीरे धीरे रेगिस्तान दोआब की ओर बढ़ रहा है। यहाँ किसी समय राजपूताने के मरुस्थल की-सी दशा उत्पन्न हो जायगी।

कानपुर की इस वृष्टि का औसत इलाहाबाद (४१'६५"), फ़तेहपुर (३३'४३") से कम, और फ़र्रुख़ाबाद (२५'६५"), इटावा (२५'१३") से अधिक है। समीप के ज़िलों में उन्नाव में ३५'२६", रायबरेली में ३६'३२", हरदोई में ३४'१२", जालौन में २६'१७", हमीरपुर में ३२'४२" तथा बाँदा में ३५'५० वृष्टि होती है। कानपुर ज़िले में तहसीलों की दृष्टि से सबसे अधिक वर्षा बिल्हौर तहसील में तथा सबसे कम वर्षा भोगनीपुर तहसील में होती है। वर्षा की दृष्टि से ज़िले की तहसीलों का क्रम निम्न होगा—बिल्हौर, कानपुर, घाटमपुर, अकबरपुर, डेरापुर तथा भोगनीपुर। इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि यमुना की अपेक्षा वर्षा पर गंगा का प्रभाव अधिक है तथा पश्चिमी भाग की अपेक्षा पूर्वी में वर्षा का ज़ोर अधिक रहता है। यद्यपि इस ज़िले में वर्षा का औसत अपेक्षाकृत कम है किन्तु सन् १८४६ से १६०६ तक वर्षों के आंकड़ों पर दृष्टि डालने से विदित होता है कि इस बीच ६ बार बहुत अधिक पानी बरसा तथा ६ ही बार बहुत कम वृष्टि हुई। इसे दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि प्रत्येक ५ वर्षों में अकाल या बाढ़ दो में से एक की संभावना बनी रहती है। इस

जिले में बाढ़ का अपेक्षाकृत कम भय रहा है और यदि बाढ़ आई भी तो विशेषकर बिठूर तथा नवाबगंज के बीच गंगा के कछार वाले भाग में ही जहाँ नोन नदी का पानी गंगा की बाढ़ के कारण रुक जाता है और आसपास के निचले भागों में फैल जाता है। लेकिन गंगा की यह बाढ़ जो अधिकतर सितम्बर के महीने में आती है इस ज़िले में होने वाली भारी वृष्टि का ही परिणाम नहीं होती। सन् १८४७में उस समय तक की जो सबसे बड़ी बाढ़ आई थी उसमें पानी की निम्न सतह से १४½ .फ़ुट अधिक पानी बढ़ गया था। लेकिन इसमें वृष्टि का औसत अधिक नहीं था। इसी प्रकार सन् १८६० के अगस्त महीने में भयानक बाढ़ आई जिसमें कछार की बहुत सी फ़सल नष्ट हो गई तथा पुराने कानपुर और परमट मुहल्ले के मकानों को बहुत अधिक क्षति पहुँची। किंतु इस वर्ष भी ज़िले में वर्षा का औसत ३३" से कुछ ही अधिक था। सन् १८९४ में सारे प्रांत भर में अत्यधिक जल-वृष्टि हुई। इस वर्ष कानपुर में ५८·१६" इंच पानी बरसा था। इसके बाद सन १८८८ में ५२·२", १८६७ में ५१·१८" तथा १९०४ में ४६·७५" पानी बरसा। सन् १९०४ में बिल्हौर तहसील में ६५" पानी बरसा था। इसके अतिरिक्त निम्न वर्षों में भी अधिक पानी गिरा था :—१८७०—४३·४", १८८४, १८९१, १८९३ तथा १८९८ इन सब में ४१" या इसके आस-पास वृष्टि हुई। सन् १८९१ में ज़िले के अधिकांश भागों में कोई असाधारण वृष्टि नहीं हुई थी तथा यमुना के किनारे के भागों में तो वर्षा औसत से भी कम थी। परन्तु इस साल सबसे

विचित्र बात यह हुई कि बिल्हौर में ७६·४७" पानी गिरा। २४ घन्टे के भीतर १३·६५" पानी बरस गया। फलस्वरूप इस वर्ष ईसन नदी में भीषण बाढ़ आ गई जिससे रेलवे का पुल तथा ग्रांडट्रंक रोड का कुछ भाग बह गया। सन् १९१४ में तीन दिन के भीतर कानपुर में २१" वृष्टि हुई जिसके परिणाम-स्वरूप घरगिरी ने बड़ा भीषण रूप धारण कर लिया। कानपुर जिले में आधुनिक युग की सबसे भयङ्कर बाढ़ सन् १९२४ और १९४८ में आई जिसमें परमट, पुराने कानपुर आदि के कुछ भागों में पानी भर गया था। गंगापार बहुत हानि हुई। सन् १८८० में जिले में वर्षा का औसत कुल ११·०९" था। नरवल में तो १२ महीनों के भीतर कुल ६·३" ही वर्षा हुई। इससे ख़रीफ़ की फ़सल नष्ट हो गई तथा रबी की फ़स्ल भी बहुत कमजोर रही। यद्यपि सरकार ने इसे अकाल नहीं स्वीकार किया परन्तु देश भर में भयङ्कर कष्ट का सामना करना पड़ा। सन् १९०५ में अनावृष्टि तथा पाला पड़ जाने के कारण यमुना के समीपवर्ती भाग में अकाल पड़ गया। सन् १८७७ में जिले भर में भयङ्कर अकाल पड़ा परन्तु दक्षिणी तथा पश्चिमी तहसीलों की दशा सबसे ख़राब थी। इसके अतिरिक्त सन् १८६४, १८६७, १८८३, १९०२ तथा १९०७ में भी औसत परिमाण से कम वर्षा हुई थी। इस जिले में पानी का अधिकांश भाग जून के प्रारम्भ से सितम्बर के अन्त तक बरस जाता है। किंतु शीत ऋतु में भी प्रायः प्रति वर्ष कुछ न कुछ वृष्टि (*महावट*) अवश्य होती है।



ताड़ के पेड़ (पृष्ठ ३३)



बगुले (पृष्ठ ४६)

बाग़ तथा जङ्गल

ज़िले के क्षेत्रफल का एक चौथाई भाग ऊसर है, अतः उसमें किसी पैदावार की आशा नहीं। परन्तु कृषि-योग्य बचने वाली शेष भूमि का एक बहुत बड़ा भाग भी जङ्गलों अथवा बाग़ों ने घेर रक्खा है। ज़िले के प्रायः समस्त भागों में ढाक के जंगल मिलते हैं। रिंद तथा पांडो के निचले भागों तथा अन्य कुछ स्थानों में बबूल व रियाँ के जङ्गल हैं। सेंगुर तथा यमुना के कछारों में रियाँ, करील तथा करौंदे के झाड़-झङ्खाड़ बहुत पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त सिरसई, इमली, नीम तथा शीशम आदि के पेड़ भी कुछ भागों में बहुत बड़ी संख्या में पाये जाते हैं।

फल, फूल और शाक

जामुन, महुआ, गूलर, कई प्रकार के बेर, बेल, आँवला, अमरूद, नारंगी, फालसा, करौंदा, शरीफ़ा, नींबू, चकोतरा, खिन्नी, केला, पपीता, लसोड़ा, अनार, गोंदनी, कटहल, बड़हर आदि फलों के वृक्ष बाग़ों में लगाये जाते हैं। बनकरेला, करील, झरबेरी आदि जंगल में आप ही आप उगते हैं। पीपल, बरगद नीम, पाकर आदि की सघन छाया गर्मी के मौसम में यात्रियों और पशुओं को अत्यन्त सुखकर होती है। ढाक, बबूल, रियाँ आदि के अतिरिक्त कैथा, सेमल, आछी, अशोक, कदंब, अर्जुन, मोलश्री, अगस्त, सहिंजन, कचनार, चिल्ला, ताड़, खजूर, अमलतास आदि के वृक्ष भी काफ़ी संख्या में पाये जाते हैं।

यमुना के ऊपरी भाग, विशेषकर भोगनीपुर तहसील, को छोड़कर ज़िले के प्रायः सभी शेष भागों में गाँवों के इर्द-गिर्द आम तथा अन्य वृक्षों के हरे-भरे बाग़ हैं। इनमें कानपुर, घाटमपुर तथा बिल्हौर तहसीलों में तो इन बाग़ों की संख्या बहुत ही अधिक है। कुछ गाँवों में शौक़ीन रईसों ने क़लमी आम, नींबू, नारंगी, अनार, अमरूद, केले आदि फलों के सुन्दर बाग़ीचे लगाये हैं। पर अब गत २०-२५ वर्षों के बीच में बाग़ लगाने की रुचि कम दिखाई पड़ती है। पुराने बाग़ सूख रहे हैं और द्वितीय विश्व-युद्ध में तो लम्बे मुनाफ़े के लालच से हरे-हरे आम के पेड़ तक काट कर बेंच डाले गये।

ज़िले में यत्र-तत्र, विशेषकर मंदिर वाले गाँवों में, फुलवा-ड़ियाँ भी हैं, जिनमें मोतिया, बेला, चमेली, चम्पा, गुलाब, जुही, गेंदा, गुलाबास, गुलमेंहदी, गुलतुर्रा, कनैर (सफ़ेद, पीला व लाल), गुड़हर, मोंगरा, चाँदनी, गुलदावदी, मेंहदी, रातरानी, हरश्रृङ्गार आदि के फूल अपने-अपने ऋतु में फूलते हैं।

कुछ देव-स्थानों के निकट तालाबों में कमल (पुरइन) के फूल भी खिलते हैं। ये सब गुलाबी क़िस्म के हैं। जंगली तालाबों और गड्ढों में कोकाबेली (बधौला) आप ही आप जमता है। बरसात के बाद इनके फूलों से वनों की छटा निराली हो जाती है। जहाँ ढाक के घने जंगल हैं वहाँ वसन्त ऋतु में खड़े होकर चारों ओर देखने से कविवर बिहारी के इस दोहे का स्मरण हो आता है :—

"फिर घर को नूतन पथिक, चले चकित चित भागि।
फूले देखि पलास वन, समुहे समुझ दवागि॥"

फुलवाड़ियों में तुलसी, श्यामातुलसी, धनियाँ, पोदीना, सुदर्शन, मेंहदी, घीगुआँर, देउना आदि को भी लगाते हैं जो कई प्रकार से उपयोगी हैं।

जहाँ काछी, कुर्मी आदि परिश्रमी जाति वाले लोग आबाद हैं और नहर-बम्बा अथवा कुएं से सिंचाई की सुविधा है वहाँ कई प्रकार के साग-तरकारी आदि की खेती होती है। इनमें से मुख्य ककड़ी, खीरा, ख़रबूज़ा, तरबूज़ (कलोंदा), फूट, तरोई, आलू, सकरकंद, भिंडी, करेला, सीताफल (श्रीफल, रामफल, कद्दू, रामकोला आदि इसके अनेक नाम हैं और लोकप्रियता में यह आलू से भी बाजी मार ले जाता है), कुम्हड़ा, लौकी, भाँटा (गोल व लंबे) हरा मिर्चा, घुइयाँ, आलू, रतालू, ज़िमीकन्द, गोभी, गाजर, प्याज, लहसुन, करमकल्ला (बंधा), टिंडा, मूली, सोवा, पालक, मेथी, बथुआ, टमाटर, चौलाई, कुल्फ़ा, सेम (कई प्रकार की), शलजम, चुकन्दर, आदि हैं। पान की खेती जहाँ पानी की सुविधा है होती है। इनकी भीटें और बारी बड़ी विधि से बनाई जाती हैं। इनमें पान के साथ करेला, परवर, कुँदरू व अदरख को भी बो देते हैं। पानी में पैदा होने वाले फलों में सिंघाड़ा और कसेरू, मुख्य हैं। मसालों में से हल्दी, धनियाँ, जीरा, मेथी, अजवाइन, सौंफ़ का उल्लेख आवश्यक है। जंगलों में बबूल के गोंद और पीपल के लाख की पैदावार होती है। कुछ वृक्षों की छालों, फूलों और पत्तों से

रँगने की सामग्री बनती है। इनमें से आल से पक्का लाल रंग निकलता है जो खारुआ की रँगाई में काम आता है। अडूसे की पत्तियों से अमौवा नामक कपड़े के रँगने के लिए हरा रँग निकाला जाता है। टेसू अथवा ढाक के फूलों को सुखाकर उबालने से गहरा पीला रँग निकलता है। कुसुम और हरश्रृङ्गार के फूलों से भी रँगाई का काम होता है। बबूल और रियाँ की छालें चमड़े की रँगाई के काम आती हैं। कुछ उपयोगी जड़ी-बूटियाँ भी प्रायः सर्वत्र मिलती हैं। इनमें से मदार (आक या अकौड़ा), धतूरा, भटकटैया, सुदर्शना, अडूसा, मकोय, शंख-पुष्पी, विधारा, पुनर्नवा (सफ़ेद व लाल), गुर्च, मुँडी आदि की चर्चा आवश्यक है।

अनाज, दाल, तेलहन, कपास आदि

जिले भर में अधिकतर रबी और ख़रीफ़ की दो फ़सलें होती हैं, पर कहीं-कहीं पर जहाँ सिंचाई की विशेष सुविधा है और किसान मेहनती हैं तीन फ़सलें भी हो जाती हैं। रबी की फ़सल में गेहूँ, जौ, चना, मटर, अरहर, मसूर, सरसों, लाही, अलसी, सेउहाँ, रेंडी, आलू आदि तथा ख़रीफ़ में चावल, उर्द, मूँग, मकाई, ज्वार, बाजरा, मोंठ, लोबिया, कोदई, भटवाँस, कपास, सन, तिल, तिली, रामदाना, कूट्टू, सावाँ, काकुन, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। गन्ने की खेती भी थोड़ी-बहुत कुछ क्षेत्रों में होती है।

पशु—पालतू, वन्य और हिंस्र

कछार, झील तथा चौड़े ऊसर वाले प्रदेश में अहीर लोग बहुत बड़ी संख्या में पशुओं को पालते हैं क्योंकि इन भागों

में चारे की कमी नहीं रहती परन्तु जानवरों की नस्ल में सुधार करने का ये लोग भी कोई प्रयत्न नहीं करते। घी बनाने का काम इन्होंने विशेष रूप से अपना रक्खा है। ज़िले के शेष भागों के लोग अधिकतर मेले आदि से जानवर मोल लाकर ही अपना काम चलाते हैं। जिन क़िस्मों के बैलों से यहाँ के लोग काम लेते हैं वे निम्न हैं :—

(१) जमनायत—यह बुन्देलखंड के ज़िलों से आता है और भूरे रंग का कुछ लद्धड़-सा होता है। (२) भदावरी—आगरे में चंबल नदी के कछारों में होता है। इन दोनों किस्मों का मूल्य अपेक्षाकृत कम होता है। इनसे श्रेष्ठ किस्म के बैल हरियाना, मेवाती, जनकपुरी (बिहार के) तथा केनवरिया (बुन्देलखंड में केन नदी के तट पर पाये जाने वाले) हैं। सबसे महँगे मूल्य के बैल पैंतिया हैं जो खीरी तथा बहराइच ज़िले में घाघरा के तटवर्ती प्रदेशों से आते हैं। इनकी सींगें बहुत लंबी तथा जंगली ढँग की होती हैं। बैलों की इन विभिन्न किस्मों के प्रयोग में लाये जाने का कारण बहुत कुछ मकनपुर का मेला है जहाँ हर क़िस्म के बैल बिकने आते हैं। चरागाह अधिक होने के कारण इस ज़िले में बकरियाँ पालने का व्यवसाय दोआब के अन्य सभी ज़िलों से अधिक होता है। यमुना के तटवर्ती भाग में ये बकरियाँ विशेष रूप से पाली जाती हैं और यहाँ की बकरियाँ बुन्देलखंड की प्रसिद्ध "जमुनापारी" बकरियों की तरह होती हैं। ये बकरियाँ यहाँ से पूर्वी ज़िलों को जाती हैं।

कुछ भागों में सवारी और माल ढोने के लिए ऊँट भी पाले जाते हैं। सवारी और बोझा ढोने के लिए घोड़े और गधे बहुत हैं, पर देशी घोड़ों की नस्ल बहुत साधारण है। अच्छे घोड़े मकनपुर के मेले में दूर-दूर से बिकने आते हैं। देशी कुत्ते और बिल्ली की नस्लें भी साधारण हैं। ज़िले के कुछ रईस हाथी भी रखते हैं, पर उनकी संख्या १०-१२ से अधिक न होगी। दूध देने वाले पशुओं में गाय, भैंस, बकरी और भेड़ प्रधान हैं। दूध देने वाली अच्छी गायें यहाँ कम हैं। केवल नगर में ग्वालों, घोसियों आदि के यहाँ अच्छी नस्ल की गायें हैं। पर यमुना के किनारे के भागों में दुधार भैंसों की कमी नहीं है।

वन्य-पशु

यमुना के कछारों में, विशेष कर जहाँ पर सेंगुर नदी इसमें मिलती है, यत्र-तत्र तेंदुये पाये जाते हैं। पुराने समय में तो यहाँ चीता भी मिलता था परन्तु अब उसका कोई अस्तित्व नहीं रह गया है। हिंस्र पशुओं में भेड़िये बहुत अधिक संख्या में पाये जाते हैं। कुछ वर्ष पहले गंगा जी के किनारे जाजमऊ तथा महाराजपुर के बीच 'मनुष्य-भक्षी' भेड़ियों के एक झुण्ड ने अड्डा बना रक्खा था और १२६ व्यक्तियों को उन्होंने खा डाला था। यमुना के कछारों तथा गंगा के खादिर में जंगली सुअर भी बहुत बड़ी संख्या में हैं। हिरन इस ज़िले में अब कम हैं। नीलगाय तथा हिरन से मिलता जुलता चिकारा नामक एक जानवर यमुना की खोहों में मिलता है। इसके अतिरिक्त अन्य स्थानों में मिलने वाले लकड़बग्घा,

बिज्जू , स्याही, लोमड़ी, सियार तथा ख़रगोश आदि अन्य जंगली जानवर भी हैं। बंदरों की संख्या ज़िले में बहुत अधिक है। कहीं-कहीं ये फ़सल को बहुत नुकसान पहुँचाते हैं। अधिकतर लाल मुँहवाले बन्दर ही हैं। कहीं-कहीं पर काले मुँह और लंबी पूँछ वाले लंगूर भी थोड़ी संख्या में हैं।

कीड़े-मकोड़े आदि

रेंगने वाले कीड़ों में कई प्रकार के विषधर और बिना विष वाले साँप—काला नाग, बरजतिया, पनिहाँ आदि—दुमुही, अजगर, बिच्छू (काली और भूरी), बिसखाँपर, गोह, गिरदान, छिपकली, नेवला, खनखजूरा, ऊसरसाँड़ा, छछूँदर, चूहा, घूस, बम्हनी, कसराई, केंचुवा, गिलहरी, चींटा, चींटी, बेंबुत, सुरुहद्दू, दीमक आदि हैं। मच्छड़, पतिंगे, मक्खी आदि की कई किस्में पाई जाती हैं। गाँवों में इनकी संख्या बहुत अधिक है। बर्रे (लाल व पीली) बड़े परिश्रम से अपने छत्ते बनाती हैं, पर उनसे कोई लाभ मनुष्य-जाति को नहीं होता। मधु-मक्खी के छत्ते भी घरों, पेड़ की डालियों और झाड़ियों में लगते हैं, पर शहद की पैदावार, जो कुछ वर्षों पहले काफी मात्रा में होती थी, अब बहुत घट गई है। इस ज़िले में बाहर से बहुत बड़ी मात्रा में शहद आता है, क्योंकि उसका खर्च शहर में बहुत अधिक है।

जल-जन्तु

मछलियाँ इस ज़िले में कम होती हैं और उनकी किस्में भी कम हैं। पढ़िना, रेहू और गिरई नामक मछलियाँ बहुता-

यत से होती हैं और बर्फ़ में सुरक्षित करके कलकत्ते भेजी जाती हैं। इनके सिवाय सेंगई, छोटी झींगा, चेलवा, मगुरी, सींघी, कतला, चीतल, टेंघना आदि जातियों की मछलियाँ भी तालाबों, झीलों अथवा नदियों में पाई जाती हैं। चैत्र मास में किनारे पर कंकड़ीली जगहों पर सब मछलियाँ अंडे देती हैं। सींघी व मगुरी अधिकतर तालाबों में ही होती हैं। यमुना में गंगा से अधिक मछलियाँ होती हैं।

जल में रहने वाले अन्य जन्तुओं में मगर, घड़ियाल (नाका), कछुआ, सूस, घोंघा आदि इस ज़िले में पाये जाते हैं। मगर, घड़ियाल और सूस अधिकतर गंगा और यमुना में होते हैं, पर कभी-कभी ये छोटी नदियों और नहरों में भी भटक कर आ जाते हैं। मगर और घड़ियाल का शिकार उनकी खालों के लिए किया जाता है। मगर का नाफ़ा व तेल भी काम में आता है। सूस का तेल निकाला जाता है जिसका औषध की भाँति कुछ बीमारियों में प्रयोग होता है। कुछ जाति वाले मगर, घड़ियाल, कछुआ आदि के मांस को भी खाते हैं। मांसाहारी लोग तो अनेक जातियों वाले हैं। इन जल-जन्तुओं के स्वभाव आदि के बारे में अनेक बातें प्रसिद्ध हैं। अनेक कहावतें भी मगर, कछुआ, मछली आदि के सम्बन्ध में कही जाती हैं।

पक्षी

हमारे ज़िले में प्रायः वे सब चिड़ियां पाई जाती हैं जो युक्तप्रान्त के अन्य समतल ज़िलों में हैं। इनमें से कुछ आगन्तुक

चिड़ियाँ भी हैं जो वर्ष के किसी विशेष ऋतु में दूर-दूर देशों अथवा पहाड़ों से यहाँ आती हैं। पर वे आती हैं प्रतिवर्ष और इसीलिए हम उनसे चिरपरिचित हैं। चिड़ियों का सबसे सरल और सुविधाजनक वर्गीकरण इस आधार पर किया जा सकता है कि कौन-कौन सी चिड़ियां स्थल में रहती हैं और कौन जल के समीप रहती हैं। पर और दृष्टिकोणों से भी इनका वर्गीकरण हो सकता है। कोई-कोई चिड़ियाँ यहाँ की निवासी हैं और कोई आगन्तुक। कुछ का शिकार किया जाता है, कुछ अन्य चिड़ियों का शिकार करती हैं। कुछ अपने पंखों और डैनों की सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध हैं और कुछ अपनी सुरीली बोली के लिए अथवा आदमी की बोली का अनुकरण करने के लिए। कुछ चिड़ियाँ नीचे रहना पसन्द करती हैं और कुछ ऊपर। कुछ मांसाहारी और हत्यारी होती हैं और कुछ शाकाहारी। कुछ मनुष्यों की सहचरी होने के कारण प्रेम और वात्सल्य की दृष्टि से देखी जाती हैं और इनमें से कुछ पाल भी ली जाती हैं। कुछ शुभ मानी जाती हैं और कुछ अशुभ, कुछ पवित्र और कुछ अपवित्र। यदि हमारे गाँवों में ये चिड़ियां न हों तो ग्राम्य जीवन बहुत कुछ नीरस हो जाय। इन चिड़ियों की चर्चा ग्राम्य साहित्य में ही नहीं विदग्ध साहित्य में भी बहुत है। हमारे जिले में पाई जाने वाली कुछ ख़ास-ख़ास चिड़ियों का परिचय नीचे दिया जाता है।

कोयल—कोयल चिड़ियों में सबसे मीठी बोली बोलने वाली चिड़िया मानी जाती है। बसन्त के बाद आम में बौर आये

नहीं कि कोयलों की एक बड़ी संख्या हमारे प्रान्त में फैल जाती है। यह हिन्दुस्तान के लिए बारहमासी चिड़िया है, पर हमारे प्रांत को जाड़ों में छोड़ कर धुर दक्खिन चले जाने के कारण इसको यहाँ मौसमी चिड़ियों में शामिल कर लिया जाता है।

कौआ—कौआ यहीं का बारहों महीने रहने वाला पक्षी है। इसकी दो मुख्य जातियाँ हैं। एक मामूली छोटा कौआ और दूसरा बड़ा या काला कौआ। काले कौए को 'डोम कौआ' तथा छोटे कौए को 'नौआ कौआ' के नाम से भी पुकारा जाता है।

गौरैया -गौरैया घर की चिड़िया है। यह किसी का कोई नुक़सान नहीं करती। इसकी कई जातियाँ हैं जिनमें 'तूती' मुख्य है। शक्ल, सूरत तथा और बातों में तूती मादा गोरैया की तरह होती है। पर यह घर के भीतर न आकर बाग़ों तक ही रह जाती है। इसके गले का निचला हिस्सा पीला होता है।

अबाबील और बतासी—अबाबील के पंजों में कोई अँगूठा पीछे की ओर नहीं होता जिससे यह डाल पकड़ सके। इसलिए यह अपने घोंसले में ही रहती है और वहीं से उड़ कर फिर वहीं वापस चली जाती है। चिड़िया होकर भी अपने छोटे पैर और लंबे डैने के कारण यह एक बार ज़मीन पर उतर कर फिर नहीं उड़ सकती।

कठफोर—यह पेड़ के तने को अपनी चोंच से ठोकता रहता है जिससे पपड़ियों के नीचे रहने वाले कीड़े ज़रा ऊपर आ जाँय और उसकी लंबी ज़बान वहाँ तक पहुँच सके। ज़मीन पर यह

बहुत कम उतरता है। इसकी कई जातियाँ होती हैं। कठफोर यहाँ का बारहमासी पक्षी है।

कठफोरिया—पेड़ की डाल-डाल पर कीड़ों की तलाश में गिलहरी की तरह फिरने वाली इस चिड़िया का नाम कठफोरिया न होकर 'पेड़ घुमनी' होता तो अधिक उचित था। यह गौरैया के बराबर की हमारे यहाँ की बारहमासी चिड़िया है।

चरखी या सतबहिनी—शहर या गावँ का कोई ऐसा बग़ीचा न होगा जिसमें चरखियाँ न दिखलाई पड़ें। यह एक डाल से दूसरी डाल पर फुदक-फुदक कर हद से अधिक शोर मचाती रहती है। इनका दूसरा नाम 'सतबहिनी' भी है। यह नाम संभवतः इसलिए पड़ा है कि ये हमेशा सात आठ के झुण्ड में रहती हैं।

चंडूल—चंडूल मैना और कोयल की तरह एक गाने वाला पक्षी है। चंडूल 'भरत' की वह जाति है जिसके चोटी होती है। यह देखने में भी बहुत सुन्दर होता है। यह यहाँ की बारह-मासी चिड़िया है। यह क़द में गौरैया से जरा बड़ा पर बनावट में उससे पतला होता है। इसकी एक जाति अगिन कहलाती है।

ठठेरा—फुदकी की तरह यह अत्यन्त छोटी होती है। यह बाग़ों में ही रहने वाली सुन्दर चिड़िया है जो फलों से अपना पेट भरती है। जब यह बोलने लगती है तो ऐसा जान पड़ता है जैसे कोई ठठेरा काम कर रहा है। कोई-कोई

इसे छोटा बसंता भी कहते हैं। यह यहाँ की बारहमासी चिड़िया है।

तोता—तोते की दो जातियाँ हमारे यहाँ पाई जाती हैं। हरा या ढेलहरा और टुइयाँ। हरा तोता यहाँ का बारहमासी पक्षी है जो गिरोह में ही रहता है। तोते घोंसले नहीं बनाते। पेड़ की खोहों में इनकी मादा अंडे देती है।

नीलकंठ—नीलकंठ का कठ तो नीला नहीं होता, हाँ पंख जरूर नीले होते हैं। दशहरे पर इसका दर्शन शुभ माना जाता है। यह एक बहुत सुन्दर पक्षी है जिसके पंख विशेष रूप से आकर्षक होते हैं। यह हमारे यहाँ की बारहमासी चिड़िया है।

पपीहा—पपीहा की 'पी कहां', 'पी कहां' की तेज बोली से सभी परिचित हैं। जब पपीहा बोलने लगता है तो एक के बाद दूसरा स्वर ऐसा ऊँचा चढ़ाता जाता है कि जान पड़ता है कि इसका गला फट जावेगा। यह यहाँ का बारहमासी पक्षी है जो जाड़े में दक्षिण की ओर चला जाता है।

पिद्दा—यह लगभग ५ इञ्च का सुन्दर चितकबरा पक्षी है। इसकी अनेक जातियाँ हैं जो सारे देश में पाई जाती हैं, लेकिन इसके छोटे कद के कारण सबको फुदकी ही समझा जाता है।

इनके अतिरिक्त थर-थर कँपनी, दँहगल, पतेना, फुदकी (दरजिन), बया, बसंता, रुक्मिणी, बुलबुल, भुजंगा, महोख,

मैना, पवई, लाल मुनियां, हुदहुद आदि चिड़ियाँ भी हमारे जिले में प्रायः सभी स्थानों में पाई जाती हैं।

शिकारी चिड़ियाँ—हमारे यहां की शिकारी चिड़ियों में उक़ाव सबसे बड़ा होता है। यह खरगोश, सांप, मेंढ़क, छिपकलियों आदि को उठाले जाता है। गिद्ध और चील सर्वत्र पाये जाते हैं और मुर्दा लाशों की सफ़ाई करके वातावरण को शुद्ध रखने में सहायक होते हैं। इनके सिवाय उल्लू, तुरमती, बहरी, बाज और शिकरा भी गांवों और जंगलों में आम तौर पर मिलते हैं।

शिकार की चिड़ियाँ—कबूतर, तीतर, बटेर, लवा और हारिल शिकार की जाने वाली चिड़ियों में मुख्य हैं। चहा, जंगली मुर्गी और फ़ाख़्ता का भी शिकार किया जाता है।

तालाबी चिड़ियाँ—इनमें सबसे मुख्य बतख़ होती है। इसकी पांच क़िस्में हैं पर हमारे यहाँ उसकी कुछ ही जातियाँ मिलती हैं। इनके सिवाय टिकरी, सबन, सीखपर, सुरख़ाब (चकई-चकवा) हंसावर, भी इसी श्रेणी की चिड़ियाँ हैं जो हमारे यहाँ पाई जाती है।

किनारे की चिड़ियाँ—कुछ चिड़ियाँ ऐसी होती हैं जो झील और नदियों के पास तो रहती हैं, पर उनमें तैरती नहीं। इनमें कुररी सब जगह पाई जाती है। इसे देहात के कुछ लोग 'धोबिन' के नाम से भी पुकारते हैं। खंजन

ज्यादातर नदियों और तालाबों के किनारे ही रहता है, और अत्यन्त सुन्दर पक्षी है। यह जाड़ों में हमारे जिले में दिखलाई पड़ता है और गर्मियों में उत्तर की ओर वापिस चला जाता है। सारस और बगुले सब स्थानों में पाये जाते हैं। इस श्रेणी की अन्य चिड़ियाँ टिटिहरी, बँस मुरगी दहक और लगलग हैं।

तीसरा अध्याय

ऐतिहासिक वर्णन

(१) हमारे धूमिल अतीत की पौराणिक गाथाएँ

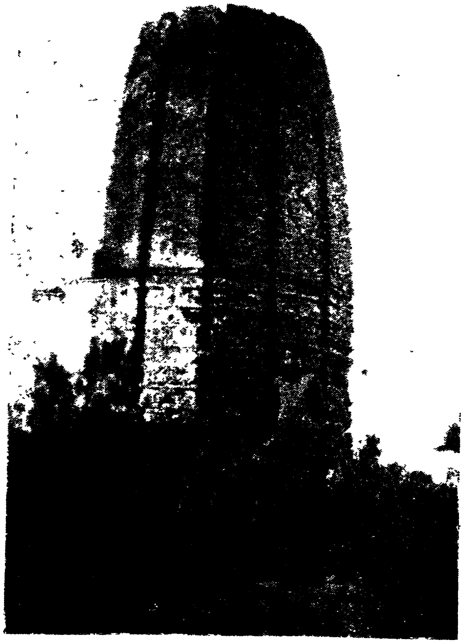
अति प्राचीन काल से हमारे जिले की धरती आर्य-वैदिक सभ्यता की क्रीड़ा-भूमि रही है। भौगोलिक स्थिति इसकी महत्ता का आधार है। जम्बू द्वीप के अन्तर्गत भरतखंड अथवा भारतवर्ष के उत्तरी भाग आर्यावर्त-प्रदेश में गंगा और यमुना नदियों के बीच अंतर्वेद में हमारा भू-भाग स्थित है।

बिठूर

शायद वर्तमान बिठूर, जिसे कुछ दिनों से ब्रह्मावर्त कहने की प्रथा चल गई है, ऐतिहासिक और पौराणिक दृष्टि से हमारे यहाँ का प्राचीनतम स्थान है। लोगों का यह विश्वास है कि यहीं पितामह ब्रह्मा ने सृष्टि-रचना समाप्त कर एक

अश्वमेध यज्ञ किया था, जिसकी निशानी *'ब्रह्म-नाल'* अथवा ब्रह्माजी की खूँटी ब्रह्मावर्त-घाट में अभी तक पूजी जाती है। मालूम नहीं कि बिठूर का नाम ब्रह्मावर्त कब और कैसे पड़ गया। मनुस्मृति के अध्याय २, श्लोक १७ के अनुसार सरस्वती तथा दृषद्वती (जिसको अब घग्घर नदी कहते हैं) के बीच का देश ब्रह्मावर्त होना चाहिए। ये दोनों नदियाँ राजपूताना के पूर्व भाग में हैं। श्लोक १८ में कहा गया है कि कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पांचाल और शौरसेन (मथुरा) ब्रह्मर्षि देश हैं और इनका महत्व ब्रह्मावर्त देश से कुछ घट कर है। श्लोक २१ में हिमालय तथा विन्ध्याचल के बीच, तथा ब्रह्मावर्त से पूर्व व प्रयाग से पश्चिम वाले देश का नाम मध्य-देश है। कानपुर इसी में आता है।

किम्वदन्तियों के अनुसार कई बड़े ऋषियों व महान् व्यक्तियों का सम्बन्ध भी इस ज़िले से रहा है। ध्रुव जी का टीला भी बिठूर में है। इस विषय में कहा जाता है कि ध्रुव के पिता राजा उत्तानपाद की यही राजधानी थी। इनके द्वारा निकाले जाने पर जब ध्रुवजी कठिन तपस्या करके लौटे तब उन्होंने अपने पिता की गद्दी पर यहीं राज्य किया। यहीं पर रजक के कलंक लगाने पर राम की आज्ञानुसार लक्ष्मण गर्भवती सीता को छोड़ गये थे और यहीं पर समय पाकर लव व कुश का जन्म हुआ था। ये दोनों तेजस्वी बालक रामायण के कर्ता तथा राम के समकालीन आदि-कवि वाल्मीकि जी द्वारा संस्कारित हुये और ऋषि-मंडली की छत्र-



पुरौली का भग्न मंदिर (पूर्व की ओर से)
(पृष्ठ ५५)



बेहटा के मंदिर का प्रवेश-द्वार
(पृष्ठ ५६)

च्छाया में उनका पालन हुआ। यहीं पर महर्षि वाल्मीकि ने इन बालकों को वह बाण-विद्या सिखलाई, जिसके आगे भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, स्वयं राम तथा उनके प्रसिद्ध लंका-विजयी हनुमान्, अंगद, सुग्रीव, विभीषण आदि महारथी सेनापतियों को नीचा देखना पड़ा था।

राजा ययाति की राजधानी

कानपुर के पूर्व ५ मील गंगा-तट पर जाजमऊ है जो अपने कर्म के बल से इन्द्र-पदवी पाने वाले महाराज नहुष के पुत्र ययाति की राजधानी था। भागीरथी के तट पर उनका क़िला गिरी हुई दशा में अब भी अतीत की सुधि दिलाता है। राजा ययाति ने दैत्य-गुरु शुक्राचार्य की मानिनी पुत्री देवयानी से विवाह किया था जिसने दैत्यराज वृषपर्वा की राजकुमारी शर्मिष्ठा को अपनी दासी बनाकर रक्खा था। राजा ययाति का शर्मिष्ठा के साथ गुप्त संबन्ध देखकर देवयानी ने अपने पिता शुक्राचार्य से उनको वृद्ध हो जाने का शाप दिलवाया था। फिर राजा अपने व शर्मिष्ठा के पुत्र प्रसिद्ध पुरु से उसकी युवावस्था माँग कर जवान हो गये थे, और अपनी काम-वासना तृप्त करके फिर उन्होंने उसकी जवानी लौटा दी थी।

राजा बलि और शुक्राचार्य का स्थान

इस जिले की भोगनीपुर तहसील में मुग़लरोड पर पुखरायाँ व घाटमपुर के बीच में यमुना जी के किनारे मूसानगर एक क़स्बा है। वहाँ पर मुक्तादेवी का प्राचीन मंदिर है, जिसके

लिए कहा जाता है कि इसको परमभागवत असुरराज प्रह्लाद जी के पौत्र व बली बाणासुर के पिता दानवीर राजा बलि ने, जिनके दान व यज्ञों का फल भंग करने के लिए वामन अवतार हुआ था, बनवाया था। यहीं पर एक तालाब है जिसे देवयानी तालाब कहते हैं। इन बातों से पता चलता है कि मूसानगर अतीत काल में या तो राजा बलि की राजधानी था या उनके गुरु शुक्राचार्य जी का आश्रम। मूसानगर मुक्तानगर का वैसा ही रूपान्तर जान पड़ता है जिस प्रकार गाधिपुर से गाज़ीपुर।

शृङ्गी ऋषि का आश्रम

कानपुर से पश्चिम एक गावँ सैबसू है जहाँ के लिए ग्रांड-ट्रंक-रोड पर स्थित धौरसालार से, जो कानपुर से लगभग ३० मील पर है, पक्की सड़क जाती है। सैबसू के पास गंगा जी के किनारे शृङ्गी ऋषि का आश्रम है। यह शृङ्गी ऋषि काश्यप के पुत्र विभांडक के लड़के थे। बचपन से ही ये इतने कर्मनिष्ठ ब्रह्मचारी थे कि अपने आश्रम में ही रह कर अग्नि और अपने पिता की सेवा और विद्याध्ययन किया करते थे। इसी में उनका विवाहोचित समय भी बीत गया। इन्होंने अपने पिता के अतिरिक्त किसी नगरवासी स्त्री-पुरुष को न देखा ही था और न पहचान ही सकते थे। एक बार अंग-देश (बिहार) में भयंकर अकाल पड़ा। वहाँ के प्रतापी राजा रोमपाद को, जो अयोध्या-नरेश महाराज दशरथ के अंतरङ्ग

मित्र थे, उनके ऋत्विजों ने सलाह दी कि शृङ्गी ऋषि को किसी तरह अपने राज्य में लाइए तो पानी बरसेगा। कोई भी ब्राह्मण ऋत्विज या मंत्री विभांडक के डर से उनके पास जाने को तैयार न होता था। अंत में आपस में परामर्श करके उन लोगों ने अत्यन्त सुन्दर यौवन-मदमाती वेश्याओं को ऋषि को लुभा कर बुला लाने के लिए भेजा। ये सब आश्रम के निकट पहुँच कर ठहर गईं। दैवयोग से शृङ्गी ऋषि अग्निहोत्र के लिए लकड़ी लेने वहाँ आये। वे इस सौंदर्य-राशि को देख कर स्वभावतः आकर्षित हो गये और उन्होंने इनको देवकुमार समझा क्योंकि वे स्त्री-पुरुष के भेद से अनभिज्ञ थे। ऋषि ने इनको बन-फल और इन सुन्दरियों ने उनको बढ़िया व स्वादिष्ट लड्डू व मिठाइयाँ यह कह कर दीं कि हमारे देश के वृक्षों में ऐसे ही फल होते हैं। इस प्रकार इन फलों के खाने व इस सौंदर्य-राशि को देखने के लिए ऋषि अपना काम शीघ्र समाप्त कर नित्य उस स्थान पर आ जाते और वे सब उनको नाना प्रकार की क्रीड़ायें योग-क्रिया के नाम से सिखातीं और फिर उनका अभ्यास करवातीं। इस प्रकार विषय से अनभिज्ञ ऋषि रसना व नेत्रों के विषयों में फँस गये। तब ये सुन्दरियाँ उनको छल से बहका कर अपने घर ले आने के बहाने उनको अंग-देश में लाईं और उनके उस देश में पदार्पण करने से पानी बरसा। राजा रोमपाद ने उनका अभूतपूर्व स्वागत किया और उनको सदा अपने यहाँ रखने के लिए राजा दशरथ की धरोहर कौशल्या जी की कन्या शांता के साथ उनका विवाह कर

दिया। फिर जब वशिष्ठ जी के परामर्श के अनुसार पुत्रेष्टि-यज्ञ कराने के लिए राजा दशरथ ऋषि को लाने के लिए रोम-पाद के यहाँ गये तो ऋषि यह जानकर कि वास्तव में राजा दशरथ ही उनके ससुर हैं उनको पुत्रवान् बनाने के लिए पुत्रेष्टि-यज्ञ कराने अयोध्या आये। अनेक संन्यासी व वीतराग पुरुष इस आश्रम में अब भी रहते हैं और भगवद्भजन करते हैं। यह आश्रम दर्शनीय है।

दुर्वासा-आश्रम

तहसील भोगनीपुर में निगोही ग्राम के पास डेरापुर से ८ मील दूर सेंगुर नदी के किनारे उग्र तपस्वी क्रोधमूर्ति अत्रि मुनि के पुत्र दुर्वासा ऋषि का आश्रम है, जिन्होंने विश्वामित्र व मेनका की औरसजाता तथा कण्व मुनि की पालिता पुत्री शकुंतला को, जो महाराज दुष्यन्त की रानी हुई और जिसके पुत्र भरत के नाम पर हमारे देश का भारतवर्ष नाम पड़ा, भयङ्कर शाप दिया था। यह आश्रम सेंगुर नदी की एक ऊँची कगार पर स्थित है। नीचे से ऊपर जाने के लिए कई सीढ़ियाँ हैं। ऊपर दोमंज़िला सुन्दर ईंटों का मन्दिर है। आश्रम के पास कई समाधियाँ हैं।

बाणासुर की राजधानी

डेरापुर तहसील में बनीपारा एक क़स्बा है जो रावण के प्रतिद्वन्द्वी महान् बली बाणासुर की राजधानी था। यहाँ बाणे-

श्वर महादेव का मेला भी शिवरात्रि के अवसर पर लगता है। यह मूर्ति बलि-पुत्र बाणासुर ने स्थापित की थी। यहीं पर उसकी पुत्री ऊषा को अपनी पौत्रवधू बनाने के लिए भगवान् कृष्ण ने उससे युद्ध किया था और शिव जी की सहायता आने पर भी उसको हरा कर ऊषा-अनिरुद्ध विवाह सम्पन्न किया था। बाणासुर के पिता बलि का सम्बन्ध मूसानगर से था यह ऊपर बतलाया जा चुका है।

व्यास मुनि का जन्मस्थान

कानपुर से जी० आई० पी० रेल झाँसी होती हुई बम्बई जाती है। जहाँ पर वह यमुना को पार करती है वहाँ उस पार कालपी का क़स्बा है। कालपी के सामने यमुना जी के मध्य द्वीप में महर्षि व्यास का जन्म होना कहा जाता है और इसी लिये वे द्वैपायन कहलाते हैं। इस प्रकार यदि पूरा नहीं तो आधा संबंध पुराणकर्ता जी का कानपुर से अवश्य ही है।

इस प्रकार कानपुर वर्तमानकाल में ही उत्तर भारत का सबसे बड़ा मैनचेस्टर के ढंग का व्यापारिक क्षेत्र नहीं है किंतु अपने धुँधले अतीतकाल में भी वह अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता था। देवताओं और असुरों, सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी शासकों, रामकृष्णादि अवतारों, रामायण, महाभारत तथा पुराणों के रचयिताओं आदि सभी से हमारा पुराना नाता है। हमारे जिले की भूमि उनकी पदरज से पुनीत हुई है।

(२) ताम्र-युग

आधुनिक इतिहासकार मानव-इतिहास के प्राचीनतम युगों को प्रस्तर-युग और ताम्र-युग के नाम से पुकारते हैं। प्रस्तर-युग के भी दो काल माने गये हैं—प्राचीन प्रस्तर-काल और उसके बाद आने वाला नवीन प्रस्तर-काल। प्रस्तर-युग के किसी भी अवशेष का पता कानपुर जिले अथवा आसपास की भूमि में अभी तक नहीं उपलब्ध हुआ। पर ताम्र-युग के कुछ बाणों और भालों के फलकों की प्राप्ति बिठूर के आसपास कई वर्ष पूर्व हुई थी। ये कलकत्ते के भारतीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं। फ़तेहपुर, मैनपुरी, मथुरा आदि ज़िलों में भी ऐसी ही सामग्री मिली है। इस प्रकार पौराणिक गाथाओं और ऐतिहासिक अनुसन्धान दोनों के हिसाब से हमारे ज़िले में बिठूर ही प्राचीनतम स्थान है। बिठूर स्थित ध्रुव के टीले की खुदाई अभी तक नहीं हुई है। सम्भव है उसके गर्भ में पुरातत्व की अत्यन्त उपयोगी सामग्री निकले। जाजमऊ, छत्रपुर-काकूपुर, मूसानगर आदि स्थानों के सम्बन्ध में भी शायद यही बात कही जा सकती है। वे सभी स्थान जिनकी चर्चा पिछले परिच्छेद में की गई है, वास्तव में प्राचीन ऐतिहासिक महत्व से पूर्ण हैं, और पुरातत्व-विभाग का ध्यान उनकी ओर जाना चाहिए।

(३) पुरातत्व

पौराणिक गाथाओं के काल एवं ताम्र-युग के अनन्तर के युगों का कुछ ज्ञान हमें उन प्राचीन मन्दिरों के भग्नावशेषों से

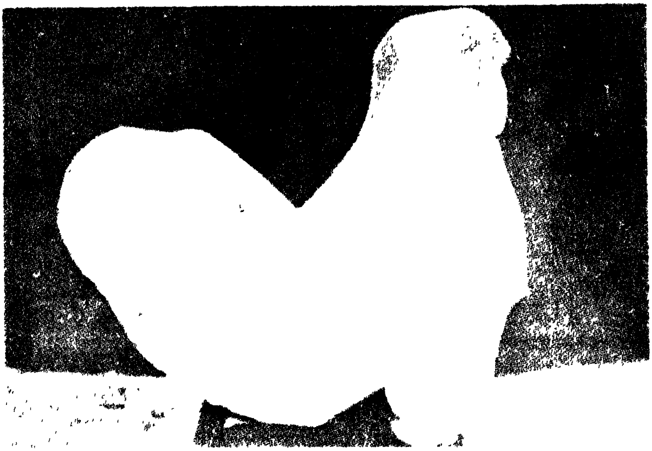
होता है जो हमारे ज़िले में फैले हुए हैं। यह ध्यान देने की बात है कि कानपुर ज़िले में पाये जाने वाले प्राय: सभी प्राचीन मन्दिर ईंटों के बने हैं। इसका कारण उत्तरी भारत के मैदान वाले इस भाग में पत्थर का न मिलना है। ज़िले में पाये जानेवाले इन मन्दिरों की संख्या काफ़ी अधिक है और कहा तो यह जाता है कि रिंद के किनारे किसी समय प्रत्येक कोस पर एक मन्दिर था। ये मन्दिर विभिन्न समयों में बनाये गये और इसका पता इनमें लगाई जाने वाली ईंटों तथा उनकी निर्माण-शैली से लग जाता है। भीतरगावँ (तहसील घाटमपुर) का मन्दिर गोरखपुर ज़िले में कसिया के निर्वाण-मन्दिर से मिलता जुलता है, जिसका अर्थ यह है कि वह कम से कम गुप्त-काल में अथवा सम्भवत: उससे भी पूर्व कुशन-काल में निर्मित हुआ होगा। इस ऐतिहासिक मन्दिर का विस्तृत वर्णन अन्यत्र 'भीतरगावँ' वाले लेख में पढ़िए।

शेष सभी मन्दिर साधारण हिन्दू शैली के बने हुए हैं। ये मन्दिर अब अत्यन्त जीर्णावस्था में हैं। उनमें लगा हुआ चूना झड़ गया है जिससे ईंटें दिखलाई पड़ने लगी हैं। कोई-कोई मन्दिर तो ढोली-ढाली पतनोन्मुख ईंटों के ढेरमात्र रह गये हैं। भीतरगावँ से २ मील उत्तर परौली गावँ में भी एक मध्यकालीन ईंटों का मन्दिर है जिसका आधा भाग गिर गया है। यह एक गोल चबूतरे पर १६ पहलू मन्दिर है और इसके ऊपर नोकदार गुम्बद है। बाहरी भाग में खड़ी रेखाओं में बहुत सुन्दर काम है। भीतरगावँ से ५ मील दक्षिण रार

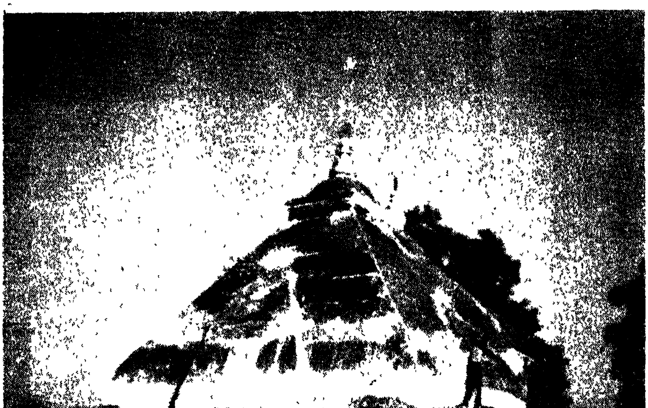
नामक गावँ में दो मन्दिर परौली के मन्दिर की शैली के थे। बड़ा मन्दिर अब ध्वंस हो गया है। सँभुआ में भी, जहाँ हमीरपुर की सड़क रिंद को पार करती है, पुराना मन्दिर है। भीतरगावँ के पास ही बेहटा और भदेउना के बीच एक प्राचीन मन्दिर भीतरगावँ के मन्दिर जैसा ही है। घाटमपुर तहसील में दक्षिणी नोन नदी के किनारे कोहरा-ग्राम में और पास ही के दूसरे गावँ अमौली में भी इसी प्रकार के छोटे मन्दिर हैं। साढ़ के दक्षिण रिंद के किनारे कर्चलपुर में भी उपर्युक्त मन्दिरों से कुछ काल बाद का बना हुआ एक मन्दिर अभी तक विद्यमान है।

डेरापुर तहसील के लालाभगत नामक स्थान में कुछ प्राचीन गुप्तकालीन खँडहरों व ईंटों के सुन्दर नमूने मिले हैं, जो कलकत्ते के भारतीय संग्रहालय में देखे जा सकते हैं। तहसील बिल्हौर में स्थित औझान गावँ में भी रिंद नदी के पास एक प्राचीन टीला है जिसमें पुरानी ईंटें व सिक्के मिले हैं।

कानपुर-नगर जिन अनेक गाँवों से मिलकर बना है उनमें से सीसामऊ भी एक है। कन्नौज के प्रसिद्ध राजा जयचन्द्र के पितामह गोविन्दचंद्र ने साहुल शर्मा नामक एक ब्राह्मण को ससईमऊ (वर्तमान सीसामऊ) नामक ग्राम दान में दिया था। यह बात गोविन्दचन्द्र के उस दान-पत्र से मालूम होती है जो काकूपुर के पास स्थित छत्रपुर गावँ में कुछ साल पूर्व प्राप्त हुआ था और जिसकी तिथि संवत् ११७७ अर्थात् सन् ११२० ई० है।



लाला भगत में प्राप्त एक मुर्गे की प्रस्तर मूर्ति
(पृष्ठ ५६)



बेहटा के मंदिर का छतरीदार शिखर
(पृष्ठ ५८)

चौथा अध्याय

प्राचीन काल

जिस भू-भाग को आजकल कानपुर ज़िले में शामिल करते हैं वह अति प्राचीन काल में पाञ्चाल देश का ही भाग रहा होगा। पाञ्चाल देश का विस्तार गंगा व यमुना के दोआबे के मध्यवर्ती भाग व वर्तमान रुहेलखंड के कुछ भागों में था। उसकी एक राजधानी काम्पिल्य नगर में थी जो आजकल का कांम्पला है और फ़र्रुखाबाद ज़िले में है। कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में कम्पिला के पांडे प्रसिद्ध हैं। दूसरी राजधानी वर्तमान बरेली जिले के अंतर्गत अहिच्छत्र थी जिसे अब रामनगर कहते हैं।

बौद्ध-काल

कानपुर जिले के कई स्थानों में बौद्धकालीन मूर्तियाँ तथा उस समय की अन्य चीजें मिली हैं। मकनपुर का समीपवर्ती अरौल नामक स्थान, जो मकनपुर से केवल ३ मील दूर है, सुप्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् राहुल सांकृत्यायन के अनुसार बौद्धकाल

में आलम्बिकापुरी कहलाता था जहाँ एक बार महात्मा गौतम-बुद्ध ने चातुर्मास वास किया था। मकनपुर तथा अरौल के बीच हरपुरा नामक एक और गावं है जिसमें पुराने समय की बहुत सी प्रस्तर-मूर्तियाँ मिलती हैं। इनसे विदित होता है कि संभवतः प्राचीन काल में वहाँ भी कोई बौद्ध-मठ या विहार रहा होगा।

काकूपुर के आसपास भी अनेक पुराने मन्दिरों के भग्नावशेष हैं और पुरानी मूर्तियों के खंडित अंग और पत्थर की चौखटों के खंड उधर-इधर टीलों तथा अन्य स्थानों में फैले हुए मिलते हैं। इनमें से कुछ तो अवश्य बौद्धकालीन हैं और खंडित रूप में भी अपने पूर्व-सौंदर्य का परिचय देते हैं। सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ जनरल कनिंहम ने काकूपुर के आसपास के इन स्थानों का भ्रमण कर यह अनुमान किया था कि संभवतः बौद्ध-काल में यहाँ कोई विहार रहा होगा। वे इस स्थान से इतने अधिक प्रभावित हुए थे कि उन्होंने काकूपुर को चीनी यात्री ह्यूनसाँग द्वारा वर्णित 'अ-युतो' मान लिया था। उनके अनुसार तिब्बत के ग्रन्थों में उल्लिखित 'वागुड़' या वागुड नामक स्थान भी यही है। पर अब इतिहासकार कनिंहम के इस मत को स्वीकार नहीं करते। कुछ भी हो, छत्रपुर-काकूपुर किसी प्राचीन राजा की राजधानी अवश्य है और यह सांस्कृतिक केन्द्र भी रहा होगा।

अमरौधे के पास शाहपुर नामक प्राचीन गाँव था। यहाँ शंकर का मन्दिर है जिसे लोगों ने झाड़खंडेश्वर का नाम दे

रक्खा है, परन्तु इस मूर्ति को देखने से पता चलता है कि यह उसी तरह की मूर्ति है जिस तरह की मूर्तियाँ अक्सर बौद्ध-कालीन या गुप्तकालीन मन्दिरों में पाई जाती हैं। इससे यह भी बौद्धकालीन स्थान मालूम पड़ता है। इसी प्रदेश के आसपास उदुम्बर नामक स्थान भी कहीं रहा है जिसका उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में है। कान्यकुब्ज (कन्नौज) और अर्गल-पुरी (फ़तेहपुर ज़िले में अर्गल) के बीच में यह स्थान भगवान् बुद्ध के समय में था।

जाजमऊ के सिद्धनाथ महादेव और सिद्धादेवी भी बौद्ध-कालीन मालूम पड़ते हैं। महात्मा बुद्ध के अवसान के लगभग ५ शताब्दी बाद महायान बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ और ७-८ शताब्दियों तक उत्तर भारत में वही अधिक मान्य रहा। फिर समय के फेर से उसका रूप विकृत होने लगा और उसमें बाम-मार्ग, शैव धर्म तथा तंत्रयान का सम्मिश्रण हो गया। इस सम्मिलित संप्रदाय के भिक्षु तथा स्थविर सिद्ध कहलाते थे। सिद्धा देवी तथा सिद्धनाथ उसी समय के प्रतीक ज्ञात होते हैं। बौद्ध धर्म की अवनति के बाद हिंदुओं ने सिद्धनाथ महा-देव तथा सिद्धादेवी के रूप में इनकी पूजा करनी आरम्भ कर दी।

गुप्त-काल

गुप्त-साम्राज्य के काल में यह ज़िला 'मध्यदेश' के बीचों बीच होने से विशेष महत्व रखता था। जेजाकभुक्ति (बुन्देल-

खंड) से कोशल (अवध) आने के लिए इसी भूमि से होकर मार्ग था। आँकिन, नानामऊ, राधन, सरैयाँ (काकूपुर), बिठूर, जाजमऊ, नजफ़गढ़, डोमनपुर आदि स्थानों पर जो घाट हैं वे प्राचीन काल से चले आते हैं। पंजाब से बंगाल-बिहार जाने वाले भी गंगा के समानान्तर सड़कों से यात्रा करते हुए कानपुर ज़िले से होकर गुज़रते थे। इस ज़िले की रेणु में महात्मा गौतम बुद्ध, चीनी यात्री फ़ाहियान व ह्यूनसाँग, सम्राट् हर्षवर्धन आदि के पद-चिन्ह अवश्य अंकित हुए होंगे।

कन्नौज की महत्ता

सम्राट् हर्षवर्धन के समय में तो इसी भूमि में ही कन्नौज एक प्रकार से समस्त उत्तर भारत की राजधानी था। कन्नौज या कान्यकुब्ज देश महाभारत में महोदय के नाम से प्रसिद्ध है और गाधि-सुवन महामुनि विश्वामित्र इसके राजा थे। ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी में भी कन्नौज प्रसिद्ध था। हर्ष के समय (७ वीं शताब्दी के प्रारम्भ) से लेकर राजा जयचन्द्र 'कनौजीराय' के मुहम्मद ग़ोरी द्वारा सन् ११९२ में पराजित होने तक, अर्थात् लगभग पूरे छैः सौ वर्षों तक, कन्नौज ही उत्तर भारत की विद्या, संस्कृति व राजनीति का केन्द्र रहा। कन्नौज के हर्षोत्तरकालीन शासक प्रतिहार राजा भोज मिहिर के विक्रम व वैभव की प्रशंसा अरब इतिहासकार उन्हीं शब्दों में करते हैं जिनमें ह्यूनसाँग महाराज हर्षवर्धन की। इस युग में कन्नौज की भारत में तथा अन्य राष्ट्रों में वही महिमा

रही जो पाटलिपुत्र की इसके पूर्व एक हज़ार वर्षों तक तथा दिल्ली की इसके बाद वाले युग में। ह्यूनसाँग के अनुसार कन्नौज की भाषा समस्त भारत में टकसाली समझी जाती है। यहाँ के आचार-विचार शुद्ध माने जाते हैं। मनुस्मृति में आदेश दिया गया है कि इस मध्यदेश में उत्पन्न हुए ब्राह्मण से संसार के सब मनुष्य अपने चरित्र सीखें।

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः"

अर्गल का गौतम राजवंश

गुप्त-काल में भी कन्नौज संभवतः गुप्त-साम्राज्य का एक प्रमुख नगर रहा होगा। कानपुर ज़िले के दक्षिणी भाग में पाये जाने वाले बहुत से प्राचीन मंदिरों में इस राजवंश की स्थापत्य-कला की छाप स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। इन मंदिरों से इस प्रदेश में अत्यन्त प्राचीन हिंदू सभ्यता का प्रमाण मिलता है। किंवदन्ती के अनुसार फ़तेहपुर ज़िले में स्थित अर्गल के गौतम राजाओं ने इसका प्रसार किया था। अर्गल का गौतम राजवंश निस्संदेह बहुत प्राचीन है। कन्नौज और महोबा के निकट होने के कारण ही कानपुर ज़िले के कुछ भागों में क्षत्रिय राजकुल अत्यन्त प्राचीन समय में ही आकर बस गये।

पाँचवा अध्याय

मुस्लिम काल

कन्नौज के वैभव का अन्त

सन् ११९२ में राजा जयचंद्र की पराजय के उपरांत कन्नौज का राज्य तुर्कों के शासन-प्रदेश में सम्मिलित हो गया और कन्नौज का वैभव भी मिट गया। फिर भी दिल्ली के सुल्तानों और मुग़लों के शासन-काल में कन्नौज की महिमा कुछ न कुछ बनी रही। उस काल के इतिहास-ग्रन्थों में कन्नौज का नाम बहुधा आता है। दिल्ली के आसपास के देश में भयंकर अकाल पड़ने के कारण मुहम्मद तुग़लक़ ने कुछ वर्षों तक अपनी राजधानी अस्थायी रूप से कन्नौज से कुछ ही मील ऊपर गंगा के किनारे स्थापित की और इस अस्थायी राजधानी का नाम उसने 'सरगद्वारी' रक्खा। वास्तव में उत्तरी भारत में कन्नौज की स्थिति भौगोलिक दृष्टि से इतनी महत्वपूर्ण थी कि वहाँ रह कर समस्त देश पर भली भाँति निरीक्षण किया जा सकता था।

तुग़लक़ वंश और नानामऊ की लड़ाई

जब राजधानी सरगद्वारी ही में थी अवध और ज़ाफ़राबाद के सूबेदार ऐनुल्मुल्क मुल्तानी ने विद्रोह किया और नानामऊ के घाट पर सुल्तान और विद्रोही सरदार की मुठभेड़ हुई। मुल्तानी की सेना भाग खड़ी हुई। सुल्तान की सेना ने भी उसका पीछा किया और उन्नाव ज़िले के बाँगरमऊ नामक स्थान में मुल्तानी की सेना की करारी हार हुई। नानामऊ का घाट बहुत प्रसिद्ध रहा है।

जौनपुर के शर्क़ी वंश का शासन

तुग़लक़ साम्राज्य के नष्ट-भ्रष्ट हो जाने पर जौनपुर का इलाक़ा स्वतन्त्र हो गया और कन्नौज ही इस स्वतन्त्र राज्य की पश्चिमी सीमा था। इसीलिए कन्नौज के आसपास जौनपुर के शर्क़ी शासकों और दिल्ली के शासकों के बीच अनेक घमासान लड़ाइयाँ हुईं। इनमें से बहुत से युद्ध निस्संदेह कानपुर ज़िले की वर्तमान सीमा के अंदर हुए होंगे। अंत में बहलोल लोदी ने जौनपुर के राज्य को फिर दिल्ली के साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया और उसने अपने दौहित्र अज़ीम हुमायूँ को लखनऊ और कालपी के प्रदेश दे दिए जिनमें कानपुर का भाग भी शामिल था। कानपुर शेरवानी अथवा सरवानी पठानों का अड्डा था। शेरशाह एक बार इनका अतिथि हुआ था।

बाबर और हुमायूँ को भी बाग़ी पठानों के साथ युद्ध करने कन्नौज आना पड़ा था। अंत में हुमायूँ को शेरशाह ने कन्नौज के उस पार बिलग्राम के पास पराजित कर भारत से भागने पर वाध्य किया। शेरशाह ने बड़े ठाठ से राज्य किया। कानपुर ज़िले के दक्षिण भाग में घाटमपुर, मूसानगर, चपरघटा, भोगनीपुर, सिंकदरा आदि स्थानों को मिलाती हुई जो सड़क मुग़ल-रोड नाम से प्रसिद्ध है वह शेरशाह की ही बनवाई हुई है। इस सड़क पर अभी तक अनेक पुरानी मसजिदें व सरायें हैं जो संभवतः शेरशाह तथा उसके बाद के मुग़ल सम्राटों की बनवाई हुई हैं। यह सड़क बंगाल से दिल्ली तक और दिल्ली से पेशावर तक थी। यही उस समय का सबसे प्रसिद्ध राज-पथ था। इसी को कहीं-कहीं पर घुमा कर और नये बसे हुए नगरों को मिलाकर लार्ड डलहौज़ी ने ग्रांड-ट्रंक-रोड का निर्माण कराया था जो अब फ़तेहपुर से कानपुर, कन्नौज, फर्रुख़ाबाद होती हुई फिर पुरानी मुग़ल-रोड में मिलकर आगरे से दिल्ली को जाती है। इस प्रकार इस ज़िले से मुग़लकालीन ग्रांड-ट्रंक-रोड भी गुज़रती थी और इस ज़िले की भूमि राष्ट्रीय जीवन—राजनीतिक, सैनिक, व्यापारिक—की धुरी के अंतर्गत थी। बिहार अथवा बंगाल को जब कोई शाही सेना जाती थी या स्वयं बादशाह पूर्व की ओर यात्रा करता था तो या तो उन्हें इस प्रसिद्ध राज-पथ का प्रयोग करना पड़ता था अथवा यमुना में नाव के द्वारा जाना पड़ता था। इस ज़िले के भू-भाग का गुरुत्व-



लाला भगत में प्राप्त एक प्रस्तर-स्तम्भ का मध्य भाग

(पृष्ठ ५६)

केन्द्र मुग़ल-काल में दक्षिणी भाग में था क्योंकि वहीं से राजपथ निकलता था। उस समय में जाजमऊ, कानपुर, बिल्हौर, कन्नौज आदि राष्ट्रीय जीवन की रूपरेखा से अपेक्षाकृत पृथक् थे।

चपरघटा का युद्ध

शेरशाह की मृत्यु के बाद उसका बेटा सलीमशाह उत्तराधिकारी हुआ। ६ वर्ष के कठोर शासन के अनन्तर उसका भी देहान्त हो गया। उसके मरने पर सूर-साम्राज्य में गड़बड़ी मच गई। सलीमशाह के बेटे फ़ीरोज़ ख़ाँ को उसके मामा ने मार डाला और वह स्वयं मुहम्मदशाह आदिल के नाम से तख़्त पर बैठ गया। मुहम्मदशाह आदिल बिलकुल निकम्मा और दुराचारी था। ऐसे कठिन समय में उसके लिए प्रभुता क़ायम रखना सर्वथा असम्भव था। अनेक सूरवंशी सरदार अपनी-अपनी घात में लगे हुए थे। इनमें मुहम्मदशाह सूर ने बंगाल व बिहार पर अपना आधिपत्य जमा लिया था। जिस समय आदिलशाह का प्रसिद्ध सेनापति हेमू इब्राहीम सूर तथा सिकन्दर सूर से लड़ने के लिये पश्चिम की ओर गया हुआ था मुहम्मदशाह सूर ने अवसर अच्छा देखकर जौनपुर फिर दोआब, दिल्ली आदि पर अपना अधिकार स्थापित करने और चुनार से आदिल को मार भगाने का संकल्प कर पश्चिम की ओर बढ़ना प्रारम्भ किया। आदिलशाह ने अपने सेनापति हेमू को वापस बुला भेजा। हेमू इब्राहीम सूर को पराजित कर यमुना के किनारे कालपी की ओर शीघ्रता से बढ़ा क्योंकि

मुहम्मदशाह सूर अपनी एक फ़ौज जौनपुर भेज कर कालपी की ओर यमुना के बाँए किनारे से बढ़ता जा रहा था।

वर्तमान कानपुर ज़िले में चपरघटा के पास उसकी सेना के अश्वारोही व पैदल बहुत अधिक संख्या में व्यूह-रचना कर एकत्र हो गये। सुल्तान आदिल की फ़ौज यमुना के उस पार कालपी के पास थी। पर हेमू के बिना उसका कलेजा काँप रहा था। न जाने कब बंगाल की सेना यमुना पार कर उसकी सेना से टक्कर ले? हेमू अपनी फ़ौज के साथ द्रुतगति से अपने स्वामी की रक्षा के लिए कालपी की ओर से आ रहा था। बंगाली सेना बड़े उत्साह और आशा से यमुना को पार करने की तैयारी कर रही थी। दोनों सेनायें युद्ध के के लिये सुसज्जित खड़ी थीं। बंगाल वाले मुहम्मदशाह की सेना चपरघटा के पास और आदिलशाह की कालपी के पास यमुना के उस पार। राजा हेमू आ पहुँचे। आदिलशाह के जी में जी आया। आते ही हेमू ने अपनी ओर की समस्त सेना को यमुना पार कराया। शायद देवरहट या अहरौली के घाट से हेमू की सेना ने नदी पार की होगी। स्वयं हेमू ने हाथी की पीठ पर बैठकर यमुना को मँझाया। बंगाली फ़ौज को हेमू के आगमन और उसकी सेना के यमुना पार करने तक की ख़बर न लग पाई। यह सब काम रातों रात हुआ, उसके सैनिकों में तहलका मच गया, मुहम्मदशाह का दिल दहल गया। केवल एक साधारण झड़प के बाद ही बंगाल की सेना के पैर उखड़ गये। घने जंगलों के निविड़ अंधकार में उसके

सिपाहियों की बड़ी दुर्गति हुई। सब खीमे छोड़-छोड़ कर इधर-उधर प्राण-रक्षा के लिए भागे। पर चारों ओर से हेमू के सैनिकों ने उन्हें घेर कर भेड़-बकरी की भाँति बुरी तरह काट डाला। बहुत नर-संहार हुआ। बड़े-बड़े ऊँचे अफ़सर और सरदार मौत के घाट उतारे गये। स्वयं मुहम्मदशाह की लाश तक का किसी को पता न लगा। हेमू की फ़ौज ने शत्रु का पूरा माल-असबाब लूट लिया। मनस्वी हेमू के जीवन में चपरघटा की विजय एक अत्यन्त प्रसिद्ध घटना है।

अकबर के शासन-काल में

अकबर को शासन-व्यवस्था का विस्तृत वर्णन अबुलफ़ज्ल के ग्रंथ 'आईने-अकबरी' में मिलता है। 'उसकी सहायता से उस समय के कानपुर ज़िले की भूमि का चित्र बहुत कुछ स्पष्ट रूप से खींचा जा सकता है। मुग़ल-काल में वर्तमान कानपुर ज़िले का अधिकांश आगरे के सूबे के अंतर्गत था और पूर्व का थोड़ा-सा भाग इलाहाबाद के सूबे में सम्मिलित था। आगरा-प्रांत की दो सरकारों (ज़िलों) कालपी और कन्नौज का विस्तार वर्तमान कानपुर ज़िले के दक्षिणी और पश्चिमी भागों में था। उस समय के कुछ नामों में परिवर्तन हो जाने से सब स्थानों का ठीक-ठीक पहचानना कठिन है, पर कालपी की सरकार के अन्तर्गत बिलासपुर, डेरापुर शाहपुर ये तीन महाल (परगने) निश्चित रूप से थे। डेरापुर तो अभी तक एक तहसील या परगने का सदर मुकाम बना हुआ है। इसके मातहत १, ०३, ०८५, बीघा ज़मीन थी और इसकी वार्षिक

मालगुज़ारी १७, ६०, ७५० दाम (४० दाम का एक रुपया होता था) थी । यहाँ बादशाह की ओर से ५० सवार और २००० पैदल बंदूक़ची की फ़ौज रहती थी । यहाँ के निवासियों में शेख़ ज़ादे सबसे अधिक संख्या में थे । बिलासपुर नामक गावँ यमुना के किनारे पर था । जब सिकन्दर लोदी ने सिकन्दरा बसाया तो बिलासपुर उजड़ने लगा । कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में बिलासपुर के पांडे अभी तक इस प्राचीन स्थान की यादगार बनाये हुए हैं । उत्तर-मुग़ल काल में बिलासपुर का स्थान सिकन्दरा ने ले लिया और १८६१ तक सिकन्दरा का परगना क़ायम रहा । उसके बाद वह डेरापुरमें मिला दिया गया । शाहपुर नामक क़स्बा भी यमुना के किनारे पर था और उसके विस्तृत खँडहर अभी तक बने हुए हैं। यमुना ने इसको कई बार डुबो दिया और नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। इसलिए रिंद के किनारे हस्नापुर में परगने का सदर मुक़ाम हट कर चला गया और अन्त में अकबरपुर में तहसील बनी ।

इस प्रकार आजकल की अकबरपुर और डेरापुर की तहसीलें कालपी की सरकार में थीं । कन्नौज की सरकार में ३० महाल थे जिनमें से बिठूर, बिल्हौर, बारा, देवहा, शिवली सकरवाँ, बरौर, मालकोसा (रसूलाबाद) और नानामऊ, के नाम इस ज़िले की भूमि के अन्तर्गत सरलतापूर्वक पहचाने जा सकते हैं । आजकल की बिल्हौर तहसील में ये सब परगने अधिकांश में सम्मिलित हैं । बारा अब अकबरपुर तहसील में, बिठूर कानपुर तहसील में, और रसूलाबाद डेरापुर में सम्मिलित है । उस समय बिल्हौर का परगना बहुत छोटा था ।

कानपुर जिले का पूर्वी भाग इलाहाबाद सूबे की कोड़ा सरकार में था जिसके ६ परगनों में ४ हमारे वर्तमान ज़िले की भूमि के भाग थे। उनके नाम मँझावन, मुहसिनपुर (मस-वानपुर), जाजमऊ तथा घाटमपुर हैं। इनमें घाटमपुर का विस्तार सबसे अधिक था। इसमें ७३८,७६ बीघा ज़मीन थी और इसकी मालगुज़ारी ३६,६७,५६४ दाम थी। जाजमऊ के परगने का पूरा इलाक़ा अब कानपुर तहसील में मिला हुआ है। आईने-अकबरी के आधार पर अनुमान लगाने से ज्ञात हुआ है कि अकबर के समय में समस्त जिले की मालगुज़ारी ८ लाख १७ हज़ार रुपये के लगभग और कृषि-भूमि लगभग साढ़े चार लाख एकड़ होगी।

सन् १६०६ में इस ज़िले में कोई ८ लाख ४६ हज़ार एकड़ भूमि में खेती होती थी और २० लाख १६ हज़ार मालगुज़ारी थी।

बादशाह जहाँगीर ने कालपी और कन्नौज का इलाक़ा बैरम ख़ाँ के सुपुत्र अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना के सिपुर्द कर दिया। इस प्रकार कुछ काल के लिए इस जिले के कुछ भाग का शासन हिन्दी के प्रसिद्ध कवि रहीम के अधीन रहा। पर जब ख़ानख़ाना का तबादला दक्षिण को हो गया तो पिहानी के सदरेजहाँ इसके जागीरदार हुए। सन् १६५८ में जब औरंगज़ेब खजुहा (फ़तेहपुर) में शुजा से युद्ध करने गया तो वह इसी ज़िले से होकर गया था। सन् १७१२ में जब फ़र्रुख़सियर जहाँदारशाह से गद्दी छीनने के लिए बंगाल से दिल्ली की ओर चला तो वह भी इस ज़िले से

सपई, शिवली, नदीहा तथा मकनपुर के रास्ते से गया था। जहाँदार के शाहज़ादे अज़ीज़ुद्दीन को बिंदकी और खजुहा के बीच युद्ध में हरा कर वह उपर्युक्त मार्ग के आगे बढ़ा और मकनपुर में उसने मदारशाह की मज़ार के दर्शन किये। इस घटना का वर्णन उस समय के कवि श्रीधर ने अपने ग्रन्थ 'जंगनामा' में इस प्रकार किया है :—

फिर कूच कूच लगार को,
जहँ शहर शाह मदार को।
पहुँच्यो तहाँ दल धीर को,
किय दरस परसन पीर को।
दिन दस बसे तेहि थान जू,
किय मेहर गरम दीवान जू।

कानपुर का ज़िला कुछ काल तक अब्दुल्ला खाँ सैयद के मातहत रहा, फिर छबीलेराम नागर और उसके बाद उसके भाई गिरधर नागर और अन्त में फ़र्रुखाबाद के बंगश पठान मुहम्मद खाँ के अधीन रहा। मुहम्मदशाह को असोथर (फ़तेहपुर जिला) के राजा भगवन्तराय खीची और मराठों से लड़ना पड़ा। मराठों ने भगवन्तराय के भड़काने से डेरापुर व सिकन्दरा के इलाक़े पर क़ब्ज़ा कर लिया था। १७४६ में लखनऊ के सूबेदार सफ़दरजंग के हाथ में कानपुर का पूर्वी इलाक़ा आ गया। पर मुहम्मद खाँ के सरदार मूसानगर, बिल्हौर, शाहपुर व अकबरपुर का शासन अपने हाथ में लिये रहे। इस छीना-झपटी में यहाँ के क्षत्रिय राजा, जिनका वर्णन फिर किया जायगा, स्वतंत्र

हो गये परन्तु शिवराजपुर व सँचेड़ी के चंदेले राजा मुहम्मद ख़ाँ की सहायता करते रहे।

मुहम्मद ख़ाँ की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र क़ायम ख़ाँ ने उसका काम सँभाला। पर पाँच साल बाद ही रुहेलों से लड़ते हुए उसकी मृत्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारी इमाम ख़ाँ के बस का यह रोग नहीं था और कानपुर, फ़र्रुख़ाबाद, आदि सभी बंगश इलाक़ा लखनऊ के नवाबों के अधीन हो गया। पर कई साल तक मुहम्मद ख़ाँ के दूसरे पुत्र अहमद ख़ाँ और सफ़दरजंग के बीच युद्ध होता रहा। अहमद ख़ाँ को हरा कर सफ़दर ने उसे अपना आधा इलाक़ा मराठों के सिपुर्द करने पर विवश किया, क्योंकि इस युद्ध में मराठों ने सफ़दर की सहायता की थी।

मराठों का आगमन

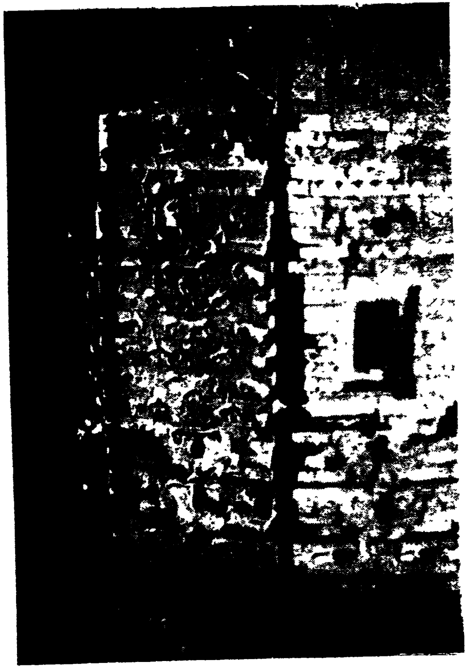
कानपुर का ज़िला भी मराठी शासन में आया। सन् १७६१ की पानीपत की तीसरी लड़ाई में परास्त होकर मराठों के पैर दोआब से उखड़ गये। बंगश पठान फिर अपने पुराने इलाक़े के मालिक हो गये। पर कुछ महीनों के बाद ही सफ़दर-जंग के उत्तराधिकारी शुजाउद्दौला ने मुग़ल-सम्राट् शाह-आलम के साथ जाजमऊ से कालपी होते हुए इस ज़िले की यात्रा की। उसका उद्देश्य अहमद ख़ाँ को यहाँ से निकाल देने का था। पर इसका अवसर न देखकर उसने अहमद ख़ाँ से संधि कर ली। सन् १७६४ में बक्सर के मैदान में शाहआलम,

शुजाउद्दौला और बंगाल के नवाब मीर क़ासिम अंग्रेज़ों द्वारा हार गये।

अंग्रेज़ी सेना ने शुजाउद्दौला का पीछा करना आरम्भ किया। मराठा सरदार मल्हारराव हालकर शुजाउद्दौजा का सहायक हो गया। सन् १७६५ में ब्रिगेडियर-जनरल कारनाक की अध्यक्षता में अँग्रेज़ी सेना तथा शुजाउद्दौला की सेना में कोड़ा-जहानाबाद के पास घमासान लड़ाई हुई जिसमें नवाब वज़ीर शुजाउद्दौला तथा मल्हारराव की सेनायें बुरी तरह से पराजित हुईं।

जाजमऊ की लड़ाई

नवाब-वज़ीर जाजमऊ की ओर और मल्हारराव मुग़ल रोड से कालपी की ओर भागे। मेजर फ़्लेचर ने शुजाउद्दौला का पीछा किया। जाजमऊ में कुल १४ सैनिकों की एक टुकड़ी को छोड़ कर शुजाउद्दौला स्वयं आगे फ़रुख़ाबाद की ओर बढ़ गया। जाजमऊ में एक छोटी-सी गढ़ी थी। उसी में से इन वीर सैनिकों ने मेजर फ़्लेचर की फ़ौज के एक भाग का डट कर मुक़ाबला किया। फ़्लेचर ने कप्तान स्विंटन को इस गढ़ी पर क़ब्ज़ा करने के लिए भेजा। स्विंटन थोड़ी-सी फ़ौज लेकर वहाँ जा पहुँचा और उसने गढ़ी के रक्षक से अपमानजनक शब्दों में हथियार डालने को कहा। रक्षक ने इस अपमान का गर्वपूर्ण उत्तर दिया—"या तो हमें आदरपूर्वक युद्ध-बंदी बना लो और नहीं तो आ जाओ, निपट लो। हम कायरों की तरह



पुरौली के भग्न मंदिर की दीवार की ईंटों पर नकाशी (पृष्ठ ५५)



पुरौली का भग्न मंदिर (दक्षिण-पश्चिम की ओर से) (पृष्ठ ५५)

हथियार नहीं डालेंगे।" स्विंटन ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि इन शेखी बघारने वालों को सबक़ सिखाओ। उसने गढ़ी के रक्षक के तमाचा भी मार दिया। चौदहों सैनिक अपने नेता के अपमान का बदला लेने के लिए स्विंटन के सैनिकों पर प्राणों की बाज़ी लगा कर टूट पड़े। बात की बात में उन्होंने स्विंटन की टुकड़ी को मार भगाया। फ़्लेचर ने और सहायता भेजी, पर फिर भी गढ़ी अँग्रेज़ों के हाथ में तभी आ पाई जब इन चौदहों नर-शार्दूलों ने अनुपम वीरता प्रदर्शन करने के उपरान्त अपने जीवन का बलिदान कर दिया और कम से कम अपने से दुगुने शत्रुओं को मौत के घाट उतार दिया और कई गुने को घायल कर दिया। जाजमऊ की यह लड़ाई आल्ह-खंड की याद दिलाती है।

शुजाउद्दौला का आत्म-समर्पण

जाजमऊ की लड़ाई शुजाउद्दौला की अंतिम लड़ाई थी। उसने एक बार फिर फ़र्रुख़ाबाद जाकर बंगश नवाब और रुहेलों से सहायता माँगने का विचार किया। पर उसे वहाँ फिर कोरा जवाब मिला। अहमद ख़ाँ ने उसे ईमानदारी से सलाह दी कि वह अँग्रेज़ों से ही 'पाहिमाम्' कह कर बच सकता है। चारों ओर निराशा छाई थी। उसने अब यह निश्चय किया कि अँग्रेज़ों के सामने आत्म-समर्पण कर दे। जाजमऊ में जेनरल फ़्लेचर के शिविर की ओर वह एक मियाने में सवार होकर और केवल ६ सवार साथ में लेकर

चल दिया। जब फ़्लेचर को यह समाचार मिला कि नवाब-वज़ीर स्वयं शरणार्थी होकर आ रहा है, तो पहले। तो उसने विश्वास नहीं किया, किंतु फिर इस समाचार की पुष्टि होने पर वह स्वयं नवाब से मिलने के लिए चल दिया। जब नवाब ने सुना कि फ़्लेचर उससे मिलने के लिए आ पहुँचा है तो उसने मियाने से उतर कर पैदल चलना प्रारंभ किया। फ़्लेचर भी घोड़े से उतर कर पैदल आगे बढ़ा। जब नवाब-वज़ीर फ़्लेचर से मिला तो उसका उचित सत्कार किया गया। उसे ताज़ीम की गई, उसकी प्रतिष्ठा में सलामी दागी गई और सब अंग्रेज़ अफ़सरों ने उसे नज़रें दीं। दोनों एक ख़ास ख़ीमें में गये। दावतें हुईं और ख़ुशियाँ मनाई गईं। तब शुजाउद्दौला अपने डेरे में वापस गया जो जाजमऊ से ५-६ मील पश्चिम था। संभवतः कानपुर ही में यह डेरा रहा होगा। ३-४ दिन वह वहीं अपने केवल ४०० सवारों के साथ ठहरा और इस बीच में राजा शिताबराय के मार्फ़त अस्थायी संधि की शर्तें तै हुईं।

जाजमऊ की ऐतिहासिक संधि

जाजमऊ की यह अस्थायी संधि भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण घटना है। यह संधि अवध की ग़ुलामी की जंजीर में पहली कड़ी थी। लार्ड क्लाइव ने इलाहाबाद आकर कुछ महीने बाद इस संधि को स्थायी रूप दे दिया। यह निश्चित हुआ कि शुजाउद्दौला कंपनी को २५ लाख रुपया वार्षिक देगा।

उसे अपना राज्य वापस मिल जायगा पर कोड़ा व इलाहाबाद की सरकारें मुग़ल बादशाह शाहआलम के लिए छोड़ देनी पड़ेंगी। यह भी निश्चय हुआ कि उसकी राजधानी में एक ब्रिटिश रेज़ीडेंट रहेगा। इस प्रकार अवध में अंग्रेज़ों के चरण आ बिराजे।

बंगश-वंश का पतन

इस बीच बंगश-सरदार अहमद ख़ाँ ने डेरापुर व अकबरपुर-शाहपुर के इलाक़े अपने अधीन ही रखने की चेष्टा की, किन्तु अंत में उसे इन पर मराठों की प्रभुता स्वीकार करनी पड़ी। अहमद ख़ाँ की मृत्यु (सन् १७७१) के बाद बंगश शक्ति कमज़ोर हो गई और अबध के नवाब-वज़ीर ने कन्नौज का इलाक़ा (जिसमें डेरापुर व अकबरपुर-शाहपुर शामिल थे) उसके हाथ से छीन कर मराठे सरदारों को मार भगाया। सन् १८०१ तक कानपुर का ज़िला अवध के ही राज्य में रहा। अल्मासअली ख़ाँ, जो इलाहाबाद और कोड़ा के शासक थे, कानपुर का भी प्रबंध करने लगे। पर यहाँ के स्थानीय क्षत्रिय राजा एक तरह से स्वतंत्र राज्य करते रहे और कभी-कभी वे अल्मासअली को कर दे देते थे। पुखरायाँ की जागीर दायम ख़ाँ के सिपुर्द थी। इनके वंशज १८४५ तक यहाँ के ज़मींदार रहे, पर इस वर्ष उन्होंने अपनी ज़मींदारी बेंच डाली।

अवध का प्रभुत्व वास्तव में कानपुर ज़िले में प्रबल नहीं रहा और इसी कारण जब सन् १८०१ में अवध के नवाब

वज़ीर ने ईस्ट इंडिया कंपनी को कानपुर का ज़िला दे दिया तो इसकी आर्थिक स्थिति बहुत ख़राब थी। अशांति का साम्राज्य था, ज़मींदार और राजा आपस में लड़ते रहते थे। कृषि व व्यवसाय हीन अवस्था में थे। कानपुर के प्रथम कलेक्टर मि० वेलाएड ने उस समय के कानपुर ज़िले का बड़ा दयनीय चित्र खींचा हैं। वह कहता है कुल ज़िला उजाड़ पड़ा हुआ है जिसमें अभी तक ज़ुल्म और अत्याचार का ही सर्वत्र साम्राज्य रहा है। प्रजा की दशा अत्यन्त हीन-क्षीण है।

परिशिष्ट १:—

सुरक्षा की दृष्टि से हमारी क़िलेबन्दी

कानपुर ज़िले की भूमि दोआब में होने के कारण दो ओर गंगा और यमुना से घिरी हुई है। मध्यकाल तक नदियाँ सुरक्षा की दृष्टि से अत्यन्त उपयुक्त समझी जाती थीं। वर्षा ऋतु में इनका विस्तार कई मीलों तक हो जाता था, और भरी नदी को सेना आसानी से पार नहीं कर सकती थी। हमारे देश के अनेक ऐतिहासिक युद्ध नदियों के किनारे हुए। ऋग्वेद में वर्णित दशराज्ञ युद्ध से लेकर सन् १८५७-५८ के स्वातन्त्र्य-युद्ध तक नदियों का महत्व सैनिक दृष्टि से घटा नहीं। अनेक युद्धों का निर्णय केवल इसी बात पर हो गया कि आक्रामक सैन्य-दल ने विरोधी सेना के विरोध करने पर

भी, अथवा उसकी असावधानी से, किसी नदी को पार कर लिया और इसलिए सुरक्षा का मोर्चा कमज़ोर पड़ गया। गंगा और यमुना की ओर से इसीलिए हमारी भूमि अपेक्षाकृत सुरक्षित रही। इस ज़िले के भीतर बहने वाली अन्य नदियाँ छोटी और अधिकांश में बरसाती नालों के रूप में हैं, और उनका बहाव भी गंगा और यमुना के समानान्तर है। इसलिए बाक़ी दो तरफ़ हमारी सुरक्षा प्राकृतिक साधनों द्वारा न हो सकती थी। पश्चिमोत्तर के कोने में ईसन नदी ज़िले के भीतर कुछ मील प्रवेश कर गंगा में गिरती है। बिल्हौर का प्राचीन स्थान ईसन के इस पार बसा है, जिसका स्पष्ट प्रयोजन इस ओर के भूभाग की सुरक्षा का ही रहा होगा। दक्षिण-पूर्व की सीमा का कुछ भाग पांडो नदी द्वारा बनता है जो फ़तेहपुर ज़िले की ओर से आने वाले आक्रमणों से हमारी रक्षा कुछ अंशों में कर सकती है। सन् १८५७ की घमासान में इसी नदी के ऊपर ग्रांड-ट्रंक-रोड वाले पुल पर नाना साहब और अँग्रेजों की फ़ौजों में जमकर लड़ाई हुई थी। इसी लड़ाई की हार ने कानपुर में नाना साहब की स्थिति को डाँवाडोल कर दिया था। पश्चिमोत्तर और दक्षिण-पूर्व की शेष सीमाओं पर प्राकृतिक सुरक्षा के कोई साधन नहीं हैं।

गंगा के किनारे—गंगा के किनारे अति प्राचीन काल से अनेक स्थानों में क़िले और गढ़ियाँ विद्यमान थीं। जहाँ से गंगा का लगाव हमारे ज़िले में शुरू होता है, वहाँ से लगभग ४ मील नीचे आँकिन का प्राचीन स्थान और घाट है। यहाँ

किसी गढ़ी के निशान तो नहीं हैं, पर घाट के होने के नाते इसका सैनिक और व्यापारिक महत्व था। इधर वाले शासक को घाट की सुरक्षा के निमित्त सदैव सचेत रहना पड़ता था। ऊपर कुछ ही दूर कन्नौज नगर है, जो अनेक प्रसिद्ध राज्यों की राजधानी होने के कारण सुरक्षा की दृष्टि से विशेष प्रकार से महत्वपूर्ण था। उस के सामने गंगा के उस पार बिलग्राम नामक ऐतिहासिक स्थान है। कन्नौज के सामने गंगा न पार कर उससे कुछ दूर नीचे आँकिन-घाट से उतर कर धोखे से कन्नौज पर शत्रु आसानी से हमला कर सकता था। यही बात नानामऊ पर लागू होती थी, जो आँकन से नीचे ४-५ मील पर स्थित है। नानामऊ के घाट का महत्व सैनिक और व्यापारिक दृष्टि से आँकिन से कहीं अधिक था। कन्नौज से और भी अधिक दूर स्थित होने के कारण इससे शत्रु को गंगा पार करना और भी अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता था। मुहम्मद तुग़लक़ और उसके अवध के सूबेदार ऐनुल्मुल्क मुलतानी के बीच युद्ध यहीं पर हुआ। जिसका वर्णन उचित स्थान पर किया गया है। ऐनुल्मुल्क का लक्ष्य कन्नौज ही था। ये दोनों स्थान, आँकिन और नानामऊ, ईसन और गंगा के अति उपजाऊ दोआबे में हैं और इन दोनों से प्राचीन मार्ग जाते हैं। आँकिन से दक्षिण-पश्चिम ओर एक कच्ची सड़क मकनपुर होती हुई रसूलाबाद गई है। नानामऊ घाट के उस पार बाँगरमऊ है जहाँ से अवध में कई स्थानों को सड़कें जाती हैं। अपने जिले में नानामऊ से दक्षिण-पश्चिम की ओर

ईसन पार करती हुई कच्ची सड़क बिल्हौर, ककवन और असालतगंज, होती हुई रसूलाबाद में आँकिन वाली सड़क से जा मिलती है। रसूलाबाद से एक सड़क इटावे जिले में बिधूना की ओर जाती है। इस सड़क का पश्चिमोत्तर रसूलाबाद-बिधूना वाला भाग अब पक्का हो रहा है और ग्रांड-ट्रंक-रोड में स्थित चौबेपुर से यह पक्की सड़क चलकर रसूलाबाद आयेगी। रसूलाबाद से दक्षिण-पश्चिम की तरफ़ जो पुरानी कच्ची सड़क गई है वह मंगलपुर और सिकन्दरा नामक ऐतिहासिक स्थानों को मिलाती हुई बीजामऊ-घाट से यमुना पार करती हुई उरई की ओर जाती है। इस प्रकार बुन्देलखण्ड से अवध तक जाने वाले मार्ग पर स्थित होने के कारण नानामऊ-घाट अत्यन्त महत्वपूर्ण था।

गंगा के किनारे दक्षिण पूर्व की ओर चलने पर उतरी-पूरा रेलवे स्टेशन से लगभग ३ मील पूर्व राधन का गावँ है जो इस जिले के प्रसिद्ध चन्देल-वंश की प्राचीनतम राजधानी है। राधन से जाकर चन्देल लोग शिवराजपुर जा बसे। राधन में इसी वंश की बनवाई हुई एक गढ़ी है जो अब उलट गई है। राधन के घाट से भी गंगा पार की जाती है। राधन से हटकर चन्देल-वंशी राजा शिवराजपुर आये और भौगोलिक तथा सैनिक दृष्टि से यह ठीक ही था, क्योंकि शिवराजपुर से ३ मील दूर सरैयाँघाट से जो कच्ची सड़क चलती है वह गंगापार अवध के कई प्रसिद्ध स्थानों को मिलाती हुई, शिवराजपुर, शिवली, रूरा, डेरापुर, आदि होती हुई सिकन्दरा,

जा पहुँचती है। राधन से कोई महत्वपूर्ण मार्ग नहीं जाता। शिवराजपुर में बसकर चंदेलों ने एक काफ़ी बड़ी और मजबूत गढ़ी बनवाई। उसके तीन ओर खाईं थी जिसके चिन्ह अभी तक विद्यमान हैं। गढ़ी को सन् १८५७ में ध्वस्त कर दिया गया, क्योंकि वहाँ के राजा सतीप्रसाददेव ने नाना साहब का साथ देकर अपने कुल की कीर्ति को उज्ज्वल किया। आज से कोई १०-१५ वर्ष पूर्व तक इस गढ़ी के कुछ भाग अधगिरी दशा में थे, जिससे इसके अतीत के गौरव का कुछ अनुमान होता था, किन्तु अब केवल एक पक्का कुआँ और पक्की सुरंग का प्रवेश-द्वार ही अवशिष्ट हैं। अवध की ओर से आक्रमणों के विरुद्ध सुरक्षा के निमित्त यह गढ़ी बनाई गई होगी और चंदेल-वंश की प्रधान राजधानी होने के कारण इसकी मर्यादा ज़िले की अन्य गढ़ियों से ऊँची रही होगी।

सरैयाँघाट से आगे चलते हुए बिठूर का ऐतिहासिक स्थान मिलता है, जिसके महत्व का विस्तृत वर्णन अन्यत्र किया जायगा। यहाँ अति प्राचीन काल से सुरक्षा का प्रबन्ध रहा होगा और ध्रुव का ध्वस्त क़िला इसका प्रमाण है। चूँकि यहाँ बाजीराव पेशवा बंदी की अवस्था में आकर बसे, इसलिए महल के अतिरिक्त कोई क़िला आदि न बनवा सके। प्रसिद्ध तीर्थ और ऐतिहासिक स्थान होने के कारण बिठूर से कई ओर गंगा के दोनों ओर प्राचीन सड़कें जाती हैं। जो सड़क वहाँ से चौबेपुर जाती है वह शिवली और कहिंजरी होती हुई रसूलाबाद जा पहुँचती है और वहाँ से



मुग़ल-रोड पर एक प्राचीन दीप-स्तम्भ



सँभुआ का शिव-मंदिर (पृष्ठ ५६)

६-७ सड़कें अलग-अलग दिशाओं में जाती हैं। चौबेपुर से रसूलाबाद तक और रसूलाबाद से बिधूना की सड़क पक्की हो रही है। बिठूर के पास बरहट गाँव में एक पुरानी गढ़ी है।

आगे चल कर कानपुर-नगर है। फिर जाजमऊ का पुराना क़िला गंगा के तट पर है। जाजमऊ का वर्णन अन्यत्र किया गया है। इसकी व्यापारिक महत्ता मध्यकाल में बहुत अधिक थी। कालपी और बाँदा-हमीरपुर की ओर से आने वाले यात्री यहीं पर गंगा-स्नान करते थे। बुन्देलखंड के अनेक रजवाड़ों के राज-परिवार एवं अन्य व्यक्ति सहस्रों की संख्या में यहाँ और बिठूर प्रसिद्ध पर्वों में आते थे। यातायात के अनेक मार्ग चारों ओर, और गंगा के दोनों पार, जाते थे और यहाँ के घाटों में सैकड़ों नावों के ठट्ठ लगे रहते थे। नावों के निर्माण और जीर्णोद्धार का भी यहाँ काफ़ी प्रबन्ध था। ऐसे स्थान का सैनिक महत्व तो स्पष्ट ही है और अति प्राचीनकाल से कई राज-वंशों की राजधानी होने का भी इसे सौभाग्य प्राप्त हुआ। अवध के नवाब शुजाउद्दौला ने यहीं पर अँग्रेज़ी फ़ौज से पराजित होकर कम्पनी की सरकार से संधि की, जिसका वर्णन हो चुका है।

जाजमऊ के नीचे नजफ़गढ़ (बिपोसी) का पुराना घाट है जहाँ से गंगा के दोनों पार रास्ते जाते हैं और कुछ काल तक यह स्थान व्यापारिक दृष्टि से नील आदि के उत्पादन के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध रहा। पर सैनिक दृष्टि से न तो नजफ़गढ़ का

और न उसके नीचे कई मील आगे डोमनपुर का विशेष महत्व है।

यमुना के किनारे—गंगा के किनारे स्थित स्थानों की भाँति यमुना के किनारे पर भी अनेक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान हैं, जिनमें सुरक्षा की दृष्टि से पुराने शासकों ने गढ़ियाँ बनवाई थीं। यमुना से समानांतर मध्यकालीन ऐतिहासिक राज-पथ जाता था जो दिल्ली और आगरे को पूर्व के नगरों से मिलाता था। हमारे ज़िले के अन्तर्गत प्रवेश करते ही ख़्वाजा-फूल नामक स्थान से होकर वह गुज़रता है। ख़्वाजा-फूल अवश्य महत्वपूर्ण स्थान रहा होगा क्योंकि वहाँ पुरानी बस्ती के चारों ओर पत्थर का काफ़ी चौड़ा और मज़बूत कोट है जिसके चारों ओर फाटक हैं। अब फाटक और कोट ध्वस्त अवस्था में हैं। ज़िले की सीमा के अन्तर्गत कोई अन्य स्थान शायद इस शान का नहीं था। ख़्वाजा-फूल से कुछ मील दूर एक गावँ बिलासपुर है जो यमुना से दूर नहीं है। बहुत दिनों तक यह अपने नाम के परगने का सदर मुक़ाम था। इसके उजड़ने पर सिकन्दरा की उन्नति हुई। उस समय के ग्रांड-ट्रङ्क-रोड पर होने से ही सिकन्दरा ने बिलासपुर को पछाड़ दिया। जब बुन्देलखंड में पेशवा बाजीराव प्रथम का आधिपत्य हो गया तो दिल्ली के शासन की निर्बलता एवं शिथिलता से लाभ उठाकर मराठों ने दोआब में भी अपने पैर पसारना आरम्भ किये और सन् १७१३ में उन्होंने बिलासपुर के पास स्थित अमरगढ़ पर अपना भगवा झंडा गाड़ दिया।

यह क़िला यमुना के तट पर था पर अब इसके खँडहर मात्र शेष बचे हैं। कुछ काल तक इस भाग में मराठों की अमलदारी रही। अमरगढ़ के आगे यमुना के किनारे-किनारे जाने से पचौरा नामक स्थान मिलता है, जहाँ एक पुरानी गढ़ी के ध्वंसावशेष मिलते हैं। पचौरा का नाम बदल कर इस्माइल-नगर रख दिया गया था। इसके आसपास के इलाक़े में मेवों की आबादी अधिक थी। ये बड़े बहादुर सिपाही होते थे और अपने को राजपूत कहते थे, पर इनके कुछ परिवार मुसलमान हो गये थे। इस्माइलनगर के आगे कुछ दूर किशुनपुर की गढ़ी यमुना के किनारे पर थी जो अब गिर गई है। किशुनपुर के पास कथरीगावँ है, जहाँ कथरी अथवा कात्यायिनी देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है, जिसकी आसपास बड़ी प्रतिष्ठा है। किशुनपुर से दो मील आगे चलकर दिबैर की गढ़ी भी यमुना के किनारे है। दिबैर से दो मील आगे टेउँगा की गढ़ी है। टेउँगा से और आगे दो मील पर शाहपुर का प्राचीन ऐतिहासिक स्थान था। यहाँ भी एक गढ़ी पत्थर की बनी हुई थी। गढ़ी के पत्थरों को खोद-खोद कर कालपी के रेल के पुल में लगाया गया। मुग़ल-काल में शाहपुर एक परगने का सदर मुक़ाम था। यहाँ के चौहान-वंशी राजा लाहरिया की एक बारादरी थी जिसके भग्नावशेष अमरौधा से शाहपुर के रास्ते में अभी तक मिलते हैं। कहते हैं इस बारादरी से यमुना-तट तक एक सुरंग थी जो अब नष्ट-भ्रष्ट हो गई है। शाहपुर अब केवल कहानी की ही वस्तु होकर

रह गया है। सन् १९१८ तक इस नाम का एक छोटा सा पुरवा था जिसमें मल्लाह रहते थे, पर अब वह भी मिट गया है। इस गाँव की पुरानी भूमि में अब एक शिव-मन्दिर है जिसमें स्थापित शिव-मूर्ति है जो सम्भवतः गुप्तकालीन है। इस मन्दिर के दो मील पूर्व श्री कालेश्वर का मन्दिर है, जहाँ तक शाहपुर के प्राचीन भग्नावशेष मिलते हैं। शाहपुर के नीचे उदईपुर और करियापुर की गढ़ियाँ थीं जिनके अब नाम ही शेष बचे हैं। आगे चल कर चौरा नामक स्थान है जो मुसलमानों का पवित्र स्थान है। कालपी जाने वाली रेलवे लाइन और पक्की सड़क चौरा से आगे चल कर यमुना पार करती हैं। चौरा से आगे यमुना के किनारे दौलतपुर की गढ़ी थी जो कालपी के राजघाट और क़िले के सामने जवाबी की तरह थी। और आगे चल कर रसूलपुर की गढ़ी है। कालपी के रेल के पुल पर खड़े होकर पूर्व की ओर देखने से रसूलपुर का गावँ दिखाई पड़ता है। इसमें अब विशेषतः मल्लाहों की आबादी है। सन् १८५७ के संग्राम में झाँसी की रानी की हिमायत में रसूलपुर के ब्राह्मणों और ठाकुरों ने भी विद्रोह का झंडा उठाया था। रसूलपुर के सामने यमुना के उस पार सुरौली और गुलौली के गावँ हैं जहाँ झाँसी की रानी और सर ह्यू रोज़ की फ़ौजों में घमासान लड़ाई हुई थी। उस पार युद्ध शान्त हो जाने पर भी रसूलपुर के आसपास बहुत दिनों तक विद्रोहियों का ही शासन रहा। रसूलपुर के पास नगवाँ की गढ़ी यमुना

के किनारे थी जो अब नष्ट-भ्रष्ट हो गई है। नगवाँ के बाद देवरहट की गढ़ी है जो काफ़ी मज़बूत बनी हुई थी। उस पार नवाब बावनी (कदौरा) का इलाक़ा है, जिससे देवरहट के ठाकुरों से सदा बैर रहा और बहुधा लड़ाई भी ठन जाती थी। ऐसे समय में यह गढ़ी काम आती थी। देवरहट से आगे चल कर यमुना और सेंगुर के संगम के निकट चपरघटा नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक क़िला था, जिसकी मध्यकालीन इतिहास में बड़ी चर्चा है। अन्यत्र इसका और निकटवर्ती स्थान मूसानगर तथा ओमरगढ़ का विस्तृत वर्णन पढ़िए। ज़िले के दक्षिण-पूर्व कोने में रामपुर का घाट है जिसके सामने हमीरपुर नगर है और जहाँ से कानपुर-हमीरपुर सड़क यमुना पार करती है। यह पक्की सड़क बुंदेलखण्ड के अनेक नगरों को मध्यप्रान्त के नगरों से मिलाती है। रामपुर-घाट इसीलिए सुरक्षा और यातायात की दृष्टि से विशेष महत्व का रहा है। इस के पास से कानपुर से बाँदा जाने वाली रेलवे लाइन यमुन पार करती है।

मध्यवर्ती गढ़ियाँ—अभी तक अपनी भूमि के दो सीमान्तों की क़िलेबन्दी का वर्णन किया गया। शेष दोनों सीमान्तों का निर्धारण प्रकृति-द्वारा न होने के कारण उनकी रेखायें सदा बदलती रहीं और उधर क़िलेबन्दी की समस्या भिन्न प्रकार की थी। अधिकतर इस ज़िले के भीतर गंगा-यमुना के समानान्तर नदियों के किनारे के अनेक स्थानों में

पुरानी गढ़ियाँ मिलती हैं जिनकी संख्या एक दर्जन से कम नहीं है। प्राचीन क्षत्रिय राज-वंशों ने अपनी-अपनी राजधानियों की सुरक्षा के लिए इनका निर्माण किया था। इनमें से मवैया, शिवली, सखरेज, औनहाँ, भौसाना, बिधनू, कठारा आदि की गढ़ियाँ पांडो के किनारे अथवा निकट हैं। ये शिवराजपुर के चन्देलों की शाखा वाले परिवारों की थीं। इसी प्रकार रिन्द के किनारे या उससे कुछ दूर स्थित रसूलाबाद (मराठों की), नार-कहिंजरी (गौरों की), सचेंड़ी, सपई, रमईपुर तथा बिनौर (चौहानों की), सँभुआ आदि स्थानों में भी गढ़ियाँ हैं। औनहाँ और सपई की गढ़ियाँ अभी तक अच्छी दशा में हैं और उनमें चंदेल-वंशी ज़मीन्दार रहते हैं। रिन्द में थोड़ी दूर पर बनीपारा और औभान की गढ़ियाँ हैं। ये दोनों स्थान अति प्राचीन हैं और इनकी गढ़ियाँ सम्भवतः गुप्तकालीन होंगी। इनके अतिरिक्त पड़री-लालपुर में भी, जो रिन्द से बहुत दूर नहीं है, एक पुरानी गढ़ी जगरवंशी अवस्थियों की है। सेंगुर के किनारे भी गढ़ियाँ हैं जिनमें चपरघटा की गढ़ी की चर्चा ऊपर हो चुकी है। मुग़ल-काल में कुछ अन्य स्थानों में भी गढ़ियाँ थी, पर अब उनके निशान तक मिट गये हैं। सेंगुर के किनारे डेरापुर में बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध मराठा शासक गोविन्द राव पंडित के निर्माण किये हुए एक क़िले के भग्नावशेष हैं। इस स्थान के आस-पास के इलाक़े में मराठी शासन कुछ दिन रहा था। रसूलाबाद की गढ़ी की चर्चा ऊपर हो चुकी है। वह पहले गहलौत

क्षत्रियों की बनाई हुई थी, और गोविन्दराव पंडित ने उसका पुनरुद्धार किया।

इस प्रकार इन समस्त गढ़ियों की संख्या और स्थिति से यह स्पष्ट हो गया होगा कि मध्यकालीन सामरिक आवश्यकताओं की दृष्टि से हमारी क़िलेबन्दी काफ़ी अच्छी थी। ये गढ़ियाँ अधिकतर इस जिले में मिलने वाली कचिला मिट्टी की बनी हुई हैं। इस मिट्टी में काफ़ी लस होता है और पक्की ईंटों की दीवारों से कचिला मिट्टी की मोटी दीवारें सुरक्षा के विचार से कहीं अधिक प्रबल और उपयोगी मानी जाती हैं। दो-चार ईंटों के निकाल लेने अथवा ध्वस्त करने से ईंट की दीवारों में आसानी से घुसने के लिए छेद बनाया जा सकता है, पर कचिला मिट्टी की दीवार तोड़ने में, यह बात लोक प्रसिद्ध है, कुदाल और फावड़े तक जवाब दे जाते हैं। भरतपुर के ऐतिहासिक मिट्टी के क़िले ने अंग्रेज़ी सेना के दाँत खट्टे कर दिये थे। पर बरसात में कच्ची दीवारों की रक्षा पिंडोल मिट्टी, गोबर और भूसे से मिलाई हुई "गोबरी" के लेप (पलस्तर) से की जाती है और उनकी मरम्मत प्रतिवर्ष सावधानी से करनी पड़ती है, नहीं तो कुछ ही वर्षों की असावधानी से उनकी दशा शोचनीय हो जाती है। इन गढ़ियों के आस-पास यदि नदी नहीं होती, तो गहरी खाइयाँ बनती थीं जिनमें पानी भरा रहता था। इनके प्रवेश-द्वार विशाल फाटकों और सैन्य-दल से सुरक्षित रहते थे। राजाओं के निवास-स्थान इन्हीं के भीतर होते थे। सपई, औनहाँ, तिवाँ

आदि की गढ़ियों से इन प्राचीन गढ़ियों के नक़शे का अनुमान किया जा सकता है।

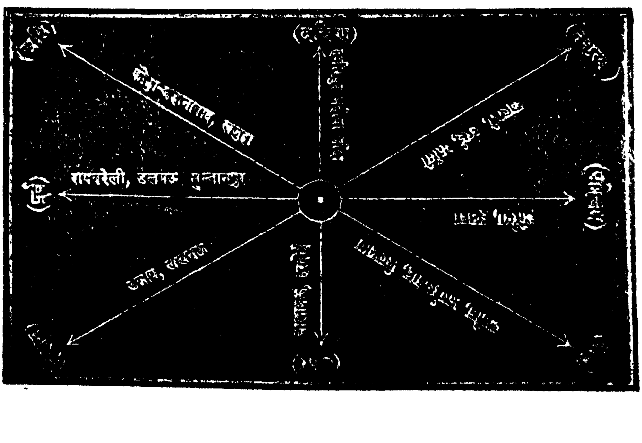
परिशिष्ट २:—

हमारे दिग्पाल

अपनी प्राचीन परम्परा के अनुसार दस दिशायें मानी गई हैं। इन दस दिशाओं में आकाश और पाताल को छोड़ कर उत्तर, ईशान (उत्तर-पूर्व), पूर्व, आग्नेय (पूर्व-दक्षिण), दक्षिण, नैऋत्य (दक्षिण-पश्चिम), पश्चिम, और वायव्य (पश्चिमोत्तर) हैं। इन दसों दिशाओं के रक्षक दिग्पाल कहलाते हैं। हमारे जिले के भूखंड की सुरक्षा का सम्बन्ध उन नगरों अथवा स्थानों से भी है जो इसके आठों ओर स्थित हैं और जिनसे इस जिले का तथा कानपुर की असाधारण उन्नति के साथ हमारे नगर का ऐतिहासिक काल में घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इन दिग्पालों से सदा यातायात और व्यापार के सम्बन्ध रहे हैं और बहुधा राजनीतिक सम्पर्क भी रहा है। कानपुर-नगर के अभूतपूर्व उत्कर्ष के पूर्व हमारी भूमि समय-समय पर इन्हीं आसपास के नगरों के शासनाधिपत्य में थी, और कानपुर जिले का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व न था। ऐतिहासिक वर्णन से यह स्पष्ट है कि अवध के नवाबों के शासन के पूर्व हमारा जिला लखनऊ, कन्नौज, कोड़ा-जहानाबाद और कालपी की सरकारों (जिलों) के अन्तर्गत था। जैसे ही कानपुर-नगर की वृद्धि होती गई, उसके आस

पास की गंगा-यमुना के बीच की भूमि अपना स्वतन्त्र स्वरूप धारण करने लगी और ब्रिटिश-शासन-काल में उसकी महिमा बहुत बढ़ गई। फिर भी अपने प्राचीन संरक्षकों से हमारा सम्पर्क टूटा नहीं और कानपुर-नगर की अभिवृद्धि के इतिहास से प्रकट है कि इन प्राचीन नगरों के अनेक परिवार व्यापार-व्यवसाय, उद्योग-धन्धे अथवा नौकरी-चाकरी की टोह में यहाँ आकर बस गये और विशेषत: उन्हीं के परिश्रम और अध्यवसाय के परिणाम-स्वरूप हमारे नगर की इतनी अधिक उन्नति हुई है। तभी तो कानपुर के इतिहास में इन प्राचीन स्थानों की संक्षेप चर्चा आवश्यक है। ये आजकल हमारे दिग्पालों की भाँति प्रतिष्ठा के पात्र हैं।

यदि कानपुर-जिले के बीच—मैथा-लालपुर के पास—हम केन्द्र को स्थापित करें और आठों दिशाओं की रेखायें खींचें, तो मोटे तौर से हमारे दिग्पालों की स्थिति नीचे दिये हुए चित्र के अनुसार होगी :—



उपर्युक्त २० स्थानों के अतिरिक्त फ़तेहपुर-हसवा, फ़तेहपुर चौरासी (उन्नाव ज़िला), मौरावाँ (उन्नाव ज़िला), असनी (फ़तेहपुर ज़िला) आदि स्थानों से भी अनेक परिवार यहाँ आकर नवाबी अथवा अंग्रेज़ी अमलदारी में आकर बसे। यह बात कानपुर के प्रसिद्ध परिवारों तथा पुरुषों के वृत्तों से स्पष्ट है। इधर २० वीं शताब्दी में उत्तर भारत की व्यापारिक व औद्योगिक राजधानी होने के कारण युक्तप्रान्त क्या भारत के प्रायः सभी भागों के लोग यहाँ आकर बस गये हैं। देश की प्रायः सभी प्रधान भाषाओं के बोलने वाले काफ़ी तादाद में यहाँ हैं।

कन्नौज तो हमारा प्राचीन अधिपति था ही और अब तक वह हमारा निकटतम पड़ोसी है। उसकी संस्कृति का प्रभाव हमारे ऊपर सबसे प्राचीन है। ज़िले के ऊपर वाले आधे भाग में प्रायः कन्नौजी या उससे मिलती-जुलती बोलियाँ बोली जाती हैं। हमें यह गर्व है कि कन्नौज के वैभव और प्रताप के हम साझीदार थे और वर्तमान कृत्रिम राजनीतिक सीमायें हमारे इस प्रकृति जन्य नाते को खंडित नहीं कर सकतीं। कन्नौज के श्रीहत होने पर फ़र्रुख़ाबाद की उन्नति उत्तर-मुग़ल-काल में हुई, किन्तु कम्पनी के अमल में कानपुर के उत्कर्ष ने फ़र्रुख़ाबाद की महिमा फीकी कर दी। बहुत से प्राचीन परिवार वहाँ से यहाँ चले आये। बिलग्राम से उखड़ कर कम्पनी की छावनी तो कानपुर आई ही थी उसके साथ-साथ कई परिवार भी आये। इधर अवध के आधिपत्य में रहने के कारण भी

अवध-राज्य के अनेक परिवार बालामऊ, हरदोई, फ़तेहपुर-चौरासा, बाँगरमऊ, उन्नाव, सफ़ीपुर मलीहाबाद, मोहान, मौरावाँ, पुरवा, डलमऊ, बैजेगावँ-बेत्थर, डौंड़ियाखेड़ा, पडरी, काकोरी, लखनऊ आदि स्थानों से आकर यहाँ आबाद हो गये। कुछ अंग्रेज़ लेखकों ने यह कहा है कि अवध की अमलदारी में अवध-शासन के दंड से भाग कर बचने वाले गंगा के इस पार शरण लेते थे और उन्हीं की कृपा से कानपुर-नगर में अपराधियों का अड्डा बन गया। हो सकता है ऐसा भी हुआ हो, जिसप्रकार सन् १६३२ के भयंकर-दंगे के बाद कानपुर में गुंडा-ऐक्ट लागू होने के परिणाम स्वरूप यहाँ के बहुत से नंबरी गुंडे गङ्गा पार कर उन्नाव, लखनऊ आदि स्थानों में जा बसे। पर यहाँ पर हमें अवध और कानपुर के गुंडों के परस्पर आदान-प्रदान के व्यर्थ विवाद में नहीं पड़ना है। हमारे ऊपर अवध और विशेषतः उसकी प्रतापी राजधानी लखनऊ का जो प्रभाव पड़ा है उसके हम उसी प्रकार ऋणी हैं जैसे कन्नौज के। हमारे ज़िले के ऊपरी आधे भाग की बोली कन्नौजी है और शेष भाग की अवधी है। इन दोनों बोलियों की विभाजक रेखा ठीक कानपुर-नगर से होकर जाती है। इस विषय की विस्तृत विवेचना हमारे इतिहास के दूसरे भाग में की जायगी। नवाबी शासन में लखनऊ अपनी विशिष्ट संस्कृति, सुकुमारता (सौफ़ियानापन), सौजन्य, शिष्टाचार, सौंदर्यप्रियता, ललित कला के प्रेम आदि के गुणों के लिए प्रसिद्ध

था और अभी तक इन के लिए उसकी प्रतिष्ठा घटी नहीं। यह कहना कठिन है कि कानपुर ने इन गुणों में से क्या-क्या सीखा। इस व्यवसायी और औद्योगिक नगर का शील लखनऊ की कलाप्रिय परम्पराओं से मेल नहीं खाता। फिर भी अवध के अनेक कवि, शायर और कारीगर यहाँ आकर बसे जिन्होंने हमारे जीवन की रुक्षता, कर्कशता और धन-लिप्सा को बहुत कुछ हलका किया। पक्की सड़क, पुल और रेल के बन जाने से हमारे दोनों के बीच का अन्तर बहुत कुछ घट गया है और इन दोनों नगरों के मध्य जितना यातायात है संयुक्तप्रान्त के किन्हीं अन्य दो शहरों के बीच न होगा।

कोड़ा-जहानाबाद के सरकार का विस्तार हमारे ज़िले की भूमि के दक्षिणी-पूर्वी भागों में अवध के शासन तक रहा। तब तक कानपुर का गावँ भी कोड़ा-जहानाबाद के जाजमऊ परगने में लगता था। पर अंग्रेज़ी अमल में कुछ दिनों तक कोड़ा-जहानाबाद उलटे कानपुर-ज़िले के अन्तर्गत रहा। ज़माना रंग बदल रहा था। कोड़ा-जहानाबाद, खजुहा, अर्गल, असोथर, फ़तेहपुर आदि ऐतिहासिक स्थान हैं, जिनके सामने कानपुर बच्चा है, पर अब वे तेजहीन हो गये हैं। फिर भी एक युग तक हम इनकी छत्र-छाया में रहे और वहाँ से आकर कानपुर में बसे हुए अनेक क्षत्रिय, ब्राह्मण, कायस्थ, वैश्य और मुसलिम परिवार हमें उस प्राचीन सम्पर्क का स्मरण दिलाते हैं। हमारा पुराना राजपथ हमारे ज़िले के नीचे के भाग से यमुना

के किनारे चलता था और पूर्व से आगरा और दिल्ली जाने वाले लोग फ़तेहपुर और जहानाबाद होते हुए घाटमपुर, भोगनीपुर, सिकन्दरा आदि प्राचीन स्थानों से गुज़रते थे। ब्रिटिश द्वारा निर्मित ग्रांड-ट्रंक-रोड फ़तेहपुर से सीधी कानपुर होती हुई कन्नौज और फ़रुखाबाद जाती है। इसलिए हमारा और जहानाबाद आदि स्थानों का पुराना नाता कुछ ढीला हो गया था। अब प्राचीन मुग़ल-रोड के पक्के हो जाने से यह सम्बन्ध फिर स्थापित हो गया है। शासन-सीमा की दीवारें हमें अलग नहीं कर सकतीं।

बुन्देलखंड के नगरों, कालपी, उरई, जालौन, मोठ, झाँसी, हमीरपुर, महोवा, बाँदा, चरखारी, ओड़छा, दतिया आदि से हमारे जिले का सदा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। वह भौगोलिक दृष्टि से एक पृथक् भूभाग है जो अन्तर्वेद का पुश्ता है और जल-वायु तथा भूमि की प्रकृति के विचार से अपना विशिष्ट अस्तित्व रखता है। पुण्यतोया यमुना इन दोनों को मिलाती है। प्राचीन जेजाकभुक्ति और कोशल को मिलाने वाली भूमि वही है जो पहले कान्यकुब्ज-जनपद की सीमा के अन्तर्गत थी और अब जिसका प्रधान नगर कानपुर है। बुंदेलखंड से अवध जाने के ऐतिहासिक मार्ग कानपुर अथवा उसके पास के इटावा और फ़तेहपुर जिलों से होकर थे। इस प्रकार हमारा और बुंदेलखंड का नाता प्रकृति ने स्वयं रचा है। तभी तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमारा दोनों का गहरा सम्बन्ध रहा है। महोबा, उरई, कालपी, ओड़छा आदि राज्यों

के वैभव के युगों में कानपुर-ज़िले की भूमि भी बुंदेलखंड शासन के अन्तर्गत रही। यमुना की रेखा उस पार के प्रभा को इस पार आने से न रोक सकी और इसी प्रकार यहाँ राजनीतिक और सांस्कृतिक उथल-पुथल उमड़ कर उस प गई। गंगा-स्नान के अभिलाषी भक्त यमुना से सन्तुष्ट न हो उसे लाँघ कर प्रति वर्ष सहस्रों की संख्या में इधर आते है प्राचीन काल में कानपुर के प्रादुर्भाव और उत्थान के प बिठूर और जाजमऊ में स्नानार्थियों की पंक्तियाँ बुदेलखंड बहुत आती थीं। परिशिष्ट ३ में दिये हुए प्राचीन आज्ञा-प से इस बात की ऐतिहासिक पुष्टि होती है। अवध और बुंदे खंड जनपदों के शासकों के मध्य कानपुर ज़िले की भूमि अपना आधिपत्य स्थापित करने के निमित्त अनेक बार घो संग्राम हो चुके हैं। आल्हा-ऊदल, परमाल छत्रशाल आ बुंदेलखंडी वीरों की अमर गाथायें हमारे यहाँ घर-घर ग जाती हैं। मोठ की गुसाईं-परम्परा के रणबाँकुरे हिम्म बहादुर तथा नरेन्द्र गिरि हमारे ज़िले के शासक और रक्ष अवध की अमलदारी के अन्तिम दिनों में रहे, और सि न्दरा-रसधान में उनको ब्रिटिश सरकार ने जागीरें दीं। मह कवि पद्माकर ने उनका गुणानुवाद अमर शब्दों द्वारा कि है। स्वयं पद्माकर, जिन्हें 'बुंदेलखंड-वासी' होने का ग था, अपने जीवन के अन्तिम काल में पाप-मोचन के हे कानपुर में गंगा-तट पर आकर बसे और यहीं पतितपावनी के अंक में उनका नश्वर शरीर पंचत्व को प्राप्त हुआ। या

उन्होंने अपनी 'गंगा-लहरी' की रचना की। बुन्देलखंड के प्रसिद्ध महाराष्ट्र शासक गोविन्दपंत बुंदेले ने बिठूर की महिमा इतनी बढ़ा दी कि वह प्राचीन प्रसिद्ध तीर्थों की कक्षा में परिगणित होने लगा। हमारी भूमि में ही रानी लक्ष्मीबाई ने अपना शैशव-जीवन व्यतीत किया और हमें गर्व है कि हमारी बसुन्धरा का भी बहुत कुछ प्रभाव झाँसी की रानी के चरित्र-निर्माण पर पड़ा। बुंदेलखंड के लोकप्रिय वीर हरदौल के चबूतरे हमारे ज़िले में बहुत अधिक संख्या में मिलते हैं। हमारे ज़िले में यमुना के निकटवर्ती भागों में बुँदेली बोली की विशिष्ट ठनक भी सुनाई देती है और वहाँ की स्त्रियों के परिधान और आभरण में बुंदेलखंडी झलक भी है। हमारे ज़िले के अनेक छोटे-बड़े कवियों और गुणीजनों को ओड़छा, दतिया, हमीरपुर, चरखारी आदि के राज-दरबारों में आश्रय मिलता रहा। इन सब मधुर सम्बन्धों और पारस्परिक व्यवहारों ने कानपुर और बुंदेलखंड को एक-दूसरे का सुहृद बना दिया है और हम अपने जमनापारी दिग्पालों को कभी भूल नहीं सकते।

प्राचीन मुग़ल राजपथ सिकन्दरा से औरैया और इटावा को जाता है। इसलिए यमुना के किनारे के भागों का इन स्थानों से बहुत सम्पर्क रहा। बुंदेलखंड के मराठों का शासन कुछ काल तक इस इलाक़े में रहा। पर उनके पैर जम न पाये। अवध का शासन अभी प्रबल था। अवध शासन के अन्तिम काल में प्रसिद्ध शासक अल्मास अली ख़ां और उसके

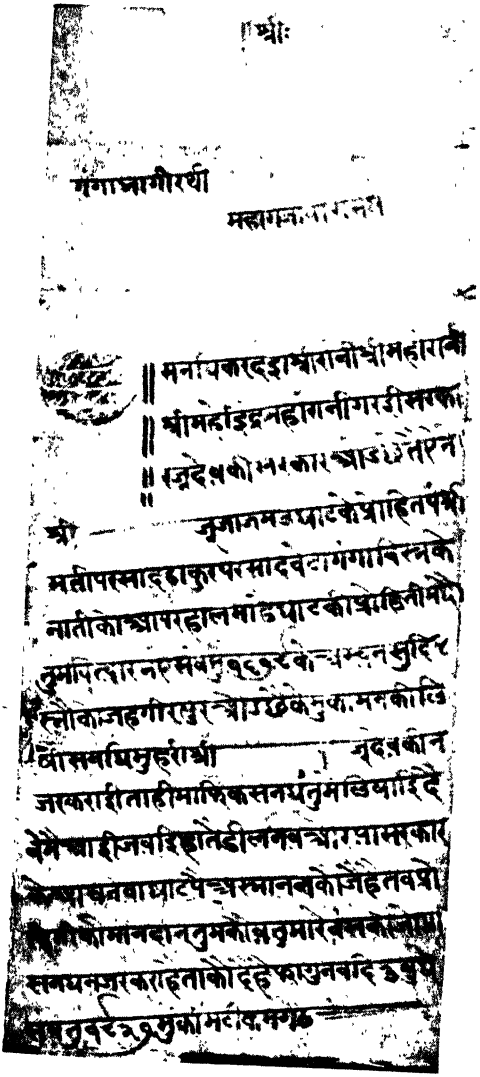
भाई राजा भागमल जाट ने बहुत दिनों तक औरैया, इटावा, कानपुर और जहानाबाद के इलाक़ों पर सुव्यवस्थित शासन कर इटावा, कानपुर व फ़तेहपुर इन तीनों ज़िलों की राजनीतिक एकता क़ायम रक्खी, जिसे इन ज़िलों की नवीन सीमायें सर्वथा मिटा नहीं पाई हैं। डेरापुर तहसील के औरैया तहसील से मिले हुए पश्चिमी भागों में ब्रज-भाषा की जो मधुरता और सुकुमारता वहाँ के स्त्री-पुरुषों की भाषा में मिलती है वह तहसील बिल्हौर के फ़र्रुखाबाद से मिले हुए इलाक़ों में नहीं है, यद्यपि इन दोनों ज़िलों—इटावा और फ़र्रुखाबाद—की बोलियाँ ब्रजभाषा के ही अन्तर्गत हैं। हमारे दूसरे भाग के 'भाषा और साहित्य' के प्रकरण में इस विषय पर विशेष प्रकाश पड़ेगा।

हमारे उपर्युक्त दिग्पालों के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों के संस्मरण अत्यन्त मधुर और स्फूर्तिवर्द्धक हैं।

परिशिष्ट ३:—

कानपुर में प्राप्त बुंदेलखंडी सनदें

अमरशहीद श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के अग्रज श्री शिवव्रतनारायण जी के उद्योग से सरसैयाघाट के एक पण्डा श्री गौरीशंकर दुबे गंगापुत्र के परिवार में सुरक्षित पाँच सनदों के देखने का अवसर हमें मिला। ये सब नागरी-लिपि में हैं।



१८० वर्ष पुरानी बुन्देलखंडी सनद

(पृष्ठ ९७)

पहली सनद की प्रतिलिपि :—

श्री

मोहर फ़ारसी

गंगा भागीरथी

महाराज वीरसिंघ

सनधि कर दई श्री रानी श्री महेइन्द्र महारानी गरई सरकार जू देव की सरकार ओड़छे तै एते·········जू जाजमऊ घाट के प्रोहित पं० श्री सतीपरसाद ठाकुरपरसाद बेटा गंगाबिस्न कै नाती कौ आपर हाल याहै घाट की प्रोहिती तुम वित्यार भये संवतु १६७६ के अस्वन सुदि ४ सौ कौं जहांगीरपुर औडछै के मुकाम नकी लिखी सनधि मुहरी श्री······जू देव की नजर कराई ताही माफिक सनध तुमै लिखाइ दैवे मै आई जब इहातै डील नव और छा सरकार के आश्रत वा घाट पै स्नानन को जैहै तब प्रोहित की मानदान तुमको व तुम्हारे बंस को जो या सनध नजर कर है ताको दैहै फागुन वदी तीज बुध सम्मत १६२७ मुकाम टीकमगढ़।

यह सनद स्पष्ट अक्षरों में लिखी हुई है। एक-आध शब्द का अर्थ कुछ संदिग्ध होने पर भी इसका भाव स्पष्ट है। महाराज वीरसिंह देव बुन्देला अकबर और जहाँगीर बादशाहों के समकालीन थे और जहाँगीर (शाहज़ादा सलीम) के भड़काने पर इन्होंने अकबर के प्रसिद्ध मन्त्री और इतिहासकार अबुलफ़ज़्ल का वध संवत् १६५६ में किया। जहाँगीर के शासन-काल में ये उसके विशेष प्रकार से सुहृद

रहे। इनकी मृत्यु संवत् १६८४ में हुई। इनकी ओर से संवत् १६७९ की आश्विन सुदी ४ को जाजमऊ के पुरोहित (पण्डा) को जहाँगीरपुर ओड़छे में एक सनद लिखी गई। फिर जब फागुन बदी ५ बुधवार संवत् १९२७ को ओड़छे की महारानी जाजमऊ के घाट पर स्नान करने आईं तो उन्होंने पुरानी (संवत् १६७९ वाली) सनद को देखकर उसी के अनुसार नई सनद लिख दी। पुरानी सनद शायद जीर्ण-शीर्ण हो गई होगी। इस समय इस घाट के पुरोहित श्री गंगाविष्णु के पौत्र तथा श्री ठाकुरप्रसाद के पुत्र पं० सतीप्रसाद थे।

गंगा

मोहर
हिन्दी

दूसरी सनद की प्रतिलिपि

श्री महाराज कोमार श्री राउ पदमसिंह जू देव येते पं० श्री प्रोहित सिरोमनि पं० श्री प्रोहित निहाली कौ प्रोहिती लिषि दई अरर श्रीजू ......स्नान जाजमऊ के घाट हमारे राजा ने कौ जू कोऊ जाइ सु इन्है माने हुकमु हजूर वैसाष बदी ३ सम्वत् १७७५ मु चिल्ली।

इस सनद के भी अर्थ स्पष्ट हैं। संवत् १७७५ की वैसाख बदी ३ को चिल्ली मुक़ाम में यह लिखी गई। चिल्ली या चिरली नामक एक गावँ कानपुर ज़िले में नर्वल के पास है और चिल्ली-तारा घाट यमुना वाला भी प्रसिद्ध है जो फ़तेहपुर ज़िले में है और वहाँ से बुन्देलखंड जाने का पुराना रास्ता है। इस सनद को देने वाले महाराजकुमार श्री पदमसिंह जू देव थे जो महाराज

छत्रशाल के तीसरे पुत्र थे। संवत् १७८८ में महाराज छत्रशाल का देहावसान हुआ। उसके १३ वर्ष पूर्व यह सनद जाजमऊ के पुरोहित सिरोमनि को लिखी गई। यह सिरोमनि निहाली तिवारी के प्रपौत्र थे जैसा सनद नं० ३ और ४ से स्पष्ट है।

तीसरी सनद—तीसरी सनद में ऊपर "श्री गोपाल जी" लिखा है और उसकी चैत सुदी की कोई तिथि है। संवत् १७७५ है और इसकी मुहर भी हिन्दी की है। इसके लिखाने वाले श्री महाराजकुमार हिरदेशाह हैं। ये महाराज छत्रशाल के सबसे बड़े कुमार थे। यह सनद जाजमऊ के पुरोहित सिरोमनि तिवारी के लिए लिखी गई थी।

चौथी सनद—सनद नं० ४ में ऊपर बाईं ओर हिन्दी की मुहर है। और ऊपर बीच में "गंगाजू सी" लिखा है। इसकी तिथि पहला कुवाँर सं० १८०१ है और इसके लिखाने वाले "श्री महाराजाधिराज श्री महाराज श्री राज जगतराज जू देव" हैं। यह निहाली के पन्ती सिरोमनि तिवारी के नाम लिखी गई। ऐसा जान पड़ता है कि निहाली तिवारी अपने समय के कोई प्रसिद्ध पुरोहित अथवा पंडित रहे होंगे। तभी उनके प्रपौत्र को दी हुई सनदों में उन्हीं का नाम आता है न कि सिरोमनि के पिता अथवा पितामह का। जगतराजजू देव महाराज छत्रशाल के द्वितीय पुत्र थे।

पाँचवीं सनद—पं० गौरीशंकर दुबे के पास सुरक्षित जो पाँचवीं सनद है वह ओड़छा-नरेश "महाराजाधिराज श्री

जसवन्तसिंह देव जू" की है। इसमें मुहर फ़ारसी की है जो बाईं ओर न होकर दाहिनी ओर है। और इसमें मुहर में ही सन् हिजरी ११४६ दिया हुआ है। कहीं किसी संवत् या मास की चर्चा नहीं है। सन् ११४६ हिजरी संवत् १७६० अर्थात् सन् १७३३ होता है। ओड़छा का छोटा-सा पृथक् राज्य महाराज छत्रशाल के विशाल राज्य से घिरा हुआ था और महाराज जसवन्तसिंह का शासन-काल सन् १७३२ से १७४१ तक था। इस सनद में जाजमऊ के "महन्त मोहन तिवारी" का नाम है, जो सम्भवतः सिरोमनि के पिता अथवा पितामह होंगे।

इन पाँचों सनदों की भाषा उस समय की बोलचाल वाली टूटी-फूटी बुन्देली है। लिखावट पहिली और दूसरी सनदों की सुन्दर है। इ और ई को सब सनदों में इि व इी लिखा गया है। ध व घ के रूपों में यह भेद है कि घ की बाईं ओर वाले ऊपर के चूल्हे का ऊपरी सिरा मत्थेवाली पाई पर समाप्त न होकर उसके नीचे 'हुक' की भाँति लटकता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि सनद १ और ५ जो ओड़छे के शासकों की हैं फ़ारसी की मुहरों से मुद्रित हैं, किन्तु महाराज छत्रशाल के तीनों पुत्रों, हिरदेशाह, जगतराज और पद्मसिंह, की सनदों पर हिन्दी की मुहरें हैं। यह उस परिवार के मुग़ल-साम्राज्य से स्वतन्त्र होने की छोटी सी निशानी है। इन तीनों सनदों में संवत् और भारतीय मासों का उल्लेख है, पर उनके सम-कालीन मुग़लों के सामन्त "महाराजाधिराज जसवन्तसिंह जू देव" की मुहर फ़ारसी में है और उसमें सन् हिजरी का प्रयोग

है। यह छोटी सी बात उनके महाराजाधिराजत्व की नहीं वरन् उनकी परतन्त्रता की द्योतक है।

जाजमऊ घाट की महिमा उस युग में बहुत अधिक थी। पर कानपुर के बसने और साथ ही साथ जाजमऊ के उजड़ने पर वहाँ के अनेक प्रसिद्ध परिवार कानपुर आकर रहने लगे। इनमें से यह गंगापुत्र परिवार भी था। अब सिरोमनि तिवारी के वंश के मान्य दुबे लोगों के हाथ में यह पुरोहिताई चली गई है और सरसैयाघाट इनका अड्डा हो गया है।

छठा अध्याय

कम्पनी का शासन

सन् १८०१ से १८५७ तक

सन् १८०१ में अवध और ईस्ट इंडिया कंपनी के मध्य संधि के अनुसार गंगा-यमुना के दोआबे के नीचे का भाग अंग्रेज़ों के शासन में आया। सन् १८०२ की १८ मार्च को मि० अब्राहम वेलांड कानपुर के प्रथम कलेक्टर नियुक्त हुए। सरसैया-घाट में, जहाँ पर रामसिंह अग्रवाल का अब घाट है, वहीं एक बँगला था। उसी में पहले पहल कचहरी लगी। सन् १८०३ की २४ वीं मार्च को कानपुर को एक ज़िला घोषित किया गया। कानपुर, मुरादाबाद, बरेली, इटावा, फ़र्रुख़ाबाद, इलाहाबाद, तथा गोरखपुर के ज़िलों के मुकदमों की सुनवाई के लिए बरेली में अपील-कोर्ट थी।

इस समय कानपुर ज़िले में १५ परगने थे जिसके नाम ये हैं:—जाजमऊ, बिठूर, शिवराजपुर, बिल्हौर, रसूलाबाद, डेरापुर,

सिकंदरा, भोगनीपुर, अकबरपुर, घाटमपुर, साढ़–सलेमपुर, औरैया, कन्नौज, कोड़ा व अमौली। प्रत्येक परगने का शासक तहसीलदार होता था। ज़िले का शासक एक अंग्रेज़ अफ़सर होता था। पर उस समय उस अफ़सर को कलेक्टर, मैजिस्ट्रेट तथा जज तीनों पदों के अधिकार प्राप्त थे। मि० वैलाण्ड प्रथम इस संयुक्त पद पर नियुक्त किये गये। कुछ वर्षों बाद कलेक्टर के अधिकार पृथक् कर दिए गये और मैजिस्ट्रेट तथा जज के कार्यों के निमित्त एक दूसरा अंग्रेज़ नियुक्त होने लगा। सन् १८२७ में जज व मैजिस्ट्रेट के पद भी विभक्त हो गये।

सन् १८०१ से १८११ तक सदर कचहरियाँ और दफ़्तर छावनी में ही स्थित थे। पर १८१० में कचहरी उठकर बिठूर चली गई और १८१६ तक बिठूर में ही ज़िले का सदर मुक़ाम रहा। पर बिठूर सुविधाजनक स्थान न सिद्ध हुआ। इसलिए सन् १८१६ में सदर कचहरियाँ व दफ़्तर नवाबगंज आ गये जहाँ जेल व ख़ज़ाना भी थे।

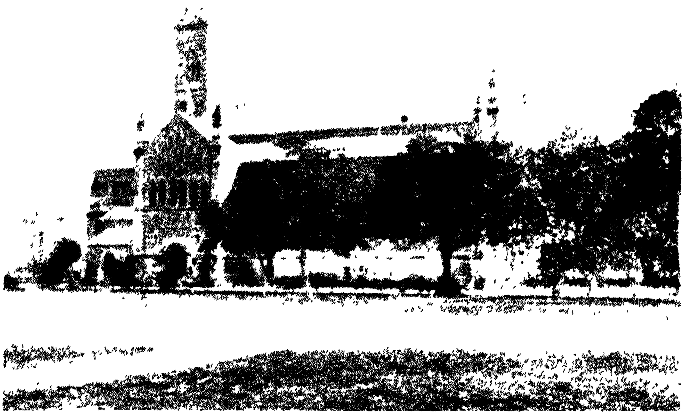
बाजीराव पेशवा का आगमन

सन् १८१४ में भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड मायरा (हेस्टिंग्स) कानपुर आये और अवध के नवाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर से कानपुर में भेंट की। खिड़की और अष्टी के युद्धों में ईस्ट इंडिया कंपनी की फ़ौज से पराजित होकर सन् १८१८ की १८ मार्च को बाजीराव पेशवा (द्वितीय) का बिठूर में ऐतिहासिक आगमन हुआ। आप को ७५ लाख

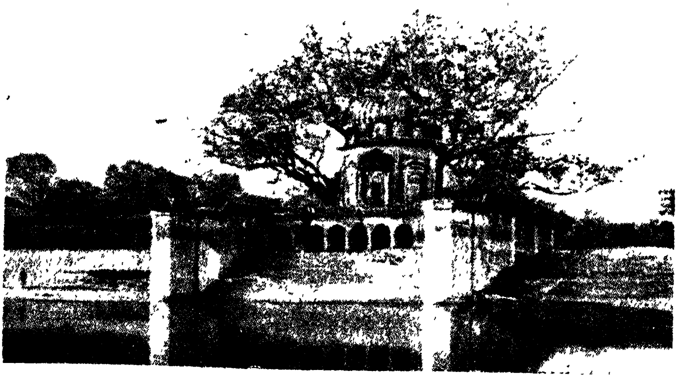
रुपये वार्षिक पेंशन तथा रमेल की जागीर प्रदान की गई। आपके साथ अन्य सैकड़ों मराठा परिवार बिठूर आये और बिठूर की चहल-पहल बढ़ गई।

प्रथम हिन्दू-मुस्लिम दंगा

सन् १८२० में दशहरा व मुहर्रम एक साथ पड़ने से चौक में हिंदू-मुस्लिम दंगा हो गया। तत्कालीन जज-मैजिस्ट्रेट कैंपबेल राबर्टसन ने आज्ञा दी कि मुसलमान चौक में न आवें और रामलीला अनवरगंज में हो। फलस्वरूप रामलीला कई वर्षों तक अनवरगंज में ही होती रही। सन् १८२५ के दिसंबर में गवर्नर जनरल लार्ड एमहर्स्ट कानपुर पधारे तथा अवध के नवाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर से कानपुर में मुलाक़ात की। इसी वर्ष गंगा में उस स्थान पर जहाँ आजकल नहर गिरती है नावों का पुल बना। सन् १८२६ में कालपी जाने के लिए यमुना पर भी नावों का पुल बनाया गया। सन् १८३० में अवध के वज़ीर नवाब मोतमुद्दौला, जिन्हें तत्कालीन नवाब नसीरुद्दीन हैदर ने बरख़ास्त कर दिया था, कानपुर आये। पहले वे सवादा कोठी के पास जुही में रहे, किंतु बाद में ग्वालटोली में एक बँगला ख़रीद कर उसमें रहने लगे। सन् १८३२ में गवर्नर-जनरल विलियम बेंटिंक कानपुर आये। अवध के नवाब नसीरुद्दीन हैदर से सवादा कोठी में उनकी मुलाक़ात हुई। इसी वर्ष गंगा का पुल बरगदिया घाट में बनाया गया। सन् १८३३ में कानपुर से होती हुई ग्रांड-ट्रङ्क-



आल सोल्स मेमोरियल चर्च
(पृष्ठ ११०)



मैसेकर घाट (पृष्ठ ११४)

ाड का इलाहाबाद से दिल्ली तक निर्माण हुआ। आगे चल कर न् १८५५ किनारे तार की लाइन बनी। सन् १८३३ में गंगा में ावों का सरकारी पुल तैयार हो गया। लाला ठंठीमल ने इसके नाने का ठेका लिया था। इस पुल के बन जाने से यात्रियों था व्यापारियों की आमदरफ़्त के लिए बड़ी सुविधा हो गई।

कानपुर-नगर में आने वाले या यहाँ से बाहर जाने वाले ाल पर चुङ्गी ली जाती थी। इस कार्य के लिए गंगा के किनारे ('परमिट' की कचहरी की सुदृढ़ इमारत बनाई गई थी और सी कारण इस मुहल्ले का नाम परमट घाट प्रसिद्ध हुआ। गा में नावों द्वारा आनेवाली ग़ल्ला, बाँस, लकड़ी, तख़्ता ादि सारी सामग्री इसी घाट पर उतरती थी। सन् १८३७ में वर्नर जनरल लार्ड आकलैंड कानपुर आये और सवादा के दान में ठहरे। अवध के नवाब मुहम्मदअलीशाह से ़ूबेदार के तालाब' पर उनकी मुलाक़ात हुई।

भयंकर दुर्भिक्ष

सन् १८३८ ई० में पानी न बरसने से लगभग समस्त देश ं भयंकर अकाल पड़ा। ग़ल्ला ६-१० सेर तक बिका। हज़ारों ादमी मर गये। बुन्देलखंड तथा आसपास के अन्य स्थानों ा हज़ारों अकाल-पीड़ित पुरुष आकर कानपुर नगर में भर ये। इनको काम देने के लिए सरकार ने नवाबगंज में जेल ़ पास एक तालाब खुदवाया तथा गिलिसबाज़ार में गिर्जाघर नवाया गया, जो बाद में 'क्राइस्टचर्च" के नाम से प्रसिद्ध आ।

लार्ड हार्डिञ्ज व वाजिदअली शाह का मिलन

सन् १८४७ में नवाबगंज में कंपनीबाग़ लगाया गया। सन् १८४८ में लार्ड हार्डिञ्ज कानपुर आये। अवध के नवाब वाजिदअली शाह भी उनसे मिलने के लिए लखनऊ से आये और 'सूबेदार के तालाब' पर भेंट हुई।

पेशवा की मृत्यु

२८ जन० सन् १८५१ में बाजीराव पेशवा की मृत्यु हो गई। उन्होंने नाना धोंदु पंत को, जो दादा जी बालाराव के पुत्र थे, गोद लिया था। अतः पेशवा की मृत्यु के बाद पेंशन की जगह वही उनके उत्तराधिकारी हुए, परन्तु कंपनी ने पेशवा की पेंशन तथा रमेल की जागीर उन्हें न दी। तब नाना साहब ने पीराजी तथा अज़ीमुल्ला नामक अपने दो दूतों को अपील के लिए विलायत भेजा। पीराजी जहाज़ में ही मर गया। अज़ीमुल्ला विलायत पहुँचा, परन्तु उसे अपने कार्य में सफलता न मिली। बाजीराव पेशवा ने ११ विवाह किये थे। उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए जो शैशवावस्था में ही मर गये। उनके दो पुत्रियाँ भी हुईं जिनके नाम ताईसाहबा और बयासाहबा थे। ये दोनों श्रीमन्त बाजीराव के मरने के बाद भी जीवित रहीं। १८२७ में बाजीराव ने नाना साहब को गोद लिया। १८३८ में पेशवा ने वसीयत की। पेशवा की मृत्यु के बाद नाना साहब के व्यवहार से श्रीमन्त बाजीराव की विधवायें व लड़कियाँ सन्तुष्ट न रहती थीं। इसलिए उन्होंने नाना के विरुद्ध फ़ौजदारी अदालत व गवर्नमेंट के पास शिकायतें भेजीं। १८५६ में नाना

साहब ने बया साहब का विवाह गणपतराव के साथ ठहराया। इस पर लड़की के परनाना बलवंतराव अठावले ने २८ मार्च १८५६ को नाना साहब पर १० हज़ार रुपये की नालिश इस लिए की कि बाजीराव ने बया साहबा को औरस-पुत्र बनाया था। किन्तु नाना साहब ने उसे बलवंतराव से ज़बर्दस्ती छीन कर उसके विवाह की तैयारी की है। इसलिए उसे व्याहने के खर्च के साथ बयाबाई दे दी जाय। १६ मई १८५६ को दूसरी नालिश ३ करोड़ चार लाख ७० हज़ार ६५३ रुपया १० आना ६ पाई की बलवंतराव और चिम्ना जी राव अप्पा ने (जो बाजीराव के सगे भाई चिम्नाजीराव की लड़की का लड़का था) की कि नाना साहब बाजीराव का दत्तक पुत्र व उत्तराधिकारी नहीं है। सदरआला मौलवी अब्दुरहमान ख़ाँ ने १६ अप्रैल १८५७ को दोनों नालिशें ख़ारिज कर दीं। इसके विरुद्ध अपील करने का मौक़ा ही न आ पाया था कि ग़दर प्रारंभ हो गया। सन् १८५३ में पहली बार जन-गणना हुई। इस साल भी मुहर्रम व दशहरा एक साथ पड़ा और जनरलगंज में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया। दंगे में भाग लेने वाले कुछ हिन्दू-मुसलमानों को क़ैद तथा जुर्माने की सज़ा मिली। सन् १८५६ में जब कंपनी ने अवध का राज्य ले लिया तो नवाब वाजिदअली शाह इस संबंध में अपील करने के लिए कलकत्ता रवाना हुए। इस संबंध में आप कानपुर आये और गिरजे (क्राइस्ट चर्च) के पास ब्रान्डन कंपनी में तीन दिन तक रहने के बाद कलकत्ता रवाना हुए।

सातवाँ अध्याय

सत्तावनी क्रान्ति

जिस समय देश में सन् ५७ की क्रान्ति आरम्भ हुई कानपुर में बंगाल तोपखाना की कुछ टुकड़ियाँ, ३२ तथा ८४ नं० पैदल पल्टन और नं० १ मद्रास फ्यूज़ीलियर्स के सैनिक थे। कुल अँग्रेज सैनिकों की संख्या १७४ थी। देशी फ़ौजों में रिसाला नं० २ और पैदल पल्टन नं० १, ५३ और ५६ थीं। कानपुर डिवीज़न भर का फ़ौजी सदर मुक़ाम था। फ़ौजों के कमांडर ७०-वर्षीय मेजर जेनरल सर ह्यू व्हीलर थे। नगर के कलेक्टर मि० सी० जी० हिलर्सडन थे। छावनी में अँग्रेज नागरिक भी बहुत बड़ी संख्या में रहते थे। इनमें नागरिक, रेलवे तथा नहर विभाग में काम करने वाले कर्मचारी तथा ३२ वीं पैदल पल्टन के, जो उस समय लखनऊ में तैनात थे, प्रायः सभी स्त्री-बच्चे भी

ाम्मिलित थे। कुल ७५० अँग्रेज थे परन्तु भिन्न-भिन्न लोगों के विभिन्न आँकड़ों को देखते हुए ठीक संख्या नहीं बतलाई जा सकती।

विप्लव की पहली चिनगारी

सन् ५७ के अप्रैल में नाना साहब ने लखनऊ की रहस्य-पूर्ण यात्रा की। इसी महीने बरहमपुर की १६ नं० हिन्दुस्तानी पल्टन कानपुर से होकर गुजरी और तभी से नये प्रकार के कारतूसों के संबन्ध में यहाँ की देशी पल्टनों में भी उत्तेजना फैलनी प्रारंभ हुई। १० मई को मेरठ में क्रान्ति आरंभ हो जाने की ख़बर मिलने पर यह उत्तेजना और भी बढ़ गई। इसके दो दिन बाद ही पहली देशी पल्टन की लाइन में एक जगह अग्नि-कांड हो गया। इस पर अँग्रेज स्त्रियों तथा व्यापारियों को बैरकों में, जहाँ तोपखाना पहले ही पहुँचाया जा चुका था, हटा ले जाना उचित समझा गया। इन घटनाओं ने सिपाहियों को और भी उत्तेजित कर दिया, जिसके कारण अब उनका विश्वास बिलकुल जाता रहा। २० ता० को जे० ह्वीलर ने तार भेजकर लखनऊ से और मदद माँगी। वहाँ से ३२ नं० पैदल पलटन के ५० सैनिक आये। अभी जिले में कोई गड़बड़ी न आरंभ हुई थी, क्योंकि पुलिस सतर्क थी और १७ ता० को शिवराजपुर के थानेदार ने कुछ बलवाइयों को लूट के माल सहित गिरफ़्तार कर भेजा भी था।

नाना साहब, जो कई बार सहायता देने का प्रस्ताव कर चुके थे, २२ ता० को बुला भेजे गये और २६ ता० को उन्हें नवाबगंज में सरकारी ख़ज़ाना सौंप दिया गया। नाना साहब २०० चुने हुए जवान तथा दो तोपें साथ लेकर आये थे।

अंग्रेजों की क़िलेबन्दी

इसके बाद जे० ह्वीलर ने आवश्यकता पड़ने पर अँग्रेज नागरिकों की रक्षा के लिए छावनी में उस स्थान पर जहाँ आजकल 'आल सोल्स गिरजा' है रक्षात्मक क़िलेबन्दी की और उसी में तोपें चढ़वा दीं। उस समय इस स्थान पर ३२ वीं पल्टन का डिपो था। एकमंजिला लम्बी दो बैरकें थीं। इन्हीं बैरकों के चारों ओर ४ ५ फ़ीट ऊँची खाइं खड़ी कर दी गई थी। यह क़िलेबन्दी २०० वर्गफ़ुट के दायरे में छावनी के छोर पर थी और उसके चारों ओर खुला मैदान फैला हुआ था। इसी समय नवाबगंज के पास की मैगज़ीन (शस्त्रागार) को ख़ाली कर दिया गया। ह्वीलर के इस कार्य की अंग्रेज़ी इतिहासकारों ने बड़ी आलोचना की है क्योंकि शस्त्रागार के अन्दर काफ़ी अर्से तक के लिए खाने-पीने का सामना मौजूद था। किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि ह्वीलर केवल नाना साहब पर पूर्ण विश्वास ही न करता था किन्तु इलाहाबाद से अपना यातायात-संपर्क क़ायम रखने का दृढ़ निश्चय कर चुका था। उसे विश्वास था कि ग्रांड ट्रङ्क-रोड के रास्ते से उसके लिए शीघ्र सहायता आ जायगी। २७ ता० को अवध रिसाले की दो टुकड़ियों को, जो लखनऊ से भेजी गई

ग़ीं तथा जिनपर उसका पूर्ण विश्वास था, फ़तेहगढ़ जाने वाली सड़क से समस्त गड़बड़ी का अन्त करने का आदेश दिया गया। परन्तु १ जून को कुरौली पहुँचने पर इन्होंने विद्रोह कर दिया। केवल लेफ़्टीनेन्ट केरी नामक एक अफ़सर अपनी जान बचा कर भाग सका। इसी दिन ह्वीलर ने ३२ वीं पलटन के ५० तथा ८४ वीं पलटन के ५० सैनिकों को लखनऊ भेज कर अपनी शक्ति और कमज़ोर कर ली।

विद्रोह का आरंभ

४ जून को पूर्व निश्चय के अनुसार ठीक आधी रात को तीन फ़ायरों से कानपुर में क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ। दूसरे दिन प्रातः रिसाले ने तथा उसके बाद १ नं० देशी पलटन ने विद्रोह कर दिया किंतु उन्होंने अपने किसी अफ़सर को चोट नहीं पहुँचाई और दोनों ही दल नवाबगंज की ओर चल दिये। ६ ता० को बाक़ी दोनों पलटनों ने भी विद्रोह कर दिया। प्रत्येक पलटन के कुछ सिपाही अंग्रेज़ों के भक्त बने रहे और इन्हें भी क़िलेबन्दी के भीतर पहुँचा दिया गया। विद्रोहियों ने ख़ज़ाना और कचहरी लूट ली और जेल का फाटक खोल दिया।

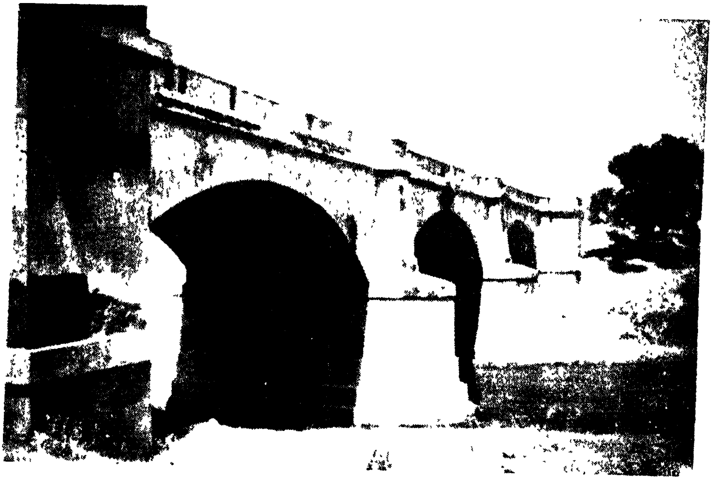
इसके बाद सिपाही दिल्ली की ओर रवाना हुए, परन्तु नाना साहब ने शीघ्रता से जाकर पाँच मील दूर कल्याणपुर में ही उन्हें रोक दिया और लौट कर कानपुर में अंग्रेज़ों को नष्ट कर देने के लिए समझाया। नाना साहब ने जनरल ह्वीलर को अपने आक्रमण की सूचना पत्र-द्वारा १२ घण्टे पहले

से ही दे दी। सब ने मिलकर नाना को अपना राजा चुना तथा सूबेदार टिक्कासिंह को कमांडर बनाकर जनरल की पदवी दी गई। जमादार दलगंजनसिंह ५३ नं० पलटन के कर्नल बनाये गये और सूबेदार गंगादीन को प्रधान पलटन का कर्नल बनाया गया। एक हाथी में आज़ादी के झंडे का जुलूस निकाल कर घोषणा कर दी गई कि नाना साहब का राज्य आरंभ हो गया है।

अंग्रेज़ों के क़िले पर आक्रमण

नाना साहब ने ६ जून को १२ घण्टे की अवधि समाप्त हो जाने के बाद अंग्रेज़ों के नये क़िले पर चढ़ाई बोल दी। ह्वीलर ने सभी अंग्रेज़ों को शीघ्रतापूर्वक क़िले में आ जाने के लिए कहा, परन्तु कुछ लोगों को आने में देर हुई और वे मार डाले गये। ६ ता० को प्रातः १० बजे क़िले पर नाना साहब का पहला गोला गिरा। ६ से २६ जून तक क़िले पर नाना साहब की विशाल तोपें, जिन्हें वे नवाबगंज की मैगज़ीन से ले आये थे, लगातार भयंकर गोलाबारी करती रहीं।

६ तारीख़ को ७ नं० रिसाले तथा ४८ वीं देशी पलटन की दो कंपनियों ने, जो उस समय चौबेपुर में पड़ाव डाले पड़ी थीं, विद्रोह कर दिया और अपने समस्त अँग्रेज़ अफ़सरों को मार डाला। केवल लेफ़्टीनेंट बोल्टन नामक एक अफ़सर बचा जिसने घोड़े पर भागते हुए आकर कानपुर में ह्वीलर की क़िलेबन्दी के चारों ओर बनी खाईं घोड़े सहित फाँद कर भीतर शरण ली। उसी दिन फ़तेहगढ़ से ६०-७० अँग्रेज़



पांडो नदी का पुल , ग्रांड-ट्रंक-रोड
(पृष्ठ ११९)



क्राइस्ट चर्च (पृष्ठ १७३)
(यह इमारत सन् १८५७ के बाद की है)

पुरुष, स्त्री, बच्चे नाव-द्वारा गंगा में होते हुए नवाबगंज पहुँचे, जहाँ उन सब को मार डाला गया।

११ तारीख़ को क़िले पर आम आक्रमण आरंभ हुआ परन्तु उसे आसानी से विफल बना दिया गया। १३ तारीख़, को बैरक पर पड़े हुए एक छप्पर में आग लग गई जिससे सारा डाक्टरी सामान नष्ट हो गया तथा क़िले में मौजूद सैनिकों के लिए जून के प्रचंड सूर्य की गरमी से बचने का एकमात्र साधन भी चला गया। १४ तारीख़ को एक तोप भी नष्ट हो गई। अँग्रेज़ों की कठिनाइयाँ बढ़ती जा रही थीं। रसद कम हो गई थी और क़िले के चारों ओर का घेरा दिन-प्रति-दिन कड़ा होता जा रहा था। ६ तारीख़ को अवध लोकल इन्फ़ैन्ट्री की चौथी तथा पाँचवीं पलटनें भी आकर नाना की फ़ौज में मिल गईं। इन नई पलटनों ने आकर एक नये स्थान से अपनी तोपों द्वारा क़िले के भीतर उस स्थान पर गोले बरसाने आरंभ किये जहाँ कुआँ था। क़िले के लोगों के लिए पानी प्राप्त करने का यही एकमात्र साधन था।

अँग्रेज़ों द्वारा आत्म-समर्पण

इन सब कठिनाइयों को अँग्रेज़ कब तक झेल सकते थे? अंत में २५ तारीख़ को उन्होंने आत्म-समर्पण करने का निश्चय किया। नाना साहब की शर्तें उन्होंने स्वीकार कर लीं और २७ तारीख़ को अँग्रेज़ों का क़िले से निकलकर इलाहाबाद जाना तय हुआ। चालीस नावें सत्तीचौरा घाट पर लगाई गईं।

ख़ून का बदला ख़ून

अँग्रेज़ों को पहरे के अंदर क़िले से घाट तक लाया गया। ये सकुशल इलाहाबाद भेज दिये गये होते, किंतु बनारस आदि से आये हुए सिपाहियों ने जनरल नील सरीखे क्रूर अंग्रेज़ों द्वारा की गई हत्याओं और अत्याचारों का ऐसा रोमाञ्चकारी वर्णन सुनाया कि कानपुर के सिपाही बिगड़ गये और ख़ून का बदला ख़ून से लेने पर उतारू हो गये।

सिपाही नावों पर भूखे भेड़ियों की तरह टूट पड़े। सारी नावों में कोलाहल मच गया। कोई तैरने लगा, कोई डूब गया तथा किसी के गोली लगी। थोड़ी दूर तक गंगाजी लाल हो गईं। सिपाही अंग्रेज़ों को मारने पर इतने तुले हुए थे कि दाँतों से तलवारें पकड़-पकड़ कर तैर रहे थे और जहाँ उन्हें कोई शत्रु डूबता-उछलता मिला तुरन्त ही उन्होंने उसका काम तमाम किया। इस प्रकार पूरे १०० वर्ष बाद पलासी के युद्ध की शताब्दी मनाई गई। ह्वीलर और हिलर्सडन आदि प्रायः सभी अंग्रेज़ मार डाले गये। ज्योंही यह ख़बर नाना को मिली उन्होंने तुरंत दूत दौड़ा कर इस हत्या-कांड को बंद करवाया और शेष १२५ स्त्री-बच्चों को पानी से निकाल कर सुरक्षित रूप से सवादा की कोठी में रखवा दिया। क़िले के घेरे के समय नाना साहब वहीं ठहरे हुए थे। इस तमाम गड़बड़ी में एक नाव बच कर भाग निकली जिसमें मोब्रे टामसन, डीला फ़ोस तथा कुछ अन्य अंग्रेज़ स्त्री, पुरुष तथा

बच्चे थे। ३० तारीख़ को यह नाव भी पकड़ लाई गई। पुरुषों को नदी तट पर गोली मार दी गई तथा स्त्री और बच्चों को सवादा कोठी में पहुँचा दिया गया। इस नाव में भागने वाले केवल चार अंग्रेज़ मर्द बच निकले थे जिन्हें मुरारमऊ के ज़मीन्दार दुर्विजयसिंह ने शरण दी। इस ज़मीन्दार ने इन भूखे-नंगे अंग्रेज़ों को एक महीने तक अपने यहाँ छिपाये रक्खा और फिर उन्हें इलाहाबाद पहुँचा दिया। फ़तेहगढ़ से भागे हुए अंग्रेज़ों की एक और नाव ६ जुलाई को बिठूर में पकड़ी गई। उनमें से पुरुष तो फ़ौरन ही तलवार के घाट उतारे गये और स्त्री-बच्चों को बीबीघर की जेल में भेज दिया गया। यह बीबीघर उस जगह के पास कुछ पश्चिम ओर था 'जहाँ मेमोरियल बाग़ में ऐतिहासिक मेमोरियल कुआँ है। इसे अंग्रेज़ अफ़सरों ने अपनी हिन्दुस्तानी बीबियों (रखेलियों) के निवासार्थ बनवाया था।

नाना साहब का राजतिलक

इस बीच २८ जून को नाना साहब ने कानपुर की विजय के उपलक्ष में एक दर्बार गंगा-नहर के किनारे उस स्थान पर किया जहाँ आजकल पानी की चक्की है, और एक लाख रुपया सिपाहियों को इनाम में दिया। सवादा कोठी में हैज़ा और पेचिश फैल जाने के कारण सारे क़ैदी वहाँ से हटा कर बीबी-घर में रक्खे गये थे और नाना साहब बिठूर चले गये। वहाँ १ जुलाई को वे बड़ी धूमधाम से पेशवाओं के राजसिंहासन

पर बैठाले गये और उनका राजतिलक किया गया। महाराज शिवाजी की राजधानी रायगढ़ में अंग्रेजों द्वारा छीना हुआ सिंहासन पवित्र गंगा के किनारे ब्रह्मावर्त में पुनः स्थापित हुआ।

सिंहासनारूढ़ होकर नाना साहब चुप नहीं बैठे। एक ओर नागरिक प्रबंध को उन्होंने अपने हाथ में लिया, तो दूसरी ओर फ़ौजी तैयारी की तरफ़ पूरा-पूरा ध्यान लगाया। नाना साहब के पेशवा घोषित किये जाने से हिंदू तो प्रसन्न थे, परन्तु मुसलमानों के एक दल ने एक हिंदू का राज्य स्थापित होने से असंतुष्ट होकर नन्हें नवाब के नेतृत्व में अपना पृथक् संगठन करना चाहा। ३ जुलाई को नाना साहब ने नन्हें नवाब को क़ैद कर लिया और बाद में युद्ध में सम्मिलित होने की प्रतिज्ञा करने पर उन्हें मुक्त किया गया।

नाना साहब के प्रमुख सहायक

नाना साहब के प्रमुख सहायकों में अज़ीमुल्ला का नाम सर्वप्रथम आता है। प्रारम्भ से अंत तक वे नाना के प्रधान सलाहकार रहे। नाना साहब की सेना के प्रधान अफ़सर हिन्दू थे। इनमें नाना साहब के भाई बालाराव, नानासाहब के प्रधान अंग-रक्षक ज्वालाप्रसाद तथा टिक्कासिंह भी थे। कानपुर में अँग्रेजों की जड़ उखाड़ने वाली गुप्त-सभाओं का मुख्य केन्द्र-स्थान सूबेदार टिक्कासिंह का घर था और क्रांतिकारियों का दूसरा मिलन-स्थान सिपाही-नेता शमसुद्दीन खां का मकान था। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित प्रभावशाली व्यक्ति शीघ्र ही नाना साहब के सहायक बन गये:—

(१) बिठूर के चौधरी लोग (२) ठठिया के राजा (३) नाना-मऊ के मोतीसिंह (४) पनकी-गंगागंज, काकादेव तथा उसके आसपास के राजपूत (५) शिवराजपुर के राजा सतीप्रसाद, सचेंड़ी के राजा दुर्गाप्रसाद तथा उनके अन्य चंदेले साथी (६) नार के गौर राजा दरियावचंद। इन सब ने ह्वीलर की क़िलेबंदी पर होने वाले हमले में भाग लिया था, अर्थात् कुल बिठूर, जाजमऊ, शिवराजपुर, नरवल और रसूलाबाद के ज़मींदारों और प्रसिद्ध पुरुषों ने खुले आम विद्रोह की घोषणा कर दी।

नरवल और अकबरपुर के तहसीलदारों ने नाना का साथ दिया। परन्तु घाटमपुर के देशद्रोही तहसीलदार अफ़-ज़ल अली ने बराबर अपने पद पर बने रह कर ख़ज़ाना तथा सरकारी काग़ज़ातों की रक्षा की। डेरापुर का तहसीलदार वारिस अली भी अँग्रेज़ों की ग़ुलामी में चिपका रहा परन्तु बाद में फ़रार हो गया। भोगनीपुर के तहसीलदार त्रिवेणी-सहाय ने भी विद्रोहियों द्वारा लूटे न जाने तक अपने पद पर काम किया। रसूलाबाद का तहसीलदार फरीदुज़्ज़मा भी अंत तक अपने परगने में रहा और बाद में फ़रार हो गया। शिवराजपुर के तहसीलदार अशरफ़ अली को वहाँ के राजा सतीप्रसाद ने क़ैद कर लिया, परन्तु बाद में वह भाग निकला और अंग्रेज़ों से जाकर मिल गया। सिकन्दरा के तहसीलदार अज़ीज़ुद्दीन को क़ैद कर नाना साहब का साथ देने के लिए बाध्य किया गया।

ज़िले भर में विद्रोह की ज्वाला सुलग उठी

ज्यों-ज्यों क्रांतिकारियों को सफलता मिलती गई, त्यों-त्यों अन्य ज़मींदार भी उनके सहायक बनते गये। शिवली, सखरेज और रसधान के ज़मींदार सिकंदरा के गोसाइयों की सरदारी में आकर विद्रोही दल में सम्मिलित हो गये और उसी समय गंगापार से भी काफ़ी लोग आकर क्रांति को आगे बढ़ाने में नाना साहब की पलटनों में भर्ती होने लगे। इस प्रकार ज़िले का प्राय: समस्त राजपूत समुदाय, विशेषतः चौहानों, गौरों, चंदेलों, पँवारों तथा गौतमों ने इस क्रांति में भाग लिया। उनकी सहायता के बिना कानपुर में क्रांति की ज्वाला इतनी प्रज्वलित न हो सकती थी।

कानपुर पर अंग्रेज़ों का आक्रमण

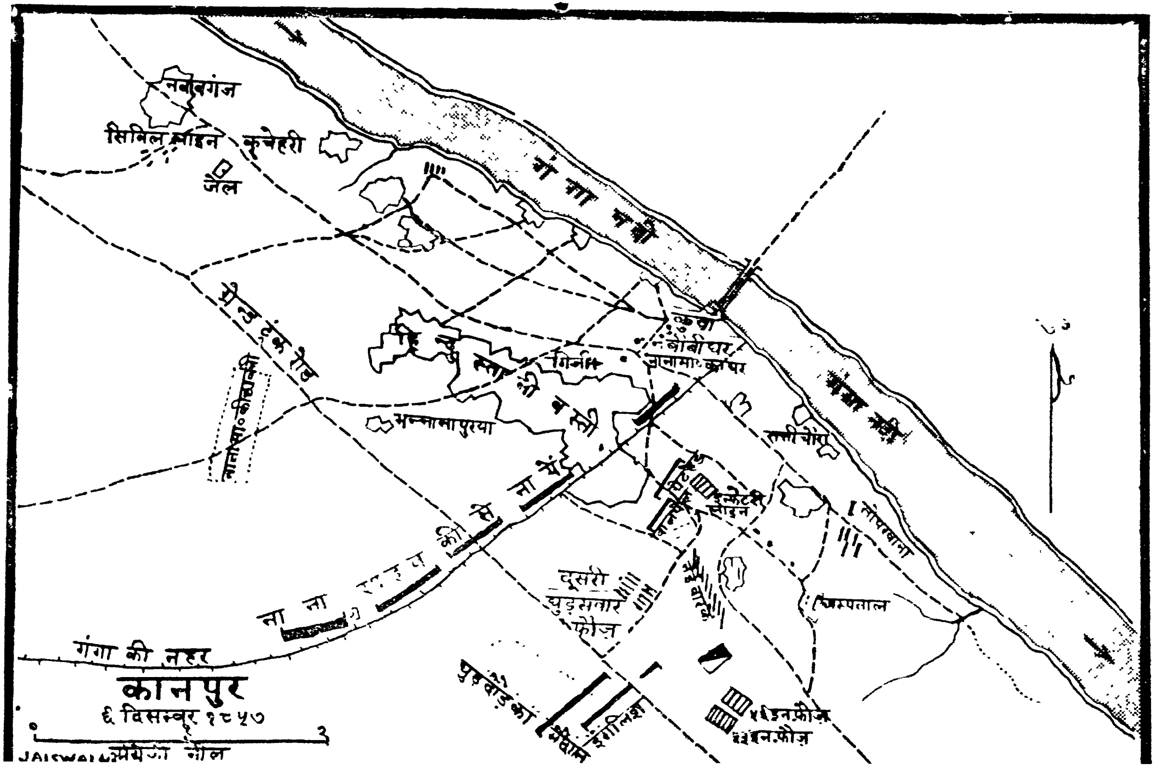
कानपुर के हाथ से निकल जाने की अंग्रेजों को बड़ी कलक थी। अतः चारों ओर से कानपुर पर आक्रमण करने के अंग्रजों ने मन्सूबे बाँधे। कानपुर को पुनः प्राप्त करने की लड़ाई फ़तेहपुर की लड़ाई के बाद आरंभ हुई। फ़तेहपुर की लड़ाई पहली लड़ाई थी जिसमें अंग्रेजों ने विद्रोहियों पर विजय प्राप्त की थी। यहीं से उनका साहस बढ़ना आरंभ हुआ। इसके पहिले दो महीनों की लगातार हार ने उनके पैर उखाड़ दिये थे। १५ जुलाई को ज़िला फ़तेहपुर में कानपुर से २३ मील पूर्व ग्रांड-ट्रंक-रोड पर स्थित औंग-गुधरौली नामक गाँव में मीनाड ने ज्वालाप्रसाद के नेतृत्व में आई हुई विद्रोही सेना को हराया

और आगे बढ़ कर पांडो नदी के किनारे पर उनकी सेना विश्राम के लिए रुक गई। वहाँ से वे कानपुर की ओर बढ़ना चाहते थे। यदि विद्रोही नदी का पुल उड़ा देते, जैसा कि वे करना चाहते थे पर कर न पाये, तो कानपुर की ओर अंग्रेज़ों का मार्ग रुक जाता। किंतु इलाहाबाद से मार्च करते हुए आने और अत्यन्त थके हुए होने पर भी अंग्रेज़ों ने विद्रोहियों को पांडो नदी पर जा घेरा और उन्हें पुल उड़ा देने से रोक दिया। इसी समय बीबीघर के समस्त अंग्रेज़ स्त्री-बच्चों को क़त्ल कर दिया गया।

महाराजपुर की लड़ाई

पांडो नदी पार करके आने पर कानपुर के ज़िले में पहली लड़ाई महाराजपुर में हुई। औंग और पांडो नदी की लड़ाइयों में अंग्रेज़ों के केवल २५ सैनिक मारे गये, किंतु उनकी सारी फ़ौज इतनी थक गई थी कि नदी के इस पार आने पर वह केवल एक ही मील चल कर थकावट से चूर हो गई और आगे न बढ़ सकी। इस अवसर पर यदि हमारी पलटनों में कोई सुयोग्य सेनापति होता तो अंग्रेज़ों पर आक्रमण करके उन्हें शीघ्र परास्त कर देता। दुर्भाग्यवश ये अफ़सर उत्साही तो थे परन्तु अनुभवहीन थे। उधर अंग्रेज़ी फ़ौज का संचालन जनरल हैवलाक जैसा ख़ुर्राट कर रहा था। औंग की पराजय तथा उसमें नाना साहब के भाई बालाराव के बुरी तरह से घायल हो जाने के समाचार से कानपुर की

विद्रोही सेना में विशृंखलता फैल गई। पांडो नदी के किना
से पीछे हटती हुई विद्रोही सेना ने १६ जुलाई को अहिरव
तथा कानपुर शहर के बीच ग्रांड-ट्रंक-रोड पर अपना सुदृ
मोर्चा बनाया। यह मोर्चा एक ओर गंगा जी के किनारे
दूसरी ओर एक प्राचीर-युक्त गाँव तक, जिसके चारों ओ
आम के बाग़ थे, फैला हुआ था। विद्रोही सेना के पास अने
तोपें थीं जिन्हें उसने इस मोर्चे पर लगा दिया। अंग्रेज
सेना ने भी महाराजपुर में आकर अपना पड़ाव डाल दिया
इसी समय महाराजपुर की छावनी में दो देश-विद्रोहियों
जाकर नाना साहब की सेना की घबड़ाहट, शक्ति और वह
की सारी परिस्थिति का संपूर्ण हाल बतला दिया। ये दोन
देशद्रोही सिपाही एक रात पहले नाना साहब की पलटन
साथ रहे थे और अब आकर अंग्रेजों से मिल गये थे
महाराजपुर की लड़ाई में स्वयं नाना साहब ५००० सिपाह
लेकर आ गये थे, किंतु ख़ुर्राट जनरल हैवलाक ने अप
१००० अंग्रेज सिपाहियों से उन्हें एक भयंकर भुलावा देक
और कर्नल हैमिल्टन की सहायता से पीछे हटा दिया। इ
लड़ाई में ३०० सिक्खों ने भी अंग्रेजों की सहायता की। १
तारीख़ की दोपहर को हैवलाक ने सर्वप्रथम विद्रोहियों
मोर्चे के दाहिने बाज़ू पर आक्रमण किया और उसमें उ
अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई। विद्रोहियों की तोपें छिन गई
और उन्हें संकुचित होकर मोर्चे के मध्यभाग में हट आन
पड़ा। इसी बीच मद्रास फ़्यूज़ीलियर्स के सैनिकों ने मोर्चे के मध्य



कानपुर
६ दिसम्बर १८५७
0 — 3
अंग्रेज़ी मील
JAISWAL

भाग पर भी धावा बोल दिया। अब विद्रोही सेना के पैर उखड़ गये और वह भाग खड़ी हुई। परन्तु नाना साहब अंत तक विरोध करने का निश्चय कर चुके थे। फलस्वरूप महाराजपुर से कानपुर छावनी की ओर जाने वाली सड़क पर उन्होंने नया मोर्चा बनाया। शहर से काफ़ी संख्या में कुमुक उनके पास आगई थी। अंग्रेज़ी सेना थक कर चूर-चूर हो रही थी और परिस्थिति अत्यन्त गंभीर थी। इसी समय नाना साहब का रिसाला पैदल पल्टन सहित आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा। अंग्रेज़ी सेना ने तेज़ी से आक्रमण कर विद्रोही सेना के अंतिम तोपख़ाने पर भी अधिकार कर लिया। विद्रोही सेना में भगदड़ मच गई। रात्रि में अंग्रेज़ी सेना ने यहीं पड़ाव डाल दिया। दूसरे दिन प्रातः कानपुर शहर में पहुँचने पर उसने विस्फोट से उड़ाई हुई नवाबगंज वाली मैगज़ीन तथा ह्वीलर की क़िलेबंदी की ध्वंस-लीला देखी। इस मैगज़ीन में इसी दिन किसी ने आग लगा दी थी। मैगज़ीन के धड़ाके की आवाज़ यमुना के उस पार तथा गंगापार लखनऊ के आगे तक पहुँची थी। इससे निकलने वाला गर्द-गुबार और धुआँ मीलों तक दिखलाई दिया। कुछ लोगों का तो कथन है कि इससे भी अधिक दूरी तक धड़ाके की आवाज़ पहुँची थी। पीछे लौटने पर नाना साहब की फ़ौज को जो भी अंग्रेज मिला—मर्द, औरत और बच्चा तथा बीबीघर के सारे क़ैदी—कुल मिलाकर २२० को उन्होंने समाप्त कर एक कुएँ में डाल दिया। इसी कुएँ का नाम "मेमोरियल वेल" पड़ा।

अंग्रेज़ों की विजय

१७ जुलाई को कानपुर फिर अंग्रेज़ों के हाथ में आ गया और अंग्रेज़ी सेना रात्रि भर नहर किनारे विश्राम करने के बाद सबेरा होते-होते परेड पर पहुँच गई। नाना साहब अपनी सेना सहित भाग कर बिठूर चले गये थे। १८ तारीख़ को हैवलाक ने अपनी फ़ौज कानपुर से पश्चिम की ओर नवाबगंज में ग्रांड-ट्रंक-रोड के पास मिशन की इमारत में ले जाकर रक्खी और यहाँ मोर्चेबंदी आरम्भ कर दी। नगर में मार्शलला घोषित कर दिया गया था। नाना साहब ने भी बिठूर जाकर अपना सैन्य-संगठन आरंभ किया। अंग्रेज़ों ने अपनी अमलदारी पुनः क़ायम करने के लिए थाने आदि स्थापित करने चाहे, परन्तु सचेंड़ी तथा शिवराजपुर में जो लोग इस पुलिस दल में भर्ती हुए उन्हें ४२ नंबर पल्टन के विद्रोही सिपाहियों ने, जो सागर से कालपी होते हुए कानपुर आ गये थे, मार डाला।

एक ओर हैवलाक अपनी थकी हुई और थोड़ी फ़ौज के कारण मन ही मन डर रहा था कि कहीं नाना साहब बिठूर से उस पर आक्रमण न कर दें, तो उसके सारे सिपाही वहीं खेत रहें। दूसरी ओर महाराजपुर और अहिरवाँ की लड़ाइयों में हारने के कारण नाना साहब के सिपाहियों का भी उत्साह भंग हो चुका था। उनके झुंड के झुंड फ़ौज छोड़ कर गंगापार उतर गये। बेचारे नाना साहब बिना फ़ौज के कैसे लड़ते? १६ तारीख़ को हैवलाक ने एक फ़ौजी टुकड़ी बिठूर भेजी परन्तु

बिठूर ख़ाली पड़ा था। इस टुकड़ी ने नाना साहब के महल को नष्ट कर दिया और नाना साहब की फ़ौज द्वारा पीछे छोड़ी गई तोपों को लेकर वह कानपुर लौट आई। जो फ़ौजें गंगा पार उतर गई थीं उन्होंने तथा स्थानीय निवासियों ने मगरवारा और उन्नाव में अंग्रेज़ी राज्य को उखाड़ फेंका। नाना साहब भी हाथी पर चढ़ कर उधर पहुँच गये थे।

जनरल नील का आगमन

इसी समय नील ४०० सैनिक लेकर कानपुर आ गया। अवध जाने के लिए जिस स्थान पर गंगा पार करनी पड़ती थी वहाँ एक नयी मोर्चेबंदी बनाई गई। अतः २५ ता० को हैवलाक नील को ३०० सैनिकों के साथ कानपुर की रक्षा का भार सौंप कर गंगा पार करके लखनऊ की सहायता को चल पड़ा। किन्तु मगरवारा और उन्नाव के विद्रोह के कारण उसे काफ़ी अर्से तक वहीं उलझे रहना पड़ा। नील ने आते ही आते कैप्टेन ब्रूस के नेतृत्व में फ़ौजी पुलिस की स्थापना की। हत्याकांडों में भाग लेने वालों को दंड देने के बहाने नील ने इस पुलिस द्वारा लोगों पर क्रूर से क्रूर अत्याचार किये।

इसी बीच ४२ वीं नम्बर देशी पलटन के विद्रोही सिपाही बिठूर में पुनः एकत्र होने लगे थे और आसपास के स्थानों पर उन्होंने आक्रमण भी आरम्भ कर दिये थे। बिठूर के सूबेदार नारायणराव अंग्रेज़ों के भक्त थे। अतः उन्हें क़ैद कर लिया गया था। वह किसी प्रकार जेल ने निकल भागे और अंग्रेज़ों

को सूचना दी कि बिठूर पर क़ब्ज़ा करने का यह सुन्दर अवसर है। उनकी शरारत से क्रोधित होकर विद्रोही सिपाहियों ने उनके परिवार को लूट लिया। उधर सूबेदार की सूचना और उनकी सहायता के बहाने नील ने कैप्टेन गार्डन के नेतृत्व में एक टुकड़ी पलटन की उस स्टीमर में, जो इलाहाबाद से कानपुर आ गया था, ६ अगस्त को बिठूर पर नदी से आक्रमण करने के लिए भेजी, किन्तु नाना साहब की कोठी पर जमा आदमियों के गोली दागते ही यह टुकड़ी भाग खड़ी हुई और स्टीमर कानपुर लौट आया। नील को ख़बर लगी कि बिठूर से ३ मील ऊपर की ओर कुछ विद्रोही सिपाही गंगा पार करना चाहते हैं। उनके इस कार्य को रोकने के लिए ८ तारीख़ को उसने फिर स्टीमर भेजा, किन्तु बिठूर पहुँचते ही उस पर फिर गोलियों की वर्षा हुई और तीन मील तक उसका पीछा करके उसे खदेड़ दिया गया। भगोड़े गार्डन ने आकर रिपोर्ट दी कि विद्रोहियों के २००० सिपाही बिठूर में हैं, अतः समझ-बूझ कर वहाँ आक्रमण करना चाहिए।

बिठूर की लड़ाई

१६ अगस्त को जनरल हैवलाक उन्नाव से लौट आया और इसी दिन उसने बिठूर पर चढ़ाई की। इस बीच में विद्रोहियों की पलटन में ४००० आदमी जमा हो गये थे। दोनों ओर से बराबर तोपें चलीं। जब तोपों से काम न चला तो दोनों ओर के सिपाही किरचें लेकर एक दूसरे पर टूट

पड़े। एक ओर से विद्रोही रिसाले ने अँग्रेजों पर आक्रमण करके युद्ध की भीषणता को बढ़ा दिया। घमासान युद्ध हुआ और दोनों ओर के अनेक योद्धा खेत रहे। यद्यपि अंग्रेज विजयी हुए परन्तु अंग्रेज़ सिपाही भी थकित होकर ऐसे छक गये कि हैवलाक को १७ तारीख़ को ही कानपुर लौटना पड़ा। किन्तु १६ तारीख़ को मेजर स्टीफ़ेन्सन ने अंग्रेजों, सिक्खों और नवसंगठित रिसाले की सहायता से बिना लड़े ही बिठूर पर क़ब्ज़ा कर लिया। इसी स्टीफ़ेन्सन ने नाना साहब के महल को फूँक दिया और मैगज़ीन में आग लगा दी। वह बिठूर से बहुत-सा माल लूट कर कानपुर लौटा। बिठूर, शिवराजपुर तथा सचेंड़ी में पुलिस थाने फिर क़ायम किये गये। इससे कुछ ज़मींदार भयभीत हुए और उनमें से कुछ ने, जैसे सचेंड़ी के राजा दुर्गाप्रसाद ने, अँग्रेजों से संधि कर लेने की इच्छा प्रकट की, परन्तु उनकी यह प्रार्थना यह कहकर अस्वीकार करदी गई कि उन पर मामला चलेगा। १६ सितम्बर को जब जनरल आउ-टरम कानपुर आया घाटमपुर,तथा भोगनीपुर में भी पुलिस थाने स्थापित हो चुके थे। बिल्हौर का भी कुछ भाग अँग्रेजों के अधिकार में था। नगर की निकटवर्ती तहसीलों में मालगुज़ारी वसूल की जा रही थी तथा रसूलाबाद, घाटमपुर और नरवल से भी थोड़ी बहुत मालगुज़ारी वसूल हो जाती थी। यमुना के किनारे का भाग अब भी बुंदेलखंड के विद्रोहियों के प्रभाव में था, तथा नार के राजा दरियावचंद, सिंकदरा के गोसाईं और अन्य कुछ ज़मींदार अकबरपुर, सिंकदरा,

डेरापुर और रसूलाबाद में बराबर विद्रोह की ज्वाला सुलगाये हुए थे। शिवराजपुर तथा सचेंड़ी के राजा भी बराबर सक्रिय थे। एक बार अकबरपुर के कुछ लोगों ने सचेंड़ी थाने पर हमला कर कुछ पुलिस वालों को मार डाला। इसी प्रकार अवध के कुछ विद्रोही सिपाहियों ने एक बार बिठूर के थाने पर भी हमला किया। १६ सितम्बर को आउटरम और हैवलाक लखनऊ रवाना हो गये। इसी समय दिल्ली के अँग्रेजों के हाथ से निकल जाने के कारण विद्रोहियों का उत्साह बढ़ गया और दोआब भर में विद्रोही सिपाहियों के झुंड फैल गये। बख्तसिंह के नेतृत्व में विद्रोहियों का एक विशाल दल कानपुर जिले में शिवराजपुर तक चढ़ आया, परन्तु १६ अक्टूबर को ब्रिगेडियर विल्सन ने अपने ६०० सैनिकों की सहायता से उन्हें पीछे हटा दिया। २६ तारीख को ग्रेटहेड और होप ग्रांट अपनी विजयी सेनाओं को लेकर कानपुर आगये। इसके बाद ही पील का नौसैनिक ब्रिगेड तथा पावेल का दस्ता भी दीनापुर के विद्रोहियों को खजुहा में पराजित करने के बाद आ पहुँचा। ६ नवम्बर को सर कालिन कैम्पबेल कानपुर पहुँचे और वहाँ से लखनऊ के सहायतार्थ चले गये। १४ तारीख को कारथ्यू के नेतृत्व में मद्रास ब्रिगेड भी कानपुर आ गई।

तात्या की तैयारी

उधर नाना साहब, जिन्होंने इस समय बिठूर से हटकर फ़तेहपुर-चौरासी (उन्नाव) की गढ़ी में अपना सदर मुक़ाम

बनाया था, चुप न बैठे थे। उन्होंने अपने सुदक्ष सेनापति वीरवर तात्या को मुरार (ग्वालियर) जाकर वहाँ के क्रांति करने को उत्सुक सिपाहियों को लेकर कानपुर पर आक्रमण करने का आदेश दिया। तात्या ने ग्वालियर से उन सिपाहियों को लाकर कालपी में अपना सदर मुक़ाम बनाया और कानपुर पर आक्रमण करने के सुअवसर की प्रतीक्षा करने लगे। जब उन्होंने यह जान लिया कि अँग्रेज़ी सेना लखनऊ की लड़ाई में बुरी तरह व्यस्त हो चुकी है, तो तात्या ने १० नवम्बर को ६००० सिपाही और १८ तोपें लेकर कानपुर पर आक्रमण करने के लिए यमुना नदी पार की।

कानपुर पर आक्रमण

मार्ग के एक गाँव में उन्होंने अपने अधिकांश शस्त्रास्त्र, गोला-बारूद और ख़ज़ाने को छिपाया तथा रक्षा के लिए कुछ सैनिक नियुक्त कर दिये। यमुना पार कर कानपुर ज़िले के भोगनीपुर, शिवली, अकबरपुर और शिवराजपुर आदि स्थानों पर तात्या ने अधिकार कर लिया। इन स्थानों में उन्होंने अपनी कुछ फ़ौज तथा तोपें रख दीं। एक सप्ताह के भीतर ही तात्या ने कानपुर के आधे भाग पर अपना अधिकार जमा लिया और २० नवम्बर से अँग्रेज़ी फ़ौज के लिए उस ओर से जाने वाली रसद तथा अन्य आवश्यक सामग्री का जाना बंद कर दिया।

यूरोपीय युद्ध-क्षेत्र में अपना जीवन बिताने वाले जे० सी० ए० विंढम इस समय कानपुर की अँग्रेज़ी सेना के अधिनायक

थे। जंगी लाट सर कालिन कैंपबेल लखनऊ जाते समय कानपुर में विंढम के पास ५०० यूरोपियन तथा कुछ सिक्ख सैनिक छोड़ गये थे, परन्तु बाद में कलकत्ते से अँग्रेजी फ़ौज की कई नई टुकड़ियों के कानपुर आ जाने से अब अँग्रेज़ी सेना काफ़ी शक्तिशाली हो गई थी। तात्या की प्रगति रोकने के लिए विंढम ने १७ तारीख़ को कालपी रोड तथा ग्रांड-ट्रंक-रोड के चौरस्ते पर अपना मोर्चा क़ायम किया। २३ तारीख़ को अवध से कुछ और विद्रोही सिपाही आकर तात्या की सेना में सम्मिलित हो गये। २४ तारीख़ को विंढम कालपी-रोड से होते हुए नहर की ओर बढ़े। भौंती के पुल पर उन्होंने अपना मोर्चा बनाया। इसी समय अकबरपुर स्थित तात्या की सेना सचेंड़ी आ गई और २५ तारीख़ को तात्या अपनी सेना सहित भौंती के पास पांडो नदी की घाटी में जा डटे।

भौंती की लड़ाई

अंग्रेज योद्धाओं ने अपनी रण-नीति के अंतर्गत यह दृढ़ धारणा जमा ली थी कि एशियाई फ़ौजों पर पहले ही पूरी शक्ति लगाकर ज़ोरदार हमला करते हुए धँसने से वे पीछे हटते-हटते अंत में भाग खड़े होते हैं। तात्या यह बात पहले ही ताड़ गये थे। अतः विंढम ने जैसे ही जोरदार धावा किया तात्या की सेना की टुकड़ी पीछे हट गई। विंढम के हाथ तात्या की तीन तोपें भी लगीं। वह समझा शत्रु हार गया और उसकी रण-सामग्री हमें मिल गई। किन्तु तात्या ने जो



श्रीमन्त पेशवा बाजीराव (द्वितीय)



वीरवर तात्या टोपे

तोपें पास के जंगल में छिपा दी थीं। उन्हें लेकर तात्या के सैनिक बढ़ती हुई विंढम की फ़ौज पर तीन तरफ़ से टूट पड़े। विंढम की फ़ौज को खदेड़ते हुए तात्या कानपुर-नगर के निकटवर्ती गावों तक पहुँच गये। दूसरे दिन शिवली तथा शिवराजपुर की सेना बुला कर तात्या ने अंग्रेज़ी सेना पर प्रबल आक्रमण कर दिया।

अंग्रेज़ी सेना की छीछालेदर

नाना की तोपों की भयंकर मार से व्याकुल होकर विंढम ने पीछे हट जाने में ही अपनी कुशलता समझी। इस प्रकार अंग्रेज़ों के मार्चे का बायाँ पार्श्व भंग हो गया, परन्तु दाहिने पार्श्व में कारथ्यू के नेतृत्व में अँग्रेज़ी सेना ने, जिसका केन्द्र-स्थल माल-रोड पर स्थित वर्तमान टेलीग्राफ़ आफ़िस में था और जिसे उस समय 'स्टेशन थियेटर' कहते थे, अभी अपना मोर्चा न छोड़ा था। तात्या की १४००० फ़ौज विंढम का पीछा कर रही थी। विंढम ने भाग कर गंगा के किनारे बनी हुई क़िलेबंदी में शरण ली। दूसरे दिन कारथ्यू को भी अपना मोर्चा छोड़ कर भागना पड़ा। अब सारी अंग्रेज़ सेना क़िलेबंदी के भीतर पहुँच गई। इस प्रकार २८ तारीख़ को अंग्रेज़ों द्वारा जीता हुआ कानपुर पुनः क्रांतिकारियों के हाथ में आ गया।

अंग्रेज़ों की पूर्ण पराजय

तात्या को पराजित अंग्रेज़ी सेना से पाँच लाख रुपया, ग्यारह हज़ार कारतूसों की पेटियाँ, पाँच सौ तम्बू आदि युद्धोपयोगी सामग्री प्राप्त हुई। कानपुर में पुनः विजय-दुंदुभि

बजी और पेशवाई भगवा पताका फहराने लगी। अंग्रेज़ी सेना के प्रसिद्ध योद्धा ब्रिगेडियर कैप्टेन मार्फ़ी, मेजर स्टरलिंग, लेफ़्टीनेंट गिबिंग्स के अतिरिक्त काफ़ी संख्या में फ़ौजी सिपाही काम में आये। इस लड़ाई के सम्बन्ध में प्रसिद्ध इतिहास-लेखक मेलीसन लिखते हैं:—"क्रांतिकारियों का नेता तात्या बेवकूफ़ न था। विंढम द्वारा काम में लाई हुई प्रथम ज़ोरदार हमला कर भयभीत बनाकर भगा देने की ब्रिटिश योद्धाओं द्वारा निश्चित रण-नीति की चाल वह पहले से ही भाँप चुका था। उसने इस कमज़ोरी से लाभ उठाया और विंढम क्या करेगा इस बात को एक खुली किताब के पृष्ठ की तरह पढ़ लिया। अतः दक्ष सेनाध्यक्ष की भाँति उस स्थिति का पूरा लाभ उठाया।" इस तरह जब तात्या ने कानपुर तथा बिठूर पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया तो नाना साहब पुनः बिठूर में आकर रहे।

सर कालिन का आगमन

उधर विंढम द्वारा खोई गई ब्रिटिश युद्ध-मर्यादा की रक्षा के लिए सेना-सहित कमांडर-इन-चीफ़ सर कालिन कैंपबेल लखनऊ से कानपुर की ओर दौड़ पड़े। सर कालिन ने लखनऊ से लाये हुए अँग्रेज़ स्त्री, बच्चों तथा बीमारों को गंगा पार अपने शिविर में छोड़ कर अपनी पैदल सेना को २९ नवम्बर के प्रातः गंगा पार कर कानपुर पहुँचने की आज्ञा दी। तात्या ने उन्हें गंगा पार रोक रखने की मोर्चेबंदियाँ कीं। इस प्रबन्ध

की देख-रेख स्वयं नाना साहब ने भी कानपुर आकर की, किंतु कैंपबेल गंगा पार करने में सफल हुआ। ग्वालियर सेना की एक टुकड़ी ऐन मौक़े पर तोपों की मार से व्याकुल हो भाग खड़ी हुई थी।

युद्ध की तैयारी

कैंपबेल की सेना ने अंग्रेज़ों की क़िलेबंदी तथा ग्रांड-ट्रङ्क-रोड के बीच के एक ऐसे स्थान पर क़ब्ज़ा कर लिया जहाँ से शहर का सामना पड़ता था। इसके बाद गंगापार पड़ा हुआ स्त्री-बच्चों का क़ाफ़िला छावनी में लाकर रक्खा गया। नगर पर तात्या का अब भी पूर्ण अधिकार था और नहर के किनारे की पंक्ति भी उन्हीं के हाथ में थी। इस समय तात्या के पास लगभग १४००० शिक्षित सैनिक और ४० तोपें थीं। इसके अतिरिक्त बहुत से विद्रोहियों के दल भी, जो नियमित सैनिक नहीं थे, उनसे आकर मिल गये थे। तात्या को अपनी विजय की पूर्ण आशा थी। कैंपबेल ने युद्ध करने के पूर्व स्त्री, बच्चों तथा युद्ध में भाग लेने के अयोग्य अन्य लोगों को पहले कानपुर से हटा देने का निश्चय किया। इसके लिए उन्हें तीन दिन तैयारी में लग गये। इस बीच दोनों पक्षों में केवल मामूली झड़पें होती रहीं। ३ दिसंबर को रात में क़ाफ़िला रवाना हुआ। जब तक क़ाफ़िला कानपुर से काफ़ी दूर न निकल जाय कैंपबेल लड़ना नहीं चाहता था। तात्या की सेना ने इस बीच काफ़ी सक्रियता दिखलाई। ४ तारीख़ को गंगा में नावों द्वारा उनके सैनिकों ने पुल में आग

लगा देने का प्रयत्न किया। ५ तारीख़ को अंग्रेजों की रक्षा-पंक्ति पर भयंकर गोलाबारी की गई। तात्या की रक्षा-पंक्ति का कमज़ोर भाग दाहिनी ओर था। यहाँ खुला मैदान था और केवल नहर ही मार्ग में एक मात्र रुकावट थी। अतः सर कालिन ने इसी भाग पर आक्रमण करने का निश्चय किया और साथ ही कालपी-रोड होकर भागने का उनका मार्ग भी काट देना उचित समझा। कैंपबेल के पास इस समय ५००० पैदल सैनिक, ६०० घुड़सवार तथा ३५ तोपें थीं। अंग्रेजी पंक्ति के मध्यभाग जनरलगंज में अंग्रेजी सेनापति ग्रेटहेड को रक्खा गया और आदेश दिया गया कि वह किसी भाँति अपने स्थान से न हटे। विंढम को क़िलेबंदी के भीतर से तात्या की पंक्ति के बायें भाग पर भयंकर गोलाबारी करने की आज्ञा दी गई जिससे उनकी सेना का ध्यान बँट जाय और दाहिने बाज़ू पर मुख्य आक्रमण सरलतापूर्वक हो सके।

कानपुर का विकट संग्राम

फलस्वरूप ६ तारीख़ को सर कालिन के अपना शिविर गंगापार हटा ले जाने के बाद विंढम की तोपों ने गोले बरसाने आरंभ कर दिये। दो घंटे की भयानक मारकाट के बाद ग्रेटहेड अपनी सेनासहित नहर की ओर बढ़ा और तात्या की पंक्ति के मध्य-भाग पर अग्नि-वर्षा आरम्भ कर दी। बाईं ओर से वालपोल, एड्रियान होप तथा इगलिस आदि ने आक्रमण कर दिया। तात्या की तोपें भी भीषण आग उगल रही

थीं। वालपोल का उद्देश्य नगर के किनारे से बढ़ कर वहाँ के समस्त मार्गों को बंद कर देना था जिससे तात्या की सेना के दाहिने भाग को कोई सहायता न भेजी जा सके। इसमें उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। ग्वालियर की टुकड़ी हार गई और उसकी कई तोपें तथा अन्य युद्ध-सामग्री अंग्रेजों के हाथ लगी। इस युद्ध में भयानक संहार हुआ। सड़कों तथा बाग़ों में लाशें बिछी पड़ी थीं। विद्रोही-दल कालपी रोड की राह से भाग निकला। अंग्रेजों के रिसाले तथा तोपख़ाने ने १४ मील तक उनका पीछा किया परन्तु वे उनको घेराने मैं असफल रहे। तात्या की सेना का मध्यभाग चारों तरफ़ से घिर गया था और कानपुर से निकलने के लिए बिठूर रोड छोड़कर और कोई मार्ग उसके सामने न रह गया था। अंग्रेज सैनिक-स्टाफ़ के जे० मैंन्सफ़ील्ड को इसका पीछा करने का भार सौंपा गया, परन्तु उसने ग़ल्ती से अपनी सारी सेना सूबेदार के तालाव पर ही रोक दी और इस प्रकार तात्या अपनी सेना तथा तोपों सहित साफ़ बच निकले। ८ तारीख़ को होप ग्रांट २७०० सैनिकों सहित तात्या का पीछा करने भेजा गया। शिवराजपुर पहुँचने पर उसे विदित हुआ कि तात्या अपनी सेना सहित गंगा पार करने की चेष्टा कर रहे हैं

सरैयाँघाट की लड़ाई

शिवराजपुर के पास गंगा के किनारे सरैयाँघाट में दोनों सेनाओं में तुमुल-संग्राम हुआ। अंत में तात्या लड़भिड़

कर बिठूर की राह अपनी सेनासहित ६ दिसम्बर को साफ़ निकल गये। कैंपबेल द्वारा उन्हें पकड़ने के लिए बिछाया गया जाल बेकार सिद्ध हुआ। नानामऊ के घाट से पार हो तात्या खेड़ा पहुँचे। नाना साहब द्वारा भेजे गये उनके प्रतिनिधि तथा इनके अधिनायक राव साहब पेशवा इनसे यहीं आकर मिले और सदैव के लिए साथी हुए। इसके बाद तात्य कालपी चले गये और मध्यभारत में अपने रण-कौशल से अंग्रेज़ों को छकाते रहे।

सरैयाँघाट की लड़ाई में तात्या की १५ तोपें अंग्रेज़ों के हाथ लगीं। इस प्रकार दो दिनों के भीतर तात्या की ३२ तोपें अंग्रेज़ों के हाथ लग गई। अंग्रेज़ों के केवल १३ व्यक्ति मारे गये तथा ८६ घायल हुए।

नाना का महल जला यागया

११ तारीख़ को होप ग्रांट बिठूर पहुँचा। वहाँ उसने नाना का महल जलवा दिया। इस महल के भीतर श्री लक्ष्मीनार जी और गणपति जी के मंदिर थे। उन्हें भी लूटा, ध्वस्त किया और जलाया गया। केवल महल जला देने से ही अंग्रेज़ों की प्रतिहिंसाग्नि शांत न हुई, किंतु उस समय उसके भीतर जितने भी नौकर-चाकर, स्त्री-पुरुष तथा बच्चे थे जिन्दा जला दिये गये। इन्हीं जलने वाले प्राणियों में 'मैना' नामक दासी थी जिसे भूल से कई इतिहासकारों ने नाना की बहन लिख कर उसके सम्बंध में न जाने कितनी कथायें लिखी हैं।

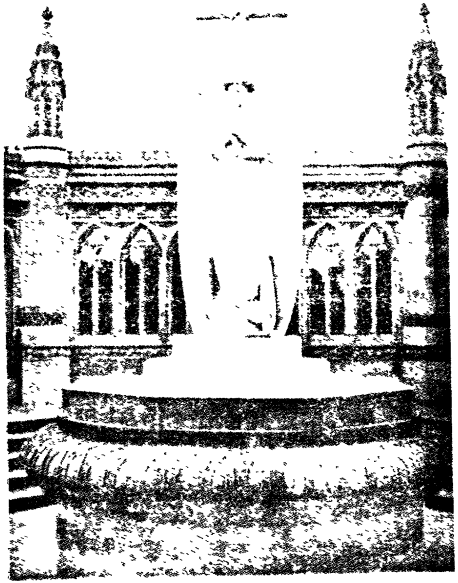
ख़ज़ाने की लूट

इसके कुछ दिनों बाद नाना का ख़ज़ाना अंग्रेजों के हाथ लगा। इस सम्बन्ध में श्री फोरबस मिचल लिखते हैं :—' ११ दिसम्बर के दिन नाना के छिपे ख़ज़ाने को पाने के लिए 'सरैयाँघाट' से हमें कूच करवा दिया गया और हमसे कहा गया कि बिठूर में नाना का ख़ज़ाना, जो एक कुएँ में छिपा है, उसमें ३० लाख रुपया नक़द, सोने के बर्तन, एक चाँदी का हाथी का हौदा, कुल लगभग एक करोड़ का सामान 'है। इसे एक हज़ार रुपया प्रति सिपाही के हिसाब से बाँटा जायगा। इसके निकालने में बड़ा कष्ट सहना पड़ा। हमारी पूरी सफ़र-मैना पलटन तारीख़ १५ से २६ तक रात-दिन काम करती रही। कानपुर शहर से लम्बी मज़बूत रस्सियाँ मँगाई गईं। प्रत्येक तीन घण्टे में बदले जाने वाले २५ सिपाही लोहे की मज़बूत मोटी जाली से कसी इन भरी हुई डलियों को कुएँ से खींचते रहे। प्रत्येक घण्टे में कुएँ के भीतर खड़े होने वाले सिपाही बदले जाते रहे। प्रत्येक बार में दो डलियाँ नीचे डाली और ऊपर खींची जाती थीं। किन्तु लगातार १२ दिन और रातों के परिश्रम का फल यह मिला कि निकले हुए ख़ज़ाने से एक पाई भी हममें से किसी को नहीं मिली। कलकत्ते से हुक्म आ गया कि समस्त सम्पत्ति सरकारी धन मानकर अंग्रेज़ी ख़ज़ाने में जमाकर दी जाय।"

स्वतंत्रता पर परतंत्रता की विजय हुई। कदाचित् फ़ौजी योग्यता या प्रबन्ध की कमी ही इसके लिए उत्तरदायी थी।

कानपुर में फिर अँग्रेज़ी शासन

अँग्रेज़ों की शासन-सत्ता पुनः कानपुर में स्थापित हुई। सैनिक पुलिस के प्रधान कैप्टेन ब्रूस से नागरिक प्रबन्ध का भार १ दिसम्बर को ही मि० शेरार ने ले लिया था। यह शेरार पहले फ़तेहपुर का कलेक्टर था। पर विद्रोहाग्नि भड़कने और वहाँ पर विद्रोहियों का अधिकार हो जाने पर वह भाग खड़ा हुआ था। बाँदा में जाकर उसने शरण ली थी और फिर वहाँ से इलाहाबाद पहुँचने पर उसे कानपुर जाने का हुक्म मिला था। हैवलाक की फ़ौज के साथ वह कानपुर आया था। इधर १८ दिसम्बर को वालपोल एक टुकड़ी लेकर कानपुर ज़िले के भीतर से होते हुए और मार्ग में धौंस जमाते हुए मैनपुरी की ओर रवाना हुआ। कालपी-रोड से होता हुआ वह अकबरपुर पहुँचा और वहाँ उसने फिर तहसील तथा थाना क़ायम किये। रसूलाबाद तथा डेरापुर में भी यही किया गया। घाटमपुर में मि० ग्रिफ़िथ्स ने यही किया और सिरसौल में पुलिस थाना की स्थापना की गई। भोगनीपुर और सिंकदरा अब भी कालपी-स्थित विद्रोहियों के प्रभाव में थे, किन्तु अकबरपुर में कर्नल मैक्सवेल के नेतृत्व में एक गश्ती अँग्रेज सैनिक दस्ता नियुक्त होने के कारण वहाँ की शांति भंग होने से बची रही। जनवरी में सर कालिन कैंपवेल सेना सहित फ़तेहगढ़ रवाना हुआ। इसी समय ज़िले के उत्तरी भाग में शिवराजपुर तथा बिल्हौर में थाने पुनः स्थापित हो सके। परन्तु २३ मई सन्



मेमोरियल वेल (अब यह उखाड़ कर अन्यत्र ले जाया गया है) (पृष्ठ १३८)



झाँसी की रानी वीरांगना लक्ष्मीबाई

१८५८ को जब तक कालपी का पतन न हो गया ज़िले के दक्षिणी भाग में पूर्ण शान्ति स्थापित नहीं हो सकी।

छुटपुट आक्रमण

किन्तु अब भी विद्रोहियों के झुंड जब तब ज़िले में घुस आते थे। इनमें अंतिम आक्रमण सन् १८५८ के अंतिम भाग में शाहज़ादा फ़ीरोज़शाह का हुआ। परन्तु इन आक्रमणों का केवल क्षणिक महत्व था। सर ह्यू रोज़ द्वारा कालपी पर अधिकार हो जाने के बाद से शासन-सम्बन्धी साधारण कार्य निर्बाध रूप से चलने लगा। इन छोटी घटनाओं में दो का उल्लेख किया जा सकता है। सन् १८५८ के जनवरी में काथ्यू सेनासहित फ़तेहपुर से जहानाबाद, भोगनीपुर तथा सिंकदरा होता हुआ कानपुर पहुँचा। मार्ग में मिलने वाले विद्रोहियों को उसने यमुना-पार खदेड़ दिया। दूसरी घटना २६ मार्च को हुई। हमीरपुर से विद्रोहियों का एक दल घाटमपुर में घुस आया और उसे जला दिया, परन्तु अन्त में उसे भगा दिया गया।

जनता पर अत्याचार

कानपुर की जनता पर नील के अत्याचारों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। बाद में कैप्टेन ब्रूस तथा कानपुर के नये कलेक्टर मि० शेरार ने तथाकथित अपराधियों के बहाने लोगों पर तरह-तरह के अत्याचार किये। शहर के निवासियों पर सामूहिक जुर्माना किया गया। इस जुर्माने में प्राप्त धन

से ही मेमोरियल बाग़ का निर्माण हुआ। विद्रोह तथा विभिन्न हत्याकांडों की परिस्थितियों तथा कारणों की छान-बीन करने के लिए एक जाँच-कमेटी भी बैठी परन्तु विशेष गवाह न मिल सकने के कारण कोई संतोषजनक परिणाम न निकला। यद्यपि इन सब बातों का हाल बहुत से लोगों को मालूम था, परन्तु लोगों ने गवाहियाँ देकर अपने देशवासियों को फँसाना उचित नहीं समझा।

विद्रोहियों की संपत्ति ज़ब्त

विद्रोह में नाना साहब का साथ देने वाले लोगों की संपत्ति एवं जायदादें ज़ब्त कर ली गईं। शिवराजपुर, सचेंड़ी बिनौर और नार के राजाओं का समस्त इलाक़ा ज़ब्त कर लिया गया। इसके अतिरिक्त जिन अन्य लोगों की ज़मींदारियाँ ज़ब्त हुईं उनमें ६१ गावँ मुसल्लम तथा ७६ आंशिक रूप से थे। इस प्रकार अब अंग्रेज़ों को उन लोगों में, जिन्होंने उनके प्रति राजभक्ति दिखलाई थी, पुरस्कार बाँटने के लिए काफ़ी इलाक़ा मिल गया।

परिशिष्ट १—

राजभक्ति का पुरस्कार

ग़दर के समय जिन लोगों ने अंगरेज़ों की किसी प्रकार सहायता की थी उनको समय आने पर ज़मींदारी और नक़द रुपये के रूप में परस्कार दिया गया। इन पुरस्कार पाने वालों

में निम्न लोगों के नाम प्रमुख हैं—

(१) नाना नारायणराव बाजीराव के नायब सूबेदार और रामचन्द्र पंत के बड़े लड़के थे। १८५७ ग़दर में नाना साहब ने इन्हें क़ैद कर लिया, क्योंकि यह अंग्रेज़ों के भक्त थे। इन्हें ग़दर के बाद बिठूर की बाजीराव वाली जागीर ७ रुपया सालाना लगान पर उनके जीवन भर के लिए तथा बिनौर की ज़मींदारी मिली। इनके तीन पुत्र हुए, ईसदेवराव अन्ना, पुरुषोत्तमराव तात्या तथा रमचन्द्रराव बवा। इसके पहले बिठूर और बिनौर सचेंड़ी के राजा दुर्गाप्रसाद के अधिकार में थे।

(२) पं० राय किशननारायण काश्मीरी ब्राह्मण पं० आत्माराम गुर्टू के पुत्र थे। इनके पूर्वजों ने लखनऊ से आकर कानपुर में निवास किया था। पं० किशननारायण पहले परगना ललितपुर में तहसीलदार थे, फिर कानपुर में अतिरिक्त असिस्टेंट कमिश्नर हुए में। ग़दर ख़ैरख्वाही के लिए इन्हें १०० रुपये की यावज्जीवन पेन्शन तथा ५००० की मालगुज़ारी की ज़मींदारी मिली। इनकी ज़मींदारी शिवराजपुर परगने में नेवादा जीतराय, जाजमऊ परगने में रामपुर, भीमसेन तथा बिधनू में थी। नेवादा जीतराय पहले शिवराजपुर के राजा सतीप्रसाद का, बिधनू स्वामीसिंह का और रामपुर राजा दुर्गाप्रसाद का था। सन् १८७२ में बनारस में संन्यासी होकर इनका देहान्त हुआ। इनके लड़के राय इन्द्रनारायण थे जिनके राय ब्रजनारायण व इक़बालनारायण गुर्टू हुए।

(३) ईश्वरीप्रसाद उर्फ़ ईसामल खत्री नारायणदास के पुत्र थे। नाना साहब तथा बलवंतराव व बयाबाई के बीच विरासत के सम्बन्ध में जो मुक़दमा चला था उसमें उन्होंने नाना साहब के विरुद्ध सहायता की थी। ग़दर होने पर नाना साहब ने कानपुर में ईसामल के मकान पर पहरा बैठा दिया और बहुत-सा जुर्माना वसूल किया। ग़दर के बाद पुरस्कार में इन्हें रायबहादुरी की उपाधि तथा ६ गावँ जागीर में मिले जिनके नाम ये हैं:—बारामहाल मदनसिंह, सचैंड़ी, बवायन जमाल खाँ, जेवरा, क़ाबिलपुर, सरगाँव तथा चन्दनपुर।

(४) रेवतीराम तिवारी—इनके पिता का नाम परमसुख था। रेवतीरामजी कलकत्ते में महाजनी का काम करते थे। ग़दर में सरकारी फ़ौज को रसद आदि का अच्छा प्रबन्ध करने के बदले मण्डलवाँ, काँधी और महेरा ये तीन गावँ जागीर में मिले। इनके पुत्र पं० प्रयागनारायण ज़िले के ख़ज़ांची बनाये गये। सन् १८५६ में ५२ वर्ष की उम्र में रेवतीराम जी का बैकुंठवास हो गया। संवत् १६१४ में इन्होंने पटकापुर में मन्दिर बनवाया था। महाराज प्रयागनारायण का बनवाया हुआ मन्दिर तो प्रसिद्ध ही है।

(५) पं० अमरनाथ काश्मीरी ब्राह्मण थे और फ़तेहपुर ज़िले में तहसीलदार थे। ग़दर में इन्होंने फ़ौज की रसद का अच्छा प्रबन्ध किया। उसके बदले में इन्हें राधन व रवान गावँ जागीर में मिले।

(६) पं० गोपीनाथ पं० अमरनाथ के सगे भाई थे। इन्हें

भी ग़दर में राजभक्ति के लिए मानपुर, बरुआ .खुर्द व रामपुर की जागीर मिली।

(७) ईश्वरीप्रसाद दुबे बरॉजपुर निवासी ज़मींदार व महाजन थे। ग़दर में सहायता देने के लिए उन्हें शिवराजपुर का तहसीलदार बनाया गया और राजपुर व छतरपुर की जागीर मिली।

(८) बिहारीलाल शुक्ल वल्द झाऊलाल डुँड़वा-निवासी को मि० जे० चैंडलर को, जो कानपुर के अंग्रेज़ व्यापारी पीटर मैक्सवेल के मकनपुर में गुमाश्ता थे, बचाने के उपलक्ष में हसनपुर, थनवापुर (भोगनीपुर में) व बैकुंठपुर (बिल्हौर में) की जागीर मिली।

(९ बैरी (शिवराजपुर) के ज़मींदार हरलाल को भी मि० चैंडलर की जान बचाने के लिए शिवराजपुर परगने में इन्दलपुर व पुरवा बला के मौज़े की जागीर मिली जो पहले राजा सतीप्रसाद की ज़मींदारी में थे।

(१०) बैरी के ही दूसरे ज़मींदार चिरंजीलाल वल्द रामदीन को भी चैंडलर की रक्षा में सहायता देने के बदले शिवराजपुर परगने में काकूपुर-रब्बन, ख़ानपुर, नेवादा नहगी, दरबानपुर, जगन्नपुर पीरा, दोदेपुर के गावँ मिले। ये भी राजा सतीप्रसाद के थे।

(११) बिबियापुर (बिल्हौर) के ज़मींदार देवीदीन कुर्मी वल्द चैन को इसी ऊपर की सेवा में खरगपुर (शिवराजपुर) का गावँ मिला। यह सतीप्रसाद का गावँ था।

(१२) शेख़ झब्बू व तमीज़द्दीन मकनपुर वालों को भी उसी काम लिए के मकनपुर, अरौल व मालीकुइं (बिल्हौर में) जागीर मिली।

(१३) छेदा व आज़म मकनपुर वालों को भी उसी सेवा के लिए रसूलाबाद में समायूँ व शंकरपुर में जागीर मिली। ये सतीप्रसाद के गावँ थे।

(१४) बरिंडा (बिल्हौर) के गयाप्रसाद वल्द मिट्ठीलाल को कुछ नक़द रुपया मिला।

(१५) ख़ानपुर के ज़मींदार ठाकुर किन्नरसिंह गौर ग़दर के बाद राजभक्ति के उपलक्ष्य में तहसीलदार नियुक्त हुए तथा उन्हें आनरेरी डिप्टी मैजिस्ट्रेट का पद प्रदान किया गया। इन्हें बैरी दरियाव (बिठूर), भवपुर, जगदीशपुर, सिकरसी व ढक्का-पुरवा (रसूलाबाद) के गावँ मिले। ये गावं भी राजा सती-प्रसाद के ही थे।

(१६) बरीपाल (घाटमपुर) के ज़मींदार बिहारीसिंह कुर्मी ने एक मेम को हमीरपुर से लाकर कानपुर पहुँचा दिया था। इसके बदले में उन्हें घाटमपुर की तहसील-दारी का पद और बैरी सवाई (बिठूर) की ज़मींदारी मिली।

(१७) मिर्ज़ा इनायतहुसेन अमरौधा वाले ने, जो शेख़ मुहम्मद अली कंबोह लखनऊ वाले का क़ारिन्दा था, ग़दर के समय में अच्छी मुख़बिरी की थी। उसे बिहारी टप्पा नीलम (भोगनीपुर) की ज़मींदारी मिली।

(१८) अकबरपुर के थानेदार हिन्दूसिंह को उट्टा (रसूला-

बाद) मिला।

(१६) मुहसिनपुर-निवासी बहादुरअली रिसालदार को पनकी, बहादुरनगर व नार .खुर्द मिले।

(२०) मुहार (इटावा) के कुँवर चित्तरसिंह को रसूलाबाद में ५ गाँव व डेरापुर में १ गाँव मिले।

(२१) बिशुनगढ़ (फ़र्रुख़ाबाद) के गोविन्दप्रसाद सूबेदार को ५ गाँव मिले।

(२२) मैनपुरी-निवासी रिसालदार रोशनसिंह को साढ़-सलेमपुर में फुफुवार व अकबरपुर में अन्दौरा मिले।

(२३) शिवलाल सूबेदार को भोगनीपुर में शहाबपुर, शाहपुर व सतपहरा .खुर्द मिले।

(२४) हुलासी पांडे नवाबगंज को साढ़-सलेमपुर में बौसर व जाजमऊ में मनगवाँ मिले।

(२५) ठाकुर लक्ष्मणसिंह (मैनपुरी) को भोगनीपुर में तेउंगा व जाजमऊ में घोसरेमऊ मिले।

(२६) सीसामऊ-निवासी सूबेदार दीनमुहम्मद को सीसामऊ में मुहाल मन्नासिंह मिला।

(२७) सूबेदार कालकासिंह को पनकी-गंगागंज मिला।

(२८) चौधरी जैचन्दसिंह मानपुर (रसूलाबाद) को रसूलाबाद में मानपुर-गजैल, साढ़-सलेमपुर में धौंवे, सिकंदरा में जगन्नाथपुर व अलियापुर मिले।

(२६) कानपुर शहर में रहने वाले जहूरी नामक मेहतर को भोगनीपुर में बरौर मिला।

(३०) कुरसवाँ के भगवन्तसिंह तिवारी के पुत्र बलदेवसहाय को ख़िलअत और उनके छोटे पुत्र बालकराम को तहसीलदारी का पद मिला तथा उन्हें आर्म्स ऐक्ट से बरी किया गया।

इन लोगों के अतिरिक्त गोसरा (जाजमऊ) के सूबेदार उदयराज शुक्ल, बिल्हौर के मुहम्मद इस्माइल, शिवली के जमादार सुबहान अली, रामपुर शिवली के काशीराम जमादार, मैनपुरी के गुलाबसिंह, व मेघासिंह, देवपुर (मैनपुरी) वाले कुँवर सरदारसिंह, चौबेपुर के माखनलाल पांडे, नवाबगंज के लाला गुरुदीन श्रीवास्तव तथा कानपुर के सैयद औलाद अली आदि को भी गावं अथवा नक़द रुपये इनाम में मिले।

परिशिष्ट २:—

नानकचन्द की डायरी

सत्तावनी क्रान्ति के इतिहास के अध्ययन के लिए हमें अंग्रेज़ लेखकों की कृतियों पर ही निर्भर होना पड़ता है। हमारे इस "प्रथम स्वातन्त्र्य-युद्ध" का इतिहास हमें विदेशी शासकों और विरोधियों की ही पुस्तकों से पढ़ना पड़े यह महान् दुर्भाग्य का विषय है। सरकारी काग़ज-पत्रों की सहायता से ब्रिटिश सरकार की अवधानता में सर जार्ज फ़ारेस्ट ने इस तथाकथित 'ग़दर' के इतिहास का संकलन किया, जिसमें १८५७-५८ की घटनाओं को तोड़-मरोड़ कर रक्खा गया और



फ़्रीमेसन लाज (पृष्ठ १६८)



खेड़पति बाबा का मंदिर, कुरसवाँ (पृष्ठ १७४)

हमारे वन्दनीय क्रान्तिकारी नेताओं के चरित्रों को जानबूझ कर काले रंग से पोता गया। फ़ारेस्ट के अतिरिक्त ट्रेवीलियन, शेफ़र्ड, शेरार, टाम्सन आदि लेखकों ने भी कानपुर की घटनाओं पर बहुत कुछ लिखा है। पुस्तक के अन्त में दी हुई "सहायक ग्रंथों" की तालिका में इनके ग्रंथों का पूर्ण परिचय

। हुआ है। इन दो वर्षों की रोमाञ्चकारी घटनाएं कुछ न कुछ इनकी आँखों के सामने से गुज़री थीं और इन्होंने सैनिक तथा अन्य पदाधिकारियों की हैसियत से विद्रोह के दमन में भाग लिया था। पर इनकी आँखों पर विदेशी चश्मा चढ़ा हुआ था। प्रत्येक भारतीय को ये गुंडा, बदमाश, हत्यारा और दानव समझते थे। सदसद्विवेक को ये क्रोध और आवेश में गवाँ बैठे थे। अपनी जाति-द्वारा की गई बर्बरता को ये अत्यावश्यक और उचित मानते थे, पर दूसरी ओर की छोटी-सी-छोटी घटना को ये अतिरंजित रूप देते थे। ऐसी स्थिति में यह बात निर्विवाद कही जा सकती है कि सत्तावनी क्रान्ति का निष्पक्ष इतिहास कभी न लिखा जा सकेगा। १५ अगस्त सन् १९४७ के पूर्व ऐसा निष्पक्ष इतिहास छप ही नहीं सकता था। यद्यपि इन दो ऐतिहासिक वर्षों की घटनाओं को अपनी आँखों से देखने वाले अनेक पुरुष बहुत दिनों तक जीवित रहे और डर-डर कर चुपके से उनका हाल बताते भी रहे, पर किसी ने प्रामाणिक रूप से इन मौखिक कथाओं के संकलन का भी कदाचित् उद्योग नहीं किया। भारतीय दृष्टिकोण से अभी तक हमारे इतिहास के इस महत्वपूर्ण अध्याय पर

शास्त्रीय पद्धति से शोध का कार्य हुआ ही नहीं।

कानपुर की घटनाओं के सम्बन्ध में एक कानपुर के लेखक ने अवश्य अपनी निजी डायरी उस समय अंग्रेज़ अफ़सरों के सम्मुख उपस्थित की जब विद्रोह दबाया जा चुका था और उसमें सम्मिलित होने के अपराध में अनेक व्यक्तियों पर मुक़दमे चल रहे थे। इस लेखक का नाम नानकचन्द था। यह कानपुर के तत्कालीन प्रसिद्ध बैंकर और ठेकेदार लाला ईश्वरीप्रसाद उर्फ़ ईसामल के मुख्तार-आम थे। ईश्वरीप्रसाद लाला नारायणदास खत्री के पुत्र थे। लाला नारायणदास बहुत काल ईस्ट इंडिया कम्पनी की फ़ौज में कमसरियट के चौधरी रहे और उसमें प्रचुर सम्पत्ति अर्जित कर कानपुर के प्रमुख रईस गिने जाने लगे। लाला ईश्वरीप्रसाद के समस्त कारबार के सम्बन्ध में अदालती काम-काज लाला नानकचन्द करते थे। जब "सिपाही-विद्रोह" के प्रारम्भ होने की अफ़वाहें कानपुर में फैलीं और यहाँ की हिन्दुस्तानी सेना में भी उसका प्रभाव पड़ा, तो कहते हैं कि राजभक्त नानकचन्द ने दैनिक घटनाओं को उर्दू में टीपना शुरू किया। उनकी डायरी १५ मई सन् १८५७ (जेठ सुदी ६, शुक्रवार, संवत् १९१४) से प्रारम्भ होकर सितंबर १८५८ तक चलती है। यह डायरी दो अध्यायों में विभक्त है। पहले अध्याय में कानपुर के विद्रोह का या तो आँखों देखा वर्णन है या उनके विशेष संवाददाताओं का बताया हुआ हाल है। विद्रोह के दिनों में उनको अंग्रेज़-भक्त होने के कारण पहले अपने मकान में, फिर अपने एक मि

लालताप्रसाद कायस्थ के घर में, और उसके बाद लाला ईश्वरी-प्रसाद के मकान में छिपना पड़ा। पर वहाँ भी अपने को अरक्षित जान ये ११ जून को जाजमऊ में कामताप्रसाद पांडे के घर में जा छिपे। वहीं लाला नारायणदास के भाई (शायद लाला ज्योतीप्रसाद) भी थे। दो दिन बाद वहाँ से भी भागकर गंगा पार कर ये उन्नाव ज़िले के बदरका। गाँव चले गये और इनके संवाददाता जो ख़बरें इन्हें देते थे उन्हें ये अपनी डायरी में प्रतिदिन नोट कर लेते थे।

नानकचन्द की डायरी को "सिपाही विद्रोह का इतिहास" के प्रसिद्ध लेखक सर जान के अविश्वास की दृष्टि से देखते हैं। उसमें घटनाओं के सम्बन्ध में कई भद्दी भूलें हैं और उनका दृष्टिकोण अंग्रेज़ी सरकार के प्रति इतना अधिक पक्षपातपूर्ण और नाना साहब तथा उनके साथियों के प्रति इतना अधिक अन्यायपूर्ण है कि किसी भी निष्पक्ष पाठक को उनकी सत्यवादिता पर विश्वास होना कठिन है। नाना आदि को वे बदमाश, बाग़ी, गुंडा आदि शब्दों से स्मरण करते हैं क्योंकि उनके और उनके मालिक लाला ईश्वरीप्रसाद के उपास्य देवता अंग्रेज थे। सर जान के ने तभी तो उनकी डायरी पर अधिक विश्वास नहीं किया है। वे अन्त में सरकार की ओर से बाक़ायदा मुख़बिर भी नियुक्त हुए और विद्रोहियों पर चलाये गये मुक़दमों के लिए उन्होंने सबूत भी जमा किये। इन मुक़दमों में उनकी डायरी भी सबूत की ओर से पेश की गई। ऐसी दशा में यह स्पष्ट है कि नानकचन्द की डायरी

को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। उनके मालिक लाला ईश्वरीप्रसाद को सरकार की ओर से जागीर व इनाम भी मिले जिसकी चर्चा परिशिष्ट १ में ऊपर हो चुकी है। फिर भी ट्रेवीलियन ने अपने ग्रन्थ "कानपुर" में नानकचन्द की डायरी से अनेक उद्धरण दिये हैं।

यह डायरी मूल रूप में कभी नहीं छपी। पर दिसंबर सन् १९२७ के "जर्नल आफ़ दि यूनाइटेड प्राविन्सेज़ हिस्टारिकल सोसाइटी" में फ़ैज़ाबाद के श्री काशीनाथ ने इसके प्रथम अध्याय का प्रायः पूर्ण अनुवाद तथा दूसरे अध्याय का अत्यन्त संक्षिप्त परिचय दिया है। यह अनुवाद उस पत्रिका के ५० पृष्ठों में छपा है।

नानकचन्द की सभी बातें तो विश्वसनीय नहीं हैं, पर उनकी डायरी में उस समय के न जाने कितने व्यक्तियों के नाम आये हैं। ये नाम अंग्रेज़ अफ़सरों, व्यापारियों, तथा हिन्दुस्तानी रईसों, अधिकारियों, व्यवसायियों, ज़मीन्दारों, निम्न श्रेणी के नौकरों तथा अन्य व्यक्तियों के हैं। उस नाज़ुक समय में किस प्रकार कानपुर के अधिकारियों और नागरिकों में खलबली मची हुई थी, अंग्रेज़ों के भाग्य पर किस प्रकार शनि की दृष्टि लगी थी, ज़िले के ज़मीन्दारों और साहसी पुरुषों का उत्साह किस प्रकार उमड़ रहा था और साथ ही साथ कुछ व्यवसायी उपद्रवकारियों को कैसा स्वर्ण-सुयोग प्राप्त हो रहा था—इन सब तथा अन्य विषयों पर नानकचन्द की डायरी बहुत प्रकाश डालती है। हिन्दू-मुसलिम एकता का

चित्र हमारे सामने आता है और अंग्रेज़ी सरकार को उखाड़ फेंकने का उत्साह लोगों के हृदयों में हिलोरें मारता दिखाई पड़ता है। स्वयं नानकचन्द स्वीकार करते हैं कि पहला वार एक अंग्रेज़ ही ने किया। उसने एक सिपाही को गोली से मार डाला। उस पर सैनक नियम से जाँच हुई जिसका निर्णय यह हुआ कि गोली चलाने वाला अंग्रेज शराब के नशे में चूर था और धोखे से उसने गोली चला दी। सिपाहियों ने उत्तर दिया कि उनकी बन्दूक़ें भी धोखे में गोली उगल सकती हैं! उस समय के कानपुर के अंग्रेज अधिकारियों, हिलर्स्डन कलेक्टर तथा जनरल ह्वीलर, ने नाना साहब पर शुरू ही से पूरा विश्वास किया। नाना का व्यवहार ही अंग्रेज़ों के प्रति सदा ऐसा सदाशयतापूर्ण रहा था कि कोई उन्हें अंग्रेजों का शत्रु स्वप्न में भी मानने को तैयार न था। पर हमारे मुन्शी नानकचन्द इन सब से अपने को कहीं सयाना मानते हैं और डायरी के शुरू ही से यही रट लगाते हैं कि नाना बदमाश है, मक्कार है, अंग्रेज़ों का जानी दुश्मन है, और अंग्रेज़ बड़े भलेमानुस और भोलेभाले हैं जो इस नाना के ऊपर भरोसा करते हैं। मैसेकरघाट की हत्याओं की ज़िम्मेदारी किसी पक्षपात रहित इतिहासकार ने नाना के मत्थे नहीं मढ़ी, पर हमारे डायरी-लेखक तो दुर्घटनाओं के पूर्व ही उनकी भयंकरता की अग्रसूचना देते दिखाई पड़ते हैं। नाना साहब के शिविर की अनेक गुह्य मंत्रणाओं और योजनाओं की खबरें भी मुन्शी जी को न जाने किस गुप्त माध्यम से बात की

बात में उपलब्ध हो जाती हैं। बदरका में छिपे हुए बैठव उन्हें चारों ओर की ख़बरें मिलती जाती हैं। उनके संवा दाताओं का जाल बहुत चतुरता और दक्षता से फैला हु जान पड़ता है। बिठूर और असनी की घटनाओं के समाच भी उन्हें बैठे-बैठे न जाने किस प्रकार घण्टों में ही मिल जा हैं। इन सब संदिग्धताओं के आधार पर हमारा तो य निश्चित मत है कि नानकचन्द की डायरी दैनिक घटना की सत्यतापूर्ण सारिणी नहीं है, वरन् अपने अंग्रेज़ देवता को प्रसन्न करने, उनसे वरदान लेने, तथा अपने विरोधी औ पूर्व प्रतिद्वन्द्वी (मुक़दमेबाज़ी तथा अन्य मामलों में) नान साहब को नीचा दिखाने की भावना से मुंशी जी ने घटना आदि को अतिरंजित और विकृत रूप में गढ़ लिया। नान चन्द की डायरी जाली है और के साहब ने इसे ठीक तरह भाँप लिया था। फिर भी जैसा हम ऊपर कह चुके हैं इ जाली दस्तावेज़ में भी ऐतिहासिक महत्त्व की बहुत कुछ साम विद्यमान है।

आठवाँ अध्याय

१८५७ के बाद की डायरी

सन् १८५७ के ग़दर की समाप्ति के साथ ही साथ भारतवर्ष में कंपनी के राज्य का भी अन्त हो गया और ब्रिटिश सरकार ने यहाँ का शासन सीधे अपने हाथ में ले लिया। सन् १८६१ में नई कचहरी की इमारतें सरसैयाघाट के पास बन कर तैयार हो गईं और २५ मार्च से यहाँ कचहरी लगने लगी। ग़दर के समय कुरसवाँ के पास जिस कुएँ में अंग्रेज़ स्त्री-बच्चों की लाशें फेंकी गई थीं उसके चारों ओर मेमोरियल बाग़ तैयार किया गया। ग़दर के समय गोरा अस्पताल के पास जो मोर्चा बनाया गया था वहाँ सन् १८६२ में एक गिर्जाघर की नींव रक्खी गई जिससे इस स्थान पर मारे जाने वाले अंग्रेज़ों की आत्माओं को ईश्वर-प्रार्थना होने से शांति मिल

सके'। सन् १८६३ में यह गिर्जाघर बन कर तैयार हो गया। इसे 'आलसोल्स मेमोरियल चर्च' कहते हैं।।

पांडुरंगराव को फाँसी

१८६२ की सबसे महत्वपूर्ण घटना पांडुरंगराव की फाँसी थी। पांडुरंगराव नाना साहब के छोटे भाई सदाशिवराव के दत्तक पुत्र थे। इन्हें जम्मू में गिरफ्तार किया गया। उन पर विद्रोह तथा कई लोगों की हत्या का अपराध लगाया गया। शिवराजपुर के महसूल-कलेक्टर मि० जोजेफ़ कार्टर तथा उनकी गर्भिणी पत्नी, चौबेपुर के कप्तान स्टैपुल्स, लेफ़्टीनेंट बोल्टन, लेफ़्टीनेंट मार्टन तथा फ़तेहगढ़ से जो ३५ अंग्रेज़ भाग कर बिठूर आये थे और गुरदीन व ३ स्त्री व ३ पुरुषों के वध करने का उन पर अभियोग लगाया गया था। गुरदीन पहले बाजीराव का नौकर था। नाना साहब से उसकी लड़ाई हुई और वह निकाल दिया गया। फिर उसने बाजीराव की रानियों के यहाँ नौकरी कर ली। जब विधवा रानियों व नाना साहब की मुक़दमेबाज़ी हुई उसमें गुरदीन रानियों का पैरोकार हो गया। असेसरों ने पांडुरंगराव को एक साधारण विद्रोही माना न कि विद्रोहियों का सरदार। मि० फ्रांसिस वायन पियर्सन सेशंस जज की अदालत से उन्हें फाँसी तथा उनकी सारी जायदाद ज़ब्त कर लेने की आज्ञा हुई। २१ अगस्त को पांडुरंगराव को फाँसी दे दी गई।

२२ नवंबर १८६१ को कानपुर में प्रथम बार म्यूनिसिपल कमेटी नियुक्त हुई। सन् १८६२ में कानपुर में पहला सूती मिल



महाराजघाट, बिठूर

(पृष्ठ ३३४)



टोपे-परिवार का पैतृक निवास-स्थान, बिठूर

एलगिन मिल स्थापित हुआ। इसी वर्ष गंगा पर पहले पहल पीपों का पुल बना। रेलवे का पुराना स्टेशन तैयार हो चुका था और इलाहाबाद से दिल्ली तक ट्रेनें भी इसी वर्ष चलने लगी। १८६५ जनवरी में पुनः जन-गणना हुई। इसी साल ३ अगस्त को स्टेशन पर पूर्व व पश्चिम की ट्रेनें लड़ जाने से पश्चिम वाली ट्रेन उलट गई। इस दुर्घटना में खानपुर के ठाकुर किन्नरसिंह तथा उनके दो नौकर मर गये और कप्तान हैमिल्टन घायल हुए। रेलवे को क्षति-पूर्ति में बहुत सा रुपया देना पड़ा। १८६६ को ११ वीं जून को आगरा हाईकोर्ट की स्थापना हुई। वाल्टर मार्गन प्रथम चीफ़ जस्टिस हुए। १८६८ से इसकी एक बैठक इलाहाबाद में भी होने लगी। १८६९ से यह हाईकोर्ट स्थायी रूप से इलाहाबाद में ही चला गया। कानपुर इसी हाईकोर्ट के अधीन था।

कलेक्टर मि० विलियम स्टर्लिङ्ग हैलसो ने कलेक्टरगंज बसाया। कुँवार सुदी १० संवत् १९२३ तदनुसार १९ अक्टूबर सन् १८६६ को इसका उद्घाटन हुआ। सन् १८६८ में काशीपुर (परगना शिवराजपुर) का एक ब्राह्मण उम्मेद नामक सागर में मर गया। उसकी स्त्री रहसी सती हो गई। इस पर ५९ आदमी सेशन सिपुर्द हुए। उन्हें फाँसी का हुक्म हुआ पर हाईकोर्ट ने सबको बरी कर दिया। इसी साल से सरसैयाघाट पर स्त्रियों तथा पुरुषों को अलग अलग घाटों पर नहाने की आज्ञा दी गई।

सन् १८६९में लेफ्टीनेंट गवर्नर सर विलियम म्योर ने

जिला स्कूल की नींव रखी। इस कार्य के लिए पं० अमरनाथ काश्मीरी ब्राह्मण, जो ग़दर के समय फ़तेहपुर में तहसीलदार थे, सन् १८६५ में एक वसीयत द्वारा अपनी सारी सम्पति सरकार को इसलिए दे गये थे कि उसे शिक्षा तथा अन्य पुण्य कार्य्यों में ख़र्च किया जाय। इसी निधि से उक्त स्कूल तथा शिवराजपुर में एक अस्पताल खोला गया।

गंगा पर लोहे का पुल बना

इसी वर्ष गंगा पर रेल, पैदल व गाड़ी आदि के आने जाने के लिए लोहे व लकड़ी का पुल बनना आरंभ हुआ। सन् १८७५ में यह पुल बनकर तैयार हो गया और इसी वर्ष १४ जुलाई को यातायात के लिए खुल गया। ड्यूक आफ़ एडिनबरा सन् १८७० की १७ फ़रवरी को कानपुर आये और यहाँ से लखनऊ गये। १८७२ में पुनः जन-गणना हुई। सन् १८७३ में कानपुर नगर तथा विशेष रूप से देहात में शीतला का भयंकर प्रकोप हुआ। मि० गैविन जोन्स ने म्योर मिल्स कंपनी की स्थापना की। इसके प्रथम डाइरेक्टों में श्री गैविन जोन्स, जी० ई० हावर्ड, एमरी जेम्स चर्च, लाला शिवप्रसाद ख़ज़ाञ्ची, पं० बलदेवप्रसाद चौबे ज़मींदार व महाजन तथा पं० लालमणि मिश्र ज़मींदार व महाजन थे।

नक़ली नाना साहब की गिरफ़्तारी

नाना साहब की गिरफ़्तारी के लिए २७ मार्च सन् १८५८ को सरकारी गज़ट में एक घोषणा प्रकाशित हुई थी जिसमें उनको जीवित पकड़ कर लाने वाले को १ लाख का इनाम

देने की बात कही गई थी। तथा यह भी कहा गया था कि यदि कोई विद्रोही सिपाही उन्हें पकड़ कर लायेगा तो उसका अपराध क्षमा कर दिया जायगा। २१ अक्टूबर १८७४ को महाराज सिंधिया के पास एक पत्र कथित नाना साहब की ओर से यह आया कि मैं कई वर्ष जंगलों में भटकने के बाद अब हिन्दुस्तान में मरने के लिए आया हूँ और आपकी शरण हूँ। महाराजा सिंधिया ने २०० सवारों के साथ उस जगह पर जाकर जहाँ से वह पत्र आया था इस कथित नाना साहब को पकड़कर पोलिटिकल एजेंट कर्नल आसबर्न के सिपुर्द कर दिया। कर्नल आसबर्न के समक्ष इस पकड़े हुए व्यक्ति ने जो बयान दिया उसमें उसने कहा कि ५ वर्ष पहले मैं आसाम चला गया था। वहाँ गौहाटी में एक फ़क़ीर के वेष में मैं एक अंग्रेज के अहाते में रहा और वहाँ से बरेली व ग्वालियर गया। उसके साथ जो मुंशी पकड़ा गया था उसने यह बयान दिया कि मैं नाना से १० मास पहिले मिला था। उसके कहने से मैंने यह पत्र सिंधिया को लिखा था। परन्तु उस पकड़े हुए नाना-नामधारी व्यक्ति ने मोरार छावनी के कमांडर के सामने अपना यह बयान दिया कि मैं साधू हूँ, सिंधिया के पास भेजी हुई चिट्ठी झूठी है और पोलिटिकल एजेंट के पास मैंने भंग के नशे में बयान दिया था। इस व्यक्ति की उम्र ४० वर्ष की, क़द ५ फुट ६ इञ्च, उँगलियाँ बड़ी, चेहरे पर शीतला के दाग थे। नाना को जिन लोगों ने पहले देखा था उनसे शिनाख्त कराने पर भी सन्देह ही

रहा। फिर वह ७ नवम्बर को कानपुर लाया गया और बिठूर के लोगों से शिनाख़्त कराने पर जाली प्रमाणित हुआ। अन्तः में जहाँ से पकड़ा गया था वहीं फिर भेज दिया गया।

सन् १८७६ में कानपुर ऊलेन मिल्स (कम्मल मील) की स्थापना हुई। सन् १८७७ में कांग्रेस के प्रसिद्ध नेता श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी उत्तरी भारत के राजनैतिक आंदोलन के सिलसिले में कानपुर आये और यहाँ उन्होंने भाषण दिया। सन् १८८० में कूपर एलेन एंड कंपनी अथवा 'हज़ारी-बंगला' बना जो एशिया में चमड़े का सबसे बड़ा कारख़ाना कहा जाता है। सन् १८८३ में 'कानपुर काटन मिल' स्थापित हुआ। सन् १८८६ में 'विक्टोरिया मिल' की स्थापना हुई।

सन् १८९९ या १९०० में रथ-यात्रा और मुहर्रम एक ही दिन पड़ जाने से विषम परिस्थिति उत्पन्न हो गई। अधिकारियों ने हिन्दुओं को शाम के बजाय ११ बजे दिन में अपना रथ निकालने को कहा। परन्तु हिन्दू इसके लिए तैयार न हुए। नगर में कुछ दिन हड़ताल रही। संभवतः नगर में हिन्दुओं का अपने अधिकारों की रक्षा के लिए यही सबसे पहला संगठित आन्दोलन था।

प्लेग और गोली-कांड

सन् १९०१ में नगर में प्लेग की भयंकर महामारी फैली। हज़ारों आदमी मर गये। लोगों में यह अफ़वाह फैली थी कि अंग्रेज़ लोग यह रोग अपने साथ लाये हैं और उनके पास

कोई ऐसी बुकनी की पुड़िया है जिसे वे मुहल्लों में छोड़ देते हैं और यह महामारी फैल जाती है। इस अफ़वाह का लोगों पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। उधर सरकार ने लोगों के लिए मैदान में झोपड़ियाँ बनवा दी थीं। लोगों को मकानों में रह कर मरना पसंद था परन्तु अपना घरबार छोड़ कर मड़ैयों में जाने को वे तैयार न थे। सरकारी कर्मचारियों के रुख़ में भी कुछ कड़ाई हुई। इस संघर्ष में हिंदू-मुसलमान एक ओर रहे और दूसरी ओर सरकारी कर्मचारी। दोनों ही संप्रदायों के लोगों ने मड़ैयों में जाकर रहने का विरोध किया। परिणाम-स्वरूप अधिकारियों की ओर से सख़्ती हुई और अंत में गोली चली। बहुत से हिन्दू-मुसलमान मरे और घायल हुए। बाद में लोगों पर दंगा करने के अपराध में मुकदमे चले, अनेक व्यक्तियों को क़ैद की सज़ा मिली तथा कई को फाँसी दी गई।

सन् १६०५ में स्व० श्री गोपालकृष्ण गोखले कानपुर आये और यहाँ उनका भाषण हुआ। सन् १६०६ के बड़े दिन के अवसर पर सर्वप्रथम कानपुर ने बिजली की रोशनी के दर्शन किये। सन् १६११ में स्वदेशी काटन मिल्स की स्थापना हुई। सन् १६१२ में काकोमी मिल क़ायम हुआ।

सन् १६१३ में मेस्टन रोड नामक नई सड़क निकालने के सम्बन्ध में मछलीबाज़ार की मस्जिद का कुछ अंश गिराने के प्रश्न पर मुसलमान जनता में रोष फैला और अंत में गोली चली जिसमें बहुत से मुसलमान हताहत हुए। इस घटना

से भारतवर्ष भर के मुसलमानों में बड़ा असंतोष उत्पन्न हुआ। 'माडर्न इस्लाम इन इंडिया' (भारत में आधुनिक इस्लाम) के विद्वान् अंग्रेज लेखक विल्फ्रेड कैंटवेल स्मिथ ने इस घटना के संबंध में अपनी उक्त पुस्तक में लिखा है कि "सन् १९१४ के महायुद्ध के पूर्व भारत में यही एकमात्र ऐसा मुस्लिम प्रश्न था जिसे निश्चित रूप से राष्ट्रीय प्रश्न माना जा सकता है।" मुसलमानों की ओर से मामले की पैरवी करने के लिए पटने के प्रसिद्ध राष्ट्रवादी बैरिस्टर श्री मज़हरुल हक़ आये। अंत में आन्दोलन को अत्यन्त उग्र रूप धारण करते देख कर तत्कालीन वाइसराय लार्ड हार्डिञ्ज ने कानपुर पधार कर घोषणा की कि पकड़े गये सभी मुसलमान रिहा कर दिये जायँगे और सरकार मामला वापस लेती है।

सन् १९१४ में विश्वव्यापी प्रथम युद्ध प्रारम्भ हुआ। तब से और आजतक की राजनीतिक प्रगति का विस्तृत वर्णन इस ग्रन्थ के दूसरे भाग के एक अध्याय में दिया जायगा। इस युग की औद्योगिक और सांस्कृतिक उन्नति का वृत्तान्त भी उसी भाग में पढ़ने को मिलेगा।

नवाँ अध्याय

कानपुर-नगर का इतिहास

कानपुर का नगर आचार्य द्विवेदी जी के शब्दों में 'अभी कल का बच्चा' है। कानपुर का प्राचीन नाम कान्हपुर था और यह गंगा जी के किनारे जिसे आजकल पुराना कानपुर कहते हैं एक छोटा सा गावँ था। सम्राट् अकबर के आदेश से अब्बास खाँ सरवानी (शेरवानी) ने 'तारीखे-शेरशाही' नामक एक फ़ारसी-ग्रन्थ लिखा जिसमें सुल्तान शेरशाह सूर तथा उसके उत्तराधिकारियों का इतिहास वर्णित है। 'तारीखे-शेरशाही' में 'कान्हपुर' का नाम प्रथम बार आया है। सन् १४८० के लगभग सुल्तान बहलोल लोदी ने जौनपुर के शर्क़ी बादशाह हुसेनशाह को हरा कर लखनऊ व कालपी का इलाक़ा अपने दौहित्र अज़ीम शेरवानी हुमयूँ

को जागीर के रूप में दे दिया था। इसी में कानपुर भी सम्मिलित था।

कानपुर में अज़ीम हुमायूँ एक बड़ी फ़ौज रखता था। अब्बास शेरवानी कहता है कि फ़रीद, जो बाद को शेरशाह के नाम से प्रसिद्ध हुआ, जब अपने बाप हसन तथा सौतेली माँ के व्यवहार से रूठ कर अपना पैत्रिक स्थान सहसराम (बिहार) छोड़ कर आगरा व दिल्ली की ओर नौकरी की खोज में जा रहा था, तो वह कुछ दिनों तक कानपुर में ठहरा था और शेरवानियों का अतिथि हुआ था। इससे पूर्व कानपुर का उल्लेख इतिहास में नहीं मिलता।

कानपुर के प्राचीन नाम के संबंध में अनुश्रुति यह है कि यहाँ श्री कृष्ण भगवान् का कर्ण-वेध संस्कार हुआ था और इसी कारण इसका नाम कान्हपुर पड़ा। पुराने कानपुर में 'बारीघाट' अब भी इसका स्मारक बताया जाता है। कुछ लोगों का कथन है कि महाभारत के महायोद्धा कर्ण का निवास-स्थान होने के कारण इसका नाम कर्णपुर पड़ा। किंतु इन सब कथनों की सत्यता सिद्ध करने के लिए कोई भी ऐतिहासिक अथवा पौराणिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

अब तक कान्हपर के बसाने वाले के रूप में सचेंड़ी के राजा हिंदूसिंह का ही नाम प्रसिद्ध रहा है। अब से लगभग ७५ वर्ष पहले 'तारीख़े-कानपुर' के लेखक स्व० मुंशी दरगाही-लाल ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि मुसलमानी शासन-काल में जाजमऊ से बिठूर तक जंगल था। एक बार भादों



भैरोंघाट का मध्यभाग जिसका निर्माण लाला दरगाहीलाल द्वारा हुआ (पृष्ठ १८४)



जागेश्वर का मंदिर, ब्यौरा
(पृष्ठ १८५)

बदी अष्टमी को, जिसे जन्माष्टमी अथवा कन्हैया-अष्टमी कहते हैं, सचेंड़ी के राजा हिंदूसिंह गंगा-स्नान करने आये। रम्य स्थल देखकर उनकी इच्छा हुई कि इस स्थान पर कोई गावँ बसाया जाय। उनके साथ आने वाले पंडितों ने बतलाया कि आज ऐसा शुभ मुहूर्त है कि जो गावँ बसाया जायगा उसका आगे चल कर सारे संसार में नाम होगा। अतएव राजा ने उसी दिन कान्हपुर गावँ की नींव डाली और रमईपुर के चौहानवंशीय राजा घनश्यामसिंह को, जो उनके अंतरंग मित्रों में थे, गावँ बसाने की आज्ञा दी। उन्होंने दो फाटक 'शहर-पनाह' के बनवाये जो सन् १८७५ तक मौजूद थे। गंगा-तट पर एक घाट तथा पक्का मकान भी उन्होंने बनवाया जो अब भी है। राजा घनश्यामसिंह ही यहाँ के जमींदार रहे, परन्तु अवध के नवाबों के शासन-काल में उनके वंशजों को बेदख़ल कर दिया गया। इस समय कानपुर में ६४६ मकान थे और जन-संख्या २५०५ थी।

परन्तु १६वीं शताब्दी की पुस्तक 'तारीख़े-शेरशाही' में इसी कान्हपुर का उल्लेख होने के कारण हिंदूसिंह द्वारा इसके बसाये जाने की बात मिथ्या प्रमाणित हो जाती है। यह हो सकता है कि हिंदूसिंह ने यहाँ गंगा-स्नानार्थ आते रहने या एक ही बार आने पर इसके परिवर्तन तथा प्रबंध की कुछ योजना कार्यान्वित कराई हो।

तब प्रश्न यह होता है कि कानपुर को किसने और कब बसाया। वर्तमान 'पुराना कानपुर' कहलाने वाला कानपुर-

नगर का भाग ही पुरातन 'कान्हपुर'-ग्राम है। यह जाजमऊ परगने के अंतर्गत एक गाँव रहा है। इस गाँव की ज़मींदारी के हक़दार होने के संबंध में चलने वाले एक मुक़दमे की अपील सन् १६१७ में प्रयाग हाईकोर्ट में की गई थी। दावेदार दुबे-वंश की ओर से स्व० पं० मोतीलाल नेहरू तथा पश्चिमी बंगाल के वर्तमान गवर्नर डा० कैलाशनाथ काटजू वकील थे। इस मुक़दमे की जो कार्रवाई पुस्तकाकार अँग्रेजी में छपी है उसमें इस वंश-द्वारा सन् १८१७ से १६१७ अर्थात् १०० वर्ष तक उन्हीं के द्वारा चुकाई जाने वाली मालगुज़ारी आदि की रसीदों तथा अन्य काग़ज़-पत्रों की प्रमाणित प्रतिलिपियाँ और कानपुर के प्राचीन इतिहास का एक प्रमाणित उल्लेख छपा है जिसका अनुवाद इस प्रकार है :—

(प्रमाणित प्रतिलिपि)

सन् १२८३ फ़सली बंदोबस्त में दिये हुए कानपुर के इतिहास की प्रतिलिपि, मौज़ा कानपुर, परगना जाजमऊ का इतिहास—

"अब (सन् १६१७) से लगभग ७०० वर्ष पहले राजा 'कान्हदेव' (चंदेलवंशीय क्षत्रिय) प्रयाग से कन्नौज जाते समय यहाँ पर गंगा-स्नानार्थ कुछ काल के लिए ठहरे रहे और उन्होंने अपने ठहरने के स्थान पर 'कान्हपुर' ग्राम की स्थापना की जो धीरे धीरे एक अच्छी बस्ती बन गया। जब वे कन्नौज जाने लगे।तो इसे एक ब्राह्मण-वंश के अधिकार में दे दिया (ब्राह्मण को दान कर दिया)। सन् १७६७ के लगभग

मुसलमानी शासन-काल में मुसलमानों ने ब्राह्मणों के पूर्ण स्वत्वाधिकार से लेकर इसे अपनी अमलदारी का गावँ बना लिया और उनके अधीन कात्यायनी दुबे-वंश के लोग यहाँ के ज़मींदार हुए। अंग्रेजों की अमलदारी होने पर किया गया सन् १२१० फ़सली का सर्वप्रथम तीनसाला बंदोबस्त समाधान दुबे से हुआ। दूसरे बंदोबस्त में चंदेलवंशीय रंजीतसिंह का नाम चढ़ा और तीसरे में राजा उग्रसेन का। उग्रसेन ने १० अक्टूबर १८१० को इस्तीफ़ा दे दिया क्योंकि बोर्ड ने उनसे प्रश्न पूँछा था कि वे किसान या ज़मींदार क्या हैं ? सन् १८१२ तक स्वयं सरकार इसकी प्रबंधक रही। २१ अगस्त सन् १८१३ को श्री समाधान दुबे के पुत्र श्री रामप्रसाद दुबे ने सरकार को प्रार्थना-पत्र दिया। अतः चौथे और पाँचवें बंदोबस्तों में श्री रामप्रसाद तथा श्री शिवप्रसाद प्रबन्धक रहे। सन् १६०५ के लगभग रामप्रसाद के पुत्र मंगलीप्रसाद ने अपने हिस्से का चार आना काकादेव-ग्राम के श्री बुद्धसेन के पुत्र श्री मनोहरसिंह को २८०० रु० लेकर बेंच दिया। अब भी आज तक इस दुबे-वंश के ज़मींदारी अधिकार में इस पुराने कानपुर का बारह आना हिस्सा है। रमईपुर के ठाकुर श्री घनश्यामसिंह के पुत्र श्री सावन्तसिंह ने भी अपने हक़दार होने का दावा कियां था, किंतु वह ८ अप्रैल सन् १६३१ को ख़ारिज हो गया।"

इस प्रकार कानपुर के प्राचीन इतिहास के संबंध में इतना तो निर्विवाद कहा जा सकता है कि इसका पुराना नाम कान्ह-

पुर ही था और अकबर के समय १६वीं शताब्दी में भी यह एक गावँ था। इसको किसने बसाया इस संबंध में ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। आधुनिक कानपुर का आधा भाग (पुराना) कानपुर, पटकापुर, कुरसवाँ, जुही, सीसामऊ आदि कई गावों से मिल कर बना है। इनमें सीसामऊ सबसे अधिक प्राचीन है। कन्नौज के प्रसिद्ध राजा जयचंद्र के पितामह गोविन्दचंद्र ने साहुल शर्मा नामक ब्राह्मण को ससईमऊ (वर्तमान सीसामऊ) नामक ग्राम दान में दिया था। यह बात गोविन्दचंद्र के उस दान-पत्र से मालूम होती है जो काकूपुर के पास स्थित छत्रपुर गावँ में कुछ साल पूर्व प्राप्त हुआ था और जिसकी तिथि संवत् ११७७ अर्थात् सन् ११२० ई० है। अब इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट तथा डिवलपमेंट बोर्ड ने अनेक आसपास के गावों को इसकी परिधि के अन्तर्गत कर लिया है और वह समय दूर नहीं है जब उत्तर-पश्चिम में बिठूर तक और दक्षिण में नौबस्ता तथा पनकी तक इसका विस्तार हो जायगा। सन् १७७३ में जाजमऊ की संधि के पश्चात् कानपुर का अंग्रेजों से सर्वप्रथम संबंध स्थापित हुआ। अवध के शासन में ही यहाँ व्यापार का प्रसार हो चला था। अवध के नवाब की ओर से नियुक्त सूबेदार अलमास अली खाँ का सदर मुक़ाम यद्यपि कोड़ा था परन्तु वह प्रायः कानपुर आकर महीनों यहाँ मुक़ाम करता था, क्योंकि यहाँ अंग्रेजी फ़ौज की छावनी थी और कानपुर की शनैः शनैः उन्नति हो रही थी। इस काल में जाजमऊ, इटावा, औरैया, फ़र्रुखा-

बाद, कन्नौज, बिलग्राम, मिरज़ापुर, कालपी, हमीरपुर, बाँदा, खजुहा, जहानाबाद, फ़तेहपुर, लखनऊ, उन्नाव, डलमऊ, मौरावाँ आदि के कई परिवार ग़ल्ले, किराने, कपड़े, नील आदि के व्यापार-व्यवसाय, फ़ौज में नौकरी या कमसरियट की ठेकेदारी या महाजनी के सुभीते से आ बसे। अंग्रेज़ी शासन क़ायम होने पर इन परिवारों का वैभव और भी बढ़ा। कानपुर की प्रारंभिक उन्नति का श्रेय इन्हीं को है। इसमें संदेह नहीं कि १७७३ से १८०१ तक अलमास अली के सुयोग्य शासन की गोद में ही कानपुर-रूपी नवजात शिशु का पालन-पोषण हुआ। अलमास अली ने कानपुर में गंगा के किनारे एक कोठी बनवाई और अर्दली-बाज़ार बसाया।

सन् १७७८ में अंग्रेज़ी छावनी बिलग्राम के पास 'फ़ैज़पुर-कम्पू' नामक स्थान से हट कर कानपुर आ गई। छावनी के इस परिवर्तन का मुख्य कारण कानपुर की व्यावसायिक उन्नति था। ईस्ट इंडिया कंपनी यहाँ अपना कारख़ाना खोलने का बहुत पहले ही निश्चय कर चुकी थी। कानपुर की महत्वपूर्ण स्थिति से यहाँ व्यवसाय की अत्यन्त शीघ्र प्रगति हुई और इस बात की तीव्र आवश्यकता प्रतीत होने लगी कि यूरोपियन व्यापारियों तथा उनकी दूकानों और गोदामों की रक्षा के लिए यहाँ फ़ौज रक्खी जाय।

अंग्रेज़ी फ़ौज पहले जुही, फिर वर्तमान छावनी, में आ बसी। इस कैंप (पड़ाव) वाले स्थान को ग्रामीण लोगों ने 'कम्पू' कहा और देहात के अशिक्षित लोगों में कानपुर अब

भी उक्त नाम से ही विशेष प्रसिद्ध है। सन् १८०१ में कानपुर नगर व ज़िला घोषित किया गया। सन् १८१८ में श्रीमन्त बाजीराव पेशवा के बिठूर आ जाने के कारण कानपुर के चहल-पहल और महत्व में और भी अधिक वृद्धि हुई।

कानपुर की छावनी में पुराने कानपुर की सीमा से जाजमऊ की सीमा के बीच का प्रायः सारा भाग सम्मिलित था। कानपुर-नगर के विकास पर इसका प्रभाव स्पष्टतः लक्षित होता है। इस छावनी के दक्षिण में नदी से कुछ दूरी पर नगर की बस्ती क़ायम हो सकी। कानपुर के सन् १८४० के नक़शे से विदित होता है कि उत्तर की ओर पुराने कानपुर की पूर्वी सीमा से जाजमऊ तक गंगा के किनारे छावनी की सीमा चली गई थी। पश्चिम में इस छावनी की सीमा उत्तर से दक्षिण की ओर वर्तमान वाटर वर्क्स के पम्पिग स्टेशन भैरों-घाट से दक्षिण में सीमामऊ तक चली गई थी। यहाँ से वर्तमान माल रोड (महात्मा गान्धी रोड) के किनारे किनारे पटकापुर तक चली गई थी। वहाँ से यह सीमा दक्षिण-पश्चिम की ओर मुड़कर कलेक्टरगंज तक पहुँचती थी। इस प्रकार वर्तमान सदरबाज़ार और कुरसवाँ उस समय छावनी में सम्मिलित थे। कलेक्टरगंज से यह सीमा नगर के दक्षिण-पश्चिमी भाग को घेरती हुई दलेलपुरवा पहुँचती थी। यहाँ से दक्षिण की ओर पुरानी ईस्ट इंडियन रेलवे की स्टेशन के पास मुड़कर ग्रांड-ट्रंक-रोड के समानान्तर जाकर जाजमऊ से आने वाली पूर्वी सीमा में जाकर मिल जाती थी।

इस प्रकार कानपुर-नगर की आबादी तीन तरफ़ छावनी से घिरी थी। इसी कारण उसका विकास केवल एक ही दिशा में संभव था। कानपुर के मुहल्लों के घने आबाद होने का यही मुख्य कारण है। पश्चिम में छावनी की सीमा के उस पार नवाबगंज में कचहरी, ख़ज़ाना, जेल, जाजमऊ तथा बिठूर की तहसीलों की इमारतें, एक बड़ा बाग़, गुटैहा के पास मिशन की इमारत तथा अफ़सरों के बँगले आदि थे। पश्चिम में छावनी के इलाक़े के भीतर एक विशाल अहाते में मैगज़ीन अथवा शस्त्रागार, यूरोपियन जनरल हास्पिटल तथा परमट (परमिट) घाट पर चुंगी का दफ़्तर आदि थे। परमट के दक्षिण में अंग्रेज़ी पैदल सेना की बैरकें तथा परेड करने का मैदान था। इनके तथा शहर के बीच में काली पलटन की बैरकें थीं जो पश्चिम में सूबेदार के तालाब से लेकर पूर्व में माल रोड के किनारे क्राइस्ट चर्च तक फैली हुई थीं। छावनी के पूर्वी भाग में तोपख़ाना था और गंगा के किनारे अंग्रेज़ी रिसाला रहता था। यहीं एक दूसरा अस्पताल भी था कहाँ अब 'आल-सोल्स गिर्जाघर' है। इसके पश्चिम सदरबाज़ार तथा ग्रांड-ट्रंक-रोड के बीच काली पल्टन का रिसाला था। उसमें ऊँटों तथा बैलों के लिए अलग स्थान बने हुए थे। ग्रांड-ट्रंक-रोड के उस पार घुड़दौड़ का मैदान था।

सन् १८५७ के विद्रोह के समय नगर तथा छावनी की प्रायः सभी इमारतें या तो नष्ट कर दी गईं अथवा क्षति-ग्रस्त हुईं। क्राइस्ट चर्च, स्टेशन थियेटर (वर्तमान तारघर) तथा

कई और बँगले नष्ट होने से बच गये। उनकी केवल छतें नष्ट हुई थीं। थियेटर हाल से मिली हुई मेसानिक लाज ही एक ऐसी इमारत थी जो बिल्कुल अछूती रही और सन् १८५६ में खोले जाने पर उसमें सारे सरकारी काग़ज़ात सुरक्षित रूप में पाये गये। ग़दर के बाद पूर्ण पुनर्निर्माण आरम्भ हुआ। छावनी के पश्चिमी भाग में सरसैयाघाट के निकट कचहरी, जेल, तथा अन्य नागरिक विभाग क़ायम हुए। कुछ मंदिर, जो इसी घाट के पास थे, ध्वस्त कर दिये गये। बैरकें तथा सैनिक लाइनें नहर के उस पार ले जाई गईं। इस प्रकार सीमा में पुनः परिवर्तन हुआ। सदर-बाज़ार शेष छावनी से पृथक् हो गया तथा नगर के दक्षिण की ओर नगर के पश्चिम में पड़ने वाला कलेक्टरगंज आदि का इलाक़ा नागरिक अधिकारियों के सिपुर्द कर दिया गया।

इस समय छावनी की सीमा उत्तर में गंगा नदी, दक्षिण में ग्रांड-ट्रंक-रोड, पूर्व में ज़ाजमऊ तथा पश्चिम में लखनऊ जाने वाली रेलवे लाइन के किनारे किनारे माल रोड पर पड़ने वाले नहर के पुल से होती हुई फूलबाग़ के उत्तर से गंगा के किनारे हार्नेस फैक्टरी तक चली गई है।

ग़दर के बाद कानपुर का विकास अत्यन्त तीव्र गति से आरंभ हुआ। फ़ौजी छावनी होने के कारण पहले यहाँ फ़ौज के लिए जूते तथा ज़ीन आदि अन्य सामान बनाने के लिए चमड़े का उद्योग आरंभ हुआ। ग़दर के बाद यही एक सरकारी चमड़े का कारख़ाना खुला जिसमें फ़ौज की आवश्यकता की



तपेश्वरी देवी का मंदिर, पटकापुर
(पृष्ठ १७५)



नवाब साहब का फाटक, रामनारायण बाज़ार
(पृष्ठ १७४)

सारी चीज़ें तैयार की जाती थीं। वर्तमान हार्नेस फैक्टरी उसी कारख़ाने का विकसित रूप है। चमड़े के इस व्यवसाय से आकर्षित होकर अन्य कई अंग्रेज़ों ने भी यहाँ अपने कारख़ाने खोले जिनमें कूपर एलेन एंड कंपनी का स्थान प्रमुख है। सन् १८६१ में प्रथम सूती मिल एलगिन मिल (पुराने पुतली-घर) की स्थापना हुई। इसके बाद धीरे धीरे म्योर मिल, विक्टोरिया मिल, कानपुर काटन मिल आदि अन्य कई मिल खुले। कल-कारख़ानों के इस विकास के कारण नगर की आबादी अत्यन्त तेज़ी से बढ़ने लगी। सैनिक छावनी होने के कारण इसे सुरक्षित समझ कर आसपास के अन्य नगरों लखनऊ मिर्ज़ापुर, फ़र्रुख़ाबाद आदि से अनेक प्रसिद्ध व्यापारी यहाँ आकर बस गये। कानपुर की वर्तमान वृद्धि का कारण उसकी यह व्यावसायिक प्रगति ही है। चारों ओर से रेलों का यातायात स्थापित हो जाने से भी इसकी वृद्धि उत्तरोत्तर हुई।

ग़दर के बाद नगर की बढ़ती हुई आबादी को दृष्टि में रखकर नगर की स्थिति में सुधार करने का भी कुछ प्रयास किया गया। इस कार्य में तत्कालीन कलेक्टर मि० डब्ल्यू० एस० हालसी ने विशेष भाग लिया। सन् १८६६ में ग़दर-कालीन ईंटोंके भट्टों की ज़मीन बराबर कर उसे कूपरगंज नाम दिया गया। पहले ग़ल्ले की मंडी नयागंज में थी। यहाँ बैलगाड़ियों के खड़े करने के लिए कोई जगह न थी। फलतः सन् १८७६ में एक विशाल मैदान इस कार्य के लिए चुना गया और हालसी साहब के ही नाम पर इस नई मंडी

का नाम कलेक्टरगंज रक्खा गया। नगर में आबादी के घनत्व को कम करने के लिए उक्त कलेक्टर महोदय ने ही हालसी रोड का निर्माण कराया। ग़दर के बाद सरसैयाघाट की पुरानी इमारतें गिरा दी गईं और घाटों का नये सिरे से निर्माण हुआ। इसके लिए लोगों से चन्दा लिया गया तथा म्यूनिस्पल फंड से ५००० रु० दिये गये। पर जेल के पीछे वाले घाट अवश्य सन् १८५७ के पहले के हैं। यह बात उस समय के कानपुर के गंगा-तट के एक चित्र से प्रकट होती है। सन् १८७६ में कूपरगंज में टाउन हाल का निर्माण भी हालसी साहब की देख-रेख में हुआ। इसमें एक लाख १६ हजार रुपये लगे।

सन् १८८८ में हालसी रोड की ही भाँति चौक से होती हुई एक चाड़ी सड़क निकालने का कार्य तत्कालीन कलेक्टर मि० एच० डी० मोल ने आरंभ किया। केवल हालसी रोड के चौराहे से चौक के दक्षिणी नुक्कड़ तक ही सड़क चौड़ी बन पाई थी कि उसमें अत्यधिक आर्थिक व्यय होते देखकर योजना को अधूरा ही रहने दिया गया। उक्त कलेक्टर के नाम पर ही इस सड़क के आस पास की बस्ती का नाम मोलगंज पड़ा। उक्त मोल साहब ने ही सन् १८९० में वर्तमान फूलबाग़ की भी नींव रक्खी। इसके अनन्तर बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ के वर्षों में युक्तप्रान्त के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर जेम्स लाटूश के नाम पर लाटूश रोड का निर्माण हुआ।

कानपुर की दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई जन-संख्या तथा नगर

के विस्तार के साथ ही साथ यहाँ की सफ़ाई का प्रश्न भी जटिल हो चला। हालसी साहब के समय में पक्के नाले और गंदे नाले बनाये गये। पहले कूड़ा आदि ढोने का काम बैलगाड़ियों द्वारा होता था परन्तु सन् १६०२-३ में इस कार्य के लिए नगर में ५॥ मील लंबी छोटी सी रेल की लाइन बिछाई गई। यह लाइन दलेलपुरवा से नरायनपुर तक जाती थी और उसकी शाखायें हालसी रोड तथा कोपरगंज रोड में भी फैली थीं। इस के द्वारा कूड़ा तथा पाखाना नरायनपुर के पास ऊसर में गढ़ों के अंदर पहुँचा दिया जाता था। पर बढ़ते हुए नगर की आवश्यकता की पूर्ति इससे न हो सकी। इसलिए सन् १६११-१२ में यह लाइन उखाड़ दी गई। पहले बैल और भैंसों की गाड़ियों से और फिर मोटरों द्वारा इस कूड़े को हटाने का प्रवन्ध हुआ। इसके बाद के शहर के विस्तार और उन्नति का वर्णन विशिष्ट अध्यायों में मिलेगा।

परिशिष्ट—

मुहल्लों का वर्णन

यों तो, जैसा ऊपर कहा गया है, कानपुर-नगर प्रधानतः पटकापुर, कुरसवाँ, जुही, सीसामऊ और पुराने कानपुर के प्राचीन गावों से ही मिलकर बना है, और इन गावों के अन्तर्गत जो भूमि थी उसी में कालान्तर में इसकी बस्ती का विस्तार हो गया। यहाँ पर छावनी आ जाने से इसके विस्तार में विशेष सहायता मिली। पहले छावनी जुही में थी, पर वहाँ

से उठकर जब वह गंगा के किनारे जाजमऊ से पुराने कानपुर की ओर फैली, तो विभिन्न फ़ौजी दफ़्तरों, बाज़ारों और पड़ावों के नामों से अनेक नये मुहल्लों के नाम पड़े।

छावनी के मुहल्ले

सदरबाज़ार, गोराबाज़ार, लालकुर्ती (लालडिग्गी) कछियाना, शुतुरख़ाना, भूसाटोली, दानाख़ोरी, गड़रिया-मोहाल आदि के नाम हमें छावनी के दैनिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाली विभिन्न बाज़ारों की याद दिलाते हैं। बाद को लोकमनमुहाल, सीताराममोहाल, मोतीमोहाल, हरवंशमोहाल, मथुरीमोहाल, तेलियाना, मीरपुर और उससे मिली हुई फ़ेथ-फुलगंज की बस्तियाँ भी उसमें शामिल हुईं। फ़ेथफुलगंज शायद इसीलिए नाम पड़ा कि यहाँ के लोग सन् १८५७ में अँग्रेज़ी सरकार के वफ़ादार बने रहे। हूलागंज की वर्तमान भूमि 'पुराने सदरबाज़ार के अन्तर्गत थी, पर सर ह्यू ह्वीलर की स्मृति में इस मुहल्ले का नाम पहले ह्वीलरगंज पड़ा, किन्तु भाग्य ने ऐसा पलटा खाया कि कुछ उच्चारण की कठिनाई से और कुछ विदेशी सेनापति के स्थान में अपने वीर सेनापति हुलाससिंह (उर्फ़ हूलासिंह) की स्मृति को अमर बनाये रखने की भावना से जनता ने ह्वीलरगंज को सरलतापूर्वक हूलागंज में परिवर्तित कर लिया। जब तक यह मुहल्ला छावनी बोर्ड के अंतर्गत रहा इसका नाम सरकारी काग़ज़ों में सदा ह्वीलरगंज ही लिखा गया। पर सदरबाज़ार जब से म्यूनिसिपल सीमा के अन्तर्गत हो गया,

म्यूनिसिपल काग़ज़ों में इसका लोकप्रिय नाम हूलागंज ही लिखा जाने लगा।

कुरसवाँ—रामनारायणबाज़ार

कुरसवाँ की भूमि सत्तावनी क्रान्ति के बाद बहुत वर्षों तक छावनी में ही लगती रही। माल रोड के फूलबाग़ वाले चौराहे से जो सड़क पटकापुर और कुरसवाँ के बीच से जाती है, और जिसे आजकल रामनारायणबाज़ार कहते हैं, और जो आगे पश्चिम की ओर गिलिसबाजार से होती हुई, रामदास के मंदिर, कैलास और बैकुंठ के बग़ल से निकल कर बड़े अस्पताल के पीछे से परेड के चौराहे तक जाती है, वही उस समय छावनी और नागरिक बस्ती की विभाजक रेखा थी। तभी तो कुरसवाँ, मैसानिक लाज, क्राइस्ट चर्च, स्टेशन थियेटर (वर्तमान तारघर) आदि सभी बस्तियाँ और इमारतें छावनी में ही थीं, और माल रोड के दोनों ओर छावनी थी। परेड का नाम तो इसीलिए पड़ा कि वहाँ सिपाहियों की परेड का विस्तृत मैदान था।। रामनारायणबाज़ार मुंशी रामनारायण खत्री की यादगार है जो ईस्ट इंडिया कम्पनी की फ़ौज में कमसरियट के गुमाश्ता थे। इनकी जायदाद वर्तमान कुरसवाँ में बहुत थी। नवाब साहब के फाटक के अंदर की भूमि, स्वर्गीय लाला बिहारीलाल (भूतपूर्व चैयरमैन म्यूनिसिपल बोर्ड) के बँगले तथा उसके आसपास की कुछ जमीन सब मुंशी रामनारायण की ही जायदाद थी। इसमें इन्होंने एक

पक्के तालाब (जो लाला बिहारीलाल के बँगले की जमीन में था), एक पक्की कोठी (जो नवाब साहब के हाते में अभी तक है) एक पक्के ऊँचे फाटक (जो अभी तक है) और एक बाग़ का निर्माण कराया।

कुरसवाँ शब्द की व्युत्पत्ति निश्चित रूप से नहीं बताई जा सकती, और न इसके प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में ही कुछ ज्ञात हो सका है। इसमें बसे हुए कुछ प्रसिद्ध परिवार उस युग के हैं जब जाजमऊ उजड़ कर कानपुर बस रहा था। मेजर रामप्रसाद दुबे (जनरल बालमुकुन्द दुबे के सुपुत्र) तथा मुंशी रामसहाय निगम के परिवार इनमें प्रसिद्ध हैं। कुरसवाँ के भगवन्तसिंह तिवारी का परिवार भी पुराना है। कुरसवाँ के ग्राम-देवता 'खेड़ेपति बाबा' हैं।

पटकापुर

पटकापुर शायद पठकापुर अर्थात् पाठकों का गावँ रहा होगा, पर जहाँ तक हमें मालूम हो सका है यहाँ कोई पुराना पाठक-परिवार नहीं है। हाँ, दुबे-परिवार (जिसके वर्तमान प्रतिनिधि पं० कृष्णदत्त (केसई पंडित) तथा ओमर-वैश्य परिवार (जिसमें आजकल लाला बद्रीप्रसाद, लाला माधौप्रसाद आदि हैं) अवश्य यहाँ के सबसे पुराने परिवार हैं। नाहरसिंह ठाकुर की जमींदारी यहाँ थी और नाहरसिंह की गड़ैया वहाँ पर थी जहाँ अब पटकापुर की पुलिस चौकी है। बाद को जाजमऊ के उजड़ने पर रुस्तमेहिंद पं० मनीराम

पाँडे का परिवार यहाँ आ बसा। अंग्रेज़ी शासन क़ायम होने पर नासिरअली ने अपना इमामवाड़ा (छत्ता) बनवाया। इसी नासिरअली के छत्ते के पश्चिम, दक्खिन और पूरब की ओर ठाकुर गजराजसिंह की ज़मीन्दारी थी, जो अभी हाल तक चलती रही। सारा बेरिहाना उन्हीं का था जिसमें ग़रीब लोगों ने किराये पर ज़मीन लेकर अपनी झोपड़ियाँ और छोटे-छोटे मकान बना रक्खे थे। इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट द्वारा बेरिहाना के ले लिये जाने पर ठाकुर गजराजसिंह की ज़मीन्दारी का नामोनिशान मिट गया और उनके कोई औलाद भी न थी।

पटकापुर की ग्राम-देवी तपेश्वरी देवी हैं जिनके मंदिर की गणना शहर के प्रसिद्ध देवस्थानों में है। तपेश्वरी देवी के मन्दिर में पहले प्रतिमा के स्थान पर चक्की के पाट के टूटे हुए भाग रक्खे रहते थे और लोग उन्हीं का पूजन करते थे। इन पाटों की पूजा से यह प्रकट होता है कि यह मन्दिर एक गाँव का मन्दिर था और बहुत प्राचीन है। पहले इसमें बकरों की बलि भी चढ़ाई जाती थी और सम्भव है कि इसके माली पुजारी को ठाकुर गजराजसिंह ने या उनके किसी पूर्वज ने ज़मीन दे दी हो और वह चक्की का पाट रख कर पूजा करवाने लगा हो और वहीं पर बकरों की बलि भी चढ़ाने लगा हो, और प्रसाद के रूप में ठाकुर साहब को भी एकआध सिरी भेज देता रहा हो। कन्नौज से पं० परमसुख तिवारी के पुत्र पं० रेवतीराम तिवारी का परिवार भी १८५७ के पहले पटकापुर में आया। इन्हीं के

पुत्र महाराज प्रयागनारायण तिवारी थे। जाजमऊ से फ़ारूक़ी क़ाज़ी परिवार भी ग़दर के पहले यहाँ आकर बस गया। सन् १८४० के कानपुर के नक़्शे में पटकापुर का विस्तार कुरसवाँ से जनरलगंज तक दिखाया गया है और इसके पश्चिम में इटावाबाजार चौक तक फैला हुआ है। फ़ीलख़ाना पटकापुर के अन्तर्गत ही था। म्यूनिसिपैल्टी के प्राचीन चुनाव-क्षेत्रों में भी पटकापुर वार्ड की यही सीमा थी। कराँचीख़ाना, पुरानी दालमंडी, बेरहाना, नाचघर, रोटीगुदाम, चटाईमोहाल, सिरकीमोहाल, शतरंजीमोहाल आदि मुहल्ले ग़दर के बाद प्रसिद्ध हुए। चटाईमोहाल में खजूर की चटाइयाँ बहुत बनती थीं और सिरकीमोहाल में सिरकी के पाल।

इटावाबाज़ार, चौक, और नई चौक

सन् १८४० के नक़्शे में पटकापुर और चौक के बीच वाली सड़क और बस्ती का नाम इटावाबाज़ार दिया हुआ है। यह नाम सम्भवतः इसलिए पड़ा होगा कि इटावा से आकर अनेक परिवार यहाँ बस गये। पुराने इटावाबाज़ार वाले क्षेत्र में अनेक नये छोटे-बड़े मुहल्ले शामिल हो गये हैं जिनमें गिलिसबाज़ार, ख़ासबाज़ार, नरियलबाज़ार, पुरानी सब्ज़ी मंडी, पुरानी चावलमंडी, सवाईसिंह का हाता, बंगालीमोहाल, राममोहन का हाता, महेश्वरीमोहाल, घुमनीबाज़ार, धोबीमोहाल, पुर्बियामोहाल, पेठावाली गली, गुदड़ीबाज़ार,



ला० मुरलीधर खत्री का मंदिर, पटकापुर
(पृष्ठ १७६)



पं० प्रयागनारायण तिवारी के मंदिर का गोपुर। (पृष्ठ १७६)

छप्परमोहाल, मनीराम की बगिया के नाम मुख्य हैं। सन् १८५७ के पहले जिन फ़ौजी कम्पनियों का मुक़ाम कानपुर में था उनमें से पहले नंबर की बंगाल इन्फ़ैन्ट्री को 'गिलिसेज़' कहते थे। इसी के नाम से गिलिसबाज़ार का नामकरण हुआ। पहले साग-तरकारी की जहाँ मंडी थी वही मुहल्ला अब पुरानी सब्ज़ी-मंडी के नाम से प्रसिद्ध है । नरियलबाज़ार में नारियल के हुक्के की गुड़गुड़ियाँ बहुत बनती थीं। सवाईसिंह का हाता लाला सवाईसिंह अग्रवाल के नाम की याद दिलाता है। बंगालीमोहाल में काली देवी का पुराना मन्दिर है। सन् १७६० में श्रीकृष्णचन्द्र मजूमदार ने बंगाल-स्थित चन्द्रनगर से आकर इसी मुहल्ले में अपना घर बनाया था। तभी से यह बंगालीमोहाल कहलाया।

चौक की बस्ती भी पुराने नक़्शे में है। और उसके आसपास बज़ाजा, शराफ़ा, चकला, जूताबाज़ार और ठठराई के भी नाम उस नक़्शे में मिलते हैं। सन् १८५७ में कोतवाली चौक में उस जगह पर थी जहाँ आजकल स्वर्गीय लाला कुंजीलाल का मन्दिर है। इसके पास वाला कोतवालेश्वर महादेव का मंदिर पुरानी कोतवाली का स्मरण दिलाता है। इस की इमारत दोमंज़िला थी जिसका वर्णन मि० शेरार ने अपनी पुस्तक में किया है। उस समय लाला दरगाहीलाल के अनुसार उसके आसपास खेत भी थे। मोलगंज का नाम मि० मोल कलेक्टर के नाम पर पड़ा, जिन्होंने इस बाज़ार को चौड़ा कराया। मेस्टन (ए० बी०) रोड का निर्माण सन् १९१३ में

हुआ जिसके कारण पुराने नक़शे का ख़ाका ही बदल गया। चौक से नई चौक और परेड तक मिसरीबाज़ार, मछली-बाज़ार, मखनियाबाज़ार, तोपख़ानाबाज़ार, मैदाबाज़ार, चौबेगोला, छोटा बूचड़ख़ाना, रोटी-वाली-गली, आदि मुहल्ले अधिकतर हमें उसी ज़माने की याद दिलाते हैं जब छावनी इनके पास थी और विभिन्न वस्तुओं की बाज़ारें इन मुहल्लों में स्थित थीं। चौबेगोला किन्हीं चौबे जी का बसाया हुआ होगा। इस क्षेत्र में आबाद कुछ मुसलिम परिवार ग़दर के पहले आकर बसे। इनमें से शेख़ विलायत अली का ख़ान्दान सबसे पुराना है। अनेक पंजाबी बिसाती-परिवार भी यहाँ पर आकर बसे।

जनरलगंज, कलेक्टरगंज, खटिकाना

सन् १८४० में जनरलगंज का मुहल्ला शहरी आबादी के नक़शे के दक्षिणी भाग में बहुत दूर तक फैला हुआ है। यह पता नहीं कि किस जनरल के नाम पर इसका नामकरण हुआ। इसका विस्तार उस समय नहर के उस पार तक था जहाँ आजकल सेन्ट्रल स्टेशन, रेलबाज़ार और हैरिसगंज की बस्तियाँ हैं। नहर के इस पार वर्तमान कलेक्टरगंज, मोढ़ा-टोली, धनकुट्टी, रंजीतपुरवा, रानी की गड़ैया, नई सब्जी मंडी, खटिकाना आदि की बस्तियाँ इसी के अन्तर्गत थीं। कलेक्टरगंज को, जैसा पिछले अध्याय में कहा गया है, मि० हालसी कलेक्टर ने बसाया और हालसी रोड (नई सड़क)

का निर्माण भी कराया। इधर शकरपट्टी, नयागंज, दालमंडी, रामगंज, नौघड़ा, लाठीमोहाल, जनरलगंज बज़ाजा, पचकूचा, लोहाई, हटिया, बानबाज़ार, खोवाबाज़ार, बादशाही नाका, बुद्धादेवी, आदि मुहल्लों के नाम सम्भवतः ग़दर के बाद पड़े। उसके पहले यह सब क्षेत्र जनरलगंज में ही सम्मिलित था। हालसी-रोड बन जाने से जनरलगंज का विभाजन हो गया और यह बात अब कल्पना में भी नहीं आती कि इस सड़क के दक्षिण ओर भी कभी जनरलगंज फैला हुआ था। किन्तु अब भी रेलवे के मालगोदाम की स्टेशन का नाम कलेक्टरगंज न होकर जनरलगंज ही लिखा जाता है। नहर के पाटने से यह मालगोदाम इस स्थान में बन सका है। वर्तमान कोपरगंज भी तत्कालीन जनरलगंज का दक्षिणतम भाग था। जब से साग, तरकारी और फल की प्रधान मंडी, रानी की गड़ैया' पर लगने लगी, तब से इसका पुराना ऐतिहासिक नाम मिटने लगा और धीरे-धीरे यह सब्ज़ी मंडी या तरकारी-मंडी के नाम से प्रसिद्ध होने लगी। सन् १६२५ में प्रकाशित कानपुर म्यूनिसिपल्टी के "बाई-लाज़" (नियमोपनियम) की पुस्तक में सब्ज़ी मंडी पुरानी सब्ज़ी मंडी के अर्थ में ही प्रयुक्त हुई है और वर्तमान सब्ज़ी मंडी मुहल्ला को रंजीतपुरव, में ही सम्मिलित किया गया है। 'रानी की गड़ैया' जिसको भरकर इस मंडी का स्थान निकाला गया है, रसधान की रानी राजरानी की बनवाई हुई थी। इसका पति गोसाईं नरेन्द्रगिरि प्रसिद्ध वीर और शासक राजा हिम्मतबहादुर

का पुत्र था, और उसका देहान्त कानपुर-नगर में ही १८४० में हुआ और सम्भवतः नरेन्द्रगिरि के जीवन-काल में ही राजरानी ने 'रानी की गड़ैया' का निर्माण कर लिया था। अभी कुछ वर्ष पूर्व कानपुर-इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट द्वारा धनकुट्टी की नई सुधार-योजना के पूर्ण होने से प्राचीन जनरलगंज के इस दक्षिणी भाग का कायापलट हो गया है। जनरलगञ्ज क्षेत्र के कुछ परिवार ग़दर के पहले ही कानपुर आकर बस गये थे। इनमें से दीवान फ़तेहचंद, लाला रामनारायण कायस्थ तथा मौराएं के सेठ खत्री के परिवार पुराने हैं।

अनवरगंज, जुही, परमपुरवा,

अनवरगंज, हीरामन का पुरवा, कर्नलगंज, बेकनगंज, [बेगमगंज], भन्नानापुरवा आदि के नाम भी सन् १८४० के नक़शे में मिलते हैं। अनवरगंज किन्हीं अनवरखां के नाम पर है। हीरामन चमार के नाम पर हीरामन के पुरवा का नाम पड़ा। सन् १६०७ में लाटूश रोड के निकल जाने से चौक से बाँसमंडी और कालपी-रोड का रास्ता सीधा और चौड़ा हो गया है। कर्नलगंज किसी कर्नल ने बसाया था। बेकन साहब कानपुर के मजिस्ट्रेट और जज सन् १८२७-२८ में रह चुके थे। उन्हीं के नाम पर बेकनगंज नाम पड़ा, पर लोगों ने इसे बेगमगंज के रूप में परिवर्तित कर लिया है। अफ़ीम की कोठी में पहले अफ़ीम का सरकारी गोदाम था। रायपुरवा, नरायनपुरवा, परमपुरवा, दर्शनपुरवा आदि पुराने मौज़े थे

जिनको अभी कुछ वर्ष पूर्व इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट ने लेकर कानपुर के उपनगर के क्षेत्र में सम्मिलित किया है। जुही नोटीफ़ाइड एरिया की भूमि सन् १९४५ से कानपुर म्यूनिसिपैल्टी में सम्मिलित कर दी गई है। जब से गंगा की नहर बनी जुही की महिमा विशेष प्रकार से बढ़ी, क्योंकि वहीं नहर का बन्दरगाह बना। वहाँ दूर दूर से नावें नहर-द्वारा लकड़ी, अन्न, साग, आम आदि सामान लाती हैं। आगे जाकर नहर को पाटकर रेलवे के मालगोदाम बनाये जाने से यातायात के विचार से जुही ही उसकी अंतिम स्टेशन है। जुही से कुछ पूर्व बगाही, अजीतगंज, मुंशीपुरवा, ढाकनपुरवा, बाबूपुरवा आदि की बस्तियाँ पुराने ज़मीदारी मौज़ों से निकाल कर जुही नोटीफाइड एरिया में मिलाई गई थीं। अब सी० ओ० डी० के गोदामों और दफ़्तरों के बन जाने से इनकी आबादी बहुत बढ़ गई है। रेलवे के कार्टरों, काकोमी और स्वदेशी काटन मिल के निकटवर्ती होने के कारण जुही का नवीन और परिवर्द्धित रूप हो गया है। यों तो यहीं पर पहले पहल छावनी क़ायम होने से इसका नवीन इतिहास प्रारम्भ होता है। इस क्षेत्र में वाराह-देवी का स्थान नगर के इस ओर विस्तार के कारण बहुत प्रसिद्ध हो गया है। पहले वाराह-देवी खटिकों की देवी थीं और इनपर सुअरों का बलिदान बहुत होता था। अब तो सभी जातियों में इनकी महिमा ख़ूब बढ़ गई है। हमीरपुर को जाने की पुरानी स्टेशन जुही वाली पक्की सड़क पर स्थित होने और जी० आई० पी० रेलवे (जिसे कानपुर-बाँदा की ब्रांच लाइन

बनने के पहले हमीरपुर-रोड स्टेशन कहते थे) के पास होने से जुही की गणना कानपुर के प्रारंभिक उपनगरों में की जाती थी और इसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व था।

कालपी रोड जरीब की चौकी वाले छोटी लाइन (बी० बी० सी० आई०) के फाटक को पारकर आगे जिस क्षेत्र में जाती है वह अभी कुछ वर्ष पूर्व तक नरायनपुरवा आदि की ग्राम्य-भूमि के अन्तर्गत था। अब वह कानपुर की सबसे बड़ी "फैक्टरी एरिया" (औद्योगिक क्षेत्र) है। यहीं पर जुग्गीलाल-कमलापत ग्रूप की मिलें, लक्ष्मीरतन काटन मिल, मिश्रा होज़ियरी मिल आदि हैं। कई नये मुहल्ले यहाँ आबाद हो गये हैं। आगे चलकर कालपी रोड पर द्वितीय विश्वयुद्ध के युग में निर्मित अर्मापुर वाला फ़ौजी सामान बनाने वाला विशाल कारखाना और रहाइसी बँगले और मकान हैं। इसकी सीमा पश्चिम में मसवानपुर के मौजे तक और दक्षिण में पनकी के पास गंगा की नहर तक फैली हुई है। यह कानपुर के एक स्वतन्त्र उपनगर के रूप में बस गया है।

ग्वालटोली, नवाबगंज, परमट

सन् १८५७ में परेड से पश्चिम की ओर जाने पर माल रोड के किनारे 'सूबेदार का तालाब' था जहाँ अब क़बरिस्तान, चुन्नीगंज, स्टार प्रेस, कर्नलगंज का थाना आदि हैं। बाजीराव पेशवा के सूबेदार रामचन्द्रराव पंत ने यहीं पर अपने बँगले और तालाब का निर्माण किया था। इसी से यह तालाब

'सूबेदार का तालाब' कहलाया । सूबेदार के तालाब के आगे चलकर कुछ दूर ग्वालटोली और फिर नवाबगंज की बस्तियाँ थीं। सन् १८३० में अवध के बादशाह नसीरुद्दीन हैदर ने अपने सूबेदार मोतमुद्दौला आग़ामीर को पदच्युत कर दिया । वे लखनऊ से भागकर कानपुर आ बसे। पहले वे सवादा कोठी से कुछ दूर जुही में एक बँगले में रहे । फिर वहाँ से वे ग्वालटोली में जा बसे, जहाँ उनके वंशज अभी तक हैं और "ग्वालटोली के नवाब" कहलाते हैं । नवाब मोतमुद्दौला का बसाया हुआ मुहल्ला नवाबगंज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। नवाबगंज के पास ही सन् १८१६ में बिठूर से उठकर कचहरी आई । कचहरी, जेल और मैगज़ीन की इमारतें यहाँ बनीं। मैगज़ीन भैरोंघाट के नीचे गंगा के किनारे थी, और कचहरी और जेल की इमारतें वहाँ थीं जहाँ अब सर ज्वालाप्रसाद श्रीवास्तव का बँगला है। इन्हीं इमारतों के आसपास अफ़सरों के रहने के लिए बहुत से बगले थे। नवाबगंज के पास जो कम्पनी-बाग़ है वह अभी तक हमें उस ज़माने की याद दिलाता है जब हमारे देश में ईस्ट-इंडिया-कम्पनी का शासन था। यह बाग़ सन् ५७ के पहले का है। नवाबगंज के आगे पश्चिम की ओर ज्योरा और ख्योरा के पुराने गावँ हैं और ख्योरा के पास जागेश्वर महादेव का मन्दिर है जिसके सामने गंगा पार करने के लिए श्रीमन्त बाजीराव पेशवा ने एक पक्का पुल बनवाया था । इसके कुछ निशान अब भी देख पड़ते हैं। जागेश्वर से बिठूर तक

पेशवा ने एक पक्की सड़क भी गंगा के किनारे किनारे बनवाई थी जो बाद को बाढ़ में बह गई।

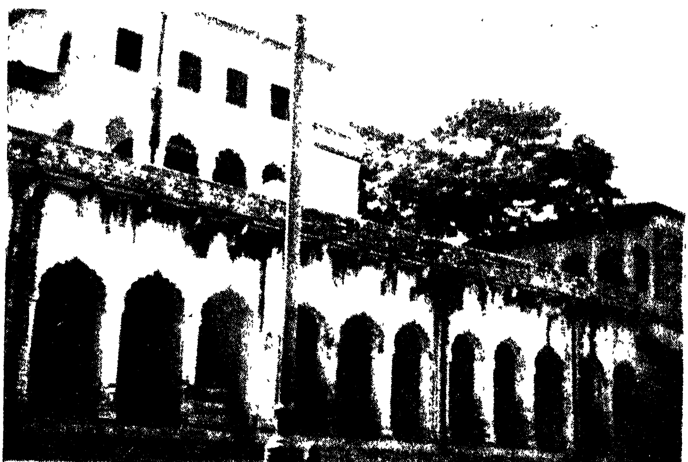
कम्पनी-बाग़ के पास से होती हुई दक्षिण की ओर जो सड़क जाती है वह गुटैहा जा पहुँचती है। उसके पास घोसरामऊ और मन्नापुरवा आदि गावँ भी थे। ये सब अब वृहत्तर कानपुर की सीमा में आ गये हैं। बेहना-झाबर, जहाँ नगर के वाटर-वर्क्स का केन्द्र है, पहले एक छोटी सी बस्ती थी जो एक "झाबर" के पास स्थित थी। अब इस सब क्षेत्र में अनेक नये मुहल्ले बस गये हैं, जिनके नाम नीचे दी हुई सूचियों में मिलेंगे। पुराने सीमामऊ के आसपास भी नई आबादी का विस्तार बहुत फैल गया है।

घाट

जागेश्वरघाट से गंगा के किनारे किनारे नीचे की ओर आने में अनेक पुराने और नये घाट मिलेंगे। क्रमवार इनके नाम ये हैं:—दंडीबाड़ा-घाट (यहाँ पर संन्यासियों का आश्रम है), नरायनघाट, (यहां बंकटविहारी उर्फ़ मौनीबाबा का स्थान है), साँवलदासघाट (यहाँ भगत साँवलदास की समाधि है), रामेश्वरघाट, पुरुषोत्तमघाट, डिप्टाइनघाट, सुक्खा माँझी घाट, तिवारीघाट (मन्नालाल तिवारी पुराने कानपुर का बनवाया हुआ), राजाघाट (सँसेड़ी के राजा चन्द्रशेखर तिवारी द्वारा निर्मित), बारीघाट, भैरोंघाट (भैरों जी के मन्दिर के नीचे वाला घाट लाला दरगाहीलाल का बनवाया हुआ है), भैरोंघाट



लाला कमलापत-घाट, परमट (पृष्ठ १८५)



रामेश्वर-घाट, पुराना कानपुर (पृष्ठ १८४)

का श्मशान-घाट, अयोध्याप्रसाद-देवीप्रसाद का घाट, मैगज़ीन घाट (यहीं पर १८५७ तक मैगज़ीन थी), एलगिन-मिल-घाट, अस्पताल-घाट (पहले यहाँ मिलिटरी अस्पताल था), आनंदेश्वरघाट (श्री आनंदेश्वर महादेव का प्रसिद्ध मंदिर यहीं पर है), कमलाघाट (यहाँ श्री लाला कमलापत सिंहानिया द्वारा निर्मित श्री कमलेश्वर महादेव का मंदिर है), मुन्नीबाईघाट (यह एक वेश्या का बनवाया हुआ है), गंगोली घाट (डाक्टर महेन्द्रनाथ गंगोली द्वारा निर्मित), सोमनाथ घाट, परमेश्वरीदयाल घाट, कालीघटिया (यहाँ काली देवी का मंदिर है और यहीं पर नावों से माल उतारा जाता है), बाबाघाट (जिसका निर्माण बाबा गिरधरानंद द्वारा हुआ और जिस पर गंगा जी का मंदिर और एक बग़ीचा भी है) बुढ़िया-घाट (एक वृद्धा गंगापुत्रिन द्वारा निर्मित), पुलिसलाइन घाट, सरसैयाघाट, गुप्तारघाट और भगवद्दास घाट । परमट-घाट के अंतर्गत आनंदेश्वरघाट तथा मुन्नीबाई-घाट मुख्य हैं । परमट 'परमिट' का अशुद्ध रूप है। यहाँ नावों पर माल उतारने पर चुंगी लगती थी और उसकी 'परमिट' यानी रसीद दी जाती थी। परमटघाट के पास अब काफ़ी आबादी होगई है जो परमट के नाम से प्रसिद्ध है । नार्थ-वेस्ट-टेनरी (हज़ारी बगला) भी यहीं है । सरसैयाघाट के अन्तर्गत वास्तव में कई घाट हैं । इस के कुछ घाट तो ग़दर के पहले के हैं जो जेल की वर्तमान इमारत के पीछे हैं । इनमें से एक घाट का चित्र अन्यत्र दिया हुआ है । इन घाटों में पुराने गंगापुत्रों की जजमानी है जिनमें

से कुछ के परिवार जाजमऊ के उजड़ने पर यहाँ आकर ब
थे। जेल के पीछे गुज्जीमल गोटे वाले का घाट (जिस प
रामचन्द्र जी, लक्ष्मण जी और सीता जी का मंदिर है), फि
काश्मीरी घाट, तथा लखनऊ के शाह बिहारीलाल और लाल
ठंठीमल के घाट हैं। गऊघाट से लेकर ज़नानाघाट तक अ
एकही नमूने की सिलसिलेवार सीढ़ियाँ हैं जिन्हें हालसी साह
ने सरकारी सहायता तथा चन्दे से बनवाया था। प
पहले ये अलग-अलग घाट थे जिनमें से शाह बिहारीला
का ज़नाना घाट, भगवानदास रामनवमी वाले, ज्योतीप्रसा
खत्री, और रामरतन रामगोपाल (लाला विश्वम्भरना
ख़ज़ांची) के घाट मुख्य हैं। जहाँ आजकल ये घाट हैं वहाँ प
कहीं एक सेरसई का पेड़ था, जिसने इस घाट के नाम क
अमर कर दिया है। सरकारी भाग में सरसैया घाट व
जजमानी ४४ गंगापुत्रों के हाथ में है। गुप्तारघाट का सुधा
और निर्माण सब घाटों के अन्त में हुआ। इसे स० १६८६ :
स्वर्गीय लाला रामचन्द्र (रूपनारायण रामचन्द्र फ़र्म
मालिक) ने अपने पिता लाला छंगामल की स्मृति में बनवाया
अब यहाँ कई मन्दिर, एक तैराकी क्लब तथा अखाड़ा हैं
पहले यह कच्चा धोबीघाट था और लोगों का कहना
कि गुप्तार नामक धोबी के नाम को यह उजागर करता है
भगवद्दास घाट वर्तमान छावनी की सीमा के अंतर्गत है
इसका निर्माण पं० भगवद्दास गंगापुत्र ने ग़दर के बाद कराय
और इसके किनारे पर निर्मित शिव मंदिर के बाहरी ओ

ऊपर ताकों में किसी अँग्रेज़ अफ़सर और उसकी पत्नी की (सम्भवतः जनरल हैवलाक और उनकी पत्नी की) मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इन सब घाटों में आनंदेश्वरघाट और सरसैयाघाट की महिमा बहुत अधिक है। नगर के बाहर के स्नानार्थी अधिकतर सरसैयाघाट को ही तीर्थ मानते हैं। स्थिति भी इसकी बीचों बीच है। कचहरी तथा अन्य सरकारी दफ़्तर भी पास हैं। कुछ वर्षों तक ट्रामवे की लाइन भी स्टेशन से यहाँ तक आती थी। इससे इसकी लोकप्रियता और भी बढ़ गई। इस घाट के आसपास भी अब एक मुहल्ला आबाद हो गया है। यहीं पर स्वर्गीय गोकुल ठठेर का बनवाया हुआ धर्मशाला यात्रियों के लिए अत्यन्त सुविधाजनक स्थान है।

वर्तमान मुहल्लों की नामावली

सन् १८८५, में जब लाला दरगाहीलाल ने अपनी "तारीख़े-कानपुर" का प्रकाशन किया, नगर के मुहल्लों की संख्या ७१ थी। अब यह संख्या बहुत अधिक बढ़ गई है। नई आबादियों के क्षेत्र में वहाँ के निवासियों ने अपनी इच्छा से छोटे-छोटे टुकड़ों के नये नाम रख लिये हैं जिनमें से कुछ तो प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं और कुछ चल न पाये। किसी-किसी बस्ती के दो अथवा अधिक प्रतिद्वंद्वी नाम भी हैं। ऐसी गड़बड़ी में अनधिकृत नामों की काफ़ी भरमार है और यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि आजकल कानपुर और बृहत्तर कानपुर के अन्तर्गत कितने छोटे-बड़े मुहल्ले हैं।

नीचे हम म्यूनिसिपल सीमा के अन्तर्गत मुहल्लों की अधिकृत सूची देते हैं।

वार्ड नं० १—(सदरबाज़ार वार्ड)

हरवंशमोहाल, सीतारामपोहाल, गड़रियामोहाल, मोती-मोहाल, हूलागंज, कछियाना दौलतगंज, दानाखोरी, लोकमन-मोहाल, मथुरीमोहाल, तेलियाना, और शुतरखाना।

वार्ड नं० २—(पटकापुर वार्ड)

हिजड़ा-मोहाल, खेड़ेपतिबाबा लेन (चिड़ीमार गली), कुरसवाँ, रामनारायण बाज़ार, पटकापुर (जिसके अन्तर्गत बम्हनटोलिया, दोदेपुर, नाहरसिंह की गड़ैया, नासिर अली का छत्ता, तपेश्वरी देवी, अन्नपूर्णा की गली, जुमा मसजिद, तकिया, हलुवा-सोहन की गली आदि अनेक उपमोहाल हैं), कराचीखाना, रोटीगोदाम, शंकरगंज, बिरहाना, फ़ील-खाना, कोरियाना, चटाईमोहाल, इटावाबाज़ार, महेश्वरी-मोहाल, बेलदारीमोहाल, घुमनीमोहाल, बगिया मनीराम, पुरानी सब्ज़ीमंडी, गुदड़ीबाज़ार, लाठीमोहाल, सिरकीमोहाल।

वार्ड नं० ३—(नयागंज वार्ड)

नाचघर, नीलवाली गली, शतरंजीमोहाल, पुरानी दालमंडी, दालमंडी, पचकूचा, जनरलगंज, हटिया, छप्परमोहाल (कुछ भाग), बादशाही नाका, नौघड़ा, नयागंज, नहर पटरी, नयागंज गोला।

वार्ड नं० ४—(मोलगंज वार्ड)

मोलगंज, रोटी वाली गली, मछलीबाज़ार, कमालखाँ का हाता, छोटा बूचड़खाना, हालसी रोड, गयाप्रसाद-लेन, छप्पर-मोहाल, पुराना चकला, मनीराम बगिया (कुछ भाग), बिहारी जी की गली, भड़भड़िया मोहाल, चौक ठठराही, चौक सराफ़ा, परेड, मिसरीबाज़ार, मखनियाबाज़ार, मैदाबाज़ार, तोपख़ानाबाज़ार, रामगोला, मेस्टन रोड, हास्पिटल रोड, नया चौक, चौबेगोला, फ़राशख़ाना, बंगालीमोहाल, धोबी-मोहाल, ढपालीमोहाल, चूड़ीमोहाल, इटावाबाज़ार, गिलिस-बाज़ार, नरियलबाज़ार, बिसातख़ाना, पुर्बियामोहाल, खास-बाज़ार, प्रयागनारायण का मन्दिर, कैलाश, सवाईसिंह का हाता।

वार्ड नं० ५—(सिविल लाइन्स वार्ड)

बँगला-क्षेत्र, सरसैयाघाट, परमट।

वार्ड नं० ६ ए (ग्वालटोली वार्ड)

खलासी लाइन, तिलकनगर, ग्वालटोली, सूटरगंज।

वार्ड नं० ६ बी (नवाबगंज वार्ड)

पुराना कानपुर, नवाबगंज, स्वरूपनगर, आर्यनगर, मुहम्मदगंज, गुटैहा छोटा, गुटैहा बड़ा, गुटैहाबाज़ार, मन्नूपुरवा।

वार्ड नं० ७ (कर्नलगंज वार्ड)

बेगमगंज, कंघीमोहाल, मन्नापुरवा, खपड़ामोहाल, कर्नल-गंज (बजरिया, मीनामल का मन्दिर), बशीरगंज, बकरमंडी,

लोधौरा, तलाक़महल, कायस्थान रोड, खटिकाना, नज़ीरबाग़ [कुछ भाग], कल्लूमल का बाग़ीचा, बेहना म्ावर, जमुनिया-बाग़, चुन्नीगंज, चूड़ीमोहाल।

वार्ड नं० ८ (अनवरगंज वार्ड)

डिप्टी का पड़ाव, ग़ुरबतुल्ला का बाग़, बाँसमंडी, दलेल-पुरवा, इफ़्तिखाराबाद, फूलवाली गली, अनवरगंज, सड़ी गली, हीरामन का पुरवा, बेगमगंज [कुछ भाग], क़ासिमगंज, अमीनगंज, मुन्नालाल स्ट्रीट, चन्देश्वर का हाता, खटिकाना (कुछभाग), पेचबाग़, बूचड़खाना, टोक-निया-पुरवा, फ़र्राशख़ाना।

वार्ड नं० ९ (कलेक्टरगंज वार्ड)

कोपरगंज, लक्ष्मीपुरवा, बूचड़ख़ाना बड़ा, बकरमंडी, कुलीबाज़ार, गोलियाना, सब्ज़ीमंडी, रंजीतपुरवा, लच्छू बग़ीचा, धनकुट्टी, कलेक्टरगंज।

वार्ड नं० १० ए (सीसामऊ वार्ड)

डिप्टी का पड़ाव (कुछ भाग), फ़हीमाबाद, चमनगंज, शफ़ीआबाद, सऊदाबाद, प्रेमनगर, आनन्दबाग़, चमनगंज-कोरियाना।

वार्ड नं० १० बी (जवाहरनगर वार्ड)

जवाहरनगर, रामकृष्णनगर, घोसरामऊ, ब्रह्मनगर, रामबाग़, गान्धीनगर (कुछ भाग), पी रोड।

वार्ड नं० ११ (जुही वार्ड)

फ़ज़लगंज, भन्नानापुरवा, रायपुरवा, हीरागञ्ज, डिप्टी का पड़ाव (कुछ भाग), देवनगर, रायपुरवा, नरायनपुरवा, अफ़ीम की कोठी, कार्वलहोनगर, जुही खुर्द, परमपुरवा ।

वार्ड नं० १२ (दर्शनपुरवा वार्ड)

[१] दर्शनपुरवा, रामनगर, भगवाननगर, नसीमाबाद, मानसिंह रोड, जूटमिल रोड, बम्बारोड, अस्सी-फ़िट रोड, कृष्णनगर, सत्यनगर, गुरदीन-मार्केट, ओम्नगर [२] कैलाशपुरी, कमलानगर, कुंजविहार, बंबारोड [कुछ भाग], हनुमान पार्क, सुन्दरनगर [३] फ़ज़लगञ्ज, मसजिद वाली गली, फ़ज़लगञ्ज बाज़ार ।

वार्ड नं० १३ (बाबूपुरवा वार्ड)

बाबूपुरवा, गढ़ा, बाराह देवी, रत्तूपुरवा, ढकनापुरवा, जाटनपुरवा, मुन्शीपुरवा, बाबूपुरवा, बेगमपुरवा, बाक़रगञ्ज, जीतगञ्ज, बगाही, नयापुरवा, बुद्धपुरी ।

दसवाँ अध्याय

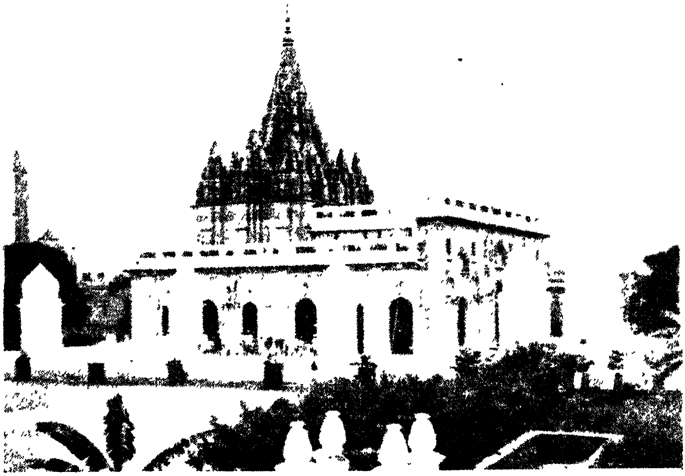
कानपुर की जन-संख्या

कानपुर-नगर—

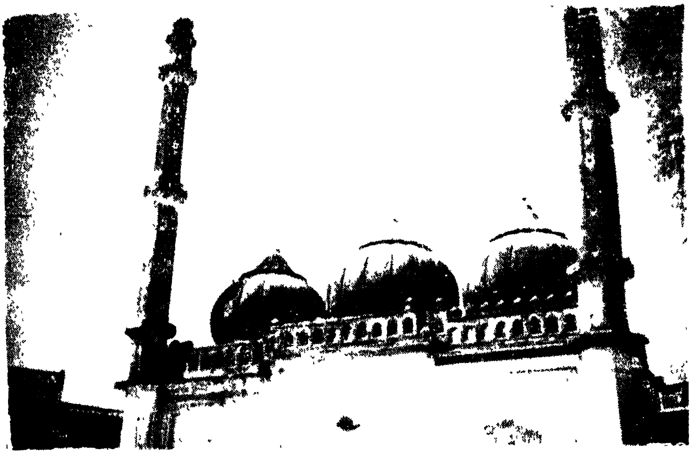
कानपुर भारतवर्ष में इस समय औद्योगिक महत्व की दृष्टि से प्रथम श्रेणी का नगर है। सन् १९३१ से इसका विस्तार तेजी से हो रहा है और युद्ध-काल में तो इसकी महान् आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। इसके निम्न दो प्रमुख कारण हैं :—

(अ) यह भारत के विभिन्न सीमांतों से प्रायः समान दूरी पर है। बंबई से यह ८४० मील, खैबर दर्रे से ९४० मील तथा आसाम से भी प्रायः इतनी ही दूर है। अतः युद्ध-काल में एक सुरक्षित सप्लाई-केन्द्र के रूप में इसका महत्व बढ़ गया।

(ब) भारत के प्रायः सभी भागों से इसका सड़क, रेल तथा वायुयानों द्वारा सीधा संबन्ध है।



कैलास-मंदिर (पृष्ठ १८९)



बंगालीमुहाल की मसजिद

कानपुर-नगर का विस्तार लगभग २० वर्गमील के इर्द-गिर्द में है। इसमें छावनी-क्षेत्र का क्षेत्रफल ६·२ वर्गमील और म्यूनिसिपल क्षेत्र का क्षेत्रफल ८.७ वर्गमील है जो अब जुही नोटीफ़ाइड एरिया के इसमें मिला दिये जाने के कारण लगभग १०·६७ वर्गमील हो गया है। युद्ध-काल में नगर के आसपास होने वाले विस्तार को देखते हुए नगर का क्षेत्रफल २० वर्ग मील के लगभग पहुँच जाता है।

जन-संख्या का क्रमिक विकास

सब से पहले सन् १८४७ में जन-गणना हुई। इसके अनुसार नागरिक क्षेत्र की आबादी ५८,८२१ और छावनी की ४६,६७५ थी जिसमें योरोपियनों और फ़ौजियों की संख्या शामिल नहीं थी। सन् १८५३ में कुल जन-संख्या १,१८,००० थी, पर सन् ५७ की गड़बड़ी के परिणामस्वरूप सन् १८६५ की गणना में कुल १,१३,६०१ व्यक्ति निकले। सन् १८७२ में यह संख्या बढ़कर १,२२,७७० और १८८१ में १,५१,४४४ हो गई।

कानपुर-नगर की जनसंख्या सन् १८६१ में १,६४,०४८ थी। सन् १६०१ में वह बढ़कर २,०२,७६७ होगई। किन्तु १६११ में वह घट कर १,७८,५५७ रह गई। इस समय प्लेग के कारण बहुत से लोगों की मृत्यु हो गई थी तथा बहुत से लोग शहर ख़ाली कर चले गये थे। सन् १६२१ की गणना के अनुसार आबादी पुनः बढ़ कर २,१६,४३६ हो गई। सन् १६३१ में आबादी २,४३,७५५ थी। सन् १६४१ की जन-गणना में पता

चला कि १० ही साल के भीतर नगर की आबादी बढ़ कर दूनी हो गई है। इस समय नगर की आबादी ४,८७,३२४ थी और इस प्रकार १० साल के भीतर ६६.६ प्रतिशत की वृद्धि हुई। युद्ध-काल में यह आबादी और भी अधिक आश्चर्यजनक रूप से बढ़ गई। राशनिंग विभाग की गणना के अनुसार सन् १९४७ में जन-संख्या बढ़ कर ८,७६,४१६ हो गई। सन् १९३१ और ४१ के बीच युक्त-प्रांत के प्रमुख नगरों की जन-संख्या की वृद्धि का औसत निम्न था:—कानपुर १०० प्रतिशत, लखनऊ ४१ प्रतिशत, आगरा २३.६ प्रतिशत, इलाहाबाद ४१.४ प्रतिशत तथा बनारस २८ प्रतिशत। इस प्रकार सन् १९३१ और १९४१ के बीच कानपुर की जन-संख्या दूनी होगई और उसके बाद अगले ५-६ वर्षों में फिर उसकी दूनी हो गई। अगले ५० वर्षों के भीतर कानपुर की आबादी की संभावित वृद्धि के सम्बन्ध में सन् १९१२ में जो अधिक से अधिक अनुमान लगाया गया था वह २॥ लाख का था। इसी आधार पर नगर में वाटर वर्क्स, बिजली तथा म्यूनिसिपैलिटी द्वारा सफ़ाई आदि का सारा प्रबन्ध किया गया था जो अब नगर की द्रुतगति से वृद्धि होने के कारण पूर्णतया अपर्याप्त प्रमाणित हो रहा है।

घनत्व

कानपुर-नगर के म्यूनिसिपल क्षेत्र में आबादी का घनत्व प्रति वर्गमील ७१,३६० तथा प्रति एकड़ १११.५ व्यक्ति है। सन

१६३१ में प्रति वर्गमील केवल २४,७५४ तथा प्रति एकड़ ३६ व्यक्ति रहते थे। छावनी-क्षेत्र में यह औसत प्रति वर्गमील ६८८५ तथा प्रति एकड़ १७.६ है। किन्तु छावनी तथा शहर दोनों ही जगह उनके सभी भागों में आबादी एक सी नहीं है। नगर के कुछ भाग दूसरे भागों की अपेक्षा बहुत घने बसे हुए हैं।

कानपुर-नगर का पुराना भाग जिसमें पटकापुर, नयागंज, मूलगंज, तथा सदरबाज़ार वार्ड का पूरा भाग तथा हालसी-रोड के किनारे पड़ने वाला कलेक्टरगंज का कुछ हिस्सा तथा तलाक़महल, बेकनगंज, कर्नलगंज तथा पुराने सीमामऊ की आबादी शामिल है, नगर का सबसे घना बसा हुआ भाग है। उपर्युक्त भाग का कुल क्षेत्रफल १॥ वर्गमील है जो नगर के कुल क्षेत्रफल का ६$\frac{1}{4}$ प्रतिशत है। इस भाग की कुल आबादी ३ लाख ५४ हज़ार ८७० है अर्थात् कुल जनसंख्या का ३७ प्रतिशत है। इन मुहल्लों के प्रत्येक चक में जन-संख्या का औसत प्रति एकड़ पीछे ३०० से अधिक ही पड़ता है। ५०० व्यक्ति प्रति एकड़ से अधिक वाले भाग निम्न हैं :—पटकापुर (चक नं० १६ तथा २०), ठठराई (चक ३३), मैदाबाज़ार (चक ६६), घासमंडी (चक ५०), हरवंशमुहाल (चक ६२), गड़रियामुहाल, मोतीमुहाल तथा कछियाना मुहाल (चक ६४ से ६८ तक), दानाख़ोरी (चक ६६), अनवरगंज (चक ७८), बूचड़खाना (चक ८१), तलाक़महल (चक ६७) तथा कर्नलगंज (चक १०२)। बंगालीमुहाल (चक ३५) में यह औसत ७११ व्यक्ति प्रति एकड़ है। रंजीतपुरवा (चक ७३)

में यह औसत ७३१.४ प्रति एकड़ है। सबसे घनी आबादी मथुरीमोहाल (चक नं० ७०) में है। इस चक में प्रति एकड़ पीछे ८२७ व्यक्ति निवास करते हैं। सबसे कम आबादी असली छावनी में है। यहाँ प्रति एकड़ में केवल ४.८ व्यक्तियों का औसत पड़ता है। छावनी के शेष घने भाग रेलबाज़ार, फ़ेथफ़ुलगंज आदि में यह औसत १७.६ है। नगर के शेष भागों में यह औसत निम्न प्रकार है:—सिविल लाइन्स—४६, जुही तथा नगर के दक्षिण का भाग—५३, तथा नया शहर जिसमें गांधीनगर, सीमामऊ तथा अन्य नये बसे हुए भाग सम्मिलित हैं—१६१।

मकानों की संख्या

कानपुर-नगर में मकानों की कुल संख्या सन् १६४१ में ३२,६६३ थी। सन् १६२१ में यह संख्या कुल २१,५७२ थी। किंतु इस संबंध में मज़े की बात यह है कि सन् १६३१ के बाद १७ वर्षों के भीतर जब नगर की जनसंख्या में २६१ प्रतिशत की वृद्धि हुई मकानों की वृद्धि केवल ५२.७ प्रतिशत ही हो पाई। ऐसी दशा में कानपुर में स्थानाभाव क्यों न हो? मकानों की दृष्टि से सबसे अधिक घना मुहल्ला मूलगंज है। यहाँ प्रति एकड़ पीछे १७.८ मकान हैं इसके बाद क्रमशः नयागंज तथा पटकापुर का नंबर आता है यहाँ एक बात और उल्लेखनीय है कि समूचे सदरबाज़ार वा में यह औसत ६.२ पड़ता है, परन्तु इस वार्ड की चक नं० ७२ मे जिसमें वार्ड के २४६ एकड़ क्षेत्रफल का १२८ एकड़ भाग शामि

हैं, केवल २० मकान हैं। वार्ड के शेष २२४४ मकान बाक़ी क्षेत्रफल में है जिससे आबादी अत्यधिक घनी हो गई है और मकानों का औसत १६ से भी अधिक हो जाता है।

मकानों का सबसे कम औसत छावनी में हैं। यहाँ प्रति एकड़ पीछे केवल .७ मकान हैं। सिविल लाइन्स में यह औसत १.६ है।

मूलगंज, नयागंज, पटकापुर तथा सदरबाजार वार्डों में मकानों की संख्या तथा वहाँ के क्षेत्रफल की तुलना करने पर, जब कि सड़कों, पार्कों, स्कूलों, पुस्तकालयों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों में घिरी हुई जगह को न जोड़ा जाय, तो २८४ वर्गगज़ पीछे एक मकान का औसत पड़ता है। इन २८४ वर्गगज़ों में औसत रूप से २५ व्यक्ति अथवा ८ से १० तक परिवार रहते हैं।

इस प्रकार प्रति परिवार पीछे जगह का यह औसत केवल ३५ से ४० वर्गगज़ के लगभग पड़ता है, जब कि स्वास्थ्य की दृष्टि से ३ से ५ व्यक्तियों तक के प्रति परिवार के लिए १५० से २०० वर्गगज़ तक जगह होनी चाहिए।

कानपुर में जन-संख्या की यह वृद्धि नगर में अधिक बच्चे उत्पन्न होने से नहीं हुई। इसके विपरीत कानपुर में पैदा होने वालों की अपेक्षा मरने वालों की ही संख्या अधिक है। सन् १६४४ के ३१ मार्च को समाप्त होने वाले वर्ष में नगर में कुल ११,६६१ बच्चे उत्पन्न हुए और १४,३६७ व्यक्ति मरे। नगर की जन-संख्या की वृद्धि का मुख्य कारण बाहर से आने वाले लोग हैं।

कानपुर-ज़िला की जन-संख्या

यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि सन् १८०१ में जब कानपुर-ज़िला कम्पनी की हुकूमत में आया तो उसकी जनसंख्या क्या थी। पर सन् १८०७ में जब मि० मांटगोमरी ने यहाँ पहले पहल जन-गणना कराई तो समस्त ज़िले की जन-संख्या ६,६३,०३१ निकली, जिसका घनत्व ४१८ प्रति वर्गमील था। जाजमऊ (कानपुर) तहसील में यह घनत्व सबसे अधिक और सिकन्दरा में सबसे कम था। इनके मध्य में शिवराजपुर, बिल्हौर और नर्वल क्रमानुसार थे। उस समय कानपुर-नगर के अतिरिक्त बिठूर, अकबरपुर, सचेंडी, बिपोसी (नजफ़गढ़), बिल्हौर, रसधान और ज्योरा-नवाबगंज की जन-संख्या ५००० के ऊपर थी।

सन् १८५३ में मि० ग्रेटहेड द्वारा आयोजित जन-गणना में समस्त ज़िले की जन संख्या ११,७४,५५६ पाई गई। गत ६ वर्षों में इस प्रकार जन-संख्या में १८-२६ प्रतिशत वृद्धि हुई। घनत्व का औसत प्रति वर्गमील में ४६३ था। गंगा के किनारे वाले परगनों में यह औसत ५०० के ऊपर और यमुना के किनारे वाले परगनों में ३५० से कम था। ५००० से अधिक जन-संख्या वाले स्थान कानपुर के अतिरिक्त बिठूर, अकबरपुर, सचेंडी, बिल्हौर, ज्योरा-नवाबगंज और शिवली थे।

सन् १८६५ की गणना के अनुसार ज़िले की आबादी ११,६२,८३६ थी और घनत्व ५०० प्रति वर्गमील था। यह

कानपुर तहसील में १००६, शिवराजपुर में ५६०, बिल्हौर में ५३० और नर्वल में ४६८ था। अन्य तहसीलों में औसत से कहीं नीचा घनत्व था। भोगनीपुर में सबसे कम ३६५ था। ५००० से अधिक जन-संख्या के स्थान कानपुर के अतिरिक्त बिठूर, अकबरपुर, बिल्हौर, सचेंड़ी और काशीपुर थे। काशीपुर की क्षणिक वृद्धि आश्चर्यजनक थी।

सन् १८७१ की गणना अधिक पूर्ण और सही मानी जाती है। इसके अनुसार समस्त ज़िले की आबादी केवल ११,५६,०५५ निकली। इस आश्चर्यजनक अवनति का कारण शायद यही था कि पुरानी गणनायें बहुत कुछ अटकलपच्चू ही थीं और यह गणना अधिकांश में विश्वस्त थी। इस गणना के अनुसार ज़िले की आबादी के घनत्व का औसत ४८५ था। कानपुर-तहसील में यह औसत ६४४, बिल्हौर में ५२०, शिवराजपुर में ५१४, नवल में ४५५ और घाटमपुर में सब से कम ३६२ था। कानपुर के अतिरिक्त अब केवल बिल्हौर ही की आबादी ५००० के ऊपर पाई गई।

सन् १८८१ में ज़िले की जन-संख्या ११,८१,३६६ और घनत्व का औसत ४६६ प्रति वर्गमील था। कानपुर तहसील का औसत १,०२२, शिवराजपुर का ५४६ और बिल्हौर का ५४३ था। और सब तहसीलों का घनत्व ज़िले के औसत से कम था। घाटमपुर का औसत ३३४ और भोगनीपुर का केवल ३१३ था। ५००० से अधिक आबादी के क़स्बे बिठूर, बिल्हौर और अकबरपुर थे।

सन् १८९१ में समस्त जन-संख्या बढ़कर १२,०९, ६९५ हो गई और घनत्व बढ़कर ५०७ पहुँच गया। कानपुर-तहसील में यह औसत ११४७, बिल्हौर में ५४१, शिवराजपुर में ५३५, और शेष तहसीलों में औसत से नीचे था। भोगनीपुर और घाटमपुर तहसीलों का औसत घनत्व बढ़कर ३४६ और ३४४ हो गया। ५००० के ऊपर अब केवल दो ही क़स्बे बिल्हौर और बिठूर रह गये।

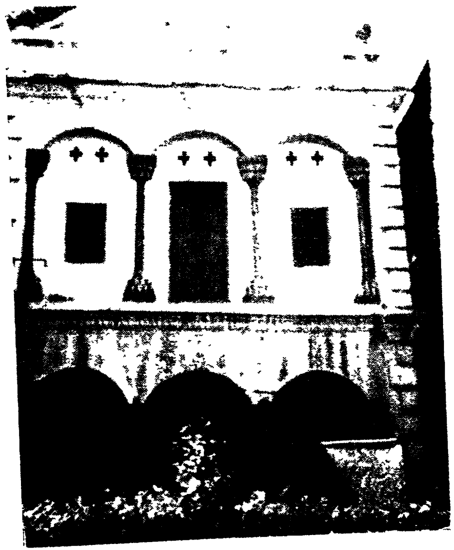
सन् १९०१ की गणना के हिसाब से ज़िले की आबादी १२, ५८, ८६८ तक पहुँच गई। ज़िले के घनत्व का औसत अब ५२८ हो गया, कानपुर-तहसील का ११९६ और शिवराजपुर-तहसील का ५३६। अन्य तहसीलें औसत से कम थीं। बिल्हौर का औसत घटकर ४५३ हो गया। यमुना के किनारे की तहसीलों का घनत्व बढ़ गया। बिठूर और बिल्हौर ही की जन-संख्या ५००० के ऊपर थी।

१९११ की जन-गणना में ज़िले की आबादी घटकर ११, ४२, २८९ हो गई, जिसका कारण वर्षों से प्लेग का भीषण प्रकोप और दुर्भिक्ष था। इसका परिणाम यह हुआ कि गत ३० वर्षों की क्रमिक वृद्धि को बुरी तरह ठेस लगी। कानपुर-नगर का भी यही हाल हुआ। अन्य बातों में इस गणना से कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। १९२१ में ज़िले की आबादी ११, ४८, ६६४ और १९३१ में १२, १२, २५३ तक फिर बढ़ी, जो सन् १८९१ की गणना से कुछ ही अधिक थी।

सन् १९४१ की गणना के अनुसार कानपुर-ज़िले की समस्त



जैन-मंदिर, जनरलगंज



चौक का सिक्ख गुरुद्वारा

जन-संख्या १५,५६,२४७ थी जिसमें ४,९७,५७५ शहर में और १०,५८,६७२ देहाती क्षेत्रों में रहते थे। इस संख्या में से ८,७५,६६७ पुरुष और ६,८०,५८० स्त्रियाँ हैं। ३,०२,०७२ पुरुष व १,९५,५०३ स्त्रियाँ शहर में तथा ५,७३,५९५ पुरुष और ४,८५,०७७ स्त्रियाँ देहात में रहते थे। परन्तु सन् १९४१ की उक्त गणना के बाद युद्ध-काल में कानपुर-शहर की जन-संख्या में महान् परिवर्तन हो गया है। राशनिंग विभाग द्वारा की गई गणना के अनुसार सन् १९४७ में कानपुर नगर की जन-संख्या ९ लाख के लगभग हो गई है। इस प्रकार कानपुर-ज़िले व नगर की सम्मिलित आबादी २० लाख के लगभग पहुँच गई है। कानपुर-नगर में आबादी की इस आश्चर्यजनक वृद्धि का कारण युद्ध-काल में यहाँ उद्योगों का विस्तार है। कल-कारख़ानों में काम करने के लिए आसपास के ज़िलों से लाखों की संख्या में लोग यहाँ आगये। इस समय आबादी की दृष्टि से कानपुर युक्तप्रांत का सब से बड़ा नगर है। कानपुर-ज़िले का क्षेत्रफल २,३७२ वर्गमील है। इस प्रकार प्रति वर्गमील में सन् १९४१ की जन-गणना के अनुसार जन-संख्या का औसत ६५६ है। प्रांत के कुछ प्रमुख ज़िलों तथा कानपुर के आसपास के कुछ ज़िलों का औसत निम्न है:—इलाहाबाद ६४८, लखनऊ ९७३, रायबरेली ६०३, फ़तेहपुर ४९८, फ़र्रुख़ाबाद ५८२, इटावा ५२६, उन्नाव ५४५, जालौन ३०३, हमीरपुर २२६, तथा बाँदा २४८। क्षेत्रफल की दृष्टि से कानपुर के पास के हमीरपुर तथा इलाहाबाद के ज़िले इससे बड़े हैं।

आबादी के घनत्व के हिसाब से कानपुर-ज़िला प्रांत भर में १६ वें स्थान में, इलाहाबाद कमिश्नरी में प्रथम और आसपास के सभी ज़िलों से ऊपर है। केवल लखनऊ इससे बहुत ऊपर है। बनारस का स्थान सूबे भर में प्रथम और लखनऊ का द्वितीय है।

सन् १९४१ की जन-गणना के अनुसार कानपुर-ज़िले में जातियों की दृष्टि से आबादी निम्न प्रकार थी :—

(१) हिंदू:—पुरुष—७,५२,१५० स्त्री—५,९०,४२९, कुल १३,४२,५७९। इनमें शेड्यूल्ड जाति के लोगों की संख्या ३,४२,६४८ थी।

(२) मुसलिम:—पुरुष—१,१६,२५५, स्त्री—८५,१३७, कुल २,०१,३९२।

(३) ईसाई:—पुरुष—३,३६९, स्त्री—२,४५०, कुल ५,८१९। इनमें एंग्लो-एंडियन ५३५ तथा यूरोपियन १,०६५ थे।

(४) सिक्ख:—पुरुष—२,५८९, स्त्री—१,५१७, कुल ४,१०६

(५ जैन:—पुरुष—५१५, स्त्री—४३०, कुल ९४५।

(६) पारसी:—पुरुष—११४, स्त्री—८२, कुल १९६।

(७) बौद्ध: पुरुष २६, स्त्री—१३ , कुल ३९।

(८) यहूदी:—पुरुष—४, स्त्री—०, कुल ४।

(९) आदिवासी (इनमें से कई जातियाँ शेड्यूल्ड जातियों में सम्मिलित कर दी गई हैं) :—पुरुष—६०३ स्त्री—४८०, कुल—१,०८३।

(१०) अन्य:—पुरुष—४२, स्त्री—४२, कुल ८४।

क़स्बे

इस ज़िले में कुल २ शहर या क़स्बे हैं और १६७७ गावँ हैं। ५०० से नीचे की आबादी वाले गावँ १२१५; ५०० से १००० के बीच की आबादी के गावँ ५०२; १००० व २००० के भीतर की आबादी वाले गावँ २०७; २००० और ५००० के भीतर की आबादी वाले गावँ ५४; तथा ५००० और १०००० के भीतर की आबादी वाले क़स्बे २ हैं।

इस ज़िले में कानपुर-नगर के अतिरिक्त अब केवल बिल्हौर ही की जन संख्या ५,००० के ऊपर है। अन्य क़स्बों— बिठूर, अकबरपुर, बिपोसी, काशीपुर, रसधान, सचेंडी, शिवली आदि को कानपुर-रूपी दानव ने धीरे धीरे क्षीण कर दिया। आसपास के ज़िलों के ऊपर भी यही प्रभाव पड़ा है। फिर भी अन्य ज़िलों में अच्छे ख़ासे क़स्बे हैं, जैसे, कालपी, कोंच, महोबा, बिंदकी, औरैया, कन्नौज आदि। कानपुर में केवल बिल्हौर ही की जन-संख्या ५,३२१ है। बिल्हौर के बाद बिठूर की जन-संख्या २,५४३ और झींझक की २,३८७ है। बिठूर का क्रमिक पतन ध्यान देने योग्य है। सन् १८१६ तक यहाँ ज़िले की कचहरियाँ थीं और सन् १८५७ तक इसका ऐश्वर्य उच्च था, पर नाना साहब के पतन के बाद से बिठूर की महिमा का भी क्षय होता गया। फिर भी अभी तक ज़िले के क़स्बों में इसकी जन-संख्या केवल बिल्हौर से ही कम है। झींझक अब आगे बढ़ रहा है और यदि डेरापुर-तहसील का यह सदर मुक़ाम बन गया, तो यह शीघ्र अपनी व्यापारिक उन्नति के

कारण आबादी में बिल्हौर की समता करने लगेगा। झींझक के अतिरिक्त इस ज़िले की ग़ल्ले वाली अन्य मंडियाँ, रूरा, पुखरायाँ आदि अभी आबादी में बहुत पीछे हैं, यद्यपि रेल के अतिरिक्त इन दोनों मंडियों को पक्की सड़क की भी सुविधा है। झींझक रेल के किनारे तो है, पर कोई पक्की सड़क वहाँ तक नहीं जाती।

तहसीलों की जन-संख्या

नीचे की सारिणी में ज़िले की वर्तमान तहसीलों के क्षेत्रफल और जन-संख्या का विवरण दिया जाता है।

तहसील	क्षेत्रफल (वर्गमील)	जन-संख्या	गावँ-संख्या
१. अकबरपुर	३७०	१,६,५,२७६	३६३
२. भोगनीपुर	३७६	१,६७,७२६	३१८
३. बिल्हौर	३६२	१,६०,४८६	४१३
४. कानपुर	३८५	६,६३,०६८	३२६
५. डेरापुर	४०४	१,८३,३५४	३२५
६. घाटमपुर	४२६	१,८६,३३७	३०२
समस्त ज़िला	२,३५६	१५,५६,२४७	१,६७७

इस प्रकार बिल्हौर की तहसील जन-संख्या में कानपुर-तहसील से दूसरे नम्बर में, और यदि कानपुर-नगर की जन-संख्या अलग कर दी जाय, तो बिल्हौर-तहसील ही आबादी में सबसे अधिक है। घाटमपुर तहसील क्षेत्रफल के हिसाब से सबसे बड़ी है और जन-संख्या के विचार से बिल्हौर के बाद आती है। क्षेत्रफल और जन-संख्या दोनों की दृष्टि से अकबरपुर की तहसील ही सबसे छोटी है। गावों की संख्या भी इसी में सबसे कम है और बिल्हौर में सबसे अधिक। सन् १९४१ की जन-गणना-रिपोर्ट युद्धजनित कठिनाइयों के कारण इतनी संक्षिप्त निकली है कि अन्य वर्षों की रिपोर्टों की भाँति उसमें अन्य उपयोगी विषयों की तालिकायें नहीं दी जा सकीं। सम्भव है १९५१ की जन-गणना की रिपोर्ट अधिक पूर्ण हो।

ग्यारहवाँ अध्याय

अंग्रेज़ी शासन का विकास

ग़दर के पूर्ववर्ती तथा परवर्ती काल में शासन-संबन्धी परिवर्तन भी उल्लेखनीय हैं। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है प्रारम्भ में कलेक्टर, जज व मैजिस्ट्रेट के अधिकार एक ही अफ़सर के हाथ में थे। किन्तु बाद में इन पदों को विभक्त कर दिया गया। सन् १८४३ से कलेक्टर तथा मैजिस्ट्रेट के अधिकार एक ही अफ़सर के हाथ में आगये। सन् १८३२ से काम की अधिकता के कारण एक अतिरिक्त कलेक्टर की नियुक्त पहले ही हो चुकी थी। सन् १८३३ से कलेक्टर की सहायता के लिए हिन्दुस्तानी डिप्टी कलेक्टर नियुक्त हुए। दीवानी के छोटे-छोटे मुक़दमे करने के लिए सन् १८०१ से ही दो सदर अमीन नियुक्त हुए थे। पहला मुफ़्ती कहलाता था जो मुस-लिम शरअ की रू से और दूसरा पंडित जो हिंदू धर्म-शास्त्र के

अनुसार शादी–विवाह, जायदाद आदि के मुक़दमे तय करता था। इन्हें कोई वेतन न दिया जाता था पर अदालती स्टाम्प से जो आय होती थी वही इन्हें मिल जाती थी। सन् १८१७ में कन्नौज व ठठिया तथा औरैया व सिकन्दरा के इलाक़ों के लिए प्रथम बार मुन्सिफ़ों की नियुक्ति हुई। १८१८ में तीसरा और १८२६ में चौथा सदर अमीन भी रक्खा गया। १८२४ से इन सभी अफ़सरों को नियमित रूप से वेतन मिलने लगा। १८३२ से इस योजना में कुछ परिवर्तन किया गया। इस वर्ष से एक सदर-आला नियुक्त किया गया जिसे ५००० रु० तक के मुकदमे करने का अधिकार मिला। एक सदर अमीन होता था जिसे १००० रुपये तक के मामले करने का अधिकार था। इनके अतिरिक्त कानपुर, गजनेर, शिवराजपुर और रसूलाबाद में एक-एक मुंसिफ़ रहने लगा, जो तीन सौ रुपये तक के मुक़दमे कर सकता था। १८३८ में मुंसिफ़ों की संख्या बढ़ कर ५ हो गई। १८४६ में कानपुर नगर व छावनी के लिए एक, जाजमऊ व बिठूर के परगनों के लिए दूसरा अकबरपुर-घाटमपुर व साढ़-सलेमपुर के लिए तीसरा, भोगनीपुर, सिकन्दरा व डेरापुर के लिए चौथा, तथा रसूलाबाद, बिल्हौर व शिवराजपुर के परगनों के लिए पाँचवाँ मुंसिफ़ रक्खा गया।

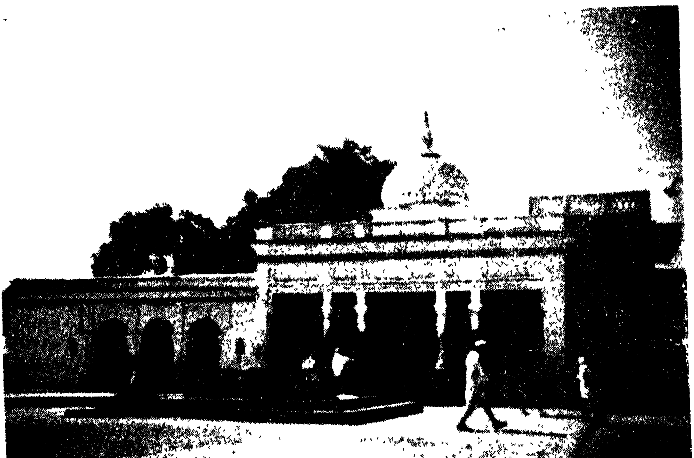
सन् १८२६ में कोड़ा-अमौली का परगना उसी साल बने हुए फ़तेहपुर के नये ज़िले में मिला दिया गया था, और सन् १८३६ में औरैया व कन्नौज के परगने फ़र्रुख़ाबाद-ज़िले में

सम्मिलित कर दिये गये। ठठिया व तिर्वा के परगने भी, जो सन् १८१७ में इटावा से निकाल कर कानपुर में मिलाये गये थे, सन् १८३६ में फ़र्रुखाबाद ज़िले में जोड़ दिये गये। इसलिए सन् १८४६ के बंदोबस्त में इनकी चर्चा नहीं है।

सन् १८३६ से कचहरी में उर्दू का प्रयोग आरंभ हुआ। सन् १८४३ में माल व दीवानी की सदर अदालत तथा पश्चिमी ज़िलों का बोर्ड आफ़ रेवेन्यू इलाहाबाद से आगरा चले गये। सन् १८५० में सर विलियम म्योर ने शिक्षा-विभाग क़ायम किया। उनकी योजना के अनुसार हर तहसील के सदर मुक़ाम में एक स्कूल खुला और जिले के लिए एक निरीक्षक नियत हुआ। १८६२ में कानपुर-जिले की मुंसिफ़ी नं० ४ समाप्त कर दी गई और उसका क्षेत्र नं० ३ में सम्मिलित हो गया। सन् १८६७ में मुंसिफ़ी नं० ५ को तोड़ कर कानपुर में मिलाया गया। बाद को कानपुर व अकबरपुर दो ही मुंसिफ़ी रह गईं। अब से कुछ ही वर्ष पूर्व अकबरपुर के मुंसिफ़ की अदालत कानपुर ही उठकर आ गई, यद्यपि ज़िला अब भी दो मुंसिफ़ियों में ही विभक्त है। बिठूर का परगना १८६० में तोड़ दिया गया और सिकंदरा सन् १८६१ में। १८६४ में जब रसूलाबाद की तहसील भी टूट गई, तो केवल ८ तहसीलें बच रहीं। इनमें से जाजमऊ की तहसील का सदरमुक़ाम पहले ही से कानपुर में था। कुछ समय बाद इस तहसील का नाम बदल कर कानपुर ही हो गया। साढ़ व सलेमपुर दोनों को मिला कर सन् १८४३ में नरवल की



वाराहदेवी का मंदिर (जुही)
(पृष्ठ १८१)



वनखंडेश्वर का मंदिर (सीसामऊ)
(पृष्ठ १५०)

तहसील बनी। सन् १८६३ में हमीरपुर के ज़िले को भी कानपुर की जजी में मिला दिया गया। इसी वर्ष आबकारी के ५ हलक़े नवाबगंज, शिवराजपुर, रसूलाबाद, डेरापुर और घाटमपुर बनाये गये। सन् १९११ में शिवराजपुर व नरवल की तहसीलें तोड़ दी गईं।

अब केवल कानपुर, बिल्हौर, डेरापुर, अकबरपुर, भोगनीपुर और घाटमपुर ये ६ तहसीलें ही रह गई हैं। प्रत्येक तहसील के लिए अब एक डिप्टी कलेक्टर है। कलेक्टर की सहायता के लिए एक अतिरिक्त कलेक्टर है। डिस्ट्रिक्ट और सेशंस जज के मातहत कई सिविल जज, खफ़ीफ़ा (सदर आला) आदि हैं। कुछ आनरेरी मैजिस्ट्रेटों की अदालतें भी हैं।

पुलिस-विभाग

पुलिस के प्रबन्ध के लिए अवध की अमलदारी में आमिल ही, जो ज़िले का अधिकारी होता था, शान्ति क़ायम रखने का ज़िम्मेदार था, पर गावों के ज़मींदार मुखिया की हैसियत से अपने हलक़े का प्रबन्ध करते थे। ब्रिटिश राज्य क़ायम होने पर पहले पहल तहसीलदारों के ही ज़िम्मे अपनी तहसीलों में शांति क़ायम रखने का भार पड़ा। पर यह योजना सफल न हुई। लूट, मार, चोरी, डाका आदि की रोक-थाम न हो सकी। सन् १८०७ में यह ज़िम्मेदारी तहसीलदारों के हाथ से निकल कर मैजिस्ट्रेट के हाथ में आ गई और सारा ज़िला कुछ थानों में विभक्त कर दिया गया।

प्रत्येक थाने का अफ़सर थानेदार या दारोग़ा कहलाता था। उसे केवल २५) मासिक वेतन मिलता था। चोरी का माल बरामद करने तथा क़त्ल आदि का पता लगाने में उसे कुछ इनाम मिलता था। परन्तु यह प्रबन्ध भी असफल रहा। सन् १८१७ में मि० राबर्ट्सन ने, जो उस समय यहाँ के मैजिस्ट्रेट थे, प्रत्येक सड़क में ३-४ मील की दूरी पर एक 'मरहला' क़ायम किया जिसे आजकल की भाषा में चौकी कहते हैं। इन मरहलों में ३-४ चौकीदार रहते थे जो सड़कों पर चलने वाले यात्रियों की डाकुओं तथा लूटमार करने वालों से रक्षा करते थे। इन मरहलों के भग्नावशेष अब भी कुछ स्थानों में देखे जा सकते हैं। इस प्रथा से भी कुछ लाभ न हुआ। १८२४ में गावों की पुरानी चौकीदारी-प्रथा भी मिटा दी गई और उसके स्थान में 'रसदबन्दी' प्रथा क़ायम हुई, जिसके अनुसार प्रत्येक किसान को गावँ की रक्षा के लिए चंदा देना पड़ता था। सन् १८३३ में यह प्रथा भी समाप्त कर दी गई। अब वेतन पाने वाले पहरेदारों के स्थान में गावँ के ही निवासियों का ४-५ की टोली में पहरा बाँध दिया गया और चोर-डाकुओं के आने पर घंटे या नगाड़े की आवाज़ होने पर गावँ के सभी लोगों के एक नियत स्थान में एकत्र होने का नियम बनाया गया। यह प्रथा बहुत अच्छी थी परन्तु कुछ वर्षों बाद यह भी मिट गई। १० वर्ष बाद सन् १८४२ में प्रत्येक तहसील में एक थाना क़ायम हुआ। सचेंड़ी में एक थाना और स्थापित किया गया। इन १२ थानों के अतिरिक्त ३५ जगहों में चौकियाँ क़ायम हुईं।

तहसीलदारों को फिर पुलिस के निरीक्षण का अधिकार मिला। इन सुधारों का परिणाम अच्छा हुआ। परन्तु फिर भी पुलिस-प्रथा में अनेक दोष बने रहे। सन् १८५७ व ५८ के विद्रोह में सरकार के पास यही उपहास्य पुलिस-दल था।

सन् १८६१ के भारतीय पुलिस क़ानून के अनुसार पूरे प्रांत के लिए एक संगठित पुलिस-दल नियुक्त हुआ। कई नये थाने क़ायम हुए। कानपुर-नगर को ५ थानों में बाँटा गया तथा ६ तहसीलों के सदर मुक़ामों के अतिरिक्त शिवली, चौबेपुर, ककवन, रसूलाबाद, मंगलपुर, सिकंदरा, मूसानगर, सजेती, गजनेर, साढ़ तथा महाराजपुर में भी थाने क़ायम किये गये। इन थानों व चौकियों की सीमा व संख्या में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे हैं। चौबेपुर का थाना बिठूर चला गया और साढ़ वाला थाना तोड़ दिया गया है। विधनू में भी थाना क़ायम हो गया है। शहर के भीतर सन् १६३१ के दंगे के बाद कई नये थाने कीन कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार क़ायम हुए और कोतवाली कलेटकरगंज से उठकर माल रोड पर वहाँ बनाई गई जहाँ पहले डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का दफ़्तर था और उसके भी पहले तहसीली स्कूल था।

जेल

सन् १८०१ में पहले पहल छावनी में डिस्ट्रिक्ट जेल की इमारत थी। जब १८११ में कचहरी बिठूर चली गई, तो वहाँ अस्थायी रूप से जेल की इमारत बना ली गई। पर बिठूर से

जब कचहरी नवाबगंज लौट आई तो गुटैहा के पास पुराने ढँग की इमारत में जेल स्थापित हुआ। उसका प्रबन्ध भी बहुत खराब था। प्रत्येक क़ैदी को खाने-पीने के लिए कुछ पैसे दे दिये जाते थे, जिससे वह अपने भोजन की सामग्री बाजार से मँगवा लेता था। ये क़ैदी प्रायः भाग भी जाते थे। फूस के छप्परों में कभी-कभी आग लग जाती थी। ऐसे अवसरों पर कैदी कच्ची दीवालों को फाँद कर भाग जाते थे। कोई इस प्रयत्न में जल-भुन कर ख़ाक भी हो जाते थे। खाना पकाने के लिए क़ैदी अपने घर से बर्तन मँगा सकते थे। अलग अलग चूल्हे जला करते थे। "दफ़ैया कमान" अथवा 'लालटेन-सिकचा-ताला-क़ैदी सब ठीक' का युग अभी नहीं आया था। जेल क्या थे मवेशीख़ाने से भी बदतर थे। सर विलियम बेंटिंक के सुधारों के अनुसार सन् १८३५ से जेलों का प्रबन्ध कुछ अच्छा हो गया। १८५७ के विद्रोह में गुटैहा वाला जेल ध्वस्त हो गया। शान्ति स्थापित होने के बाद सरसैयाघाट के पास कचहरी व जेल की नई इमारतें बनीं। कचहरी की इमारतों में आवश्यकतानुसार वृद्धि होती गई। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का नया दफ़्तर भी तहसील के पास बनाया गया है।

डाक और तार

१६ वीं शताब्दी के प्रारंभिक काल में डाक का प्रबन्ध भी नहीं के बराबर था। केवल सरकारी डाक को ले जाने के लिए हरकारे थे जो एक शहर से दूसरे तक पैदल डाक ले

जाते थे। तहसीलों व थानों से डाक आने में कभी-कभी कई सप्ताह लग जाते थे। एक गावँ का मुखिया अपने आदमियों से दूसरे गावँ के मुखिया के पास तक सरकारी डाक भेज देता था। इस प्रकार कछुये की चाल से वह कलेक्टर साहब तक पहुँच पाती थी। कभी-कभी ये डाकिये डाक-सहित ग़ायब हो जाते थे। सन् १८३४ में ज़मींदारों से डाक के लिए भी एक कर वसूल किया जाने लगा, जिसकी आय से कुछ वैतनिक हरकारे रक्खे गये जो पुलिस के मातहत थे। सन् १८४१ से डाक घोड़ेगाड़ी से जाने लगी। लार्ड डलहौजी के समय में भारत में नियमित रूप से डाक का प्रबन्ध आरंभ हुआ। डाक के टिकटों का नियम चला। भारतीय पोस्ट आफ़िस की शाखायें धीरे-धीरे तहसीलों व थानों के मुक़ामों में खुलीं।

सन् १८७६ में इस जिले में २६ डाकख़ाने खुल चुके थे। कानपुर में जनरल पोस्ट आफ़िस की वर्तमान इमारत १८५७ के बहुत साल बाद बनी। पहले वर्तमान इम्पीरियल बैंक की इमारत के पीछे वाले क्षेत्र में बड़े डाक़ख़ाने और म्यूनिसपैल्टी के दफ्तर की इमारतें थी। शहर का पहला तारघर छावनी में मालरोड के पास, वर्तमान कटहरीबाग़ के पीछे, था। वर्तमान तारघर की इमारत को बने अभी ४० वर्ष भी नहीं हुए। उस जगह पर पहले स्टेशन थियेटर (नाट्य शाला) था। तहसीलों से तार का सम्बन्ध भी अभी हाल ही में स्थापित हुआ है। केवल डेरापुर का अभी तार-द्वारा सम्बन्ध क़ायम नहीं हुआ है।

रेल, तार व डाक के खुलने के पहले ब्रिटिश शासन : कानपुर के ज़िले में यातायात आदि के साधन मुग़ल-काल : कहीं अधिक अपूर्ण व भोंडे थे। ग्रांड-ट्रङ्क-रोड का निर्मा: डलहौज़ी के समय में सम्पन्न हुआ। पुरानी मुग़लरोड तो अ: कुछ वर्ष पूर्व पक्की की गई है।

टेलीफ़ोन-सम्बन्ध का विकास

'अपर इंडिया चेंबर आफ़ कामर्स' नगर में टेलीफ़ो: प्रणाली की स्थापना के लिए विशेष रूप से समुत्सुक था चेंबर की सन् १८६० की रिपोर्ट से पता चलता है ि कुछ फ़र्मों द्वारा यह वादा किये जाने पर कि १५० रु० प्र: कनेक्शन के हिसाब से वे आपस में ११ कनेक्शन लेने ब: तैयार हैं, तथा कुछ अन्य व्यक्तियों के यह कहने पर कि टेलीफ़ो के रेट में कुछ और कमी होने पर वे लोग भी अपने घरों : कनेक्शन ले लेंगे, चेंबर के सेक्रेटरी को इस संबन्ध में म्यूनिसि पल बोर्ड से लिखापढ़ी करने तथा शीघ्रातिशीघ्र टेलीफ़ोन एक्स चेंज की स्थापना कराने के लिए प्रयत्न करने को कहा गया।

कानपुर के व्यापारी-वर्ग के अनुरोध पर डाक तथा तार विभाग ने सर्वप्रथम सन् १८६१ में एक छोटे से हाथ : चलाये जाने वाले 'मैग्नेटो एक्सचेंज' की स्थापना की। स: १८६७ में इसमें उन्नति करके 'सेंट्रल बैटरी सिस्टम' से का: होने लगा। इसी वर्ष टेलीफ़ोन-एक्सचेंज आफ़िस अपर इंडिय चेंबर आफ़ कामर्स की इमारत में उठ आया। सन् १६१

में यह नये टेलीग्राफ़ आफ़िस में चला आया जो उस स्थान पर बनाया गया था, जहाँ पहले स्टेशन थियेटर था। सन् १९२१ तक वहाँ उक्त सिस्टम से ही काम होता रहा। इसी बीच जनता इस बात की बराबर माँग करती रही कि टेलीफ़ोन की किसी ऐसी प्रणाली से काम लिया जाना चाहिए जिससे अधिक शीघ्रता तथा अधिक गोपनीय ढंग से टेलीफ़ोन पर बात-चीत हो सके। फलस्वरूप डाक तथा तार-विभाग ने सन् १९२२ में ५०० लाइनों के एक आटोमैटिक सिस्टम की स्थापना की जिसको बहुत पसन्द किया गया। थोड़े ही समय बाद पता चलाकि लोगों की आवश्यकता-पूर्ति इतने से नहीं हो पाती है। फलस्वरूप कानपुर-नगर की व्यापारिक जनता की बढ़ती हुई माँगों को पूरा करने के लिए सन् १९३७ की १ अप्रैल को एक नये तथा अधिक अप-टु डेट आटोमैटिक सिस्टम से काम लिया जाने लगा। उक्त सिस्टम में १००० कनेक्शनों की गुंजाइश थी। द्वितीय विश्व-युद्ध के कारण नगर की जन-संख्या और व्यापारिक परिस्थिति में जो असाधारण वृद्धि हुई उसका परिमाण यह हुआ कि यहाँ का टेलीफ़ोन-एक्सचेंज यहाँ की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सफल नहीं हुआ और अब और वृद्धि की जा रही है।

बारहवाँ अध्याय

यातायात के मार्ग और वाहन

पिछले अध्याय में अंग्रेज़ी शासन के उन अंगों का वर्णन किया गया है जिनके द्वारा हमारे नये शासकों ने हमारे जिले में, भारत के अन्य भागों की भाँति, अपने पैर मज़बूत करने के लिए प्राचीन शासन के ढाँचे को नवीन वैज्ञानिक युग की आवश्यकताओं के अनुकूल ढाल कर उसमें परिवर्तन और सुधार किये। विदेशी शासन का सर्वप्रथम उद्देश्य विजित देश में शान्ति की स्थापना करना और आंतरिक शासन को सुव्यस्थित करना होता है। जिस भूमि पर पैर स्थापित हों उसे स्थिर और उथल-पुथल से सुरक्षित रखने में ही उसका हित होता है। इस कार्य में अंग्रेज़ों को कुछ समय लगा। पुरानी पद्धतियों का सर्वथा परित्याग नहीं किया गया, किन्तु उस में आवश्यकतानुसार रद्दो-बदल किया गया। साथ ही

साथ नवीन वैज्ञानिक अनुसंधानों और योरपीय परम्पराओं के द्वारा विदेशी शक्ति को प्रबल बनाने का उद्योग किया गया। किन्तु शासित जाति के ऊपर केवल सुव्यवस्थित पुलिस-राज्य लादने से ही काम नहीं चलता। उसे आये दिन अपनी गुलामी की याद न आवे इसलिए उसके जीवन को कुछ सुकर और बाहर से कुछ अधिक सुखमय बनाने के निमित्त डाक, तार, टेलीफ़ोन आदि की सुविधायें भी प्रदान की गईं। ये नियामतें वास्तव में ब्रिटिश सैनिक शासन को सुदृढ़ करने और ब्रिटिश व्यापार और पूँजी के देश-व्यापी प्रसार के निमित्त थीं, पर गौण रूप से वे शासितों को भी दैनिक जीवन में एक प्रकार से लाभप्रद सिद्ध हुईं। पुराने हकीमों के नुस्खों का रोगी ने बहुत दिनों तक सेवन किया था, पर वे उसे रोग से मुक्त न कर सके थे। उनका आकर्षण मिट चुका था। अब इस सात समुद्र पार के वासी नये डाक्टर के चक्कर में रोगी फँस गया। नई चिकित्सा-पद्धति में विज्ञान का चमत्कार था, उसकी औषधों में नई चमक-दमक थी, नया आकर्षण था। पर नये चिकित्सक थे पूरे उस्ताद, अपने स्वार्थ को सिद्ध करने वाले, अपनी जेब भरने वाले, न कि रोगी को रोग से विमुक्त करने की हार्दिक इच्छा रखने वाले। ब्रिटिश साम्राज्य की भारत में स्थापना एक दातव्य, खैराती अथवा मिशनरी संस्था के रूप में नहीं हुई थी, वरन् अपने बढ़ते हुए व्यापार और उद्योगों के लिए नये क्षेत्र की खोज में साहसी और उद्यमी अंग्रेज यहाँ आये। उन्होंने देश में

अराजकता मिटाने का प्रयत्न किया, शान्ति स्थापित की, डाक, तार, रेल, पक्की सड़कों आदि की व्यवस्था भी की। तभी उनका रोजगार बढ़ सकता था, और उनकी सत्ता दृढ़ और स्थिर हो सकती थी।

प्राचीन साधन

यातायात की जो हमारी प्राचीन परम्परायें थीं। वे कृषि-प्रधान मध्यकालीन जीवन के लिए उपयुक्त थीं, जब खेतों की उपज निकटतम मंडी में लाने के लिए बैलगाड़ी, और दूरस्थ स्थानों तक पहुँचाने के लिए ऊँट, टट्टू और गधों का इस्तेमाल होता था। और अब भी इन आदिम साधनों को हमारी आधुनिक सभ्यता सर्वथा मिटा नहीं पाई है। रेल और मोटर अपनी सीमा के अंदर ही उपयोगी हैं और जब तक लोहे की पटरियों और पक्की सड़कों का जाल चारों ओर गावँ-गावँ में न बिछेगा बैलगाड़ी, ऊँट, टट्टू और गधों का कार्य समाप्त न होगा।

प्राचीन मार्ग

ब्रिटिश शासन ने हमारे जिले में रेलों और पक्की सड़कों का थोड़ा-बहुत निर्माण किया, पर दिल खोल कर नहीं। फिर भी हमारे जिले की भौगोलिक स्थिति के कारण हमारे यहाँ से चारों ओर इनका प्रसार हुआ। यहाँ रेलों के बनने के पहले भी आसपास के जिलों से ग़ल्ला, तेलहन, कपास, नील, किराना, कपड़ा, चमड़ा आदि सामग्री आती थी जो दूर दूर भेजी जाती

थीं। पहले गंगा-यमुना से नावों के द्वारा तथा प्राचीन राज-मार्गों से जानवरों की पीठ पर यह सब सामान आता जाता था। प्राचीन मुग़ल-रोड, जो इस जिले में यमुना के समानान्तर चलती है, सबसे प्रसिद्ध मध्यकालीन राज-पथ था जो आगरा व दिल्ली को इलाहाबाद, पटना आदि से मिलाता था। इस जिले में वह अभी १० वर्ष पूर्व तक कच्ची थी। पर उसके किनारे घाटमपुर, मूसानगर-चपरघटा, भोगनीपुर, जैनपुर सिकन्दरा, ख्वाजा-फूल आदि प्राचीन क़स्बे और मंडियाँ थीं। बीच बीच में पक्के पुल, सरायें, कुएँ और दीप-स्तम्भ बने हुए थे। यह सड़क काफ़ी चौड़ी, हमवार और सीधी है। और अभी तक इसके किनारें पर लगाये हुए कुछ पुराने वृक्ष हैं। चपरघटे के पुल और सरायँ का विस्तृत वर्णन उस स्थान के वर्णन में पढ़ने को मिलेगा। शेरशाह सूर इसका निर्माता माना जाता है, पर वास्तव में यह अति प्राचीन राज-पथ था। बौद्ध काल से इसका इतिहास मिलता है। अनेक यात्रियों, धर्मोपदेशकों, विजेताओं और शासकों ने इसका उपयोग किया था।

मुग़ल-रोड के अतिरिक्त अन्य पुराने मार्ग ये हैं:—(१) घाटमपुर से गजनेर, अकबरपुर, डेरापुर, मंगलपुर और इटावा तक; (२) बिधूना (इटावा जिले) से रसूलाबाद, शिवली, चौबेपुर और बिठूर तक (इस सड़क को चौबेपुर से बिधूना तक पक्का किया जा रहा है); (३) सरैयांघाट से शिवराजपुर, शिवली और रूरा तक; (४) शिवली से सचेंडी,

साढ़ और कोड़ा तक ; (५) घाटमपुर से साढ़ और सलेमपुर तक (३) नानामऊ-घाट से बिल्हौर, ककवन, रसूलाबाद, मंगलपुर, सिकन्दरा और बीजामऊ-घाट (यमुना पर) तक। यदि ये सब सड़कें पक्की कर दी जायँ तो ज़िले की व्यापारिक उन्नति को विशेष सहायता मिले और रसूलाबाद, घाटमपुर, शिवली और सिकन्दरा का महत्व बहुत अधिक बढ़ जाय। अभी इन सड़कों की दशा शोचनीय है और रिंद, सेंगुर आदि नदियों पर पुल न होने से यातायात में कठिनाई होती है। अनेक अन्य रास्ते भी हैं जो यमुना और गंगा के घाटों को भीतरी स्थानों से मिलाते हैं। जाजमऊ घाट से दक्षिण की ओर जाने वाली सड़क का बुंदेलखंड के स्नानार्थी यात्री मध्य-काल से उपयोग करते रहे हैं।

पक्की सड़कें

सब से प्रसिद्ध पक्की सड़क इस जिले में ग्रांड-ट्रंक-रोड है जो इलाहाबाद से १०६ वें मील की दूरी पर पांडो-नदी के पक्के पुल पर इस जिले में प्रवेश करती है और सिकठियापुरवा, महाराजपुर होती हुई कानपुर–नगर आती है, फिर आगे चलकर कल्याणपुर, मन्धना, चौबेपुर, शिवराजपुर, उतरी-पूरा, धौरसालार, बिल्हौर होती हुई १७१ वें मील पर फ़र्रुखाबाद जिले में चली जाती है। यह कानपुर तक ई० आई० आर० के समानान्तर और बी० बी० सी० आई० आर० के समानान्तर जाती है। इससे महाराजपुर के पास से एक सड़क सरसौल स्टेशन और नर्वल तक, दूसरी चकेरी के हवाई अड्डे

के सामने से चकेरी स्टेशन तक और तीसरी कल्याणपुर स्टेशन के सामने से बिठूर तक, और चौथी बिल्हौर के कुछ आगे से मकनपुर को जाती है।

कानपुर से कालपी और झाँसी जाने वाली सड़क सचेंड़ी, बारा, डीग, मुहम्मदपुर, पुखरायाँ, और भोगनीपुर होती हुई कालपी के सामने यमुना के किनारे तक जाती है। यमुना पर इसका कोई पुल नहीं है। इसकी लंबाई ४५ मील है। इससे पनकी, लालपुर और पुखरायाँ स्टेशनों के लिए शाखें निकली हैं। कानपुर को हमीरपुर, महोबा और सागर से मिलाने वाली सड़क बिधनू, रमईपुर, पतारा, घाटमपुर, दोहरा आदि होती हुई हमीरपुर के सामने रामपुर-घाट तक जाती है। यहाँ पर भी यमुना पर कोई पक्का पुल नहीं है। इसकी लंबाई ३६ मील है। पुरानी मुग़ल-रोड भी अब पक्की हो गई है। चौबेपुर से शुरू होकर शिवली व रसूलाबाद से गुजरने वाली सड़क भी पक्की हो रही है। कुछ अन्य सड़कें भी अगले वर्षों में पक्की बनेंगी। कानपुर-नगर से जाजमऊ को भी एक पक्की सड़क जाती है। कानपुर से लखनऊ जानेवाली सड़क पुराने रेल के पुल के ऊपर से जाती है। इन सड़कों के अतिरिक्त कानपुर के म्यूनिसिपल, छावनी और डिवेलपमेंट बोर्डों ने अनेक सड़कों का निर्माण किया है। इन सभी सड़कों पर अब कानपुर-रोडवेज़ अथवा 'काजबस' अथवा अन्य मोटर-सरविसें हैं जिनसे यात्रियों को विशेष सुविधायें प्राप्त हैं। बैलगाड़ियाँ और मोटर ट्रकें भी खूब चलती हैं। पर यमुना पर किसी भी पक्के पुल

का न होना स्वतंत्र यातायात में बाधक है।

—रेलें

कानपुर की औद्योगिक उन्नति में रेलवे का बहुत बड़ा भाग है। इस नगर में चार रेलवे लाइनें आती हैं—ईस्टइंडियन रेलवे (जिसमें अवध रुहेलखंड रेलवे का भी भाग शामिल है), ग्रेट इंडियन पेनिनसुला रेलवे, बाम्बे बड़ौदा एंड सेंट्रल इंडिया रेलवे और अवध एंड तिरहुत रेलवे (जिसका पुराना नाम बंगाल एंड नार्थ वेस्टर्न रेलवे था)। इनमें सर्व प्रथम ईस्ट इंडियन रेलवे का कानपुर में निर्माण हुआ।

ईस्ट-इंडियन रेलवे

भारत में रेलवे के जन्मदाता ब्रिटेन के सुप्रसिद्ध भाफ के इंजन के आविष्कारक मि० जार्ज स्टीफ़ेन्सन के सुपुत्र मि० (बाद में सर) आर० एम० स्टीफ़ेन्सन थे। सन् १८४५ के जुलाई महीने में आप अपने तीन अन्य सहकारियों के साथ भारत आये और कलकत्ता से दिल्ली के लिए राजमहल, क्यूल, मिर्जापुर तथा कानपुर होते हुए एक रेलवे लाइन बनाने के सम्बन्ध में निरीक्षण कार्य आरम्भ किया। मि० स्टीफ़ेन्सन का यह दृढ़ विश्वास था कि उत्तरी भारत की दो बड़ी नदियों, गंगा तथा यमुना, के समानान्तर जानेवाली रेलवे लाइन का आर्थिक तथा राजनैतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होगा। परन्तु ईस्टइंडिया कम्पनी के डाइरेक्टर लोग उनकी इस धारणा से सहमत न थे। उनका कथन था कि भारत की

कुछ विचित्रताओं के कारण, जिनमें बाढ़, तूफ़ान तथा फ़सल में कीड़े आदि लग जाने की दैवी आपत्तियाँ शामिल हैं, रेलवे को विशेष लाभ होने की कोई आशा नहीं प्रतीत होती। परन्तु मि० स्टीफ़ेन्सन के सतत परिश्रम के फलस्वरूप अंत में सन् १८५० में प्रयोग के तौर पर हवड़ा से रानीगंज तक उन्हें रेलवे लाइन बनाने की स्वीकृति मिल गई। सन् १८५४ में पहला रेलवे इंजन भारत आया और सन् १८५४ की १५ अगस्त को हवड़ा से हुगली तक पहले पहल रेल चलनी आरंभ हुई। १ सितम्बर १८५४ को पनडुआ तक १४.३१ मील रेलवे लाइन और बनाई गई। पहले ही चार महीनों में आमदरफ्त आशातीत सिद्ध हुई। ३ फरवरी सन् १८५५ को रानीगंज तक रेलवे लाइन बन गई। रानीगंज से रेल द्वारा कलकत्ते के लिए कोयला जाना आरंभ हो गया। इससे रेलवे को बहुत लाभ हुआ। ईस्ट इंडिया कंपनी के डाइरेक्टर लोग इतने प्रसन्न हुये कि उन्होंने दिल्ली तक बाकी लाइन शीघ्र बनाने की स्वीकृति दे दी। निचले भाग में यमुना के दक्षिणी तट तक तथा ऊपरी भाग में यमुना के बाँये तट से दिल्ली तक रेलवे लाइन बनाने का कार्य एक साथ आरंभ करने का निश्चय किया गया। ऊपरी भाग की लाइन के बनाने का काम इलाहाबाद से प्रारंभ हुआ।

गदर का रेलवे पर प्रभाव

सन् १८५६ के गदर के कारण रेलवे निर्माण के इस कार्य में अत्यन्त बाधा पड़ी तथा रेलवे का बहुत अधिक नुकसान

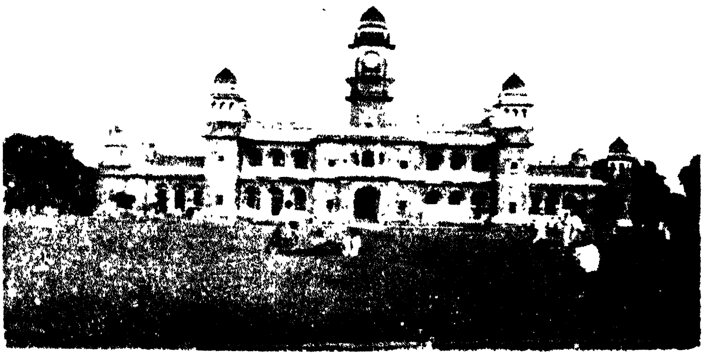
भी हुआ। उसके कितने ही यूरोपियन कर्मचारी गदर में मार डाले गये। रेलवे को लगभग ४० लाख पौंड का आर्थिक नुकसान हुआ। किंतु इतना नुकसान होने पर भी इलाहाबाद और कानपुर के मध्य ३ मार्च १८५६ को रेलवे की ट्रेनें चलने लगीं और अगस्त १८६४ में कलकत्ता से दिल्ली तक रेलों का सिलसिला पूरा हो गया। पर दिल्ली इलाहाबाद में यमुना पर जब तक पुल न बने तब तक हवड़ा से दिल्ली तक अटूट यात्रा न हो सकती थी। १५ अगस्त १८६५ में इस पुल के बन जाने के बाद दोनों ओर गाड़ियाँ पूर्णतया निर्बाध रूप से चलने लगीं। सन् १८६६ में दिल्ली में यमुना के ऊपर पुल बन गया। इस प्रकार अत्यन्त कठिन परिस्थितियों के बावजूद १०२० मील लंबी रेलवे लाइन बन कर तैयार हो गयी। इसके बाद समय-समय पर इसमें और वृद्धि तथा विस्तार होता रहा।

रेलवे के लाभ का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि सन् १८५५ में उसकी वार्षिक आय कुल ३१२५२ पौंड थी। सन् १८६६ में यह बढ़कर ११,१६,३१५ पौंड हो गई। उसकी उपयोगिता का अनुमान इसके लग जाता है कि सन् १८५६ में केवल १५ लाख व्यक्तियों ने रेलवे से यात्रा की किंतु सन् १८६६ में यह संख्या बढ़ कर ४० लाख से भी अधिक हो गई। इसी समय में रेल द्वारा जाने वाला माल ३ लाख टन से बढ़कर ८ लाख टन तक पहुँच गया।

वह समझौता जिसके अनुसार पिछले ३० साल तक



कानपुर का सेन्ट्रल स्टेशन



फूलबाग़ में स्थित गणेशशंकर विद्यार्थी-भवन

कम्पनी तथा भारत सरकार के बीच संबंध निश्चित हुए थे सन् १८४६ में समाप्त हो गया तथा कम्पनी द्वारा रेलवे का प्रबंध करने के संबंध में सन् १८८० की पहली जनवरी को सरकार तथा कंपनी में नया समझौता हुआ। सन् १६२४ के अंत तक रेलवे का प्रबंध कंपनी के अधिकार में रहा। सन् १६२५ की पहली जनवरी से रेलवे सीधे सरकारी प्रबंध में आगई। सन् १६२५ की पहली जुलाई को अवध रुहेलखंड रेलवे भी ईस्ट इंडियन रेलवे में मिला दी गई।

कपास, ग़ल्ला, तेलहन आदि का व्यापार

प्रारंभिक समय से ही कानपुर का ज़िला कपास उत्पन्न करने के लिए प्रसिद्ध था। यह कपास विदेशों को भेजी जाती थी। परन्तु नदी से नावों-द्वारा भेजे जाने के कारण इसके पहुँचने में बड़ी देर लगती थी। जब अमेरिकन युद्ध के समय रुई की माँग बहुत अधिक बढ़ गई तो बुंदेलखंड की रुई को कानपुर से रेल-द्वारा कलकत्ता भेजना अधिक लाभप्रद समझा गया। इसका परिणाम यह हुआ कि कानपुर की गलियाँ रुई की गाँठों से पट गईं तथा उनके रखने के लिए अधिकारियों को ख़ास तौर पर ज़मीन ख़ाली करानी पड़ी। इसी समय दोआब तथा अवध में होने वाला ग़ल्ला, तेलहन, किराना की सामग्री तथा अन्य पदार्थ भी नदी के मार्ग से भेजे जाने के बजाय कानपुर ही आने लगे।

अवध और रुहेलखंड रेलवे

कानपुर का व्यापार, जो केवल एक रेलवे लाइन खुल

जाने के कारण आरंभ हुआ था, बाद में अन्य रेलवे लाइनों के आ जाने के कारण बहुत अधिक बढ़ गया। ईस्ट इंडियन रेलवे के बाद सन् १८६७ में अवध रुहेलखंड रेलवे ने भी कानपुर तक रेलवे लाइन खोली। परन्तु गंगा में पुल न होने के कारण यह लाइन नदी के बाएँ तट तक आकर ही समाप्त हो जाती थी। सन् १८७५ में गंगा-नदी पर पुल बन जाने के बाद नगर से सीधा संबंध स्थापित हो सका।

ग्रेट इंडियन पेनिनसुला रेलवे (जी० आई० पी०)

उक्त रेलवे का निर्माण-कार्य सन् १८५३ में बंबई से प्रारंभ हुआ। धीरे धीरे देश के सुदूरवर्ती भागों तक उसका विस्तार हो गया। सन् १८८६ में यह रेलवे लाइन कानपुर (जुही) आई। इसका स्टेशन बहुत दिनों तक हमीरपुर रोड नाम से प्रसिद्ध रहा। उस समय झाँसी से होकर आने वाला इसका यह भाग इंडियन मिडलैंड रेलवे के नाम से प्रसिद्ध था। जी० आई० पी० रेलवे का कानपुर के औद्योगिक विकास में बहुत बड़ा भाग है। उक्त रेलवे लाइन ने भारत के सर्व-प्रधान औद्योगिक नगर बंबई से इसका सीधा संबंध स्थापित कर दिया। सन् १९२५ में इस रेलवे का सम्पूर्ण प्रबंध भारत सरकार ने अपने हाथ में ले लिया। सन् १९१४ में कानपुर से बाँदा के लिए एक रेलवे की शाखा खुली जिसका निर्माण ओ० आर० आर० कम्पनी के द्वारा हुआ, पर जिसे भारत सरकार ने जी० आई० पी० रेलवे कम्पनी के प्रबन्ध में रखना निश्चित किया। इस लाइन ने कानपुर और बुंदेल-

खंड के प्राचीन ऐतिहासिक सम्बन्ध को लौह-मार्ग से जोड़ दिया। पर द्वितीय महायुद्ध के मध्य में यह लाइन उखाड़ दी गई और सन् १९४८ से अब यह फिर चलने लगी है। इसके रास्ते में थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया गया है। अब यह जुही से अलग न होकर भीमसेन स्टेशन से चलती है।

बाम्बे बड़ौदा ऐंड सेंट्रल इंडिया रेलवे (बी० बी० सी० आई०)

सन् १८६० में सूरत-नगर से इस रेलवे लाइन का निर्माण प्रारंभ हुआ। इसके बाद धीरे धीरे देश के अन्य भागों में इसका प्रसार हुआ। इसके ब्राड-गेज और मीटर-गेज दो विभाग हैं। सन् १९०९ में राजपूताना-मालवा-रेलवे (मीटर गेज) बी० बी० एंड सी० आई० रेलवे में सम्मिलित कर दी गई। राजपूताना मालवा रेलवे के कानपुर-अछनेरा सेक्शन का कानपुर-कन्नौज खंड १५ दिसंबर १८९२ को पहले पहल खुला और १० नवंबर १८८५ को मन्धना से बिठूर तक की ब्रांच लाइन खुली। इसके निर्माण के निमित्त बिठूर के सूबेदार नाना नारायण राव (सूबेदार रामचन्द्र पंत के पुत्र) ने रेलवे कम्पनी को ७५ लाख रुपये का क़र्ज़ दिया था। इसी उपलक्ष्य में इसे 'सूबेदार की रेल' कहते हैं।

बंगाल नार्थ वेस्टर्न रेलवे

यह मीटर-गेज रेलवे लाइन उत्तरी बिहार के अत्यधिक उर्वर प्रदेशों से कानपुर का सीधा संबंध स्थापित करती है। इस भाग में उक्त लाइन ने जो अपना जाल सा बिछा दिया

है उसी का यह परिणाम है कि पूर्वी युक्तप्रान्त तथा उत्तरी बिहार शक्कर के उद्योग के महान् केन्द्र बन गये हैं। तथा इस रेलवे लाइन द्वारा प्रदान की जाने वाली सुविधाओं के कारण ही कानपुर आज भारत में शक्कर की सबसे बड़ी मंडी हो गया है।

जब से यह लाइन और रुहेलखंड-कुमायूँ रेलवे भारत-सरकार के प्रबन्ध में आई इन दोनों सम्मिलित लाइनों का नाम अवध एण्ड तिरहुत रेलवे (ओ० टी० आर०) हो गया है। ओ० टी० आर० और बी० बी० सी० आई० आर० दोनों मीटर-गेज (छोटी लाइन) होने के कारण अहमदाबाद से ब्रह्मपुत्र नद तक के देश को एक लौह-मार्ग से मिलाती हैं। गत विश्वयुद्ध में इस छोटी लाइन का सैनिक महत्त्व स्पष्ट हो गया।

व्यापारिक केन्द्र—कानपुर

इन बड़ी और छोटी लाइनों के चतुर्दिक निर्माण से कानपुर उत्तर भारत का सर्वप्रथम व्यापारिक केन्द्र हो गया है। हमारा सीधा संबंध कलकत्ता, बंबई, अहमदाबाद, करॉची, नागपुर, टाटानगर आदि औद्योगिक केन्द्रों के तथा बंदरगाहों से स्थापित हो गया है। प्रत्येक रेलवे ने नगर में विशाल माल-गोदाम तैयार किये। ईस्ट इंडियन रेलवे शहर की विभिन्न मिलों तथा फैक्टरियों तक लाइन बिछा कर वहाँ से माल लाने तथा ले जाने का कार्य भी करती है। नार्थ वेस्ट

टेनरी को छोटी लाइन की एक साइडिंग अनवरगंज से ग्वाल-टोली होती हुई जाती है।

सेन्ट्रल स्टेशन

पहले सभी रेलवे लाइनों के स्टेशन अलग-अलग थे जिससे यात्रियों को कानपुर में ही एक लाइन की ट्रेन से उतर कर एक्के या अन्य सवारी द्वारा दूसरी लाइन वाले स्टेशन जाने में अत्यधिक असुविधा का सामना करना पड़ता था। सर्वप्रथम ईस्ट इंडिया रेलवे तथा अवध रुहेलखंड रेलवे के स्टेशनों में संबंध स्थापित हो जाने से इस दिशा में कुछ सुधार हुआ। बाद में जी० आई० पी० तथा अवध रुहेलखंड रेलवे के स्टेशनों में संबंध स्थापित हो जाने से इस दिशा में और भी प्रगति हुई। अंत में सन् १९२४ में रेलवे बोर्ड ने इस संबंध में पूरी जाँच करने का आदेश दिया। विभिन्न रेलवे लाइनों द्वारा माल को अधिक सुविधा के साथ भेजने तथा यात्रियों की असुविधाओं का अंत करने के लिए स्थानीय कामर्स चेंबरों के परामर्श से एक योजना तैयार की गई।

योजना स्वीकृत हो गई और सन् १९२५-२६ में सेंट्रल स्टेशन की भव्य इमारत का निर्माण प्रारम्भ हुआ। सन् १९३० की २७ वीं मार्च को उक्त स्टेशन का उद्घाटन हुआ। जुही में नया मालगोदाम भी बनाया गया। इन सबके बन

कुल ७७ लाख रुपये खर्च   पृथक्

पृथक् मालगोदाम थे। पर सन् १९०७ में जुही से कलेक्टर-गंज तक नहर को पाटकर एक विशाल मालगोदाम बनाया गया जिसमें सब लाइनों के मालगोदामों को पास पास स्थान मिला।

इस समय कानपुर देश के सबसे बड़े रेलवे जंक्शनों में से एक है क्योंकि यहाँ से अनेक दिशाओं में रेलवे लाइनें जाती हैं तथा इस प्रकार यहाँ से देश के किसी भी भाग को बड़ी आसानी के साथ जाया जा सकता है, यहाँ के कारखानों का बना हुआ माल देश भर में भेजा जा सकता है। कपास, गल्ला, तेलहन, किराना, सूती और ऊनी माल, चमड़े का सामान, शकर आदि के व्यापार की इसी लिए यहाँ अधिक उन्नति हुई है और इसी कारण यहाँ की जन-संख्या और सम्पति में इतनी अधिक वृद्धि हुई है।

इस जिले में इतनी रेलवे लाइनों के होते हुए भी अभी अनेक स्थान रेल के निकटतम स्टेशनों से १०, १२, १४ और १६ मील तक दूर हैं। डेरापुर और भोगनीपुर की तहसीलों में इस प्रकार के रेल से दूर अनेक क्षेत्र हैं।

जल-मार्ग

गंगा और यमुना में नावों द्वारा थोड़ा बहुत यातायात होता आया है और अब भी रेलों और मोटरों के युग में उनका उपयोग होता है। गंगा की नहर को उसके निर्माता

इंजिनियर काटली ने सिंचाई और यातायात दोनों उद्देश्यों से बनाया था। पर रेलों में जिन अंग्रेज़ी पूँजीपतियों का रुपया लगा था, वे नदी और नहरों के जल-मार्गों को प्रोत्साहन नहीं देना चाहते थे, क्योंकि इससे उनके मुनाफ़े में कमी होती थी। इसीलिए ब्रिटिश शासन में उत्तरी भारत में जल-मार्गों की उन्नति नहीं हुई। फिर भी इनका कुछ न कुछ उपयोग तो होता ही है। जाजमऊ बादशाही ज़माने में नावों का बंदरगाह और निर्माण-स्थान था। यमुना के किनारे भी इसी प्रकार के अड्डे थे। पर अब यह उद्योग बहुत क्षीण हो गया है। इधर सन् १९२४ की भीषण बाढ़ के बाद से कानपुर के घाटों में नावों की संख्या बढ़ गई है और नावों के बनाने का उद्योग फिर चलने लगा है। तैराकी का शौक़ भी बढ़ गया है। पर इस ओर सरकारी तौर पर कुछ भी उद्योग नहीं हुआ है। हमारी राष्ट्रीय सरकार को जल-मार्गों की उन्नति और नावों के निर्माण की ओर अग्रसर होना चाहिए।

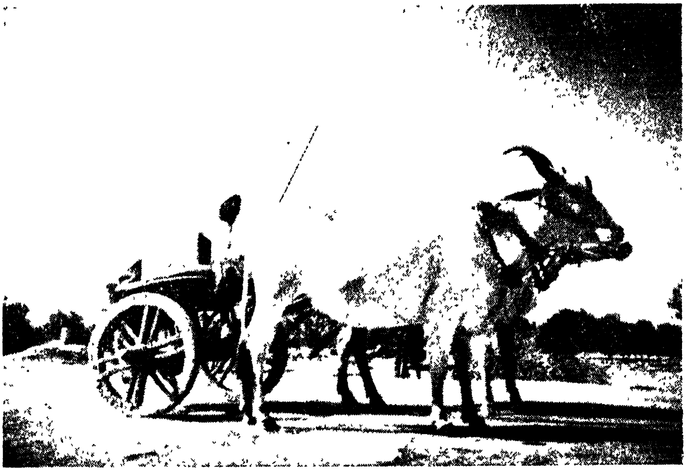
वायु-पथ

कानपुर का महत्व भारत के वायुपथीय नक़्शे में भी विशेष है। कराँची, जोधपुर, दिल्ली, कानपुर, इलाहाबाद और कलकत्ता से होकर हवाई रास्ता है जिस का इस्तेमाल राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय हवाई जहाज़ करते हैं। अब कानपुर से भोपाल होते हुए बंबई के लिए और कानपुर से लखनऊ,

रामपुर और दिल्ली के लिए भी नये वायव्य मार्ग खुल गये हैं। यहाँ पर दो हवाई अड्डे हैं। पहला सवादा के ऐतिहासिक मैदान में है जो प्रथम महायुद्ध के बाद बना। यह केवल सैनिक उपयोग के लिए है। दूसरा द्वितीय महायुद्ध के मध्य में चकेरी-अहिरवाँ के पास बनाया गया। यह अधिक विस्तृत और अप-टू-डेट है। दोनों अड्डों के लिए बढ़िया सीमेंट सड़कें जाती हैं।

यातायात के वाहन

आजकल हवाई जहाज़, रेल, स्टीमर, बस और कार के युग में घंटों और मिनटों में दिनों का सफ़र तै होता है। पर प्राचीन और मध्यकालीन काल में सवारी के लिए हाथी, ऊँट, घोड़ा, गधा, खच्चर, बैल, आदि जानवरों को काम में लाया जाता था। गाड़ियाँ भी कई प्रकार की बनती थीं। सादी बैल-गाड़ी के सिवाय सुन्दर और भव्य रथ, सेजगाड़ी, बहलोल आदि बनाई जाती थीं, जिनमें खारुए की रंग-बिरंगी खोलें होती थीं। विवाहादि उत्सवों में इनकी पंक्तियाँ निकलती थीं और दौड़ें भी होती थीं। हलकी सवारी के लिए रब्बा, सग्गड़, फिरक आदि भी बनते थे। इन सभी में अनेक नस्लों के बैल, जिनकी चर्चा दूसरे अध्याय में हो चुकी है, जोते जाते थे। पर अंग्रेज़ी अमल के साथ घोड़े की गाड़ियों का भी चलन शुरू हुआ। बग्घी, टमटम, फ़िटन आदि का फ़ैशन मोटरयुग



रब्बा (पृष्ठ २३२)



गुजैनी में पांडो-नदी के ऊपर नहर का पुल (पृष्ठ २७६)

के पहले खूब था। सुन्दर साज और रईसी ठाठ से ये सड़कों पर दौड़ती थीं। पर अब इनका प्रचार बहुत कम हो गया है। अब केवल ताँगों और एक्कों में ही घोड़ों को जोता जाता है। मामूली सवारी के लिए भी अब रईस लोग घोड़े नहीं रखते। शहर में इधर कुछ वर्षों से साइकिल-रिक्शों का चलन भी बढ़ रहा है। कुछ गाँवों में भी एक्के हैं। कानपुर-नगर में सब प्रकार की मोटरों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है, जिनके आने जाने के नियंत्रण की विशिष्ट समस्याओं की ओर अधिकारियों का ध्यान आकर्षित हुआ है और इस कार्य के लिए ट्राफ़िक—पुलिस का सुशिक्षित दल तैयार किया गया है।

तेरहवाँ अध्याय

कृषि की व्यवस्था

यह तो सर्वविदित है कि भारत के अन्य भागों की भाँति कानपुर-ज़िले में जीविकोपार्जन का मुख्य उद्योग खेती है और उसी पर यहाँ के लोगों का दैनिक जीवन केन्द्रीभूत है। कानपुर-नगर की औद्योगिक उन्नति, जिसका वर्णन हमारी पुस्तक के दूसरे भाग में किया जायगा, केवल थोड़े दिनों की बात है, और यद्यपि उसका प्रभाव हमारे ज़िले के आर्थिक, सामाजिक और बौद्धिक जीवन पर बहुत पड़ा है, फिर भी हमारे ज़िले के जीवन का मूलाधार खेती है। ब्रिटिश शासन के पूर्ववर्त्ती शासकों ने किसानों के हितों को ध्यान में रख कर अपनी शासन-परम्परायें स्थापित की थीं। किसान ही उनके अन्नदाता और करदाता थे। सोने के अंडे देने वाली मुर्ग़ी को हलाल कर उनके हाथ में आ ही क्या सकता था?

यद्यपि यह कहना तो कठिन है इन शासकों ने कृषि की उन्नति के लिए क्या विशेष उद्योग किये, किन्तु उन्होंने प्राचीन पद्धतियों और परम्पराओं में आबद्ध कृषकों से कोई छेड़छाड़ भी नहीं की। उन्हें पूर्ण व्यावसायिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी, और ऐसी दशा में पूर्ण शान्ति स्थापित रख कर ही शासक उनकी अप्रत्यक्ष सहायता कर सकते थे। जब कभी बीच बीच में सुदृढ़ और सुचारु केन्द्रीय शासन स्थापित हुआ, जागीरदारों, ज़मीन्दारों और ठेकेदारों के ऊपर नियन्त्रण रहा, और उन्हें मनमाने परिमाण में कर एकत्र करने की स्वतन्त्रता नहीं रही।

पंचायती शासन—

अकबर के समय में राजा टोडरमल-द्वारा परिचालित जो कृषि-कर-व्यवस्था थी उसके अन्तर्गत सभी सुव्यवस्थित प्रान्तों में नियमानुसार किसानों को पैदावार का नियत भाग देना पड़ता था। गावँ की पंचायत का मुखिया किसानों से बलि (लगान) लेकर राजकीय अधिकारियों को दे देता था और उसका कुछ अंश गावँ की पंचायत के कोष में जमा हो जाता था, जिसको गावँ के शासन और हित में ख़र्च किया जाता था। गावँ में सफ़ाई रखना, उसके जलाशयों, देवस्थानों, मार्गों और सार्वजनिक संस्थाओं का निर्माण और जीर्णोद्धार इसी कोष से होता था। अपाहिजों, ग़रीबों और अनाथों की

सहायता भी इसी से होती थी। गावँ के सेवकों को इसी से तनख्वाह दी जाती थी और त्योहारों आदि में सार्वजनिक उत्सव भी इसी से किये जाते थे। पंचायत ही के ऊपर गावँ के शासन का पूरा भार था। वही गावँ की अदालत थी, वही खेतों का बँटवारा आवश्यकतानुसार करती थी और वही गावँ के भाग्य की कर्ता, धर्ता और विधाता थी। यह ग़ैरसरकारी संस्था और इसके ग़ैरसरकारी अधिकारी ग्राम्य इकाई के शासन को सुचारु रूप से चलाते थे। इस विधान में न थाने-दार की ज़रूरत थी, न मजिस्ट्रेट की और न सरकारी क़ानूनगो व पटवारी की। जो कुछ कर्मचारी थे—चौकीदार, पटवारी, डोम, भंगी, गोड़ैत—सब पंचायत ही के नौकर थे। यह भार-तीय स्वायत्त शासन का प्राचीन स्वरूप था।

ज़मीन्दारी-प्रथा का जन्म—

मुसलिम शासकों के युग में अधिकांश में इसी का सर्वत्र प्रचार रहा। किन्तु जब कभी केन्द्रीय शासन की बागडोर ढीली हुई, इसमें विकार उत्पन्न हो गये। ऊपरी रूप तो वही बना रहा, पर शक्तिशाली सर्दार अथवा मुखिया ने गावँ-पंचायत को अपनी कठपुतली बना लिया। इसी से ज़मीन्दारी-प्रथा का जन्म हु राजा से विशेष आज्ञा प्राप्त कर किसी ज़मी-न्दार ने या अधिक गावों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर उन ा निकासी (मालगुज़ारी) का ठेका ले लिया। कभ

ी किसी क्षेत्र की प्रजा की उद्दंडता के कारण भी स्थानीय वस्था को क़ायम रखने के लिए अकबर सरीखे शासकों को ज़मीन्दारी प्रथा की शरण लेनी पड़ती थी। बादशाही माने में गंगा-यमुना के दोआब के कुछ भाग अराजकता और ़ंडता के लिए बदनाम थे। तभी तो ज़मीन्दारी-प्रथा के नाश करने का दम भरने वाले सम्राट् अकबर ने ही कानपुर-ाले के कुछ भाग को शिवराजपुर के चंदेल-राजा रामचन्द्र ब के सिपुर्द कर दिया। अपने सिंहासनारूढ़ होने के ६ वें वर्ष में अकबर ने उक्त राजा को ६५ गावों की ज़मीन्दारी क फ़रमान-द्वारा दी, जिसकी नागरी प्रतिलिपि अन्यत्र दी ई है। इस चंदेल-वंश का विस्तृत इतिहास भी अन्यत्र ढ़ने को मिलेगा। इसी प्रकार औनहाँ के रावत पृथ्वीराज ो बादशाह आलमगीर औरंगज़ेब ने अपने शासन के ३४ वें ार्ष में एक फ़रमान से ३४ गावों की ज़मीन्दारी दी। सचेंड़ी ॅ राजा हिन्दूसिंह के पुत्र सम्भरसिंह को सन् ११४८ हिजरी ं बादशाह मुहम्मदशाह ने एक फ़र्मान-द्वारा ६२ गावँ दिये। ुहम्मदशाह के समय तक मुग़ल-साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो चुका था और इसलिए ज़मीन्दारी-प्रथा का सर्वत्र ्चार हो गया था। प्रान्तीय शासक भी स्वतन्त्र हो चुके थे। अवध के नवाब-वज़ीर अब कानपुर-ज़िले पर शासन करते थे।

अल्मास अली ख़ाँ और भागमल—

अवध के शासन के अंतिम अट्ठाईस वर्षों में इस ज़िले का प्रबन्ध अल्मास अली ख़ाँ और उसके भाई भागमल के

हाथों में रहा। इन शासकों की विस्तृत जीवनी अन्यत्र दी हुई है। इनके दीर्घकालीन शासन में कानपुर-नगर का शैशव-काल बीता और जिले में भी सुव्यवस्थित प्रबन्ध रहा। वर्तमान कानपुर-ज़िले की सीमा के अन्तर्गत भूमि की मालगुज़ारी अवध-सरकार के काग़ज़ी हिसाब से २२ लाख ५६ हज़ार १५६ रुपये होती थी, पर वास्तव में इसका कितना भाग जमा होता था इसका ठीक-ठीक अनुमान लगाना कठिन है। उस समय की पद्धति के अनुसार प्रत्येक गाँव की मालगुज़ारी ठेके पर दी जाती थी और ये ठेकेदार या ज़मींदार अपनी रिआया से मनमाना लगान वसूल करते थे। पर फिर भी अल्मास अली के शासन-काल में रिआया की आर्थिक दशा इतनी बुरी नहीं थी जितनी वह अंग्रेज़ी अमल क़ायम होने पर नये बन्दोबस्तों के कारण हो गई। जब कानपुर के पहले कलेक्टर मि० वेलाण्ड ने १८०२ में इसका चार्ज लिया तो उसने अपने पूर्ववर्ती शासन की काफ़ी बुराई की। अपने ३१ मई १८०२ वाले पत्र में मि० वेलाण्ड ने मि० हेनरी वेलेज़ली को, जो अवध द्वारा अंग्रेज़ों को दिये हुए ज़िलों के लेफ्टिनेंट-गवर्नर नियुक्त किये गये थे, यह लिखा—

"नवाब वज़ीर और मीर अल्मास अली ख़ाँ की यह नीति थी कि जितना रुपया भी, जिस उपाय से भी हो सके, जमा किया जाय, और प्रत्येक फ़सल के शुरू में उसे चलाने के लिए वे सामान देते थे, यहाँ तक कि ख़ुराक, खाना, कपड़े और रिआया के मकानों तक का अधिकतर नियंत्रण होता था और हुकूमत की

ओर से उन्हें इन कामों के लिए रुपया दिया जाता था। पिछली फ़सल के काटने के समय किसानों से सब ग़ल्ला छीन लिया जाता था, इसलिए अगली फ़सल की तैयारी के लिए उन्हें रुपया, बीज, जानवर, हल आदि तक़सीम किये जाते थे और फ़सल काटने पर मूल से सवाया वसूल किया जाता था। आमिल सर्वशक्तिमान् था और पैदावार का अधिक से अधिक भाग ले लेता था।" वह दूसरी जगह लिखता है, "देश के इस भाग की रिआया अत्यन्त दयनीय निर्धनता की दशा में है। सारे इलाके में खोजने से भी न तो कोई कारीगर मिलेगा और न टैक्स दे सकने की क्षमता रखने वाला व्यक्ति। सब जगह उजाड़ पड़ी है, जिसमें अभी तक अत्याचार का ही सर्वत्र राज्य रहा है।" इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यह वर्णन अतिरंजित और द्वेषपूर्ण है। वह फिर कहता है कि "नानाप्रकार के नाजायज़ करों और चुंगियों के लिये जाने से व्यापार में बाधा पड़ती है। सब दूकानदारों पर 'परजोत' नामक एक कर लगता है। नमक, मछली, चराई, आदि पर कर हैं। तौलने के काँटों की परख पर 'संगवज़नी' नामक कर है। कोई पुलिस नहीं है और न जान-माल की रक्षा का प्रबन्ध है। किसान को खेत बोते समय यह संतोष कभी नहीं होता था कि वह अपनी फ़सल काट भी सकेगा। खेती घट गई है, तिजारत कम हो गई है, और अधिकतर लोग या तो अपनी सम्पति की रक्षा में या दूसरे की सम्पति

के लूटने में ही लगे रहते हैं।" अंग्रेज़ी अमल की नियामतों को बढ़ा कर दिखाने के लिए ही मि० वेलाण्ड ने अलमास अली के शासन को ऐसा काला पोतने की कोशिश की है। ख़ुद बहुत से अंग्रेज़ लेखकों और अगले बन्दोबस्तों के अफ़सरों के लेख इस अतिरंजित वर्णन का खंडन करते हैं। अवध का केंद्रीय शासन कुछ ढीला अवश्य था, पर रिआया की दशा काफ़ी अच्छी थी। अवध "उत्तर भारत का बाग़" कहलाता था।

अंग्रेज़ी शासन की नियामतें—

"सरकार कम्पनी बहादुर" की छत्र-छाया में आकर कानपुर के ज़िले में शासन का वही ढाँचा स्थापित हुआ जो १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बंगाल अहाते में अन्यत्र था। पर शुरू में अंग्रेज़ कलेक्टर ही ज़िला जज भी होता था। ज़िले में तहसीलदारों के अधिकार में कई परगने थे, जिनकी चर्चा एक पिछले अध्याय में हो चुकी है। एक विदेशी व्यापारी कम्पनी का शासन जैसा होना चाहिए था वैसा ही हुआ। ज़िले के ज़मींदारों से अधिक से अधिक रुपया खींचना और कम्पनी के ख़ज़ाने को भरना ही उसका प्राथमिक उद्देश्य था। अंग्रेज़ी शासन में मालगुज़ारी के जो अनेक बंदोबस्त समय समय पर हुए उनकी कथा अत्यन्त करुणाजनक है। "कानपुर गज़ेटियर" के अंग्रेज़ लेखक, मिस्टर एच० आर० नेविल, ने

ष्ट शब्दों में इस बात को स्वीकार किया है कि अंग्रेज़ी
ासन कानपुर के किसानों और ज़मीन्दारों को बहुत दुःखदायी
ाद्ध हुआ।

बन्दोबस्त

कानपुर के प्रथम कलेक्टर मि० वेलाण्ड ने ही ज़िले का
ला बन्दोबस्त किया। अवध के अमल के आख़िरी साल
ले का समस्त कृषि-कर २२,५६,१५६ रुपये था। यह भी
ग़ज़ी रक़म थी, क्योंकि पूरी मालगुज़ारी शायद ही कभी
ूल होती हो। मि० वेलाण्ड ने तहसीलदारों से अपने-
पने परगनों की रिपोर्ट माँगी। उनसे यह पूछा गया कि
धिक से अधिक कितनी मालगुज़ारी जमा की जा सकती
। तहसीलदारों को जमा की हुई रक़म का कुछ प्रतिशत
मीशन के रूप में मिलता था। इसलिए उन्होंने मालगुज़ारी
बढ़ाकर दिखाने में कोई कसर न रख छोड़ी। उधर
मीन्दार लोगों को भी नई अमलदारी क़ायम होने से यह
क़ा मिला कि अधिक मालगुज़ारी जमा कर सकने का
लच देकर कलेक्टर साहब के ऊपर प्रभाव डाल कर नवाबी
ा के पुराने ज़मीन्दारों को बेदख़ल करा दिया जाय और
पने नाम उनकी जगह चढ़वा लिये जायँ। क़ानूनगो और
वारी भी, जिनकी सहायता से सब खेती-संबंधी काग़ज़-
ा और लेखे तैयार किये जाते थे, अपने नये गोरे शासकों

का प्रसन्न करने की घात में थे। वेलाएड तथा उसके उत्तराधिकारी अंग्रेज़ अफ़सर यहाँ की मालगुज़ारी की गुत्थियों को खोलने में सर्वथा अयोग्य सिद्ध हुए। न तो वे यहाँ की भाषा ही जानते थे, और न रीति-नियम ही। इन सब बातों का परिणाम प्रजा के लिए अत्यन्त भयंकर हुआ। सन् १८०२ में जो प्रथम त्रैवार्षिक बन्दोबस्त हुआ उसमें समस्त ज़िले की मालगुज़ारी २४,६६,०४६ रुपये नियत हुई। जिस वेलाएड ने अलमास अली ख़ाँ के लूट और कुशासन की ज़ोरों से बुराई की थी, उसी ने पिछली मालगुज़ारी पर लगभग २ लाख १३ हज़ार की वृद्धि कर दी। यह था अंग्रेज़ी शासन का प्रथम वरदान!

ठग-मंडली की करतूतें

दुर्भाग्यवश सन् १८०३-४ में अनावृष्टि के कारण हाहाकार मचा उस और उसके परिणाम-स्वरूप अनेक ज़मीन्दार मालगुज़ारी अदा न कर सकने के कारण फ़रार हो गये। उनकी ज़मीन्दारियाँ नीलाम पर चढ़ा दी गईं, पर कोई उन्हें लेने को न तैयार हुआ। अन्त में सरकारी नौकरों और उनके रिश्तेदारों को ये ज़मीन्दारियाँ कौड़ी के दाम पर बेंच दी गईं। सब से मज़ेदार बात तो यह हुई कि कुछ ऐसी ज़मीन्दारियाँ भी थीं जिनकी मालगुज़ारी अदा हो गई थी, पर सदर-अमीन और उसके नातेदार और गुट वाले तहसीलदारों ने जालसाज़ी कर उन्हें सस्ते दामों पर अपने परिवार वालों के नाम नीलाम

में दे दिया। इस समय नासिर अली कलेक्टर का दीवान था। वह छपरा (बिहार) ज़िले के खोजवा गावँ का निवासी था। बिठूर और डेरापुर के तहसीलदार उसके भाईबन्द थे। अहमद बख़्श मदर-नाज़िर था। घाटमपुर, जाजमऊ, शिवली, बिल्हौर और रसूलाबाद के तहसीलदार उसके मित्र अथवा सम्बन्धी थे। इन दोनों गुटों ने न जाने कितने गावँ बेईमानी से हथिया लिये। सन् १८१३ में जब इस छल-लीला का भंडा-फोड़ हुआ तो बंदोबस्त-अफ़सर, मि० न्यूनहम, की राय थी कि लगभग ८०० गावों को इन धूर्तों ने हड़प लिया था। शिबली के तहसीलदार, राममोहन घोष, ने तो इन सब बेई-नामों के कान काट लिये। उसने अपने बन्दर, कृष्णमोहन, के नाम कई गावँ चढ़ा दिये थे। यह सब होते हुए भी सरकार ने इन मामलों की पूरी जाँच करने में बहुत देर लगा दी, यद्यपि कई कलेक्टरों ने इस सम्बन्ध में बार बार रिपोर्टें भेजीं। अन्त में सन् १८२१ में मि० क्रिश्चियन और मि० बर्ड की एक स्पेशल कमीशन इस विषय पर जाँच करने के लिए नियुक्त हुई। उन्होंने जब पुराने काग़ज़ों की खोज की तो यह ज्ञात हुआ कि वे या तो ग़ायब थे अथवा अधूरे। जाँच के परिणाम-स्वरूप उपर्युक्त धूर्तों को बरख़ास्त कर दिया गया, पर सबूत की कमी से उनपर कोई मुक़द्मे न चल सके। फिर भी १७-१८ वर्षों में इन लोगों ने ख़ूब रुपया कमा लिया था, और अन्य जायदादें ख़रीद ली थीं। अभी तक नासिर अली का छत्ता और इमामबाड़ा (पटकापुर) और राकमोहन का हाता

(गिलिसबाज़ार) इन पुराने शातिरों की प्रचुर सम्पत्ति की याद दिलाते हैं। हमारे आधुनिक "चार-सौ-बीसियों" और ब्लैक मारकेट वालों को इन अवतारी आदि-पुरुषों की बुद्धि-चपलता और चातुरी की प्रतिष्ठा में कोई उपयुक्त स्मारक बनाना चाहिए !

अंग्रेज़ कलेक्टर लंबा ग़बन कर फ़रार—

दूसरा बन्दोबस्त भी ३ वर्षों के लिए १८०८-६ से १८११-१२ तक के लिए हुआ। यह बन्दोबस्त पहले से कुछ हलका रहा, पर फिर भी इतना कठोर था कि मालगुज़ारी न दे सकने के कारण ४६ ज़मीन्दारियाँ इन तीन वर्षों में नीलाम पर चढ़ीं। चौथा बन्दोबस्त पंचवर्षीय १८१२-१३ से १८१६-१७ तक के लिए हुआ। इस अवधि में एक अत्यन्त विचित्र घटना हुई। मि० रैवेन्स्क्राफ़्ट सात बरस तक इस ज़िले का कलेक्टर रहा। यों तो वह अपने काम में बहुत योग्य और परिश्रमी था, पर चरित्र उसका भ्रष्ट था। कपास का उसने लंबा सट्टा किया जिसमें उसे बहुत टोटा हुआ। भुगतान न कर सकने के कारण उसने सरकारी ख़ज़ाने से २,७४,८५३ रुपये का ग़बन कर लिया, और जब इस ग़बन का पता चला तो वह फ़रार हो गया। अन्त में वह बहराइच-ज़िले में भिनगा-नरेश के यहाँ जा छिपा और उन्हींके द्वारा उसका वध कर डाला गया। उसके स्थान में मि० बीमिस कलेक्टर नियुक्त हुआ जो सन

१८४४ तक इस पद पर रहा। सन् १८१२ वाला पंचवर्षीय बन्दोबस्त सन् १८३३ के रेगूलेशन ६ के पास होने तक जारी रहा। इस नये क़ानून के अनुसार कैप्टेन ऐबट और फिर मि० एच० रोज़ ने ज़िले का पूरी तरह से सर्वे किया और विभिन्न प्रकार की मिट्टियों के अनुसार इसका नया वर्गीकरण किया। इन अफ़सरों ने अपने अध्ययन और अनुभव से नवीन बन्दोबस्त के लिए रास्ता साफ़ कर दिया। मि० रोज़ का यह निश्चित मत था कि दोआब के मध्य तथा निम्न भागों में स्थित अन्य सभी जिलों से कानपुर का बन्दोबस्त अभी तक बहुत अधिक रहा था। उसके कुछ कारण तो ये थे कि यहाँ पर औद्योगिक केन्द्र होने के कारण शहर के कुछ लोगों के पास फ़ालतू रुपया बहुत था, जिसे वे ऊँचे दामों पर ज़मीन्दारी ख़रीदने में लगाते थे और भूमि की असली पैदावार और किसानों की आर्थिक क्षमता को ध्यान में न रखकर वे ऐसा करते थे। कभी कभी कई मालदार रईसों में आपस में प्रतिस्पर्धा के कारण ज़मीन्दारियों की बिक्री और भी ऊँचे दामों पर होती थी। उधर पास ही इटावा, फ़र्रुख़ाबाद, जहानाबाद, और विशेषतः लखनऊ के धनीमानी पुरुष भी इस होड़ में आ फाँदते थे। परिणाम यह होता था कि बेचारे किसानों का खून चूसा जाता था। मि० रोज़ ने बहुत परिश्रम और योग्यता से इस पाँचवें बन्दोबस्त का कार्य सम्पादित किया और ज़िले भर की पूरी मालगुज़ारी उनके हिसाब से अगले ३० वर्षों के लिए २१,८१,७७६ रुपये निश्चित हुई, जो अल्मास

अली के अन्तिम बंदोबस्त से केवल ७४,३५० रुपये कम और मि० वेलाण्ड के प्रथम बंदोबस्त से २,८७,२७० रुपये कम थी। इसीसे अंग्रेज़ी अमल की पहले ३१ वर्षों की निर्ममता का पता लगता है। पर रोज़ साहब का बन्दोबस्त भी उस समय की किसानों की अधिक दुरवस्था के कारण बहुत कष्ट-प्रद सिद्ध हुआ। मालगुज़ारी की वसूलयाबी में कठिनाइयाँ मालूम होने लगीं, और इसलिए बोर्ड आफ़ रेवन्यू ने मि० सी० ऐलेन को इस विषय पर पुनर्वार जाँच करने को भेजा। परिणाम यह हुआ कि मि० रोज़ के बन्दोबस्त में ३२,३२६ रुपये की और स्थायी कमी की गई। इतना होने पर भी अगले ३० वर्षों में १६ ज़मींदारियाँ नीलाम पर चढ़ाई गईं क्योंकि उनके मालिक मालगुज़ारी अदा न कर सके। इनके अतिरिक्त १३ लाख मालगुज़ारी देने वाले मौज़े या तो उनके ज़मीन्दारों द्वारा बेंच डाले गये अथवा क़र्ज़ के अदा न होने के कारण दीवानी अदालत के हुक्म से नीलाम हो गये। इसके माने यह हुए कि कृषि-योग्य भूमि का ६२ प्रतिशत भाग पुराने ज़मीन्दारों के हाथों से सदा के लिए निकल गया। इन आँकड़ों से ही इस प्रथम तीसवर्षीय बन्दोबस्त की ज़ियादती का अनुमान हो सकता है। इसी बन्दोबस्त के प्रचलन के काल में १८५७-५८ का भयंकर विद्रोह भी हुआ, जिसके परिणाम-स्वरूप अनेक प्राचीन परिवारों की ज़मीन्दारियाँ ज़ब्त हो गईं। इस बात की चर्चा अन्यत्र मिलेगी।

सन् १८६८ में दूसरे तीससाला बन्दोबस्त का कार्य शुरू

हुआ। इस समय यहाँ के कलेक्टर मि० हालसी थे, जो कानपुर-नगर के सर्वप्रथम निर्माता (सैनर) के रूप में चिरस्मरणीय रहेंगे। इस साल भी बड़े जोर का अकाल था। इस लिए इस कार्य को कुछ वर्षों के लिए स्थगित करना पड़ा। १८७१-७२ में यह फिर शुरू हुआ और १८७५-७६ में समाप्त हो गया। अभी तक लगान का दो तिहाई सरकार मालगुज़ारी के रूप में लेती थी। अब सरकार का भाग घटाकर लगभग आधा कर दिया गया। फिर भी इस बन्दोबस्त के अनुसार कुल ज़िले की मालगुज़ारी २१,५६,३६५ रुपये निश्चित हुई। इसके माने यह हुए कि जोती जाने वाली भूमि पर प्रति एकड़ २ रुपया ८ आना ४ पाई के हिसाब के कृषिकर सरकार को मिला। कुछ ही वर्षों के अनुभव ने यह स्पष्ट कर दिया कि यह छठा बन्दोबस्त भी प्रजा के लिए कष्टदायी था, और विशेष कर गंगा, यमुना और ईसन के किनारे के भागों में। १८६१ से अकालों का ताँता सा लग गया। अन्त में कई इलाक़ों में मालगुज़ारी घटानी पड़ी। दृष्टान्त के लिए नर्वल तहसील में गंगा के किनारे स्थित नागापुर मौज़े में मालगुज़ारी १३०० रुपये से घटाकर ३०० रुपये करनी पड़ी। फिर भी १८६७-६८ में कलेक्टर मि० टेथवे के शब्दों में "प्रति वर्ष मालगुज़ारी का जमा करना कठिन होता जाता है।"

रिआया की तबाही—

१६ वीं शताब्दी का अंतिम भाग दुर्भिक्ष का युग था।

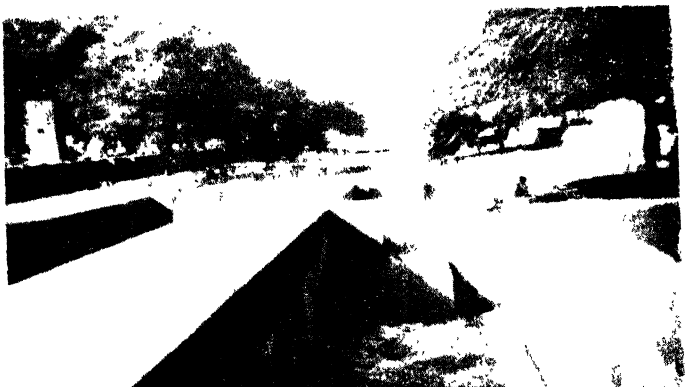
उधर प्लेग का भी प्रारंभ हुआ और १६११ की जनगणना पर उसका स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। सन् १६०३ में सातवें बन्दोबस्त की कार्रवाई शुरू हुई और १६०६ के अंत तक वह समाप्त हो गई। गत ३० वर्षों में अनेक अकाल पड़े, महामारी का भी प्रकोप रहा, तथा कानपुर-नगर की विशेष वृद्धि भी हुई। इन सब का प्रभाव किसानों पर पड़ा था। ज़मीन्दारों की दशा भी अच्छी न थी। पुरानी ज़मीन्दारियाँ अकर्मण्यता, असावधानी, ऋण-भार, सम्पत्ति के बँटवारे आदि के कारण टूट-फूट कर छोटी छोटी टुकड़ियों में विभक्त हो गई थीं। अनेक उपजाऊ ज़मीनों पर काँस फैल गया था, कुछ बंजर में परिवर्तित हो गई थीं, और कुछ को नदी-नालों ने बेतरह काट कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था।

नील का व्यवसाय—

पुराने युग में नील की खेती इस ज़िले के अनेक भागों में, और विशेषतः बिल्हौर, शिवराजपुर और नर्वल के परगनों में, बहुत होती थी। अब जर्मनी में नई रासायनिक विधि से रंग प्रचुर परिमाण में बनने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि नील की काश्त, जिसे बेंचकर किसानों को खरा रुपया मिलता था, धीरे-धीरे समाप्त होगई और केवल आलू, कपास, लाही और सरसों नक़दी फ़सल के रूप में बच गईं। नील वाले क्षेत्रों में अनेक ज़मीन्दारों, महाजनों और उद्योगपतियों ने नील बनाने के लिए कोठियाँ बना रक्खी थीं। इन कोठियों



भगवद्दास घाट का एक दृश्य



गंगा की नहर के प्रपात, कानपुर

(पृष्ठ २७५)

और कारख़ानों के भग्नावशेष अभी तक उपर्युक्त परगनों में, ग्रांड-ट्रंक-रोड पर तथा उसके आसपास काफ़ी तादाद में देखे जा सकते हैं। इस व्यवसाय के नष्ट होने से अनेक ज़मीन्दार-परिवार बिगड़ गये।

अंग्रेज़ी अमल क़ायम होते ही अनेक योरोपीय उद्योग-पतियों ने इसकी खेती शुरू कर दी थी। उनके पहले बहुत दिनों से इस भूमि में इसकी पैदावार काफ़ी होती थी। लखनऊ के प्रसिद्ध जनरल लामार्टिन ने नवाबी शासन-काल में ही नजफ़गढ़ में अपनी नील की कोठी खोल दी थी। नजफ़गढ़ में उनके पास २५ और आसपास के गावों में ३३० कुंड थे, जिनमें नील सड़ा कर साफ़ किया जाता था। उसके मरने के बाद उसके भतीजे ने कुछ दिन यह काम चलाया और फिर उसे फ़ोर्टियर ऐंड डूब्वाय कम्पनी के हाथ बेंच डाला। इसी प्रकार मि० ऐडम मैक्सवेल ने महाराजपुर में, बार्नेट ऐंड कम्पनी तथा अन्य विदेशी और देशी उद्योगियों ने भी अन्य स्थानों में नील के कारख़ाने खोले। कानपुर-नगर के अनेक प्राचीन परिवार इसी कारण अन्य स्थानों से आकर यहाँ बस गये। किन्तु सन् १८३० में सट्टेबाज़ी के कारण कलकत्ते में नील के अनेक व्यापारियों के दिवाले निकल गये और कानपुर के नील के उद्योग पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा। निलहो गोरी कम्पनियों ने नजफ़गढ़, महाराजपुर आदि के कारख़ानों को तोड़ दिया। पर छोटे-छोटे देशी कारख़ाने लस्टम-पस्टम चलते रहे। १८६५ से फिर नील की खेती और

उपज में वृद्धि होनी शुरू हुई। सन् १८८४ में ६०,४४२ एकड़ भूमि में इसकी काश्त होती थी। किन्तु फिर अवनति शुरू हुई और २० वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में इसकी पैदावार नगण्य होगई। अब तो यह ज़िले भर में कहीं नहीं पैदा होता है।

नील की खेती के समाप्त हो जाने से इस ज़िले के किसानों और ज़मीन्दारों के ऊपर क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ा। यद्यपि सूती मिलों के खुलने और उनकी क्रमिक वृद्धि के कारण कपास की खेती काफ़ी बढ़ी, पर वह भी विश्व-मंडियों की होड़ में ठहर न पाई। प्रथम महायुद्ध के उत्तर काल में कपास की खेती धीरे-धीरे घटती गई, पर उसका स्थान गन्ने ने ले लिया। अब गन्ना इस ज़िले की प्रधान नक़दी फ़सल है। यद्यपि इस ज़िले में आजकल कोई शकर-मिल नहीं है, पर गन्ने को कोल्हू से पेर कर गुड़ बनाने का उद्योग यहाँ पर प्रति वर्ष बढ़ता जा रहा है। नील की खेती से मिट्टी निर्बल न होकर उपजाऊ होती रहती थी, पर गन्ने की फ़सल उसके उल्टे ज़मीन को बहुत कमज़ोर कर देती है और बिना कृत्रिम खाद के प्रयोग के ज़मीन की उर्वरा-शक्ति नहीं लौटती। उधर पशुओं की संख्या घटने से भी पाँस की कमी हो गई। इन सब कारणों से ज़िले की पैदावार बहुत घट गई है।

दुर्भिक्ष

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि ब्रिटिश

शासन-काल में हमारे ज़िले की कृषि की कैसी दशा रही और किस प्रकार किसानों और ज़मीन्दारों दोनों की हालत दिन प्रतिदिन बिगड़ती गई। स्वयं मि० नेविल ने यह स्वीकार किया है कि सन् १८५७ में इस ज़िले में उपद्रव की भीषणता का एक मुख्य कारण यहाँ के सख़्त और बेहूदे बन्दोबस्त थे। तभी तो यहाँ के अनेक छोटे बड़े ज़मीन्दारों और किसानों ने उसमें खुलकर भाग लिया। और इन्हीं के परिणामस्वरूप दुर्भिक्षों और महामारियों ने भी इसको अच्छी तरह तबाह किया। यदि प्रजा की दशा अच्छी होती, उनको पेट भर खाना नसीब होता, और कुछ जमा-जथा पास होती, तो वे अकाल का मुक़ाबिला अच्छी तरह कर सकते और बीमारियों के शिकार भी इतनी जल्दी न होते।

चालीसा अकाल—

अवध-शासन के अन्तिम दशक में संवत् १८४० अर्थात् सन् १७८३-८४ का "चालीसा अकाल" बहुत वर्षों तक याद रहा। पिछले वर्ष भी वृष्टि कम हुई थी और इस वर्ष पूर्ण अनावृष्टि रही। इसका परिणाम अत्यन्त भयंकर हुआ। गेहूँ का भाव रुपये में ८ सेर तक चढ़ गया, जो उस युग के लिए आश्चर्यजनक था। भावों को पुराने स्तर तक आने में कई वर्ष लगे।

प्रथमे ग्रासे मक्षिकापातः—

कम्पनी की हुकूमत के प्रारम्भ होते ही सन् १८०३-४ में

ख़रीफ़ और रबी दोनों फ़सलें अनावृष्टि के कारण नहीं के बराबर हुईं। सन् १८०२ में पहला तिसाला बन्दोबस्त हुआ था और, जैसा हम ऊपर बतला चुके हैं, काफ़ी सख़्त हुआ था। परिणाम यह हुआ कि किसान गावँ छोड़कर और ज़मीन्दार अपनी ज़मीन्दारियों को छोड़ कर फ़रार हो गये। फिर भी नई सरकार ने २,३३,१६७ रुपये की ही माफ़ी दी और लगभग इतने ही रुपये की मालगुज़ारी मुल्तवी की। बहुत से पुराने ज़मीन्दारों की ज़मीन्दारियाँ नीलाम कर दी गईं। सन् १८१२ में भी बरसात बहुत कम हुई और इसलिए सन् १८१३ की रबी की फ़सल बरबाद हो गई। यह अकाल १८०३ वाले से भी अधिक ख़राब साबित हुआ। परन्तु दयालु सरकार ने केवल २७ हज़ार की माफ़ी की इजाज़त दी! १८१६ भी सूखे का साल था। १८२५-२६ में पश्चिमी परगनों में पानी कम बरसने से पैदावार बहुत कम हुई। १८३३-३४ में बुन्देलखंड में भीषण दुष्काल होने के कारण यमुना के किनारे के परगनों में विशेषतः और अन्य परगनों में भी बहुत काफ़ी अकाल और महँगाई का ज़ोर रहा। केवल ३३,२४५ रुपये की माफ़ी दी गई।

"चौरानवे" साल का अकाल—

इस दुःख का सर्वथा अन्त भी न हो पाया था कि सन् १८३७-३८ अर्थात् संवत् १८९४ में बहुत ही भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। बिल्हौर और रसूलाबाद परगनों में सिवाय कुछ हलकी

बूँदाबाँदी के वृष्टि हुई ही नहीं हुई। पेड़ों की पत्तियाँ तक काट कर पशुओं को खिला दी गई, फिर भी वे हज़ारों की संख्या में मर गये। ज़िले के पूर्वी और दक्षिणी भागों में कुछ हलकी बारिश होने से थोड़ा सा जुआर और बाजरा पैदा हुआ, पर अन्यत्र घास की एक पत्ती तक नहीं दिखाई पड़ती थी। सरकार ने कुछ परगनों में बुभुक्षितों के सहायतार्थ कुछ काम जारी किये, जिनमें प्रतिदिन केवल २०० रुपये के लगभग व्यय किया गया! जलते हुए तवे में जिस प्रकार पानी की एकआध बूँद पड़ने से 'छन्न' सी आवाज़ होकर रह जाती है वही परिणाम इस सरकारी कृपणता का हुआ। किन्तु ग़ैरसरकारी सहायता का भी कुछ प्रबन्ध हुआ, जिससे थोड़ा सा काम चला। १२, २८, ६०४ व्यक्तियों को ६८,६१८ रुपये की मदद इस चन्दे और दान के कोष से नवंबर १८४७ से जुलाई १८४८ तक मिली। इन आँकड़ों से इस अकाल की भयंकरता का थोड़ा-बहुत अनुमान हो सकता है। भुखमरी के साथ-साथ शीतला और हैज़े का भी बहुत अधिक प्रकोप ज़िले भर में रहा। कानपुर में जाड़े के दिनों में गंगाजी की क्षीण धार मुरदों से पटी पड़ी थी। कुछ सम्भ्रान्त परिवार वालों ने सहायता लेना अपनी आत्म-प्रतिष्ठा और कुल-मर्यादा के विरुद्ध समझ कर विष-पान कर अपनी असह्य यातनाओं का अन्त कर लिया। मि० रोज़ के ही पत्रों में इन सब घटनाओं का वर्णन है। "चौरानबे साल" को यहाँ की प्रजा कई पीढ़ियों तक न भूल पाई। कोई सवा सत्रह लाख की माफ़ी मालगुज़ारी में दी गई।

गंगा की नहर आई—

सन् १८४२ में गंगा की प्रसिद्ध नहर का निर्माण प्रारम्भ हुआ, पर सन् १८५४ में पहली बार इस ज़िले में नहर के द्वारा पानी आया। सन् १८६१ तक इसमें पानी की मात्रा बहुत कम थी और नहर का विस्तार भी सीमित था। फिर भी कुछ न कुछ सिंचाई तो होने ही लगी। सन् १८६० का अकाल इतना भयंकर नहीं हुआ जितना नहर के न होने से होता। १८६५ में महँगाई बहुत थी और सन् १८६८-६६ में भी अन्य ज़िलों में पानी न बरसने से फ़सलों को बहुत हानि हुई। पर इस बीच में नहर के अधिक विस्तार के कारण इस ज़िले की अवस्था बहुत बुरी नहीं हुई। १८६६ के जाड़े में भीषण पाले से चने और अरहर की फ़सल और बरसात में अति-वृष्टि होने से ख़रीफ़ की फ़सल नष्ट हो गई। पर नहरों, रेलों और सड़कों के निर्माण का काम इस समय इस ज़िले में ज़ोरों से चल रहा था, इसलिए मज़दूरी की कमी न थी और बाहर से कई लाख मन ग़ल्ला आने से लोगों की बुभुक्षा की शान्ति का प्रबन्ध हो गया।

विक्टोरिया के अन्तिम वर्ष—

सन् १८८० में ज़िले की वृष्टि का औसत केवल ११.०६ इंच था जो अभूतपूर्व था और ज़िले की साधारण वर्षा की औसत का तिहाई था। इसके परिणामस्वरूप ख़रीफ़ की फ़सल चौपट हो गई, पर बाहर से ग़ल्ला आने से कुछ कष्ट

दूर हो गया। १८९१ से अकालों का ताँता लगा और सन् १८९६-९७ (संवत् १९५२) में बहुत भयंकर दुष्काल के दर्शन हुए। कई वर्षों से बरसात कम हो रही थी और महँगाई बढ़ रही थी। इसलिए सन् १८९८ की बहुत हलकी वृष्टि ने इस स्थिति को और भी अधिक भीषण बना दिया। बरसात बहुत कम होने पर भी जहाँ-जहाँ रबी बो दी गई थी वहाँ अच्छी महावट हो जाने के कारण अच्छी फ़सल हो गई। पर ज़िले के अधिकतर भागों में, जहाँ सिंचाई की कोई सुविधा न थी, कुछ भी न पैदा हो सका। तक़ावी बाँटने से किसानों को कुछ राहत मिली। अकाल - पीड़ितों की सहायता के निमित्त कुछ सरकारी काम भी छेड़ दिये गये, जैसे सड़कों का निर्माण, तालावों का गहरा करना आदि। कुछ तहसीलों के सदर मुक़ाम पर मोहताजख़ाने भी बनाये गये जिनमें ग़रीब अपाहिजों और निस्सहाय व्यक्तियों को बिना काम किये मुफ़्त खाना मिलता था। कुल मिला कर सरकारी ख़ज़ाने से ६, २०, ४४२ रुपये अकाल-पीड़ितों की सहायता में ख़र्च हुए और २,१२,०६३ रुपये की मालगुज़ारी में माफ़ी दी गई। १८९९ का साल भी महँगाई और अल्पवृष्टि का साल था। १९ वी शताब्दी का अवसान प्रजा की आहों से हुआ। उधर प्लेग का पदार्पण भी हुआ। यह कोढ़ में खाज हुई। सन् १९०१ में महारानी विक्टोरिया का निधन हुआ। अभी तक हमारे यहाँ के बूढ़ों और बुढ़ियों का एक मूढ़- विश्वास चला जा रहा है कि मलिका विक्टोरिया के शासन में सुख और समृद्धि का राज्य था। ऊपर के संक्षिप्त

वर्णन से यह तो स्पष्ट ही हो गया होगा कि कानपुर- जिले में इस युग में किसान और किसानी की दशा कितनी दुर्बल और क्षीण रही, कितने छोटे-मोटे अकाल इस समय में पड़े और भुखमरी तथा बीमारी से कितना नर-सहार हुआ। सन् १८५७ की विभीषिकाओं ने भी ग़जब ढाया। ग़दर के पहले और बाद दोनों ओर सख्त बन्दोबस्तों और सहानुभूतिहीन विदेशी साम्राज्यवादी शासन ने हमारे किसानों की रीढ़ तोड़ दी। उनमें किसी दैवी आपत्ति—अकाल, बाढ़, महामारी आदि—को सफलतापूर्वक सामना करने की क्षमता ही न शेष रह गई। यद्यपि ब्रिटिश शासन ने रेलें, सड़कें, पुल, नहरें, अस्पताल, आदि के निर्माण से व्यथित प्रजा को कुछ सुख और सुविधा देने का आयोजन किया, किन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि अवध के हाथों से अंग्रेजी अमल में आने से किसानों की दशा में सुधार के बदले बिगाड़ ही अधिक हुआ। कर्नल स्लीमन सन् १८३५ में अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "रैम्बिल्स ऐंड रिकलेक्शन्स आफ़ ऐन इंडियन आफ़िशियल" में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है कि अवध से प्राप्त जिलों में किसानों की यह ख़ास शिकायत थी कि जब से हमारे ऊपर अंग्रेज़ी शासन शुरू हुआ है हमारी हालत ख़राब होती जा रही है। अब हमारी वसुन्धरा की उर्वरा-शक्ति पहले जैसी नहीं रही, हमारी गायें अब पहले की तरह दूध नहीं देतीं, और लोगों की नीयतें भी पहले की भाँति अच्छी नहीं रहीं। स्लीमन कहता है कि कारण पूछे जाने पर किसान कहते थे

कि अंग्रेजी अदालतों में झूठ का ही बोलबाला होने से लोगों में बरकत नहीं रही। वह अन्यत्र कहता है कि अवध के लोग उस देश के कम्पनी की हुकूमत में शामिल होने पर यह प्रार्थना करते थे कि हमें चाहे ब्रिटिश शासन में भले ही रहने दो, पर हमें ब्रिटिश क़ानून और अदालतों से मुक्त रक्खो, क्योंकि ये हमारा सर्वनाश कर देंगे।

भाव

अन्न के भावों के सम्बन्ध में गजेटियर में जो आँकड़े दिये हुए हैं उनका संक्षिप्त वर्णन किया जाता है।

सन् १८१६ और १८२५ के बीच में गेहूँ का औसत भाव एक रुपये में २६.२४ सेर, जुआर का ४४.४५ सेर और बाजरे का ४३.६५ सेर था। अगले दस वर्षों में औसत भाव गेहूँ का ३२.५८, जुआर का ४२.६३, और बाजरे का ४२.६ सेर था। गेहूँ कुछ सस्ता हुआ, पर जुआर और बाजरा महँगे हो गये। कानपुर-नगर में ये भाव काफ़ी ऊँचे थे। गेहूँ २६.२६ सेर ही मिलता था, अर्थात् गावँ से शहर आने पर उसका भाव ६.२६ सेर ऊँचा हो जाता था। अभी तक न तो रेलें बनी थीं और न पक्की सड़कें और कानपुर के उत्तरी भारत की ग़ल्ले की मंडी बनने में अभी बहुत देर थी। जहानाबाद, कालपी, औरैया, फ़र्रुख़ाबाद आदि उस समय की मंडियाँ थीं। १८३५ से १८४५ तक वाली दशाब्दी में १८३७ घोर अकाल का साल था। उसको छोड़कर शेष ६ वर्षों का औसत

भाव ज़िले में गेहूँ का ३०.७३ सेर, जुआर का ४२.०२ सेर बाजरा का ३६.५२ सेर, पर शहर में गेहूँ २३.६६ सेर, चना २६.१६ सेर और जौ ३३.१६ सेर। सन् १८४६ से १८५५ तक ज़िले में भावों के औसत ये थे:—गेहूँ ३६.०५, जुआर ७१.४५ बाजरा ५८.६३ सेर। १८५०-५१ में भावों में जितनी मंदी रही उतनी कभी नहीं रही। ये सब भाव फ़सल के कटने के समय के हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि इनके फुटकर भाव अन्य महीनों में क्या थे।

ग़दर के कारण १८५७-५८ में मंडियाँ अस्तव्यस्त हो गईं। इस बीच में ग्रांड-ट्रंक-रोड बन चुकी थी और कुछ वर्षों के बाद ईस्ट इंडियन रेलवे भी चालू हो गई। गंगा की नहर में भी पानी आना शुरू हो गया। फिर भी भावों का पुराना स्तर कभी नहीं आ पाया। नहर खुल जाने से ज़िले की पैदावार कुछ अवश्य बढ़ी, और साथ ही साथ कानपुर-नगर में ग़ल्ले की मंडी की भी अभूतपूर्व वृद्धि रेल व ग्रांड-ट्रंक-रोड के कारण हुई। पर एक तो इस युग में अकालों की भरमार रही, और दूसरे यातायात की अधिक सुगमता से यहाँ का अन्न अन्य स्थानों में भी आसानी से जाने लगा। तभी तो ग़दर के बाद वाले ज़माने में भाव पहले की अपेक्षा बहुत अधिक चढ़ गये। सन् १८६५ में समाप्त होने वाली दशाब्दी में फुटकर भावों का औसत इस प्रकार था:—गेहूँ २५.६१ सेर, जुआर ३२.३२ सेर, बाजरा ३३.७२ सेर; और १८६०-६५ का औसत जौ के लिए ३०.७ सेर और चने के लिए २५.४५

सेर था। अकालों और अनाज के देसावर जाने का परिणाम सन् १८६६-७५ के काल में अच्छी तरह से स्पष्ट होने लगा। इस अवधि में गेहूँ का भाव १७.१७ सेर, जुआर का २४.५१ सेर, बाजरा का २२.२४ सेर, जौ का २४.९७ सेर और चने का २२.४४ सेर था। सन् १८७७-७८ के दुर्भिक्ष से भाव बहुत चढ़ गये, पर फिर भी १८७५-८५ के बीच भावों का औसत पहली दशाब्दी से भी सस्ता रहा। गेहूँ १९.७१ सेर, २६.६६ जुआर, २५.०१ बाजरा, २७.८८ जौ और २४.९९ चना के भाव इस समय थे। किन्तु सन् १८८६ में चाँदी का भाव गिर जाने से अन्तर्राष्ट्रीय तहलका मचा और प्रायः सभी चीज़ों के दाम चढ़ गये। रेलों और सड़कों का विस्तार भी बढ़ रहा था और समुद्र पर भी भाप से चलने वाले जहाज़ों की संख्या और गति में अभूतपूर्व वृद्धि हो रही थी। इन सब कारणों से अन्न भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार-विनिमय की सामग्री बन गया। गेहूँ के अतिरिक्त कपास, लाही, सरसौं, रेंड़ी, अलसी आदि पदार्थों की खपत अन्य देशों में होने लगी। यद्यपि नील की खेती घटती जाती थी, जैसा ऊपर बताया गया है, पर भूमि की उर्वरा-शक्ति के क्रमशः निर्बल होने, ज़मीन्दारों और किसानों की आर्थिक स्थिति क्षीण होने और साथ ही साथ जन-संख्या की निरंतर वृद्धि होने से अन्न की पैदावार में कमी हो गई। इन्हीं सब कारणों से अन्न का भाव बहुत चढ़ गया। शताब्दी के अंतिम दस वर्षों के दुष्काल ने समस्या और भी भीषण कर दी। सन् १८८६ और १८९५

के मध्यवर्ती काल में गेहूँ का औसत भाव १५.६२ सेर रह गया, जुआर का २१.२६, बाजरा का २०.०३, जौ का २२.१६, और चने का २२.२६ सेर। अगले दस वर्षों (१८९५-१६०५) में ये भाव और भी चढ़े, अर्थात् गेहूँ १२-९५ सेर, जुआर २०.७४ सेर, बाजरा १६.५५ सेर, जौ १६.२६ सेर और चना १७.४२ सेर।

संक्षेपतः यह कह सकते हैं कि १८२५-४५ की अवधि से १८४५-६५ के भाव ४१ प्रतिशत ऊँचे और १८८६-१६०५ के काल में पिछले बीस वर्षों से वे ५२ प्रतिशत और बढ़ गये।

सन् १६०७ में बरसात की कमी से ख़रीफ़ को बहुत हानि हुई और रबी भी कम बोई गई, पर १६०८ के शुरू में काफ़ी वृष्टि होने से बोई हुई फ़सल अच्छी हुई। इस अकाल का प्रभाव भावों पर पड़ा और १६०६-११ के काल में अनाजों के भाव का औसत और तेज़ हो गया। गेहूँ का भाव १०.३६ सेर, चना १४.८५ सेर, जौ १६.८५ सेर, जुआर १७.०२ सेर और बाजरा १५.२६ सेर था।

विश्व-युद्ध और किसान--

प्रथम विश्व-युद्ध (१६१४-१८) के अंतिम वर्षों और उसके बाद के वर्षों में अनाज के दाम बहुत चढ़ गये, पर साथ ही साथ दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं के भाव भी चढ़े और उधर पुराने किसानी क़ानूनों से लाभ उठाकर जमीन्दारों

ने लगान भी ख़ूब बढ़ा दिये। परिणाम यह हुआ कि किसानों की आर्थिक दशा में कोई उन्नति न हुई। युद्ध-समाप्ति के कुछ वर्षों बाद जब बेकारी और चीजों की अत्यधिक मन्दी हुई तो किसानों और ज़मीन्दारों दोनों की दशा हीन हो गई। दोनों पर ऋण का असह्य भार लद गया। प्रान्तीय सरकार ने दो क़ानून पास किये, एग्रीकल्चरिस्ट-रिलीफ़-ऐक्ट (कृषक-ऋण-मुक्ति-विधान) और एनकम्बर्ड, एस्टेट्स-ऐक्ट (ऋण-ग्रस्त भूसम्पत्ति-विधान)। पहले क़ानून के द्वारा किसानों को ऋण से कुछ छुटकारा मिला और दूसरे से ऋणग्रस्त ज़मीन्दारों को। ये सन् १९३५ में पास हुए। पर द्वितीय विश्वयुद्ध के छिड़ते ही श्री रफ़ी अहमद क़िदवई का नया क़ानून पास हुआ, जिसकी चर्चा नीचे की जायगी। उसने ज़मीन्दारों के पुराने अधिकारों को बहुत कुछ सीमित कर दिया। इसलिए द्वितीय विश्वयुद्ध-जनित अत्यधिक महँगाई से किसानों को कुछ न कुछ लाभ अवश्य हुआ। उनके पुराने क़र्ज़ दो-तीन साल में मिट गये और उनकी स्त्रियों के पास सोने-चाँदी के गहने भी हो गये। इस आभूषण-बैंक में हमारे किसान सदा से अपनी बचत को रखते आये हैं। दोनों विश्वयुद्धों के मध्यवर्ती काल में किसानी के पेशे में आर्थिक लाभ के स्थान में घाटा होता था। सन् १९३३ ३७ में अन्नादि के भाव इतने गिर गये थे कि किसानों को पेट भरने को तो अवश्य मिल जाता था, पर कभी-कभी तो नक़द लगान देने तक को काफ़ी रुपया न मिलता था। बीमारी, विवाहादि काम

काज, दान-पुण्य आदि के लिए तो उनके पास कुछ था ही नहीं। इन वर्षों में गेहूँ रुपये में १२ सेर से १५ सेर तक, चना २०-२२ सेर तक, मकाई ३० से ४० सेर तक, और जुआर-बाजरा भी ३० सेर के लगभग बिके। घी का भाव रुपये में १२ छटाँक से १५-१६ छटाँक तक रहा। शहर की ख़रीदने वाली जनता और विशेषतः निश्चित आय वाले मध्यमवर्गीय लोगों के लिए क्षणिक सतयुग के दर्शन हुए। पर उत्पादक वृन्द, किसानों और उद्योगपतियों के दीवाले निकलने लगे। सब प्रकार के उद्योग-धन्धे चौपट होने लगे। यह दशा बहुत दिन न रही। सन् १९३९ में द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ होते ही परिस्थिति बदली। धीरे-धीरे उसका प्रभाव पड़ा और युद्ध के अन्तिम और अनुवर्ती वर्षों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गये। अभूतपूर्व महँगाई ने देश को घेर लिया। कंट्रोल, लैंसस, परमिट, राशन आदि का भयंकर युग प्रारम्भ हुआ। सन् १९४९ के प्रारम्भ में गेहूँ डेढ़ सेर, जौ ढाई सेर, चना २॥ सेर, जुआर २¾ सेर, बाजरा २⅞ सेर, मूँग २⅛ सेर, उर्द २ सेर, अरहर २⅜ सेर, चावल मोटा सवा सेर, घी अढ़ाई से तीन छटाँक तक मिल रहे हैं। दूध का भाव नगर में बारह आने सेर, और वह भी पानी मिला हुआ, है। जलाने वाली लकड़ी बबूल वाली साढ़े चार रुपये मन तक पहुँच गई है। मवेशियों के दाम भी १९३९ की अपेक्षा ४-५-६ गुने तक चढ़ गये हैं। मिट्टी, सरसी, रेंड़ी आदि के तेल, तमाखू, बीड़ी, कपड़े, सुपारी कत्था, मसाला, चीनी आदि सभी आवश्यक वस्तुओं के भावों में भी

ऐसी ही वृद्धि हुई है। उधर चोरबाजारी, रिश्वत, 'पगड़ी', छल-प्रपञ्च आदि की विषमता ने जीवन-स्तर को अत्यन्त कष्ट-साध्य और दुस्सह बना दिया है। गावँ में मज़दूर ढूँढ़े नहीं मिलते। हरे-भरे जामुन, महुआ, इमली और आम तक के वृक्ष काट-काट कर ईंधन के रूप में पैसे के लालच में बेंच डाले गये। घने जंगल कट कर खेतों में परिवर्तित हो गये। अमेरिकन, ब्रिटिश आदि सिपाहियों की उदर-पूर्ति के निमित्त असंख्य गायें और बैल काट डाले गये। गावों में घी-दूध का इतना अभाव कभी न था जितना अंग्रेजों के भारत छोड़ने के समय हुआ। पुराने जमाने के अकालों के सम्बन्ध में इतिहास-लेखकों ने लिखा था कि महँगाई इतनी अधिक थी कि गेहूँ रुपये में ८ सेर मिलता था। इसी को भुखमरी और महार्घता की पराकाष्ठा समझा जाता था। पर आजकल के के भावों को पढ़ कर आगे आने वाली पीढ़ियाँ क्या कहेंगी? और तुर्रा यह है कि देश की जन-संख्या ऐसी परिस्थिति में भी प्रतिवर्ष ५० लाख के औसत से बढ़ती जा रही है। खाने के लिए हमारे खेतों से पैदा किया हुआ अन्न काफ़ी से बहुत कम पड़ता है। करोड़ों टन अन्न विदेशों से प्रति वर्ष आता है। कानपुर-नगर की जन-संख्या इस काल में चौगुनी हो गई है। ज़िले की पैदावार से हमारा काम नहीं चलता। पहले हमारा ज़िला देसावर को अन्न भेजता था। सन् १६४८ की अनावृष्टि और बाढ़ ने ख़रीफ़ की फ़सल को चौपट कर समस्या और भी भयंकर कर दी है। अन्न के ऊपर पुनर्वार है

कन्ट्रोल और राशन की व्यवस्था शहर में लागू हुई है।

इस दुरवस्था में अंग्रेज़ी शासन समाप्त हुआ और स्वतंन्त्रता की स्थापना हुई।

किसानी के क़ानून

उपर्युक्त वर्णन में स्थान स्थान पर उन क़ानूनों की ओर संकेत किया गया है जो समय समय पर लगान, मालगुज़ारी और ज़मीन्दार-किसान के सम्बन्ध में भारतीय अथवा प्रान्तीय सरकारों और धारा-सभाओं द्वारा स्वीकृत होकर इस ज़िले में लागू हुए। उनकी विस्तृत विवेचना के लिए इस ग्रन्थ में स्थान नहीं है। उनका सार-मात्र ही हम देते हैं।

न् १८०३ का रेग्युलेशन नं २५—

जब सन् १८०१ के अन्त में कानपुर का ज़िला कम्पनी के शासन में आया तो यहाँ अनेक छोटे-बड़े जमीन्दार थे, जिनमें से कुछ का इलाक़ा काफ़ी बड़ा था, जैसे शिवराजपुर, सचेंड़ी, सपई, सखरेज आदि के चंदेल, नार, कहिंजरी, खानपुर आदि के गौर, नर्वल के चौहान आदि। इनमें से कुछ को बादशाही ज़माने में राजा, राव, रावत आदि उपाधियाँ भी मिल चुकी थीं। इन बड़े राजाओं के अधीन भी छोटे बड़े ज़मीन्दार थे और ज़मीन्दारों के नीचे किसान थे। कम्पनी की नई सरकार ने अधिकतर इन्हीं राजाओं और ज़मीन्दारों को



एलेन फ़ारेस्ट का एक दृश्य



गंगा और नहर का संगम (पृष्ठ २७५)

[स्]वीकार कर अपना पहला बन्दोबस्त किया। राजाओं को ज़मीन्दारी के हक़ के अलावा हक़-मालिकाना भी वसूल करने का अख्तियार था। यह १५ प्रतिशत तक होता था। पर किसानों से ज़मीन्दार कितना लगान वसूल करें इस पर अभी कोई नियन्त्रण नहीं था। ज़मीन्दार लगान के अतिरिक्त अन्य महसूल भी वसूल करते थे। किसान के पास कितनी ज़मीन है इसका लिखित पट्टा भी नहीं होता था और न उसे लगान व महसूल की कोई रसीद ही दी जाती थी। सन् १७९५ के रेग्यूलेशन नं० ५१ को कम्पनी की सरकार ने पूर्वी ज़िलों के लिए पास किया था। इसके अनुसार ज़मीन्दारों के लिए यह अनिवार्य हो गया कि किसानों को लिखित पट्टा दें, और उसमें दिये हुए लगान के अलावा और कोई महसूल न लें। लगान की रसीद भी देनी पड़ती थी। लगान न देने पर ज़मीन्दार को स्वयं बिना सरकार की मदद लिये किसान को बेदख़ल कर उसकी ज़मीन को नीलाम कर देने का अधिकार था। ज़मीन्दार यदि अपनी मालगुज़ारी न दे सके तो इसी प्रकार सरकार उसकी ज़मीन्दारी को नीलाम पर चढ़ा देती थी। पट्टों की अवधि अधिक से अधिक १० वर्ष की होती थी। १८०० के रेग्यूलेशन नं० ५ ने ज़मीन्दार को यह भी अधिकार दे दिया था कि लगान न देने वाले किसान को अथवा उसके जामिनदार को वह यदि चाहे तो अपने यहाँ तब तक क़ैद रक्खे जब तक उसका लगान अदा न हो जाय।

सन् १८०३ के रेग्यूलेशन न० २५ के द्वारा कानपुर-ज़िले

में ये दोनों क़ानून १७९५ और १८०० वाले लागू कर दिये गये। इसका परिणाम यह हुआ कि किसान ज़मीन्दार का क्रीतदास होकर ही रह सकता था। पट्टे की अवधि समाप्त होने पर उसके लगान में मनमानी वृद्धि हो सकती थी और किसी विवशता से यदि वह ठीक समय पर लगान न दे सका, तो उसकी गिरफ़्तारी, बेइज़्ज़ती और मरम्मत होती थी और अन्त में ज़मीन भी नीलाम हो सकती थी। सरकार ने यह भी उम्मेद दिलाइ थी कि यदि इंग्लैंड के अधिकारियों से इजाज़त मिल गई तो सन् १८०६ वाला बन्दोबस्त इस्तमरारी (सदा के लिए) कर दिया जायगा। किसानों के सौभाग्य से यह इजाज़त न मिल सकी और आगरा प्रान्त बंगाल, बिहार आदि के इस्तमरारी बंदोबस्त की विभीषिकाओं से बच गया। सन् १८१२ के रेग्यूलेशन नं० ५ की रू से पट्टे और लगान की कठोरता में कुछ ढील दी गई।

सन् १८२२ व १८३३ के क़ानून—

सन् १८२२ के रेग्यूलेशन नं० ७ और १८३३ के रेग्यूलेशन नं० ९ के अनुसार किसानों को कुछ और हलकी सुविधायें दी गईं। सबसे महत्वपूर्ण बात ज़मीन्दारों के सम्बन्ध में यह हुई कि लगान के रूप में पाई हुई कुल आमदनी का दो तिहाई भाग मालगुज़ारी के रूप में सरकार को मिलने लगा और ज़मीन्दार को केवल तिहाई अपने पास रखने की आज्ञा हुई। इसका अर्थ यह हुआ कि किसान से ज़मीन्दार कितना वसूल करे

इसपर कोई नियन्त्रण नहीं हुआ, पर जमीन्दार की लूट की दो तिहाई साझेदार सरकार हो गई। किसानों के ऊपर लगान के भार की कोई सीमा निर्धारित नहीं की गई। इसका निर्णय जमीन्दार पर ही छोड़ दिया गया।

सन् १८४२ में भारतीय सरकार द्वारा स्वीकृत ऐक्ट नं० १६ में यह नियम बना कि पट्टों की अवधि १० वर्ष से अधिक भी हो सकती है। लगान की वृद्धि पर भी कुछ नियन्त्रण लगाये गये। सन् १८४५ के ऐक्ट नं० १ में भी लगान पर कुछ और नियन्त्रण लगाये गये। ग़दर के बाद यहाँ के प्राचीन राज-वंशों की जमींदारियों में बहुत-कुछ उलट-फेर हुआ, जिसकी चर्चा अन्यत्र हो चुकी है।

मौरूसी हक़—

सन् १८५९ के ऐक्ट नं० १० से प्रथम बार किसानों के अधिकारों की व्यवस्था की गई। इस क़ानून ने यह पास किया क जो किसान बारह वर्ष या अधिक काल तक किसी भूमि को जोते रहे उसको मौरूसी अधिकार मिलेंगे, अर्थात् उस भूमि से वह और उसके उत्तराधिकारी बेदख़ल न हो सकेंगे।

सन् १८६३ के ऐक्ट नं० १४ तथा सन् १८७३ के ऐक्ट नं० १८ इसी विषय पर थे, पर उनमें कोई विशेष महत्व का परिवर्तन नहीं हुआ। यही बात सन् १८८१ के ऐक्ट नं० १२, सन् १८८६ के ऐक्ट नं० १४, सन् १८९० के ऐक्ट नं० २०,

सन् १८६१ के ऐक्ट नं० १२ के बारे में भी कही जा सकती है।

सीरों पर रोक और मुक़दमेबाज़ी की वृद्धि---

सन् १६०१ के ऐक्ट नं० २ से ज़मीन्दारी के अधिकारों को और धटा कर किसानों के अधिकारों को बढ़ाया गया। इसके द्वारा ज़मीन्दारों को एक निश्चित तिथि के पश्चात् नई सीरें बनाना रोक दिया गया। परिणाम यह हुआ कि ज़मीन्दारों ने यथाशक्ति यह प्रयत्न करना प्रारम्भ किया कि किसी किसान को १३ वर्ष तक किसी एक ही ज़मीन को न जोतने दिया जाय। इसीलिए प्रत्येक वर्ष हज़ारों की संख्या में बेदख़ली के मुक़दमे अदालतों में आने लगे। इसका प्रभाव खेती पर बहुत बुरा पड़ा क्योंकि बेदख़ली की तलवार के सर पर नाचते रहने से कोई काश्तकार अपनी भूमि की उन्नति का प्रयत्न नहीं करता था। ज़मीन्दारों की दशा भी अच्छी नहीं रही, क्योंकि उनका बहुत सा धन और समय व्यर्थ की मुक़दमेबाज़ी में ही लगने लगा। पुराने ज़माने में ज़मीन्दार तालाब और कुएं बनवाते थे, नालों और सड़कों को अच्छी दशा में रखने का प्रयत्न करते थे। और गावँ में रामलीला, धनुषयज्ञ, रासलीला, आदि करा के किसानों का मनोरंजन कर उन्हें प्रसन्न रखते थे। अब ये परम्पराएं मिटने लगीं और किसानों और ज़मीन्दारों के सम्बन्ध बहुत बिगड़ गये। कांग्रेस तथा अन्य राजनीतिक दलों ने भी किसानों के अधि-

कारों की रक्षा के लिए प्रस्ताव पास कर शिक्षित जनता और सरकार का ध्यान इस महत्वपूर्ण विषय की ओर आकर्षित करना प्रारम्भ किया।

सन् १९२६ के ऐक्ट नं० ६ ने काश्तकारों के जीवन भर और उनके मरने के बाद उनके उत्तराधिकारियों को ५ वर्ष तक अपनी पुरानी भूमि पर अधिकार दे दिया गया। पर दूसरी ओर ज़मीन्दारों को यह सुविधा दी गई कि उन्हें उस साल तक की खुदकाश्त ज़मीनों को सीरों में परिवर्तित करने का अधिकार मिल गया। इसके अतिरिक्त यह भी अधिकार मिला कि भविष्य में जिस भूमि को वे १० वर्ष तक लगातार जोत लेंगे वह भी उनकी सीर हो जायगी। ज़मीन्दार किसी समय भी किसान को मौरूसी अधिकार प्रदान कर सकेगा। इस क़ानून से किसानों की मौलिक समस्यायें हल न हो सकीं, मुक़द्दमेबाजी का बाज़ार और भी गरम हो गया। इधर गान्धी जी के असहयोग और सत्याग्रह आंदोलनों से किसानों में अभूतपूर्व जागृति हो गई थी। वे अपने अधिकारों को लेने पर तुले हुए थे। किसानों और ज़मीन्दारों के बीच कई बार फ़ौजदारियाँ और संघर्ष हुए। सरकार ज़मीन्दारों का ही पक्ष लेती थी। पर यह स्पष्ट हो गया था कि किसान अपने अधिकार ले कर ही रहेंगे।

रफ़ी साहब का ऐतिहासिक क़ानून—

सन् १९३५ के नये विधान के अनुसार सन् १९३७ में जो

प्रान्तीय धारा सभा का चुनाव हुआ, इसमें कांग्रेस की अपूर्व विजय हुई। प्रथम कांग्रेस सरकार पं० गोविन्दवल्लभ पंत के आधिपत्य में बनी और श्री रफ़ी अहमद क़िदवई माल मंत्री बने। उन्होंने सन् १९३९ में एक लंबा क़ानून पास करवाया जिसने किसानों की अनेक कठिनाइयों और असुविधाओं को दूर कर दिया। यह १९३९ का ऐक्ट नं० १७ कहलाता है। इसमें किसानों को एकदम मौरूसी अधिकार दिये गये। ज़मीदारों की सीरों की मिक़दार अधिक से अधिक ५० एकड़ निर्धारित हुई। किसानों की बेदखली भी बन्द हो गई। इस क़ानून में एक भूल असावधानी से रह गई थी। इसकी धारा १७१ के कारण हज़ारों पुराने मौरूसी किसान बेदख़ल कर दिये गये। कांग्रेस सरकार इस्तीफ़ा दे चुकी थी और गवर्नरी शासन ने इस दूषित धारा का संशोधन करना उचित न समझा, पर फिर जब दूसरी बार कांग्रेस सरकार बनी तो सन् १९४७ के ऐक्ट नं० १० से इस धारा को परिवर्तित कर दिया और जो किसान इस के कारण बेदख़ल हुए थे वे फिर अपनी पुरानी ज़मीनों के मालिक बन गये। तब से बड़े ज़मीन्दार अपनी सीर के शिकमी किसानों को बेदख़ल करने से भी रोक दिये गये हैं। जो ज़मीनें बंजर पड़ी थीं और जिनके उठाने में ज़मीन्दार लोग लंबे नज़राने लेते थे उसकी रोक के लिए सन् १९४८ के ऐक्ट नं० ५ में उपाय किया गया है। कोई भी किसान अपने वास्ते कलेक्टर के यहाँ अर्ज़ी देकर ऐसी भूमि प्राप्त कर सकता है और पहला लगान सर्किल रेट का

होता है। जमीन्दार को अपने काम के लिए भी जमीन लेना मना कर दिया गया है।

अब सन् १९४८ वाला "गावँ-हुकूमत-ऐक्ट" पास हो गया है। उससे गावों में फिर पंचायतें नियमित रूप से स्थापित हो गई हैं और शीघ्र ही जमीन्दारी भी मिटने वाली है। इन दोनों की चर्चा हमारे ग्रन्थ के दूसरे भाग में की जायगी।

नहरें और सिंचाई

इसमें सन्देह नहीं कि गंगा की नहर के निर्माण के पहले इस ज़िले में कोई और नहर नहीं थी। प्राचीन काल से कुओं, तालाबों, झीलों, झाबरों, नदियों आदि से सिंचाई होती थी। कुओं से चमड़े के 'पुर' द्वारा बैलों की सहायता से पानी खींचा जाता था। कहीं कहीं पर ईरानी पहियों (घड़िया अथवा रहँट) द्वारा भी पानी खींचा जाता था, पर इसका प्रयोग इस ज़िले में कम होता था। गंगा के किनारे अथवा नीचे भागों में जहाँ जमीन के नीचे का पानी बहुत गहराइ पर नहीं होता था, 'ढेकली' का उपयोग भी होता था। तालाबों, नदियों आदि से पानी चढ़ाने के लिए "बेंड़ी" को काम में लाते थे। यह बाँस की घनी बुनी हुई डलिया होती है जिसमें दो तरफ़ रस्सियाँ बाँध दी जाती हैं और दो पुरुष बड़ी चतुरता और चपलता से इन्हें पकड़ कर, ऊपर से नीचे झुका कर, पानी से भर कर, फिर ऊपर उठा कर ऊँची जमीन पर उन्हें ख़ाली कर देते हैं। ये सब तरीके अभी भी जिले के उन सब भागों में

काम आते हैं जहाँ नहर के पानी की सुविधा नहीं है । ऊँचे खेतों में नहर का पानी लाने से अभी तक बेंड़ी काम में आती है । गंगा के किनारे के क्षेत्रों में कुओं में पानी धरातल से २० या २५ फ़ुट या कुछ न्यूनाधिक गहराई पर मिल जाता है, बीच वाले भागों में कहीं कहीं ४० फ़ुट तक और यमुना के किनारे के हिस्सों में ६० से ८०,९० फ़ुट तक है । कुछ लोगों का यह भी कहना है कि कुओं की गहराई यमुना के किनारे बढ़ रही है । ट्यूब-वेल और हाथ वाले पम्पों के लिए यह ज़िला अधिक उपयुक्त नहीं सिद्ध हुआ, इसलिए घरेलू पानी तथा सिंचाई के लिए इनका उपयोग बहुत कम हो पाया है । शहर में बिजली की सहायता से भी कुओं में से पानी ऊपर खींचा जाता है ।

गंगा की नहर—

सन् १८४२ में पहले पहल गंगा की नहर की योजना शुरू हुई । इस योजना की रूप-रेखा में कई बार परिवर्तन हुआ । सबसे प्रथम योजना इस आधार पर बनाई गई थी कि समस्त गंगा-यमुना के दोआब में हरिद्वार से प्रयाग तक सिंचाई और नाव चलाने के लिए इसका निर्माण हो । पर विचार-विमर्श के अनन्तर यह बात निश्चित हुई कि प्रयाग में संगम तक यातायात के उद्देश्य से इसे ले जाना व्यावहारिक न हो केगा । इसलिए यह निश्चित हुआ कि इसे प्रधानतः सिंचाई

यातायात के उद्देश्य से इसे ले जाना व्यावहारिक न हो सकेगा। इसलिए यह निश्चय हुआ कि इसे प्रधानतः सिंचाई के लिए ही और जहाँ कहीं भी सम्भव हो सके यातायात के उपयुक्त भी बनाया जाय और अलीगढ़ के ज़िले में स्थित नानऊ स्थान से दो धारों में विभक्त कर एक को कानपुर-नगर में गंगा में और दूसरी को कानपुर अथवा फतेहपुर-ज़िले में यमुना में गिराया जाय। पहली शाखा का नाम कानपुर शाखा और दूसरी का इटावा-शाखा रक्खा जाय। कानपुर-शाखा, जो रिन्द और पांडो नदियों के निकास के उत्तर से होती हुई पांडो और गंगा के दोआबे से आती है, सन् १८४६-५० में बनना शुरू हुई। ४ वर्ष में यह बनकर तैयार हुई और सन् १८५४ में इसमें पहली बार पानी छोड़ा गया। किन्तु ६ वर्ष तक इसमें इतना कम पानी आ पाया कि इससे न तो खेती को विशेष फ़ायदा हुआ और न सरकार को कुछ आर्थिक लाभ ही। सन् १८६६ में नहर-विशेषज्ञों ने यह योजना बनाई कि बुलन्दशहर-ज़िले के नरोरा-ग्राम के पास गंगा की धार में बाँध लगाकर पानी बाहर निकाल कर एक स्वतन्त्र "लोअर गंगा-केनाल" नामक नहर निकाली जाय जो अलीगढ़ के नीचे वाले ज़िलों को पानी दे सके। इसी से उपर्युक्त दोनों धाराओं को पानी दिया जाय, अर्थात् कानपुर-शाखा को जो गंगा और पांडो के दोआव में थी और इटावा-शाखा को जो रिंद और सेंगुर के दोआबे में थी। यह भी निश्चित हुआ कि यह स्वतन्त्र नहर रिंद और पांडो के दोआबे से होकर

जाय और इसी से घाटमपुर और झींझक वाली शाखायें २
निकाली जायँ। सन् १८७२ में इस नई योजना का कार्य-रूप
परिणत होना प्रारम्भ हो गया। यह योजना पूरी भी न
पाई थी कि सन् १८८२ तक इसमें अनेक परिवर्तन औ
संशोधन हो गये। इनका परिणाम यह हुआ कि कानपुर औ
इटावा की शाखाओं का जल-सम्बन्ध पुरानी हरिद्वार वाली ना
"अपर-गंगा-केनाल" से काटा तो नहीं गया, और उससे अ
तक इन दोनों में पानी आ जाता है, पर फिर भी ये दो
प्रधानत: नई नरोरा वाली नहर से ही पानी लेती हैं। इ
परिवर्तित योजना के कार्यान्वित होने से इन दोनों को पय
मात्रा में एक ही साथ पानी मिल जाता है और इनकी विभि
प्रशाखाओं को भी पानी की कमी नहीं रहती। सन् १८८५
नदरई-नामक स्थान पर कालीनदी के ऊपर से जो न
निकलने का पुल था वह टूट गया, इसलिए इस योजना
उन्नति में विशेष रुकावट उत्पन्न हो गई, और दो वर्षों
हमारे ज़िले की नहरों को हरिद्वार वाली "अपर-गंगा केना
ही से पहले की भाँति पानी मिला। नदरई के पुल की मरम
होने के बाद फिर पानी की कमी मिट गई और अनेक
और रजबहे जिले के चारों दोआबों में बनाये गये, जि
सिंचाई की विशेष सुविधा हो गई।

कानपुर-शाखा —

नहर की कानपुर-शाखा बिल्हौर और कानपुर की तहसी
से होकर गंगा-पांडो के दोआबे में बहती है। इस जिले

इसकी लंबाई ४३ मील है। यह सर्वप्रथम योजना में यातायात के लिए भी बनाई गई थी, इसीलिए कानपुर नगर में जहाँ यह गंगा में गिरती है, इसके तीन प्रपात और फाटक हैं। ये तीनों प्रपात दोहरे हैं और इनकी ऊँचाई क्रमशः ६,१८½ और १७ फ़ुट है। यद्यपि ये अभी तक अपने पुराने रूप में हैं, किन्तु अब नावों का आना-जाना असम्भव हो गया है, क्योंकि सन् १८६६ और १९०२ के बीच में जुही और कलेक्टर-गंज के बीच वाली धार को १८०० फ़ुट की लंबाई तक पाट दिया गया और इस पटी हुई नहर, दोनों ओर की पटरियों और आसपास की भूमि को जी० आई० पी० रेलवे ने अपने मालगोदाम बनाने के लिए ले लिया। अब भी ऊपर की ओर से जुही तक रोज़ अनेक नावें आती जाती हैं और अन्न, लकड़ी, कोयला, भूसा, गुड़, साग, फल आदि कानपुर लाती हैं और लौटते समय चीनी, अनाज, कपड़ा आदि ले जाती हैं। जुही में नावों के ठहरने और माल लादने और उतारने के लिए एक बन्दरगाह है। जहाँ पर नहर के प्रपात हैं वहाँ एक पनचक्की भी है जो नहर के ही पानी से चलती है। इस नहर से दोनों ओर अनेक बंबे निकले हैं जिनमें से बाईं ओर शिव-राजपुर, टकटौली और कल्याणपुर वाले बंबे हैं। दाहिनी ओर वाले बंबों में कंपुआ वाला बंबा मुख्य है, जिससे शिवली वाला बंबा भी निकला है। माधोपुर, रंजीतपुर और हलुवाखाँड़ा के बंबे भी इसी नहर की शाखें हैं, यद्यपि हलुवाखाँड़ा वाले बंबे को अब फ़तेहपुर-शाखा की नहर से पानी मिलता है।

फ़तेहपुर-शाखा—

गंगा-नहर के इंजिनियर और सरकार बहुत दिनों तक इसी विचार के रहे कि चाहे जैसे हो प्रयाग तक नहर जरूर पहुँचाई जाय और यथासम्भव इसे यातायात के उपयुक्त बनाया जाय। तभी तो न जानें इसकी योजना में कितनी बार उलट-फेर हुआ। पर अन्त में सन् १८७६ में यातायात का विचार त्याग दिया गया। नरोरा से गंगा की नहर के निचले भाग के लिए पानी लेने की परिवर्तित योजना के कारण पानी का अभाव नहीं रहा और इसलिए सन १८८४ में फ़तेहपुर-शाखा की रूप-रेखा स्वीकृत हुई, पर अर्थाभाव तथा नदरई के पुल के विनष्ट हो जाने के कारण इसका निर्माण कई वर्षों तक स्थगित रहा। सन् १९०२ में यह योजना पूर्ण हुई, पर दिसम्बर १८९८ से ही उन भागों में जो बनते जाते थे पानी आने लगा था। इस जिले में यह नहर २५ मील ही आती है और फिर आगे फ़तेहपुर और इलाहाबाद के जिलों में जाती है। इसका उद्गम कानपुर-शाखा वाली नहर से उस स्थान के कुछ ही ऊपर है जहाँ उस नहर के ऊपर ई० आई० आर० का पुल पनकी-स्टेशन के पहले है। निकास से कुछ दूर आगे चलकर इसे पांडो-नदी के ऊपर तक सुन्दर पुल बाँध कर उस पार पांडो और रिंद के दोआबे में ले जाया गया है। यह पुल गुजैनी के मौज़े के पास है। फिर वहाँ से बिधनू, साढ़ और मुहम्मदपुर होती हुई यह नहर फ़तेहपुर-जिले में प्रवेश करती है। यह कानपुर तहसील के

दक्षिणी भागों को पानी देती है। इसके बायें तरफ़ मगरासा, रमईपुर, मझावन, कुंदौली, अमौर, बरई, रातेपुर और अरंज वाले बंबे हैं। दाहिनी ओर काकोरी, दलेलपुर, देवसद, गोपीपुर, करछुलीपुर और अकबरपुर वाले बंबे हैं। इस नहर से पांडो और रिंद के दोआब के निचले भाग को सिंचाई की सुविधा प्राप्त हो गई है।

इटावा-शाखा--

गंगा की नहर की सबसे प्रथम योजना के अनुसार इटावा-शाखा का निर्माण सन् १८५० में ही प्रारम्भ हो गया था। पहले इसे यमुना में गरहठा के पास गिराने का विचार था और १८५३-५४ तक बभा-जाखा तक यह पूरी बन भी चुकी थी। इसमें भी यातायात की सुविधायें प्रदान की गई थीं। किन्तु अन्त में केवल सिंचाई के लिए ही इसका उपयोग हुआ। बभा-जाखा से ही इसे कई बबों में विभक्त कर दिया गया है। डेरापुर और अकबरपुर की तहसीलों से यह गुज़रती है और ईस्ट-इंडियन रेलवे के समानान्तर चलती है। इससे पूर्वी दिबियापुर और पश्चिमी दिबियापुर नामक दो बबे इटावा-ज़िले से शुरू होते हैं और इसके दोनों ओर दो भुजाओं की तरह चलते हैं। दक्षिणी भागों को सींचने के लिए मंगलपुर वाला बबा है जो मंगलपुर के आगे खानपुर, झिलवल और नुनारी को जाता है। फिर जुरिया-दाहिना और जुरिया-बायाँ नामक दो प्रशाखायें हैं जो वास्तव में दिबियापुर वाले दोनों उपर्युक्त बंबों के ही सिलसिले में हैं। झीझक

वाला बंबा जुरिया-दाहिने से पानी लेता है। बन्ना-जाखा से जहाँ यह नहर समाप्त हो जाती है, तीन बंबे, घाटमपुर, रेउना और अकबरपुर के नाम से हैं जो इसके पानी को आपस में बाँट लेते हैं। अकबरपुर वाला बंबा सेंगुर के किनारे की ऊँची भूमि को सींचता हुआ मूसानगर और ग़ौसगज के पास यमुना में गिरता है। पास ही सेंगुर भी यमुना में मिलती है। रेउना वाला बंबा पुरानी प्रधान नहर के बायें तरफ़ चलता है और अकबरपुर और घाटमपुर के बहुत से भागों को पानी देता है। सेंगुर और रिंद दोनों को इस नहर का ख़ारिजा (बचा हुआ) पानी कभी-कभी मिल जाता है।

घाटमपुर वाली प्रशाखा की प्रथम योजना सन् १८६६ में बनी जिसका उद्देश्य रिंद और सेंगुर के मध्यवर्ती दोआबे के अकबरपुर और घाटमपुर तहसीलों के भागों को पानी देना है। सन् १८६४ में इस की २६ मील की लाइन बन चुकी थी और बाद को इसको और बढ़ाया गया। इससे अनेक छोटी-बड़ी लाइनें निकली हैं, जिनमें से जलालाबाद, भदरस, पहरी, परास, बारी, भदवारा आदि हैं। कोड़ा की ओर फ़तेहपुर-जिले में भी ये जाती हैं।

भोगनीपुर-शाखा—

लोअर-गंगा-केनाल की यह शाखा अपने असली रूप के केवल ४ मील इस ज़िले में बहकर आलमपुर के पास अलीपुर, रसधान और सिकन्दरा नामक बंबों में विभक्त हो जाती है और सेंगुर-यमुना दोआबे के

बहुत से भागों के काम आती है। अलीपुर वाली प्रशाखा डेरापुर-तहसील के दक्षिण-पश्चिम भागों में पानी पहुँचाती है। रसधान वाली प्रशाखा डेरापुर-और भोगनीपुर की तहसीलों की सीमा पर बहती हुई भोगनीपुर-तहसील में प्रवेश करती है। सिकन्दरा वाली प्रशाखा भोगनीपुर के पश्चिमी और दक्षिणी भागों के लिए उपयोगी है। यह अमरौधा के पास समाप्त हो जाती है और इससे सलहरा, सिथरा और भोगनीपुर को बंबे जाते हैं।

इन नहरों और बंबों के किनारों पर जो पटरियाँ हैं वे नहर के अधिकारियों के उपयोग के लिए हैं, पर विशेषाज्ञा से उनका उपयोग अन्य लोग भी करने पाते हैं। यदि पटरियाँ पक्की कर दी जायँ और सार्वजनिक उपयोग के लिए खोल दी जायँ तो सड़कों का विस्तृत जाल ज़िले के अधिकांश भागों में फैल जाय और यातायात तथा व्यापार को अभूतपूर्व सुविधा हो जाय। इतनी नहरों के होते हुए भी ज़िले का बहुत सा भाग अभी तक उनके उपयोग से वञ्चित है, क्योंकि उनका विस्तार सीमित है और पानी भी इतना उपलब्ध नहीं है कि उनका विस्तार बढ़ाया जा सके। नहरों और बंबों के दोनों ओर जो वृक्ष लगाये गये हैं उनका प्रबन्ध जंगल-विभाग करता है।

ब्रिटिश शासन का लेखा-जोखा

कुछ भी हो, हमारे ज़िले में ब्रिटिश शासन की नियामतों की सूची में नहरों का स्थान अवश्य प्रमुख गिना जायगा। रेलों, फ़ौलादी पुलों, पक्की सड़कों, आदि के निर्माण ने ज़िले

को आधुनिक युग के उपयुक्त बनाया और उसके औद्योगीकरण को अग्रसर किया। किन्तु किसानों की दुनिया—अधिकांश प्रजार्गव के जगत्—की दशा को समुन्नत करने का मार्ग नहरों ने ही खोला। यदि मालगुज़ारी और बन्दोबस्त की परम्परायें किसानों के सच्चे हितों को दृष्टि में रखकर स्थापित की जातीं, तो इसमें सन्देह नहीं कि नहरें हमारे जिले को अत्यन्त समृद्धिशाली बना देतीं। पर हुआ यह कि एक ओर किसानों के लाभ के लिए नहरों की सुविधा दी गई, और दूसरी ओर मालगुज़ारी बढ़ाकर उन्हें चूसा गया। तभी तो नहरों के होते हुए भी अकालों का ताँता लग गया।

कानपुर-नगर की औद्योगिक और व्यापारिक उन्नति का विस्तृत वर्णन हमारे ग्रन्थ के दूसरे भाग में दिया जायगा। यहाँ पर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इस उन्नति से कुछ योरोपीय तथा देशी परिवारों और व्यक्तियों को अवश्य अधिक लाभ हुआ, पर हमारे कृषकों के जीवन-स्तर पर इसका प्रभाव हानिकारी हुआ। इस द्वितीय महायुद्ध के परिणामस्वरूप जो क्षणिक चमक-दमक किसानों की स्थिति में दिखाई देती है उससे यह निष्कर्ष निकालना भ्रामक होगा कि ब्रिटिश शासन में रहकर हमारे ग्रामों की उन्नति हुई। प्रत्युत् उनकी आर्थिक दशा हीनतर होती गई और साथ ही साथ उनके स्वास्थ्य, उपचार, शिक्षा और बौद्धिक उन्नति के प्रति सदा उदासीनता का प्रदर्शन किया गया। हमारे गावँ अन्धविश्वास, मूर्खता, आलस्य, पारस्परिक कलह, दरिद्रता, गंदगी और बीमारी के अड्डे बन

गये हैं। उनकी पुरानी स्वावलंबी आर्थिक परम्परायें विलुप्त हो गईं हैं, उनका अति प्राचीन पंचायती स्वायत्त-शासन तिरोभूत हो गया है, उनका गो-धन अभी देखते देखते ग़ायब हो गया है और हमारी सभ्यता के ये मेरु-दण्ड शिथिल, निर्बल एवं निर्जीव हो गये हैं। ग्रामोद्योगों का पूर्ण विनाश हो गया है। डेढ़ सौ वर्षों के लंबे युग के शासक इस दोष से कभी विमुक्त नहीं हो सकते। कानपुर-नगर की चकाचौंध, रौनक़ और धूम इस कलंक को धो नहीं सकती।

चौदहवाँ अध्याय

प्रसिद्ध स्थान

अकबरपुर

उक्त क़स्बा २६°२३' अक्षांश तथा ७६°५:' देशान्तर पर कानपुर शहर से २६ मील पश्चिम-दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। कालपी रोड से यह तीन मील उत्तर में है और उक्त रोड से अकबरपुर को दो छोटी पक्की सड़कें गई हैं। इनमें एक बारा तथा दूसरी लालपुर रेलवे स्टेशन के पास से जाती है। क़स्बे के दक्षिणी भाग से पश्चिम की ओर डेरापुर-रसधान तथा पुखरायाँ के लिए कच्ची सड़कें गई हुई हैं तथा क़स्बे के उत्तर से रूरा स्टेशन के लिए एक ८ मील लम्बी पक्की सड़क भी गई हुई है। क़स्बे के पूर्व की ओर नहर का बंबा है जो नहर शाख इटावा का एक भाग है। बंबे से आगे बड़ी नहर है परन्तु वह अब केवल फ़ालतू पानी निकालने के ही काम

में आती है। यह क़स्बा निचली ज़मीन पर बसा हुआ है और पानी का निकास त्रुटिपूर्ण है। फलस्वरूप आसपास बहुत पानी भर जाता है। परन्तु जब से सेंगुर नदी तक एक नाला खोद दिया गया अब इस विपत्ति से काफ़ी मुक्ति मिल गई है।

क़स्बा बहुत सुन्दर बसा हुआ है। अधिकांश मकान पक्के हैं। पिछले ५० वर्षों से इस की समृद्धि घटती जा रही है। सन् १८४७ में इसकी जन-संख्या ५४८५ थी किन्तु आगे चल कर वह ४६५६ ही रह गई। जन-संख्या में लगभग दो तिहाई हिन्दू तथा एक तिहाई मुसलमान हैं। कुछ अन्य संप्रदायों के लोग भी रहते हैं जिनमें ईसाई प्रमुख हैं। अकबरपुर में पुलिस थाना, पोस्ट आफ़िस, रजिस्ट्री आफ़िस, डिस्पेन्सरी, आबकारी का गोदाम तथा जानवरों के लिए कांजी हौस भी है। इसके अतिरिक्त लड़कों के लिए मिडिल तथा प्राइमरी स्कूल और लड़कियों के लिए भी एक स्कूल है। यह क़स्बा इसी नाम की तहसील का सदर मुक़ाम भी है। बहुत वर्षों तक यहाँ मुन्सिफी भी रही जो अब वहाँ से हटकर कानपुर आ गई है।

इसका प्राचीन नाम गुरईखेरा था। मुग़ल-सम्राट् अकबर के शासन-काल में रिसालदार कुँवरसिंह ने, जो बैस क्षत्रिय थे तथा संभवतः जिन्होंने इस नये क़स्बे का निर्माण किया, उसका नाम बदल कर अकबरपुर रखा। इस तहसील का पुराना नाम शाहपुर अकबरपुर भी लिखा है। इसके बाद यह क़स्बा इस परगने की राजधानी हो गया और नवाब वजीर के शासन में यहाँ एक 'आमिल' रहने लगा।

यहाँ सीतल सुकुल का बनवाया हुआ एक अत्यन्त सुन्दर एवं प्रसिद्ध तालाब है। तालाब के चारों कोनों पर एक एक मंदिर बना हुआ है। सीतल सुकुल, जिन्होंने इस तालाब का निर्माण कराया, जहानाबाद के नवाब अल्मास अली ख़ाँ के यहाँ आमिल या चकलेदार थे। श्री शुक्ल जी के वंशज पं० द्वारिका-प्रसाद शुक्ल तथा पं० ज्वालाप्रसाद शुक्ल अब भी यहाँ रहते हैं। आपका परिवार संभवतः ५०० वर्ष पुराना है। एक दूसरा तालाब छब्बा नामक एक कलवार का बनवाया हुआ है। एक बावली भी है जिसे नत्थे खां नामक पठाना ने बनवाया था। सन् १८५७ के ग़दर में शुक्ल तालाब के पास ही एक नीम के पेड़ में ७ व्यक्तियों को अंग्रेजों द्वार फाँसी दी गई थी। यहाँ एक बड़ा क़िला भी था जिसे ग़दर काल में गिरा कर उसी स्थान पर तहसील का निर्माण किया गया।

'देव-समाज' के प्रवर्तक

प्रसिद्ध 'देव-समाज' नामक संस्था के प्रवर्तक स्वामी सत्या-नंद अग्निहोत्री का जन्म अकबरपुर में ही हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा अकबरपुर में ही समाप्त कर आपने रुड़की इंजीनियरिंग कालेज से ओवरसियर परीक्षा पास की। रुड़की कालेज में इन्स्ट्रूमेंट विभाग के क्यूरेटर महोदय अच्छे ब्रह्मज्ञानी थे। उनसे इनका बड़ा अनुराग हो गया और उनके सत्संग से

इनकी प्रवृत्ति वेदान्त की ओर बहुत कुछ हो गई। इसके बाद आप लाहौर जाकर ब्राह्म समाज के सक्रिय सदस्य हो गये। अपनी वाग्मिता तथा सदाचार के कारण इनकी उस समाज में खूब प्रतिष्ठा होने लगी। सन् १८८२ में नौकरी से इस्तीफ़ा देकर आपने ब्राह्म समाज की दीक्षा ले ली और अपना नाम स्वामी सत्यानंद रख लिया। ब्राह्म समाज के संकुचित क्षेत्रमें अपना काम पूरा होते न देख आपने सन् १८८७ में लाहौर में देव-समाज नामक पृथक् संस्था की स्थापना की। विशेष अध्यात्म शक्ति-संपन्न होने के कारण देव-लोकों की उत्तरोत्तर सीढ़ियों में निर्वसित सूक्ष्मशरीरधारी पुरुषों से संबंध स्थापित करने, उनसे परामर्श लेने, उनसे प्रभावित होने तथा उन्हें भी अपनी देवशक्ति से प्रभावित करने का आप दम भरने लगे। आपकी अद्भुत करामातों के चकित होकर बहुत से लोग आपके शिष्य हो गये। आपके अनुगामी अब भी देश के विभिन्न भागों में फैले हुए हैं। देव-समाज द्वारा अनेक लोकोपकारी सस्थाओं, जैसे कालेज, पुस्तकालय, विधवाश्रम, कन्या-पाठशालाओं आदि का आज दिन भी संचालन होता है। सन् १९२९ में आपका स्वर्गवास हो गया।

आपकी स्मृति में अकबरपुर में आपके जन्म-स्थान की कोठरी का बड़ी सुन्दरता के साथ निर्माण किया गया है। कोठरी में आपका चित्र तथा ध्वज बना हुआ है। आपकी स्मृति में यहाँ एक पार्क भी बनाया गया है। आपके वंशज अब भी यहाँ विद्यमान हैं।

अमरौधा

यह भोगनापुर तहसील के अन्तर्गत २६°१२' अक्षांश तथा ७९°४७' देशान्तर रेखाओं के बीच कानपुर से ४२ मील दूर तथा पुखरायाँ से ५ मील दक्षिण पश्चिम में यमुना के किनारे स्थित है। मुग़ल रोड की एक शाख सड़क यहाँ से गई है। यहाँ से दक्षिण की ओर कालपी रोड तथा चौरा स्टेशन को और उत्तर-पश्चिम में सट्टी तथा शाहजहाँपुर को सड़कें गई हैं।

अमरौधा के पास ही पश्चिम की ओर शाहपुर नामक एक प्राचीन क़स्बे के खँडहर मिलते हैं। यहीं किसी समय तहसील थी परन्तु यमुना-नदी इसे बहा ले गई और तब से तहसील टूट कर अकबरपुर चली गई। इसीलिए बहुत दिनों तक लोग अकबरपुर को शाहपुर-अकबरपुर भी कहते रहे। शाहपुर में अब भी मंदिरों मस्जिदों तथा मक़बरों के अनेक खँडहर पाये जाते हैं जिनसे इस स्थान के विगत वैभव तथा समृद्धि का पता लगता है। शाहपुर नाम का अब कोई छोटा सा पुरवा भी नहीं रह गया है। सन् १९१८ तक एक पुरवा था जिसमें मल्लाह रहा करते थे पर अब वह भी नहीं है। हाँ, उस जगह एक चबूतरे पर महादेव शंकर भगवान् का एक लिंग-स्थापित है जिसे लोग शिवरात्रि पर पूजने को पहुँच जाया करते हैं। इस मूर्ति को लोगों ने झारखण्डेश्वर का नाम दे रक्खा है। मूर्ति देखने से ऐसा मालूम होता है कि यह

उसी तरह की मूर्ति है जिस तरह की मूर्तियाँ अक्सर बौद्ध मंदिरों के या गुप्त-कालीन मन्दिरों के आँगनों में पाई जाती हैं।

इसी शाहपुर के पूर्व की ओर दो मील पर श्रीकालेश्वर महादेव का प्रसिद्ध मन्दिर है जिसके पास तक शाहपुर की आबादी के निशान पाये जाते हैं। यह श्री कालेश्वर महादेव का मंदिर अमरौधा के मेहरोत्रा वंश के पूर्वजों का उपासना-स्थान है। इस मंदिर को औरंगजेब के राज्य-काल में भंग कर दिया गया था किन्तु मूर्ति अपनी जगह पर बनी रही। स्व० उदासी साधु बाबा जीवनदास जी ने सन् १८८४ में इस शिव-मूर्ति की फिर से प्राण-प्रतिष्ठा की और स्थान का जीर्णोद्धार कराया। यह मूर्ति काले चिकने पत्थर की बनी हुई है जिसका व्यास क़रीब १० इंच और उँचाई भी उतनी ही है। कानपुर के लाला रामलाल खन्ना की पत्नी की बनवाई हुई धर्मशाला भी पास में ही बनी हुई है। सन् १८५७ के विद्रोह के समय महारानी झाँसी के चर यहीं कालेश्वर के स्थल में आकर ठहरे थे। इस स्थान को हज़ारों वर्ष पुराना कहा जाता है। संस्कृत के प्रसिद्ध कवि भारवि ने जिन महाकालेश्वर का ज़िक्र अपने काव्य में किया है वह सम्भवतः यही स्थान है। पिछिली गावँ तो नाम से ही बौद्ध कालीन मालूम पड़ता है। यह गावँ मंदिर से दो मील पूर्व आबाद है। अब थोड़े से मिट्टी के घरौंदे इस गावँ में बाक़ी हैं। पर उसके पूर्व एक बहुत बड़ा खेरा पड़ा हुआ है जिसके देखने

से मालूम होता है कि किसी समय में यह अच्छा खासा शहर रहा होगा। दर्जनों की संख्या में पक्के कुएँ आज भी नष्ट-प्राय अवस्था में पड़े हैं। खेरे से ईंटें निकालकर कितने ही घर और नये मन्दिर बन चुके हैं। यह पिछिली गावँ सातवीं सदी में, जिस समय सम्राट् हर्षवर्द्धन का राज्य था, पूर्णतया आबाद था। बारहवीं सदी में ११६३ में मुहम्मद ग़ोरी के हमले के समय भी पिछिली शहर के रूप में था। आजकाल की गति ने उसे मिटा दिया है।

१४ वीं सदी में जौनपुर के शासक मलिकुश्शर्क़ मरदान दौलत की जौनपुर के मुल्तान जाते समय शाहपुर के पास बीमारी से मृत्यु हो गई थी। इनका मक़बरा अमरौधा में नहर के किनारे पर है। इसी मलिकुश्शर्क़ के नाम पर अमरौधा का नाम बदल कर मालिकपुर-आईन करने का विफल प्रयत्न हुआ था। वास्तव में अमरौधा का प्राचीन नाम अमरधाम प्रतीत होता है। जब हिंदू लोग, जो पिछिली छोड़ कर अमरौधा में आये थे, उसका नाम बदलने को तैयार नहीं हुए तो इसी अमरौधा के उस हिस्से को, जिसमें भगवान् श्री कालेश्वर जी की मूर्ति स्थापित है और एक प्राचीन कुण्ड है, महमूदपुर का नाम दिया गया। सन् १८५७ के ग़दर के समय अमरौधा के मेहरोत्रा खत्रियों और वैश्यों ने अपना सर्वस्व देकर उनकी मदद की थी, फलस्वरूप अंग्रेजी फ़ौजों ने इनको कई बार लूटा और सताया। अमरौधा किसी समय व्यापार की बहुत बड़ी मंडी था परन्तु व्यापार का केन्द्र पुखरायाँ चले जाने



मलिक चमन, अमरौधा (पृष्ठ २८७)



ख़्वाजा फूल को शहरपनाह का एक भाग (पृष्ठ २९९)

पर अमरौधा की रौनक़ मारी गई और तभी से गावँ का ह्रास होने लगा। सन् १६०१ में इसकी जन-संख्या ३०२७ थी। मुसलमान भी यहाँ काफ़ी रहते हैं। अमरौधे में पेड़े बहुत अच्छे बनते हैं।

असालतगंज

यह बिल्हौर तहसील के अतंर्गत २६°४१′ अक्षांश तथा ६६°५२′ देशान्तर रेखाओं के बीच बिल्हौर से रसूलाबाद जाने वाली कच्ची सड़क पर रसूलाबाद से ५ मील, बिल्हौर से १७ मील तथा कानपुर से उत्तर-पश्चिम ३८ मील की दूरी पर स्थित है। गावँ बहुत बड़ा है। परन्तु यहाँ का मुख्य व्यवसाय खेती ही है। सन् १८६१ में यहाँ की जन-संख्या ३३२५ थी। गावँ के बड़े होने के सिवा यहाँ और कोई विशेष बात नहीं है। यहाँ का बाज़ार, जिस पर गावँ का नाम पड़ा है, केवल स्थानीय महत्त्व का है। यह सप्ताह में दो दिन लगता है। यहाँ कपड़े पर छपाई का काम होता है। गावँ में डाकख़ाना, अपर प्राइमरी स्कूल तथा लड़कियों का भी स्कूल है।

औनहाँ

औनहाँ, जिसका उल्लेख सरकारी काग़ज़ात में नोनारी-बहादुरपुर के नाम से हुआ है तथा जिसमें बड़ागावँ और जसवन्तपुर भी सम्मिलित हैं, बिल्हौर-तहसील के उत्तर-

पश्चिम के कोने में २६°३७' अक्षांश तथा ७६°५८' देशान्तर रेखाओं के बीच कानपुर से २८ मील तथा शिवली से ६ मील की दूरी पर स्थित है। औनहाँ एक तालुके का नाम है और शिवराजपुर के चंदेलवंश की ही वह एक शाखा है। शिवराजपुर के चंदेलराजा संसारचंद ने अपने छोटे भाई मेदिनीमल को रावत की उपाधि देकर औनहाँ का तालुक़ा दे दिया। प्रारंभ में इसमें ३५ गावँ थे। इनमें १० गावँ नानकारे के रूप में थे। संवत् १५३२ में मेदिनीमल ने औनहाँ और शिवली में रहना शुरू किया और शिवली में जागेश्वर महादेव के पास तथा औनहाँ में दो गढ़ियाँ बनवाईं। मेदिनीमल की छठवीं पीढ़ी में पृथ्वीराज हुए जिन्हें औरंगजेब ने इन गावों के संबंध में सनद दी। पृथ्वीराज के वंश में उदैतसिंह, चम्पतराय, ख़लक़सिंह, भूपालसिंह, गजसिंह, सिरनैतसिंह, तथा शिवराजसिंह हुए। इस अंतिम पुरुष से, जो १७७५ में औनहाँ में रहते थे, अलमासअली ख़ाँ ने १० गावों को छोड़कर बाक़ी सब गावँ छीन लिए। बाद में इनमें भी ४ गावँ बिक गये और अब केवल ६ गावँ ही हैं। यहाँ डाकख़ाना, अपरप्राइमरी स्कूल तथा लड़कियों का भी एक स्कूल है।

ककवन

यह बिल्हौर तहसील के अन्तर्गत २६°४३' अक्षांश तथा ८०°०' देशान्तर रेखाओं के मध्य में कानपुर के ३२ मील

तथा बिल्हौर से दक्षिण-पश्चिम ८ मील की दूरी पर स्थित है। नहर-गंग शाख़ कानपुर के तट पर यह बसा हुआ है। बिल्हौर से रसूलाबाद जाने वाली कच्ची सड़क यहाँ से नहर को पार करती हुई निकलती है। नहर पर पुल बना हुआ है। पुल के पास ही नहर-विभाग का एक डाक बँगला भी है।

इसके नाम के सम्बन्ध में ऐसा प्रतीत होता है कि यह 'काकवन' रहा होगा। यहाँ कौए अधिक पाये जाते होंगे। उसी का अपभ्रंश 'ककवन' है। गावँ बड़ा है। उसमें पुलिस थाना, डाकख़ाना, कांजीहौस तथा अपर प्राइमरी स्कूल है। सप्ताह में दो दिन बाज़ार लगता है किन्तु उसका कोई विशेष व्यापारिक महत्व नहीं है। हाँ, लकड़ी तथा अन्य कुछ चीजें नहर-द्वारा कानपुर अवश्य भेजी जाती हैं। हिन्दुओं में गहरवार क्षत्रियों, ब्राह्मणों तथा चमारों की संख्या अधिक है।

कठारा

यह कानपुर तहसील के अन्तर्गत २६°१८' अक्षांश तथा ८०°१३' देशान्तर रेखाओं के बीच कानपुर से १६ मील की दूरी पर स्थित है। कानपुर से घाटमपुर जाने वाली पक्की सड़क से यह दो मील उत्तर की ओर है। पानी के निकास के लिए यहाँ 'खड़ाव' नामक एक छोटा सा नाला है जो रिंद नदी में जाकर गिरा है।

गावँ बड़ा है और मुख्य व्यवसाय खेती ही है। सन् १८७२ में यहाँ की जन-संख्या ३५७१ थी। डाकख़ाना तथा

अपर प्राइमरी स्कूल है और सप्ताह में दो दिन बाजार लगता है। अब जी. आई. पी. रेलवे की दोबारा खुली हुई कानपुर-बाँदा शाखा का यहाँ स्टेशन है।

कल्याणपुर

यह कानपुर-तहसील के अंतर्गत २६°२६′ अक्षांश तथा ८०°१३′ देशान्तर रेखाओं के बीच कानपुर-नगर से ५ मील उत्तर-पश्चिम में ग्रांड-ट्रङ्क-रोड पर स्थित है। कल्याणपुर कलाँ तथा ख़ुर्द नाम के दो गावँ है। ग्रांड-ट्रंक-रोड के ही समानांतर कानपुर-अछनेरा रेलवे लाइन गई है किन्तु कल्याणपुर का स्टेशन वास्तव में पास के ही दूसरे गावँ बैरी-अकबरपुर की ज़मीन में है। स्टेशन के पास ग्रांड-ट्रंक-रोड से एक पक्की सड़क निकल कर बिठूर चली गई है। कल्याणपुर गावँ से एक कच्ची सड़क मसवानपुर और पनकी को गई है।

गावँ में पुलिस थाना, डाकख़ाना तथा कांजीहौस है। सप्ताह मे दो दिन काफ़ी अच्छा बाज़ार लगता है। यहाँ सरकार ने हबूड़ों की एक बस्ती क़ायम कर रक्खी है जिसका प्रबन्ध करने के लिए सरकारी कर्मचारी यहाँ रहते हैं।

काकादेव

यह कानपुर-नगर से पश्चिम की ओर केवल ३ मील की दूरी पर और रावतपुर से मिला हुआ कानपुर का उपनगर है। यह एक बड़ा गावँ है। काकादेव भी चंदेल-क्षत्रियों की राजधानी रहा है। रावत-पुर के रावत बिक्रमाजीत के दो लड़के थे, खड्गराय और कंस-

राय। कंसराय ने रावतपुर के इलाक़े में आधा हिस्सा माँगा। परन्तु खड्गराय ने न दिया और कंसराय को बादशाह अहमदशाह से क़ैद करवा दिया। कहते हैं कि बादशाह को एक बार अपने महल के बुर्ज से एक मगर दिखलाई पड़ा। उस पर कई गोलियाँ चलाई गई परन्तु कोई न लगी। इस पर बादशाह ने आज्ञा दी कि जो इसे गोली से मार सकता हो मारे। क़ैदी कंसराय ने उसे मार डाला। इस पर बादशाह उनसे अति प्रसन्न हुए और कंसराय की प्रार्थना पर रावतपुर इलाक़े को दो भागों में बाँट दिया। खड्गराय व कंसराय दोनों को २४-२४ गावँ मिले। कंसराय ने काकादेव को अपना निवास-स्थान बनाया। कंसराय के वंश वालों को रावत की उपाधि नहीं मिली।

काकूपुर और छत्रपुर

काकूपुर और छत्रपुर नामक दो स्थान बी० बी० सी० आई० रेलवे की स्टेशन बरांजपुर से दो मील उत्तर गंगा के निकट बसे हुए हैं। दोनों गावँ बिलकुल पास ही पास हैं। काकूपुर का प्राचीन नाम संभवतः काकुत्सपुर रहा होगा। दोनों के बीच में खेड़ेश्वर (क्षेत्रेश्वर अथवा क्षीरेश्वर) महादेवका प्रसिद्ध मन्दिर है। यहाँ शिवरात्रि व सावन के महीने में बड़ा भारी मेला लगता है। इससे कुछ ही दूर पश्चिम की ओर अश्वत्थामा का मन्दिर है। खेड़ेश्वर महादेव का मन्दिर लखनऊ के साह बिहारीलाल ने और अश्वत्थामा का मन्दिर बैरी के ज़मींदार श्री रामदीन कुर्मी ने बनवाया। पास ही दूधेश्वर महादेव की एक प्राचीन

मूर्ति खुली जगह में एक चबूतरे पर स्थापित है। यह मूर्ति शिव की अन्य मूर्तियों से विभिन्न है। लिंग के दो ओर नर-रूप शिव की मूर्ति उत्कीर्ण है। काकूपुर के आस-पास अनेक पुराने मन्दिरों के भग्नावशेष हैं और पुरानी मूर्तियों के खंडित अङ्ग और पत्थर की चौखटों के खंड इधर उधर टीलों तथा अन्य स्थानों में फैले हुए मिलते हैं। इनमें से कुछ तो अवश्य बौद्धकालीन हैं और खंडित रूप में भी अपने पूर्व सौंदर्य का परिचय देते हैं। जनरल कनिंहम ने काकूपुर के आसपास के इन स्थानों का भ्रमण कर यह अनुमान किया था कि संभवतः यहाँ बौद्ध-काल में कोई बिहार रहा होगा। वे इस स्थान से इतने अधिक प्रभावित हुए थे कि उन्होंने काकूपुर को चीनी यात्री ह्यू न सांग द्वारा वर्णित 'अ-युतो' मान लिया था। उनके अनुसार तिब्बत के ग्रन्थों में उल्लिखित 'बागुड़' या 'वागुड़' नामक स्थान भी यही है। यद्यपि कनिंहम की उपर्युक्त धारणाओं से बहुत कम इतिहासज्ञ सहमत हैं, पर इसमें संदेह नहीं कि शिवराजपुर से गंगाजी तक की सड़क के दोनों ओर, और विशेषतः बाएँ हाथ की भूमि, अति प्राचीनकाल से बौद्ध और हिन्दू मतों की पवित्र भूमि रही है।

काकूपुर के पास और श्री खेड़ेश्वर महादेव के मन्दिर से डेढ़ मील दूर सरैयाँघाट है, जो प्राचीनकाल से एक छोटा सा तीर्थ रहा है। साल में अनेक छोटे-बड़े पर्वों में लोग हजारों की संख्या में इस घाट पर गंगा-स्नान करने आते हैं।

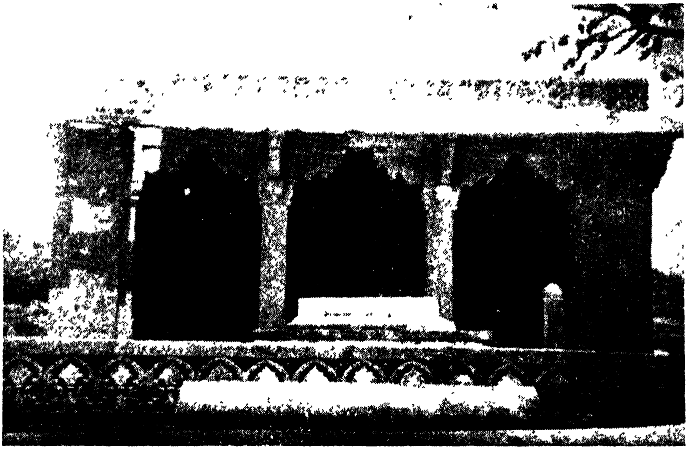
सन् १८५७ के विद्रोह में जब सर कालिन कैंपबेल ने जनरल

होपग्रांट को बिठूर और कालपी की राह रोक कर तात्या को पू सेना सहित पकड़ने के लिए भेजा तो यहीं सरैयाँघाट पर दोनं ओर कीं सेनाओं में तुमुल युद्ध हुआ था और अन्त में लड़ भिड़ कर तात्या अपनी सेनासहित बिठूर की राह सा निकल गये। जनरल होपग्रांट ने सरैयाँघाट की इस लड़ा का स्वयं रोचक वर्णन किया है। वह लिखता है—'बालू व कारण हमारे सैनिकों के पैर फिसल रहे थे। अत्यन्त कठिनत के साथ अच्छी ज़मीन पर पहुँच कर हमने अपनी तोपें खड़ कर दीं और शत्रु पर गोलाबारी आरम्भ कर दी। शत्रु अपन समस्त सेना तथा रिसाले के साथ गंगा के किनारे खड़ा हुअ उस पार अवध की भूमि में उतरने की प्रतीक्षा कर रहा था उसकी सारी सेना एक ही स्थान पर एकत्र थी। हमारे आने की उसे कोई ख़बर न लग पाई थी। हमारी तोपों ने इतने ज़ोरों से गोले बरसाने शुरू किये कि शत्रु उन्हें सहन न क सका और वह अपना बहुत सा सामान छोड़ कर भाग खड़ हुआ।'

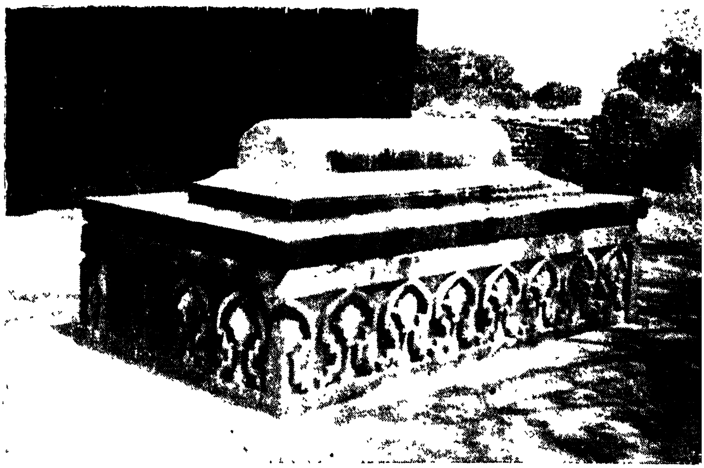
सरैयाँघाट में दो मन्दिर हैं जिन्हें राजा और रानी वे मन्दिर कहते हैं। इनका निर्माण शिवराजपुर के अंतिम राज सतीप्रसाद तथा उनकी रानी ने कराया था। सत्तीघाट प राजा महेन्द्रसिंह की रानी अपने मृत पति के शव के साथ सती हुई। उसी के वरदान से महेन्द्रसिंह के चाचा दानसिंह के पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम सतीप्रसाद रक्खा गया। यही राजा सतीप्रसाद थे। उन्होंने अपनी सती भावज की पुण्य-

स्मृति में सत्तीघाट और मन्दिर बनवाये । इसी सरैयाँघ
के पश्चिम की ओर एक फ़र्लाङ्ग दूर एक ऊँची कगार पर ।
बरगदिया बाबा रहते थे जिनकी मृत्यु हुए अभी कुछ ही ।
पहले हुई है । यह एक सिद्ध महात्मा थे । परमसिद्ध स्वर्ग
उड़िया बाबा ने उनकी प्रशंसा की है । बरगदिया बाबा स्वयं ।
लिख नहीं सकते थे, पर उनकी कुटी में गीता और योगवशि
आदि ग्रन्थ रक्खे रहते थे जिन्हें वे आगन्तुकों से पढ़वाते थे
कमंडलु और लँगोटी के सिवा कोई सामान पास न रखते
और किसी भी व्यक्ति को बहुत समय तक अपने पास न बैठ
देते थे । लोगों को उनकी सिद्धि पर इतना विश्वास था
लोग कहा करते थे कि रात को बरगदिया बाबा खड़ाऊँ पहि
पानी पर चलते हुए गंगा पार करते हैं और तड़के के पह
इसी प्रकार लौट आते हैं । अब भी उनकी कुटी बनी हुई है
स्थान अत्यन्त रमणीक है । थोड़ी दूर आगे बढ़ कर "दं
बाड़ा" है, जहाँ अनेक साधू रहते हैं ।

काकूपुर कान्यकुब्ज ब्राह्मणों का भी प्रसिद्ध स्थ
रहा है । यहाँ संस्कृत के अनेक प्रकांड पंडित हो गये हैं
इनमें आर्य-समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानंद
समकालीन पं० अयोध्याप्रसाद का नाम विशेष उल्ले
नीय है । आप वेदों के अपूर्व ज्ञाता थे । इस सम्ब
में स्वामी दयानंद से आपका पत्र-व्यवहार भी हो
रहता था । काकूपुर के ब्रह्मभट्ट-परिवार में नाराय
(जन्म सं० १८०६) और भूपनारायण (जन्म सं० १८५६



ख़्वाजा साहब की दरगाह, ख़्वाजा फूल (पृष्ठ ३००)



ख़्वाजा साहब की दरगाह में नक़्क़ाशी का काम (क़ब्र संगमरमर की और नीचे का भाग लाल पत्थर का है।) (पृष्ठ ३००)

नामक दो कवि भी हुए हैं जिनके नाम शिवसिंहसरोज में मिलते हैं।

छत्रपुर-कहते हैं, किसी छत्रसिंह नामक राजा का बसाया हुआ है। छत्रपुर के आसपास जो कोट था उसके चिन्ह कोसों तक मिलते हैं।

खमैला

यह डेरापुर-तहसील के अंतर्गत २६°३४′ अक्षांश तथा ७९°४७′ देशान्तर रेखाओं के बीच नहर शाख इटावा के किनारे स्थित है। झींझक स्टेशन यहाँ से दो मील तथा डेरापुर उत्तर में १० मील की दूरी पर है।

गावँ बड़ा है और इसका मुख्य व्यवसाय खेती ही है। पहले यह गौड़-क्षत्रियों के अधिकार में था परन्तु अब जमींदारी ब्राह्मणों के हाथ में चली गई है। झींझक स्टेशन बनने के पूर्व खमैला के बाजार का कुछ महत्व था परन्तु अब सारा व्यापार झींझक चला गया है। सन् १८९१ में गावँ की जन-संख्या ३३७९ थी। इनमें आधे के लगभग ब्राह्मण हैं। गावँ में एक प्राइमरी स्कूल भी है। इसके अतिरिक्त और कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं है।

खानपुर-डिलवल

यह डेरापुर-तहसील में २३°२९′ अक्षांश तथा २९°४२′ देशान्तर रेखाओं के बीच डेरापुर से मंगलपुर जाने वाली कच्ची सड़क पर डेरापुर से ७ मील उत्तर-पश्चिम की ओर

स्थित है। गावँ बड़ा है और यहाँ का मुख्य व्यवसाय खेती है।

गौड़-राजपूत वंश के एक प्रसिद्ध परिवार का निवास-स्थान होने के कारण यह विशेष रूप से प्रसिद्ध है। यहाँ की जन-संख्या अत्यन्त द्रुत गति से बढ़ी है। सन् १८४७ में जन-संख्या कुल ६५१ थी। सन् १८६१ में वह बढ़कर २६४३ हो गई। यहाँ डाकख़ाना, अपर प्राइमरी स्कूल तथा लड़कियों का स्कूल है। सप्ताह में दो दिन बाज़ार भी लगता है। एक अस्पताल भी खुल गया है।

ख़्वाजाफूल

यह भोगनीपुर-तहसील के धुर उत्तर-पश्चिम में पुरानी मुग़ल-रोड पर कानपुर से ४८ मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ से केवल एक मील की दूरी पर इटावा-ज़िले की सरहद प्रारंभ हो जाती है। गावँ बहुत छोटा है परन्तु इसकी प्रसिद्धि का कारण इसकी प्राचीनता है। यहाँ गौड़-क्षत्रियों तथा कुर्मियों की बस्ती अधिक है। सन् १६०१ में गावँ की जन-संख्या कुल १२६२ थी। एक प्राइमरी स्कूल है तथा सप्ताह में दो दिन बाज़ार लगता है।

गावँ के नामकरण के सम्बन्ध में बतलाया जाता है कि सम्राट् अकबर के महल के एक हिजड़े ख़्वाजा सरा ऐतमाद ख़ां ने इस सड़क से जाने वाले यात्रियों की डाकुओं से, जो उस समय यमुना के कछार तथा खोहों में अड्डे डाले पड़े रहते थे, रक्षा के लिए इस स्थान पर एक क़िला बनवाया। इस

व्यक्ति का वास्तविक नाम फूल मलिक था। अकबर के शाहज़ादे सलीम ने उसे मुहम्मद ख़ां की तथा बाद में अकबर ने उसे ऐतमाद ख़ां की उपाधि प्रदान की। वह अकबर के के विश्वासपात्र सलाहकारों में से था और 'आईने-अकबरी' के अनुसार उसने आगरे के पास ऐतमादपुर बसाया जहाँ बतलाया, जाता है मृत्यु के बाद उसे दफ़नाया गया।

इस सम्बन्ध में गावँ में प्रचलित किंवदन्ती के अनुसार इसका शाहजहाँ के समय में आबाद होना बतलाया जाता है। ऐतमादनगर बसाने पर शाहजहाँ की फूल नामक बेगम, जिनके यहाँ उक्त ख्वाजा महाशय नौकर थे इनसे नाराज़ हो गई और फल-स्वरूप उसे प्रसन्न करने के लिए इसका नाम बदल कर ख्वाजा फूल कर दिया गया। यह भी कहा जाता है कि उन्होंने यहाँ दरगाह बनवाई तथा उसी में जीवित अवस्था में अथवा आत्म-हत्या करने के पश्चात् दफ़ना दिये गये। यह किंवदन्ती बिलकुल मनगढ़न्त एवं कपोलकल्पित है। किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि उनके मक़बरे को हिंदू तथा मुसलमान दोनों ही श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। क़िला लाल पत्थर का बना हुआ है किन्तु उसके बाहर के पत्थर नवाब आसफ़ुद्दौला लखनऊ उठा ले गये। मरहठों ने इसकी फिर मरम्मत कराई तथा उसके चारों ओर खाई खुदवा दी। परन्तु सन् १८५७ के ग़दर के बाद क़िले को गिरा दिया गया। अब केवल क़िले की चहारदीवारी भर रह गई है। कोट पत्थर-चूने का काफ़ी मज़बूत और चौड़ा बना हुआ है जिसके

दो तरफ़ फाटक हैं। इसी कोट के अन्दर ख्वाजा जहाँ की क़ब्र है। क़ब्र एक लाल पत्थर की सुन्दर इमारत के अन्दर बनी हुई है जिसमें कारीगरी का आभास होता है। गावँ का वह भाग जो क़िले के भीतर है 'भीतर कोट' कहलाता है तथा क़िले के बाहर का 'बाहर कोट' कहलाता है। यहाँ एक सराय भी है जिसे भी संभवतः उक्त ख्वाजा ऐतमाद ख़ाँ ने ही बनवाया होगा।

गजनेर

यह अकबरपुर-तहसील के अंतर्गत २६°१७' अक्षांश तथा ८०°३' देशान्तर रेखाओं के बीच कानपुर से २४ मील तथा अकबरपुर से दक्षिण की ओर ९ मील की दूरी पर स्थित है। यह कई कच्ची सड़कों के संगम-स्थल पर बसा हुआ है। उत्तर-पश्चिम में अकबरपुर से, उत्तर-पूर्व में सरबनखेड़ा तथा संचेड़ीं से, दक्षिण-पूर्व में पतारा से, दक्षिण-पश्चिम में मूसानगर से तथा पश्चिम की ओर गिरसी और पुखरायाँ से आने वाली कच्ची सड़कें यहाँ परस्पर मिलती हैं। गावँ के उत्तर-पूर्व में न्योर नामक नदी है जो नोन में जाकर गिरती है। गावँ के आसपास की ज़मीन नीची है तथा बरसाती पानी का निकास ठीक से नहीं हो पाता। इसका नाम संभवतः गजनगर रहा होगा जिसका अवभ्रंश होकर गजनेर हो गया। गावँ की रौनक़ घटती जा रही है। सन् १८७२ में इसकी जन-संख्या ३५३० थी परन्तु सन् १९०१ में वह घट कर २३४९

ही रह गई। इनमें ४४७ मुसलमान थे। गावँ का मुख्य व्यवसाय खेती ही है। यद्यपि कपड़े बुनने का भी कुछ काम होता है जो अब घटता जा रहा है। गावँ में बाज़ार भी लगता है परन्तु वह कोई महत्वपूर्ण नही है। यहाँ प्रति वर्ष जेठ के महीने में ग़ाज़ी पीर के सम्मान में एक बहुत बड़ा मेला लगता है। इसमें मुख्यतः जानवरों का क्रय विक्रय होता है। यहाँ पुलिस थाना, डाकखाना, काजीहौस, अपरप्राइमरी स्कूल तथा मस्जिदें भी हैं।

घाटमपुर

यह क़स्बा अपेक्षाकृत छोटा है और कानपुर से हमीरपुर जाने वाली पक्की सड़क पर कानपुर शहर से २७ मील की दूरी पर स्थित है। यह २६°६′ अक्षांश तथा ८०°१०′ देशान्तर रेखाओं में अवस्थित है। यहाँ हमीरपुर रोड से पुरानी मुग़लरोड आकर मिलती है। घाटमपुर से उत्तर की ओर तिलसँडा तथा उत्तर-पूर्व में भदेउना को भी सड़कें गई हैं।

कहा जाता है कि इसे घाटमदेव नामक एक बैस-राजपूत सरदार ने बसाया था। उसने अहीरों के नेता बुल्डानी को पराजित कर अहीरों को यहाँ से निकाल बाहर किया और उनके कुरियाँ के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। घाटमदेव के दो लड़के थे। एक रुकमसाह जिनकी संतान रामसारी-पुरवा में आबाद है। दूसरा भीखमसाह, जो मुसलमान हो

गया तथा जिसकी संतान घाटमपुर, नँदना व रेउना आदि में हैं। घाटमदेव के संबंध में उक्त जनश्रुति के सत्य होने का कोई निश्चित प्रमाण नहीं है। किंतु इतना निश्चित है कि घाटमपुर एक प्राचीन स्थान है। यहाँ कुड़हा देवी का एक पुराना मंदिर है। क़स्बे के दक्षिण में आम के बग़ीचों के बीच गोसाइयों का एक विशाल मंदिर है जिसे आज से लगभग ३०० वर्ष पूर्व बलभद्र गिरि नामक एक गोसाईं ने बनवाया था। मंदिर से ही मिला हुआ एक मठ भी है जिसके ख़र्च के लिए नारायणपुर नामक एक गावँ लगा हुआ है। पुरानी जनगणना के अनुसार नगर में एक तिहाई आबादी मुसलमानों की है।

तहसीली के अतिरिक्त यहाँ पुलिस थाना, अस्पताल, डाकख़ाना, कांजीहौस, मिडिल स्कूल तथा प्राइमरी स्कूल है। सप्ताह में दो दिन काफ़ी बड़ा बज़ार लगता है। कपड़ा बुनना ही यहाँ का मुख्य व्यवसाय है। ईसाइयों का एक मिशन बँगला भी है जिसमें गर्मियों में ईसाई धर्म प्रचारक आकर ठहरते थे और आसपास के गावों में ईसाई धर्म का प्रचार करते थे। एक गिरजा भी था जो अब बेच डाला गया है।

चौबेपुर

यह २६°३६′ अक्षांश तथा ८०°११′ देशान्तर रेखाओं के मध्य में ग्रांड-ट्रंक तथा कानपुर-अछनेरा रेलवे लाइन पर कानपुर नगर के १६ मील की दूरी पर स्थित है। शिवराजपुर से

यह ८ मील दक्षिण की ओर है। यहाँ रेलवे स्टेशन है तथा पश्चिम की ओर शिवली के लिए सड़क जाती है जो फिर बिठूर तक चली गई है। चौबेपुर एक बहुत बड़ा गावँ है। ब्राह्मणों की संख्या अधिक है और किन्हीं चौबेजी के नाम पर इसका नाम चौबेपुर पड़ा। यहाँ डाकख़ाना, अपर प्राइमरी स्कूल तथा फ़ौजी पड़ाव है। यहाँ का बाज़ार ज़िले के सबसे प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण बाज़ारों में से है। आलू, तंबाकू, तथा जानवरों की विशेष रूप से ख़रीद-फ़रोख़्त होती है। गावँ में दो तीन बड़े भव्य मंदिर भी हैं तथा कार्तिकी पूर्णिमा के दिन कंसलीला के अवसर पर बहुत बड़ा मेला लगता है जिसमें भाग लेने के लिए दूर-दूर से हज़ारों की संख्या में लोग आते हैं। चौबेपुर की रोशन चौकी प्रसिद्ध है।

सन् १८५६ के ग़दर में यहाँ भी कुछ अंग्रेज़ मारे गये थे। जिस समय कानपुर में विद्रोह आरंभ हुआ चौबेपुर में ७ वीं घुड़सवार फ़ौज का एक दस्ता तथा ४८ वीं पैदल फ़ौज की दो कंपनियाँ पड़ाव डाले पड़ी थीं। ६ वीं जून को इनके सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया। इनमें से कुछ विद्रोही सिपाही बिठूर में नाना साहब के पास उनकी सेना में नौकर होने के लिए गये। वहाँ इन लोगों से यह कहा गया कि यदि वे अपने विद्रोही होने के प्रमाण-स्वरूप अपने अफ़सरों के सिर काट कर ले आवें तो उन्हें नौकर रक्खा जा सकता है। इस पर ये सिपाही चौबेपुर लौट गये और वहाँ जाकर अपने दो अंग्रेज अफ़सरों, कप्तान स्टैपुल्स तथा लेफ्टीनेंट मार्टन, को मार डाला

और उनके सिर काट कर बिठूर में लाकर दे दिये। इनमें केवल एक अंग्रेज अफ़सर लेफ्टीनेंट बोल्टन घोड़े पर सवार होकर भाग निकले और सकुशल कानपुर पहुँच गये। इन अंग्रेज़ अफ़सरों की हत्या चौबेपुर में ग्रांड ट्रंक-रोड के ऊपर हुई थी।

जब सन् १८६२ में नाना साहब के छोटे भाई सदाशिवराव के दत्तक पुत्र पांडुरंग राव को जम्मू में गिरफ़्तार किया गया और उन्हें फाँसी की सजा दी गई तो उन पर अंग्रेजों के क़त्ल करने के जो तीन अपराध लगाये गये थे उनमें चौबेपुर का उक्त हत्या-कांड भी एक था।

जाजमऊ

जाजमऊ का प्राचीन क़स्बा कानपुर-नगर से ५ मील पूर्व में गंगा-नदी के तट पर स्थित है। पहले कानपुर इस जाजमऊ-तहसील का ही एक गावँ था। इस समय मालगुज़ारी की वसूलयाबी मौजा बाजीदपुर के नाम से होती है परन्तु लोगों में आमतौर से पुराना नाम जाजमऊ अब भी प्रचलित है। जाजमऊ तथा कानपुर के बीच पक्की सड़क गई हुई है। जाजमऊ से अहिरवाँ तथा महाराजपुर को, जो ग्रांड-ट्रंक रोड पर स्थित है, कच्ची सड़कें गई हैं। सन् १८४७ की जन-गणना के अनुसार गावँ की आबादी २१७८ थी। तथा अब उक्त गावँ के ज़मींदार ब्राह्मण तथा मल्लाह हैं। गावँ अधिकतर उजाड़ तथा कगारों के बीच बसा हुआ है।



सिद्धनाथ का मंदिर, जाजमऊ (पृष्ठ ३०५)



बंगालीघाट, जाजमऊ (पृष्ठ ३०७)

जाजमऊ कानपुर-ज़िले में ऐतिहासिक काल का निश्चित रूप से सब से प्राचीन स्थान है। कहते हैं यह राजा ययाति की राजधानी था और उन्हीं के नाम से ययातिमऊ कहलाया जिसका अपभ्रंश होते-होते जाजमऊ हो गया। प्रसिद्ध विद्वान् अलबेरूनी ने, जो महमूद ग़ज़नवी के साथ भारत आया था, अपने ग्रन्थ 'क़िताबुल्हिंद' में जाजमऊ का उल्लेख किया है। उस युग में कन्नौज से प्रयाग जाने के मार्ग में जाजमऊ एक प्रसिद्ध स्थान था। पुराण-साहित्य में ययाति का उल्लेख बहुत अधिक है जिससे उनकी महत्ता प्रकट होती है। राजा ययाति का विवाह शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी तथा असुरराज वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा से हुआ था। राजा ययाति के यदु नामक पुत्र के वंशज यादव तथा पुरु के वंशज पौरव क्षत्रिय कहलाये। इसमें संदेह नहीं कि ऐतिहासिक काल में बहुत दिनों तक मध्यदेश, विशेषतः अंतर्वेद, में महाराज ययाति तथा उनके वंशजों का अधिकार रहा। जाजमऊ से ययाति का सम्बन्ध केवल अनुश्रुति के आधार पर स्वीकार कर लेने में हमें विशेष संकोच नहीं है।

जाजमऊ का एक दूसरा नाम सिद्धपुर भी है और सिद्धनाथ महादेव और सिद्धादेवी के मंदिर जाजमऊ के पूर्व गंगातट पर बने हुए हैं। एक सुन्दर और सुदृढ़ घाट भी उनके नीचे है, जो पुराना जान पड़ता है। मंदिर अत्यन्त सुन्दर स्थान पर स्थित हैं और उनके आसपास सुन्दर वाटिकायें तथा उद्यान हैं। लोग इन मंदिरों को अत्यन्त पवित्र मानते हैं

और यहाँ यात्री लोग स्नान करने के लिए आते हैं। विशे कर सावन के महीने में सोमवार के दिन यहाँ कानपुर श से हज़ारों लोग आते हैं। सावन के अंतिम सोमवार और शि रात्रि के दिन यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है।

सिद्धनाथ के मंदिर के पश्चिम की ओर गंगा के किन एक विशाल टीला है जो लगभग एक मील लंबा और २ गज़ चौड़ा है, और नदी की ओर से जिसकी ऊँचाई ६० फ़ु से भी अधिक है। पर सड़क की ओर से उसका ढाल धीरे धी गिरता हुआ भूमि की सतह तक आ पहुँचा है। इस टीले पुरानी ईंटों के खंडे और मिट्टी के बरतनों की गुटैलियों दर्शन होते हैं। इसमें संदेह नहीं कि यह किसी प्राचीन क़ि का धुस्स है। पर जब तक गवर्नमेंट या किसी इतिहास-समि की संरक्षता में इसकी नियमित रूप से खुदाई नहीं होती यह कह कठिन है कि यह किसका क़िला या महल था। संभव है इ क़िले में कई युगों के इतिहास के स्तर भी मिलें। अनुश्रुति इ किसी चंद्रवर्मा चंदेल राजा का क़िला बतलाती है। पर य चंद्रवर्मा कौन था निश्चित रूप से नहीं कहा जा सक और न इस अनुश्रुति की पुष्टि में कोई प्रमाण ही उपलब है। इस टीले के ऊपर एक मस्जिद है जिसे सन् १६७६ औरंगज़ेब के सद्रेजहाँ कुलीच ख़ां ने बनवाया था। य बात उसी के फ़ारसी शिला-लेख से मालूम होती है। इस अतिरिक्त ट्रिग्नामेट्रिकल सर्वे के लिए एक स्थान तथा जाजम के पुराने शेख़ों के कुछ ध्वस्त मकान भी इस पर बने हुए हैं

टीले के पश्चिम की ओर एक पक्का घाट है जो बंगाली-घाट कहलाता है और जिसे रामचन्द्र घोष नामक एक बंगाली सज्जन ने बनवाया था। ये ईस्ट इण्डिया कम्पनी की फ़ौज में कमसरियट के हेडक्लर्क थे और राजीवपुर (२४ परगना) के निवासी थे। घाट से कुछ आगे चल कर एक बहुत बड़ा मकान तथा बग़ीचा है जिसमें नासिब अली नामक कोई मुसलमान सज्जन रहते थे जिन्होंने रेलवे के कंट्राक्टर के रूप में बहुत धन कमाया था।

जाजमऊ के गावँ के पास सड़क के किनारे दिल्ली के प्रथम सुल्तान क़ुतुबुद्दीन ऐबक के समकालीन एक मुसलमान फ़क़ीर मख़दूम शाह की दरगाह है। यह दरगाह पुरानी हिंदू इमारतों की सामग्री से बनी है परन्तु इस रूप में उसे बनवाने का श्रेय फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ को दिया जाता है जिसने संभवत: दरगाह में चंदन के दरवाज़े लगवा दिए थे। दरगाह की बाहरी दीवाल पर उक्त बादशाह के तीन लेख अब भी देखे जा सकते हैं। उनसे विदित होता है कि उक्त सुल्तान वहाँ आया था और मख़दूम शाह के वंशज सदरुश्शहीद ग़ियासुल—हक़ मुहम्मद बिन यूसुफ़ को ज़मीन प्रदान की थी। इस लेख की तिथि ७६१ हिजरी या १३५८ ईस्वी सन् है। दरगाह से मिला हुआ क़ाज़ी-ख़ान्दान का मकान है जो फ़ारूक़ी शेख़ हैं और अपने को मख़दूम शाह का वंशज बतलाते हैं। मकान बहुत ही सुन्दर बना हुआ है। मख़दूम शाह के पिता क़ाज़ी सिराज-उद्दीन की क़ब्र सड़क के दक्षिण की ओर स्थित

क़ब्रगाह के भीतर है जिसे गंजे-शहीदान या शहीदों का विश्राम-स्थल कहते हैं। मख़दूम शाह के भाई के सम्बन्ध में बतलाया जाता है कि वे क़ाफ़िरों के विरुद्ध लड़ते हुए मारे गये और उनका कटा हुआ सिर वहाँ से उड़ता हुआ जाजमऊ में आकर गिरा जहाँ उसे मख़दूम शाह के मक़बरे के बग़ल में एक छोटी सी क़ब्र के भीतर दफ़ना दिया गया। इनके अतिरिक्त जाजमऊ में अन्य कई पुराने मक़बरे भी हैं।

जब जाजमऊ का गौरव अपने शिखर पर था तो कहते हैं कि उसका विस्तार पाँच कोस तक, वर्तमान नजफ़गढ़ तक, था। आल्हा-ऊदल की कथाओं में जाजमऊ-घाट का वर्णन बहुधा आता है। "उतरे जाजमऊ के घाट"। बुन्देलखंड में स्थित कालपी, उरई, महोबा, कालिंजर, ओड़छा आदि स्थानों से अवध जाने के लिए जाजमऊ में ही गंगा को पार करना पड़ता था और कन्नौज से प्रयाग जाते हुए भी जाजमऊ से होकर रास्ता था। इसीलिए इसका व्यापारिक महत्त्व था। मुग़ल-काल में आईने-अकबरी के अनुसार जाजमऊ इलाहाबाद सूबे की कोड़ा सरकार (जिला) का एक महाल (परगना) था और यहाँ लोधी अफ़ग़ानों और बैस राजपूतों की बस्ती अधिक थी। उस युग में जाजमऊ का कोई विशेष ऐतिहासिक महत्व नहीं था। जब तक कन्नौज उत्तर भारत की राजधानी रहा गंगा ही के द्वारा यातायात अधिक होता था और कन्नौज, आँकिन, नानामऊ, कानपुर, जाजमऊ, डौंड़ियाखेड़ा, असनी आदि घाटों से होकर नाव जाती थी और स्थल में साथ ही साथ सड़क

चलती थी। अलबेरूनी के समय तक, और उसके बाद लगभग दो सौ वर्षों तक, अर्थात् दिल्ली में तुर्कों की राजधानी क़ायम होने के समय तक, यही स्थिति रही। पर इसके बाद, और विशेषतः आगरा के, राजधानी बनने पर, राजपथ का रुख़ यमुना की ओर झुक जाना स्वाभाविक था। इसीलिए मुग़ल-काल में कन्नौज और जाजमऊ विशेष महत्व के स्थान नहीं रहे।

मुग़ल-साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने पर अवध के शासन-काल में जाजमऊ फिर चमका। इसकी प्राचीन महिमा का कुछ पुनरुद्धार हुआ। इस युग में यह व्यापार का केन्द्र और गंगा का प्रसिद्ध बंदरगाह रहा—यहाँ नावें बहुत संख्या में आती थीं और नई नावों के बनाने और पुरानी की मरम्मत का भी यहीं प्रबंध था। नाव खेने वाले मल्लाह या केवट-जाति के लोग इस व्यवसाय से यहाँ ख़ूब फूले-फले। इस वंश के पास काफ़ ज़मींदारी थी और अभी तक चली जा रही है। जाजमऊ की लड़ाई में सन् १७६४ में शुजाउद्दौला की अंतिम हार अंग्रेज़ी सेना द्वारा हुई। कानपुर में अंग्रेज़ी फ़ौज की छावनी पहले पहल जुही में क़ायम हुई। पर कुछ साल बाद जुही से हट कर गंगा के किनारे जाजमऊ के पश्चिम में छावनी क़ायम हुई। जुही, कानपुर, कुरसवाँ, पटकापुर, नवाबगंज और सीसामऊ के मौज़े जाजमऊ के परगने में ही शामिल थे। धीरे धीरे कानपुर की आबादी बढ़ने लगी। लोग नौकरी, रोज़गार, ठेकेदारी आदि के निमित्त छावनी के पास स्थित उपर्युक्त गावों में आबाद

होने लगे। शायद इन सब गावों में कानपुर गावँ ही सबसे बड़ा होगा। इसीलिए इसका ही नाम अधिक प्रसिद्ध हो गया और बाक़ी सब गावँ इसके मुहल्ले बन गये। जाजमऊ से तहसील के दफ़्तर कानपुर और नवाबगंज के बीच आगये और कानपुर एक स्वतन्त्र ज़िला भी हो गया। पर १६ वीं शताब्दी के अंत तक कानपुर तहसील जाजमऊ में ही लगता रहा यद्यपि तहसील के दफ़्तर वहाँ से उठ आये थे। जाजमऊ के अनेक प्राचीन परिवार १७७८ और १८०१ के बीच वाले युग में वहाँ से हट कर उपर्युक्त मौज़ों में आ बसे। पुराने कानपुर के पं० मन्नालाल—कुन्दनलाल—बलभद्रप्रसाद तिवारी का परिवार, कलेक्टरगंज वाले देवीचरण मानसिंह के फ़र्म के तिवारियों का परिवार, कुरसवाँ के मुंशी रामसहाय निगम का परिवार, सीसामऊ के निवासी बाबू मुकुन्दचरण निगम वकील का परिवार, कुरसवाँ के जनरल बालमुकुन्द दुबे का परिवार, पटकापुर के रुस्तमे-हिंद पं० मनीराम पाँड़े का परिवार, पटकापुर के फ़ारूक़ी क़ाज़ियों का परिवार (जो मख़दूम शाह के वंशज हैं) ये अब परिवार इसी युग में किसी न किसी कारण से जाजमऊ छोड़ कर आ गये। जाजमऊ उजाड़ हो गया और यदि वहाँ सिद्धनाथ और सिद्धादेवी के मन्दिर तथा मख़दूम शाह आदि के मज़ार न होते तो शायद वह और भी उजाड़ हो जाता।

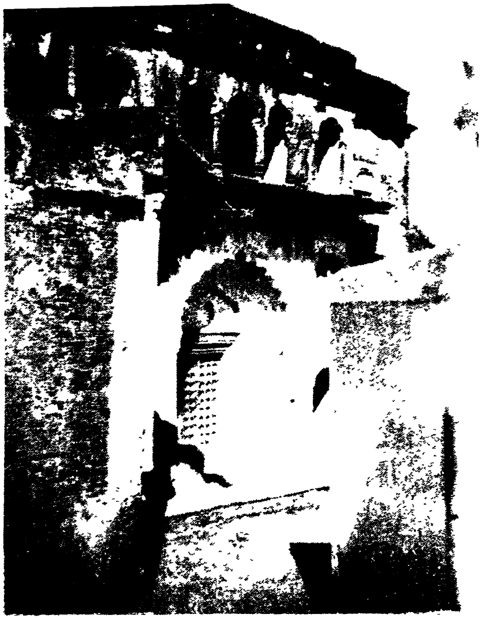
१६ वीं शताब्दी के अंत में शेवन साहब ने जाजमऊ में चमड़े का एक कारख़ाना खोला। जाजमऊ के दिन फिर पलटे।

धीरे धीरे वहाँ चमड़े के और कारखाने खुले। अब जाजमऊ में उनकी संख्या ६-७ तक पहुँच चुकी है। सावन के सोमवारों में वहाँ जाने वाले शहर वालों को कम से कम एक दिन के लिए शहर की गंदी हवा की जगह शुद्ध वायु के सेवन का अवसर प्राप्त हो जाता था। पर इन टेनरियों के खुल जाने से जाजमऊ में भी मिल की चिमनी का धुवाँ फैलना शुरू हुआ। जाजमऊ कानपुर का उपनगर सा हो रहा है। जाजमऊ की आबादी फिर बढ़ रही है। जमीन का दाम चढ़ गया है। कानपुर के रईसों ने वहाँ पर कुछ वाटिकायें और सुन्दर मकान भी बनवाये थे जिनमें कभी कभी वे हवा बदलने जाया करते थे। परन्तु ये उपवन और भवन इन टेनरियों के बीच में पड़ कर अपनी पुरानी शोभा बहुत कुछ खो चुके हैं। कानपुर वालों का यह वाटिका-नगर औद्योगिक नगर बन रहा है। जाजमऊ से कुछ आगे कानपुर का गंदा नाला भी गंगा में गिरता है, जो कई मीलों तक पतितपावनी धारा को कलुषित करता हुआ, आधुनिक सभ्यता की दुहाई देता हुआ, हमारी गंगा-भक्ति का उपहास कर रहा है। पुण्यसलिला गंगा की धारा को पवित्र रखना धर्म की दृष्टि से न सही सार्वजनिक स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए हमें उद्योग करना चाहिए। इस भ्रष्टाचार को मिटाने में हमें सहस्रकुंडी-यज्ञ करने से भी अधिक पुण्य मिलेगा। भविष्य में कानपुर के लिए नगर-सुधार की जो भी योजनायें स्वीकृत हों उनमें गंगा-जल-सुधार का पूरा ध्यान रखना चाहिए और जहाँ तक हो सके

इन टेनरियों को इस प्राचीन स्थान के पास से निकाल बाह करना चाहिए। पर कानपुर-डेवलपमेंट बोर्ड ने जो 'मास्टर प्लान' वृहत्तर कानपुर का बनाया है उसमें जाजमऊ ही औद्योगिक केन्द्र होगा। मुसलमान इसे शेख मखदूम शाह क दरगाह के सबब से 'जाजमऊ शरीफ़' कह-कर पाक मानते और हिन्दुओं के लिए तो यह हजारों बरसों से संस्कृति क केन्द्र और धार्मिक तीर्थ रहा ही है। उसकी प्राचीन मर्याद को अक्षुण्ण रखना हमारा कर्तव्य है। औद्योगीकरण क योजना में इस तथ्य को नहीं भूलना चाहिए। इसके अतिरिक्त जाजमऊ के टीले की खुदाई कराना भी आवश्यक है जिससे उसके तथा देश के प्राचीन इतिहास पर निस्संदेह बहुत कुछ प्रकाश पड़ेगा।

झींझक

यह तहसील डेरापुर के अंतर्गत २६°३४′ अक्षांश तथ ७६ ४६′ देशान्तर रेखाओं के बीच नहर शाख इटावा के दाहिने किनारे पर कानपुर से पश्चिम-उत्तर-पश्चिम ३८ मील दूर तथा डेरापुर से ११ मील उत्तर में स्थित है। यह ई० आई० आर० का स्टेशन है। रेलवे लाइन उक्त नहर के ही समानान्तर गई है। नहर पर पुल बना हुआ है और पुल के समीप ही नहर-विभाग का डाक-बँगला है। रसूलाबाद से मंगलपुर तथा सिकदरा जाने वाली सड़क इस पुल पर से गई हुई है पुल के दक्षिणी किनारे से एक सड़क डेरापुर को गई है



जाजमऊ में फ़ारूक़ी-वंश का प्राचीन निवास-स्थान (पृष्ठ ३०७)



गोसाइयों का मठ, घाटमपुर (पृष्ठ ३०२)

झींझक, तीन गावँ—झींझक, टीकनगावँ तथा तुर्रा—से मिलकर बना है। गावँ बड़ा है। स्टेशन होने के कारण यहाँ का बाजार प्रसिद्ध हो गया है। यहाँ डाकखाना तथा जूनियर हाई स्कूल हैं।

डेरापुर

डेरापुर एक बहुत बड़ा क़स्बा है और इसी नाम की तहसील का सदर मुक़ाम है। यह सेंगुर-नदी के दाहिने किनारे पर २६°२५′ अक्षांश तथा ७६°४७′ देशान्तर रेखाओं के बीच में स्थित है। रूरा-स्टेशन से यह ९ मील दूर है तथा स्टेशन से यहाँ तक पक्की सड़क गई हुई है। कानपुर-नगर से यह ३५ मील दूर पश्चिम में है। यहाँ सेंगुर पर कोई पुल नहीं है और नदी के बायें किनारे से एक कच्ची सड़क उत्तर-पश्चिम की ओर मंगलपुर की तरफ़ गई है। डेरापुर-क़स्बे के दक्षिण की ओर से तीन सड़कें क्रमशः अकबरपुर, मोगनीपुर तथा सिकन्दरा को गई हैं।

डेरापुर के नाम के सम्बन्ध में जनश्रुति यह है कि जब श्रीकृष्ण और बाणासुर में युद्ध हुआ था तो भगवान् श्रीकृष्ण का डेरा यहीं पड़ा था। अतएव इसका नाम डेरापुर पड़ गया। यह मुसलमानों की बहुत पुरानी बस्ती रहा है तथा किसी समय इसका बहुत अधिक महत्व था। यहाँ कई पुरानी मस्जिदें हैं जिनमें कुछ तो बिलकुल नष्ट हो गई हैं। सहस्रकुंड नामक एक विशाल पक्का तालाब है। एक पुराने क़िले के ध्वंसावशेष

भी पाये जाते हैं। इस क़िले को बुन्देलखंड के प्रसिद्ध शासक गोविंदराव पंडित ने बनवाया था जो मराठा-शासन-काल में सन् १७५६ से १७६२ तक इस प्रदेश के भी गवर्नर रहे थे।

डेरापुर के वर्तमान महत्व का कारण यहाँ तहसील के सदर मुक़ाम का होना है। तहसीली के अतिरिक्त यहाँ पुलिस थाना, रजिस्ट्री आफ़िस, आबकारी विभाग का गोदाम, डाकख़ाना, अस्पताल, डाक-बंगला तथा जूनियर हाई स्कूल भी हैं। सप्ताह में दो दिन बाजार लगता है, परन्तु इस बाजार का केवल स्थानीय महत्व है।

डोमनपुर

यह कानपुर-तहसील मे २६°१६′ अक्षांश तथा ८०°३४′ देशान्तर रेखाओं के बीच जिले के पूर्वी छोर पर गंगा के किनारे स्थित है। यह कानपुर-नगर से १६ मील, नरवल से पूर्व की ओर ७ मील तथा नजफ़गढ़ से ३ मील दक्षिण में स्थित है। यहाँ कानपुर-जिले की सीमा समाप्त होकर फ़तेहपुर की सीमा प्रारंभ होती है।

इसका नाम संभवतः रायबरेली-जिले के प्रसिद्ध सैवासी बैस-क्षत्रिय सरदार डोमनदेव के नाम पर पड़ा। कुछ समय तक यह परगना भी रहा परन्तु कानपुर जिले के अंग्रेजों के अधिकार में आने के बाद यहाँ का परगना तोड़कर सलेमपुर में मिला दिया गया। सन् १८४७ में यहाँ की जन-संख्या २२८५ थी परन्तु अब घट कर बहुत कम रह गई है। यहाँ

बहुत बड़ी कटरी भी है। गंगा जी की उतराई का घाट भी है और नावें चलती हैं। इसके अतिरिक्त और कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं है।

तिकवाँपुर

यह घाटमपुर-तहसील में यमुना के बाएँ किनारे पर स्थित एक छोटा सा गावँ है। इसका शुद्ध नाम त्रिविक्रमपुर बतलाया जाता है। इसकी प्रसिद्धि इसलिए है कि हिंदी के सुप्रसिद्ध महाकवि भूषण यहीं के निवासी थे। भूषण चार भाई थे चिंतामणि, भूषण, मतिराम और नीलकंठ (उपनाम जटाशंकर)। ये मनोह के तिवारी थे। महाकवि भूषण पहलेपन्ना-नरेश महाराज छत्रशाल के यहाँ तथा बाद में छत्रपति शिवाजी के यहाँ रहे। चिंतामणि को सम्राट् शाहजहाँ ने अपनाया था। कविवर भूषण का हिंदी-साहित्य में क्या स्थान है इससे प्राय: सभी विज्ञ लोग परिचित हैं। इनकी कविता वीर-रस-प्रधान-होती थी। और उस समय हिन्दुत्व की भावनाओं के प्रसार में इनसे बहुत अधिक सहायता मिली। भूषण के लिखे हुए 'शिवराज भूषण', 'शिवा-बावनी' तथा 'छत्रशाल-दशक' आदि अनेक ग्रन्थ हैं। कविवर मतिराम ने भी कई ग्रन्थ लिखे। इनकी कविता शृंगार-रस-प्रधान है। 'मतिराम-सतसई', 'ललितललाम', 'रसराज' आदि उनकी सर्वोत्कृष्ट रचनायें हैं। इस वंश में और भी कई कवि हुए। मतिराम के प्रपौत्र बिहारीलाल भी 'शिवसिंह-सरोज'

के अनुसार 'बड़े भारी कवि' थे। ये चरखारी के महाराज विक्रमादित्य के राज-कवि थे। शीतल नामक एक और कवि हो गये हैं। इनके अतिरिक्त रामदीन नामक एक और कवि भी इसी वंश में हुए जो पं० कृष्णबिहारी मिश्र के मत से संभवतः बिहारीलाल के पुत्र थे। कविवर भूषण ने अपने 'शिवराज-भूषण' में लिखा है कि राजा बीरबल भी यहीं पैदा हुए थे।

देवहा

यह बिल्हौर-तहसील में २६°५१′ अक्षांश तथा ८०°१′ देशान्तर रेखाओं के बीच बिल्हौर से ४ मील उत्तर-पश्चिम तथा कानपुर से ३८ मील दूर बिल्हौर से मकनपुर जाने वाली सड़क पर स्थित है। ईसन-नदी गावँ के पूर्व में बहती है। कहते हैं कि देवहा नामक एक अहीर ने यहाँ पहले पहल जंगल साफ़ कर खेती-बारी आरंभ की। अतः उसी के नाम पर गाँव का नाम पड़ गया। इसे प्रायः लोग क़स्बा देवहा के नाम से भी पुकारते हैं। शेख़ मुसलमानों का यह एक पुराना केन्द्र रहा है। अकबर के समय में यह तहसील था परन्तु कानपुर-ज़िले के अंग्रेज़ों के अधिकार में आने के बाद तहसील टूट गई। गावँ बड़ा है। सन् १८६१ में इसकी जनसंख्या २१६६ थी। मुसलमान भी काफ़ी संख्या में रहते हैं। यहाँ अपर प्राइमरी स्कूल है तथा बाज़ार भी लगता है।

नजफ़गढ़

नजफ़गढ़, जिसका सरकारी काग़ज़ों में विपोसी-नजफ़गढ़ के नाम से उल्लेख है, कानपुर से १६ मील पूर्व गंगा नदी के तट पर स्थित है। यहाँ से कानपुर, महाराजपुर, नरवल तथा करबिगवाँ को कच्ची सड़कें गई हैं। इसका नाम नवाब नजफ़ ख़ाँ के नाम पर पड़ा है। बादशाह शाह आलम ने सन् १७६६ में उन्हें यह गावँ माफ़ी के रूप में प्रदान किया था परन्तु सन् १८३७ से उनके उत्तराधिकारियों से कर लिया जाने लगा। नवाब नजफ़ ख़ाँ ने यहाँ किला तथा बाज़ार बनवाया परन्तु नजफ़गढ़ को मुख्यतः ख्याति प्रदान करने वाले लखनऊ के प्रसिद्ध जेनरल क्लाड मार्टिन थे। उन्होंने गावँ ठेके पर ले लिया तथा यहाँ नील का एक बहुत बड़ा कारख़ाना खोला जिसमें ४८ कुएँ तथा ३३० हौज़ थे। उन्होंने गाँव के दोनों ओर दो विशाल फाटक भी बनवाये। कुछ समय के लिए नजफ़गढ़ में व्यापार इतना अधिक चमका कि ऐसा मालूम पड़ने लगा कि कानपुर उसके सामने दब जायगा। परन्तु मुख्यतः वहाँ नील का ही व्यापार था। अतः नील के व्यवसाय का पतन होते ही नजफ़गढ़ की भी सारी समृद्धि जाती रही और जे० मार्टिन के उत्तराधिकारी मि० विन्सेन्ट पर बहुत अधिक ऋण हो गया। फलस्वरूप नील के खेत तथा कारख़ाने बेंच डालने पड़े। अब यहाँ नील की खेती नहीं होती तथा गावँ अत्यधिक गिरी हुई दशा में है। बाद में

गावँ का कुछ भाग कानपुर की एलेन एंड कंपनी ने ख़रीद लिया और यहाँ हाथी-चिग्घाड़ की खेती करनी आरंभ की। सन् १८४० में नजफ़गढ़ की जनसंख्या ३७६६ थी परन्तु अब घट कर बहुत कम रह गई है। गावँ में डाकख़ाना तथा प्राइमरी स्कूल भी हैं। सप्ताह में दो दिन बाज़ार लगता है।

नरवल

नरवल कानपुर-शहर से १८ मील दक्षिण २६°१४ अक्षांश' और ८०°२६' देशान्तर-रेखाओं के बीच स्थित है। सिरसौल स्टेशन से यह ६ मील दूर है तथा यहाँ से स्टेशन तक पक्की सड़क गई हुई है। इसके अतिरिक्त यहाँ से प्रायः चारों तरफ सड़कें गई हुई हैं, जैसे चकेरी, नजफ़गढ़, करबिगवाँ, बिंदकी तथा साढ़ को। सन् १८४३ में यहाँ तहसील क़ायम करदी गई, किंतु सन् १६११ में तहसील यहाँ से उठ कर कानपुर ख़ास में शामिल कर दी गई।

नरवल का बहुत प्राचीन नाम नरैली अथवा निराली कहा जाता है। इस सबन्ध में एक दंत-कथा प्रचलित है कि सन् १६०० के पहले यहाँ गावँ के स्थान पर जंगल था और एक बंजारे को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि एक गाय कभी भी सब जानवरों के साथ जाकर पानी नहीं पीती। अकस्मात् बंजारे ने उसी गाय को एक झाड़ी के नीचे जाते देखा। बंजारा भी गाय के साथ ही साथ वहाँ गया तो एक बावड़ी दिखाई पड़ी। वहाँ उस गाय ने ख़ूब जी भर जल पिया। उसी समय से बंजारा लोगों ने इसका निराला अथवा निरैली नामकरण कर दिया।

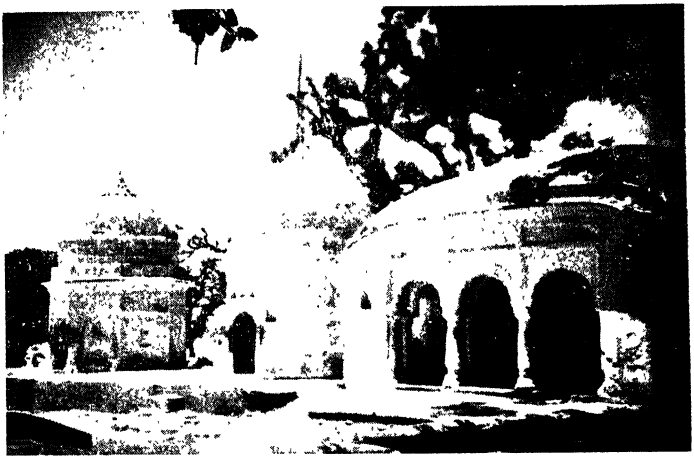
उसका ही नाम अब नरौली अथवा नरवल हुआ कहा जाता है। वह प्राचीन बावड़ी अथवा कुआँ आज भी मध्य-गावँ में हैं तथा उसका जल रोग-निवारक सिद्ध हुआ है। यह भी कहा जाता है कि नारायणसिंह जगनवंशी ज़मींदार ने सन् १६०० के लगभग इसे बसाया। अतएव उनके नाम से इसका नाम नरवल पड़ गया। तत्पश्चात् यह गावँ शनैः शनैः बसने लगा और जगनवंशी ज़मींदारों के अधीनस्थ हुआ, किन्तु सन् ११०६ के लगभग रमईपुर गावँ के चौहान-परिवार के राजा घनश्याम-सिंह के वंशज राजा साँवलसिंह जी ने, जो दत्तक पुत्र थे, नरवल में अपनी गढ़ी बनाई और आसपास १२ गावों को अपने अधीन किया। परन्तु अब राजा की उपाधि नहीं रह गई है और रियासत भी प्रायः समाप्त हो चुकी है।

नरवल में शिक्षा का बहुत अधिक प्रचार है। यदि कहा जाय कि कानपुर-ज़िले में सबसे अधिक शिक्षित व्यक्तियों को उत्पन्न करने का श्रेय इसी गावँ को प्राप्त है तो कदाचित् अतिशयोक्ति न होगी। सर्वप्रथम अंग्रेज़ी राज्य के शिक्षा-क्रम के अनुसार ही यहां एक अंग्रेज़ी स्कूल सन् १८६२ के लगभग एक अंग्रेज पादरी मि० परेरा के निरीक्षण में खुला। वह मूलस्थान अब भी विद्यमान है। इसके अतिरिक्त यहाँ नार्मल ट्रेनिंग स्कूल, जूनियर हाई स्कूल, प्राइमरी स्कूल, बालिका प्राइमरी स्कूल भी हैं। भास्करानंद-विद्यालय नामक एक अंग्रेज़ी हायर सेकंडरी स्कूल भी है। प्रारंभ में इसकी स्थापना स्वर्गीय पं० मातादीन जी सुकुल ने की थी

जिनका वर्णन आगे किया गया है। स्कूल के साथ ही एक संस्कृत-पाठशाला भी है जिसमें संस्कृत-व्याकरण के साथ साथ आयुर्वेद और ज्योतिष की भी शिक्षा प्रदान की जाती है।

सन् १९२९ में स्वर्गीय श्रद्धेय अमरशहीद श्री गणेश-शंकर जी विद्यार्थी ने सेवाश्रम की स्थापना की। इसके भवन का शिलान्यास सन् १९३० में पं० जवाहरलाल नेहरू के कर-कमलों द्वारा हुआ। सेवाश्रम का मुख्य कार्य रचनात्मक रहा है और चर्खा-प्रचार, खादी-उत्पादन, अछूतोद्धार, राष्ट्रीय-शिक्षा तथा गृह-उद्योगों की उन्नति आदि का उसने प्रयास किया है। सन् १९४६ से उसी सेवाश्रम भूमि पर कस्तूरबा ट्रस्ट कमेटी द्वारा एक वृहद् योजना के अंतर्गत रचनात्मक प्रचार का कार्य लगभग ३००००) धन व्यय करके किया जा रहा है। कई आवश्यकीय इमारतें बन गई हैं तथा ढलाई और खराद की मशीनें लगाकर चर्खे के कल-पुर्जे तैयार किये जा रहे हैं। उक्त ट्रस्ट यहां आसपास के लगभग ५० गावों में खादी-प्रचार,-सूत उत्पादन तथा चर्खा-शिक्षा का कार्य कर रहा है।

नरवल ने जिन शिक्षित व्यक्तियों को उत्पन्न किया है उनमें स्वर्गीय पं० मातादीन जी सुकुल तथा पं० कालीदत्त दुबे के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। पं० मातादीन सुकुल ने सन् १८८४ में एम० ए० पास किया और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। तत्पश्चात् रुड़की में इंजीनियरिंग कालेज से बी० ई० की परीक्षा पास करके सन् १८८६ में आसाम में भारत-सरकार



कुड़हादेवी का मंदिर, घाटमपुर (पृष्ठ ३०२)



कुड़हादेवी के मंदिर के पास एक बारादरी (पृष्ठ ३०२)

द्वारा असिस्टेंट इंजीनियर नियुक्त हुए। उन्होंने अपनी नौकरी के समय में कुआं-बोरिंग का नया तरीक़ा आविष्कार किया जो 'शुकुल बोरिंग सिस्टम' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके लिए उन्हें दिल्ली-दरबार में विशेष रूप से आमंत्रित किया गया था और जार्ज पञ्चम ने दो रजत-पदक प्रदान किये थे। उन्होंने एक नये क़िस्म का पाख़ाना भी बनवाया था जिसे एक जगह से दूसरी जगह ले जाकर जङ्गल में ख़ेमों में इस्तेमाल कर सकते थे। इससे आपको भारत-सरकार दूसरे प्रांतों में भी स्पेशल ड्यूटी पर ले जाती थी। आप सन् १९१७ में रिटायर्ड हुए। आपको १२००) से १८००) मासिक तक वेतन मिलता रहा। सन् १९२५ में आपका स्वर्गवास हो गया। आपको सरकार ने रायसाहब की उपाधि प्रदान की थी। आपने बनारस में लगभग १ लाख रुपये की लागत से एक मन्दिर तथा धर्मशाला और सदाव्रत का निर्माण किया। नरवल में भी आपकी स्थापित की हुई कई संस्थायें हैं। आपके तीन पुत्र पं० स्वामी दयाल एम० ए० एल—एल० बी०, श्री स्वामीचरण, प्रोफ़ेसर हिंदू विश्वविद्यालय तथा श्री स्वामीशंकर एम० ए० एल० टी० हैं।

पं० कालीदीन दुबे एम० ए० पंडित मातादीन जी के समकालीन ही थे। आप एम० ए० पास करके पहले जौनपुर में फिर फ़ैजाबाद में इंस्पेक्टर आफ़ स्कूल्स रहे। आपके पुत्र प० कालीप्रताप एम० एस० सी० एल—एल० बी० इलाहाबाद के म्योर सेन्ट्रल कालेज में प्रोफ़ेसर थे, परन्तु सन् १९३४ में उनका असामयिक स्वर्गवास हो गया।

इसके अतिरिक्त भारत-प्रसिद्ध- गान "झंडा ऊँचा रहे हमारा" के निर्माता श्री श्यामलाल गुप्त 'पार्षद्' को भी जन्म देने का श्रेय नरवल को ही प्राप्त है।

गावँ की वर्तमान जन-संख्या लगभग २६०० है जिनमें ब्राह्मण, अहीर, रैदास, अरख तथा छीपी (मुसलमान) प्रमुख हैं। पुलिस थाना, कांजी हौस, ज़िला बोर्ड का अस्पताल तथा पशुओं के लिए भी एक अस्पताल है। मुसलमानों का विशेष व्यवसाय छपाई का रहा है। अब भी ८-१० घरों में छपाई (फ़र्द) का काम होता है। गावँ में पाँच बड़े तालाब हैं तथा गावँ के दक्षिण-पश्चिम की ओर से एक नहर की शाख निकलती है। स्वामी भास्करानंद जी की प्रस्तर-मूर्ति का एक मंदिर बना हुआ है। इसकी स्थापना भी श्री मातादीन जी सुकुल द्वारा ही हुई। इसके अतिरिक्त पंचवक्त्रेश्वर महादेव का एक मंदिर तथा धर्मशाला भी है। यहीं एक पक्का भुंइधरा भी बना हुआ है।

नानामऊ

यह एक बहुत ही प्राचीन गावँ है जो २६°५२′ अक्षांश तथा ८०°७′ देशान्तर रेखाओं के बीच बिल्हौर से ४ मील उत्तर-पूर्व गंगा के किनारे स्थित है। यहाँ से बिल्हौर को कच्ची सड़क गई हुई है। यहाँ का घाट प्रसिद्ध है क्योंकि फ़र्रुखाबाद से लखनऊ जाने के लिए यहां से सीधा मार्ग पड़ता है। अतः पुराने समय से ही अवध जाने वाले लोग

यहीं से गंगा पार करके उस पार उन्नाव जिले के बांगरमऊ नामक स्थान में पहुँचते थे। अब भी यहां नावें चलती हैं और यात्री लोग इस पार से उस पार आते जाते रहते हैं। बादशाह मुहम्मद तुग़लक़ के समय में अवध के सूबेदार ऐनुल्मुल्क मुल्तानी द्वारा विद्रोह किये जाने पर बादशाह तथा मुल्तानी की सेनाओं में यहाँ युद्ध हुआ था जिसमें मुल्तानी की सेना पराजित हुई थी। अकबर के समय में यह परगने का सदर मुक़ाम अथवा तहसील था परन्तु बाद में अल्मास अली खां ने इसे बिल्हौर के साथ मिला दिया।

गावँ बहुत छोटा है। सन् १९०१ में इसकी जनसंख्या कुल १०४२ थी। उतराई के लिए एक प्रसिद्ध घाट होने के सिवा इसका और कोई महत्व नहीं रह गया है। यहाँ आम के बग़ीचे बहुत हैं। यहां का देशी आम कानपुर जिले सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

पचोर

राजा जैराज देव के तीसरे पुत्र राजा शिवराजदेव के सबसे छोटे भाई पतिदेव थे। इन्होंने ही पचोर बसाया। उन्हें रावत की उपाधि मिली। पचोर की ही शाखा सखरेज का चंदेल वंश था जिसके शासक को राना की उपाधि प्राप्त थी। पचोर के उक्त वंश के लोग बिरोहा, सखरेज तथा महराज-नगर में हैं।

पड़री-लालपुर

यह घाटमपुर-तहसील के अंतर्गत ५६° १३′ अक्षांश त
८०° १४′ देशान्तर रेखाओं के मध्य में घाटमपुर से उत्तर
की ओर ६ मील की दूरी पर रिंद-नदी के किनारे स्थित ।
यह कानपुर से घाटमपुर जाने वाली पक्की सड़क से दो मं
पूर्व में है और कानपुर से २० मील दूर है।

पुराने समय से ही यह मुसलमानों का एक केन्द्र रहा
और यहाँ की जमींदारी अब भी उन्हीं के हाथ में है। य
चौधरी बैरीशालसिंह प्रसिद्ध हो गये हैं जिन्होंने
१८५७ के विद्रोह के समय जगदीशपुर (बिहार) के वीरपुं
कुँवरसिंह की प्राणपण से सहायता की थी। आपकी ध्व
गढ़ी अब भी गाँव में विद्यमान है। आप जाति में ब्राह्मण(स
के अवस्थी) थे। पर इस वंश में चौधरी और सिंह की उपा
अकबर के समय से चली आती है।

गावँ बड़ा है और मुख्यतः कृषि-प्रधान है। सन् १८६१
यहाँ की जनसंख्या २६१४ थी जिनमें २३० मुसलमान थे। ग
में ब्राह्मणों की संख्या और उनमें भी गोपाल के तिवारियों
संख्या सर्वाधिक है। इन तिवारियों का तो यह केन्द्र स
माना जाता है। डाकखाना, अपर प्राइमरी स्कूल तथा लड़कि
का स्कूल है। सप्ताह में दो दिन बाजार लगता है।

पनकी (गंगागंज)

यह कानपुर-तहसील के अंतर्गत २६° २७ अक्षांश ।

८०° १५' देशान्तर रेखाओं के बीच कानपुर से पश्चिम की ओर ७ मील की दूरी पर स्थित है। इसे पनकी-गंगागंज इस लिए कहते हैं क्योंकि इसके पास ही पनकी-बहादुरनगर तथा पनकी-भाऊसिंह नामक दो गावँ और हैं। यह ई० आई० आर० का स्टेशन है। यहाँ से कल्याणपुर को कची सड़क गई है।

यह मुख्यतः कृषिप्रधान गावँ है यद्यपि यहाँ सप्ताह में दो दिन बाजार लगता है तथा बाजार में कुछ दूकानें भी बनी हुई हैं। सन् १८९१ में यहाँ की जन-संख्या २५६८ थी। चंदेल राजपूतों की जमींदारी है। यहाँ के जमींदार पहले राजा कहलाते थे परन्तु ब्रिटिश सरकार ने उनकी इस उपाधि को कभी भी स्वीकार नहीं किया। सचेंड़ी के राजा हिंदूसिंह के भाई हिरदेसिंह द्वारा संस्थापित बहुत सी जायदाद तो बिक गई, परन्तु बाद में कोर्ट आफ़ वार्ड्स ने धीराजसिंह की ओर से हस्तक्षेप कर बाक़ी जायदाद बचा ली।

पुखरायाँ

यह कानपुर से दक्षिण पश्चिम की ओर ३६ मील की दूरी पर २६°१३' अक्षांश तक ७९°५०' देशान्तर-रेखाओं के बीच कालपी जाने वाली पक्की सड़क पर स्थित है। दक्षिण की ओर इस सड़क के ही समानान्तर रेलवे लाइन गई हुई हैं और रेलवे स्टेशन बस्ती के बिलकुल पास ही है। यहाँ से उत्तर में डेरापुर को कची सड़क गई है जिसकी शाखायें अकबरपुर और सिकं-

दरा भी जाती है। दक्षिण में चपरघटा तथा यमुना के किनारे देवरहट को भी कच्ची सड़कें गई हैं।

यह भोगनीपुर-तहसील का सदर मुक़ाम है। यद्यपि तहसील का नाम अब भी भोगनीपुर के ही नाम पर है परन्तु तहसील के दफ़्तर आदि सन् १८६४ में भोगनीपुर से उठ कर यहाँ आगये। तहसीली के अतिरिक्त पुलिस थाना, रजिस्ट्रार का दफ़्तर, कांजी हौस, डाकख़ाना, अस्पताल, जूनियर हाई स्कूल, अपर प्राइमरी स्कूल तथा एक लड़कियों का स्कूल भी है। बाज़ार बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि सुंदर स्थिति के कारण आस-पास के अन्य बाज़ारों जैसे मूसानगर, अमरौधा आदि का व्यापार सिमट कर यहीं आ गया है।

बनीपारा

बनीपारा, जिसे इसके पास ही स्थित बनीपारा-जौहर तथा बनीपारा-जनई नामक दो अन्य गावों से पृथक् सिद्ध करने के लिए बनीपारा-महराज भी कहते हैं, तहसील डेरापुर में है। यह तहसील के धुर पूर्व में २६°३१' अक्षांश तथा ७६°५३' देशान्तर रेखाओं में डेरापुर से शिवली जाने वाली सड़क पर स्थित है। रूरा स्टेशन से ५ मील दूर है और यहाँ से स्टेशन तक सड़क गई है जो आगे फिर रसूलाबाद चली जाती है। बनीपारा की प्रसिद्धि का मुख्य कारण बाणेश्वर नामक महादेव का प्राचीन मंदिर है जहाँ शिवरात्रि के अवसर पर बहुत बड़ा मेला लगता है। पुराने समय में इस मेले का व्यापारिक दृष्टि से अत्यधिक

महत्व था किंतु अब इसका उक्त महत्व कम हो गया है यद्यपि अब भी कुछ सामान बिक्री के लिए वहाँ आ जाता है।

कहा जाता है कि वाणेश्वर महादेव की स्थापना राजा बलि के पुत्र परम शिव-भक्त वाणासुर दैत्य ने की थी और उसने अपने नाम पर एक गावँ भी बसाया जिसका नाम वाणपुरा रक्खा जिसका अपभ्रंश होकर अब बनीपारा हो गया। यह भी कहा जाता है कि वाणासुर के नाती हलंबुष सपरिवार अपनी सेना लेकर महाभारत को लड़ाई में दुर्योधन के सहायक होकर अतुल पराक्रम दिखला कर वीर-गति को प्राप्त हुए। उसी समय से उसका गावँ व किला उजाड़ हो गया। किला खेड़ा की शक्ल में अब भी मौजूद है जो ५००० वर्ष बीत जाने पर भी १५० फ़ुट ऊँचा है। इसमें एक बुर्ज है जिसे लोग वाणासुर की पुत्री तथा भगवान् कृष्ण के नाती अनिरुद्ध की पत्नी उषा के नाम पर उषाबुर्ज भी कहते हैं।

बनीपारा-जिनई के संबध में यह प्रसिद्ध है कि महाराज युधिष्ठिर के प्रपौत्र राजा जन्मेजय ने हलंबुष के उजड़े हुए गावँ के पास ही दूसरा एक गावं बसाया जिसका नाम 'वाण पुरा जनमेजयी' रखा। उसका अपभ्रंश होकर अब 'बनीपारा-जिनई' हो गया है। कहा जाता है कि जन्मेजय ने वाणपुरा को भी फिर आबाद किया।

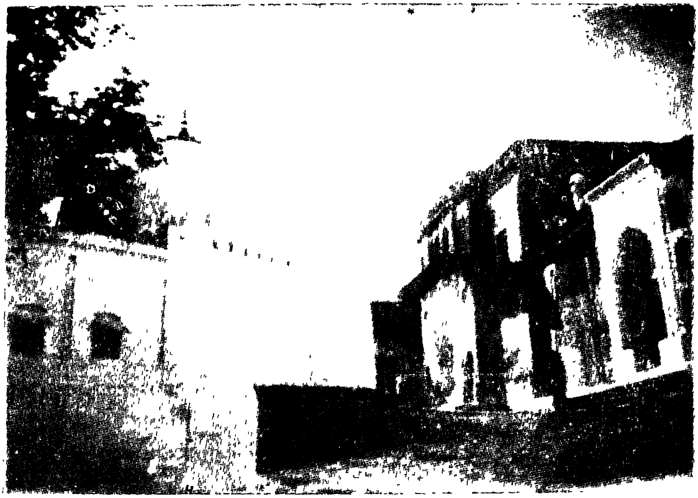
लगभग ३०० वर्ष हुए शिवली के रहने वाले पवन तिवारी साधू होकर और अपना नाम पवन पुरी रखकर वाणेश्वर जी की पूजा करने लगे। उनको बादशाह शाहजहाँ के दरबार से

एक परवाना मिला जिसमें फ़ारसी में लिखा है कि पवन पुरी साधू को १२ बीघा ज़मीन अकबरी गज़ से शिव जी के दरवाज़े पर माफी दी जाती है। यह असली परवाना पवन तिवारी के वंशज जिनई-निवासी पं० रामनारायण तिवारी के पास अब भी मौजूद है। बाणेश्वर जी का मंदिर आज से लगभग २०० वर्ष पूर्व जालौन के शासक पं० गोविंदराव बुन्देले ने बनवाया था। इन्हीं का बनवाया हुआ एक मंदिर औरैया के पास देवकली में है जो ठीक इसी ढंग का बना है। कहा जाता है कि उन्होंने कुल ५ मंदिर इसी नमूने के बनवाये।

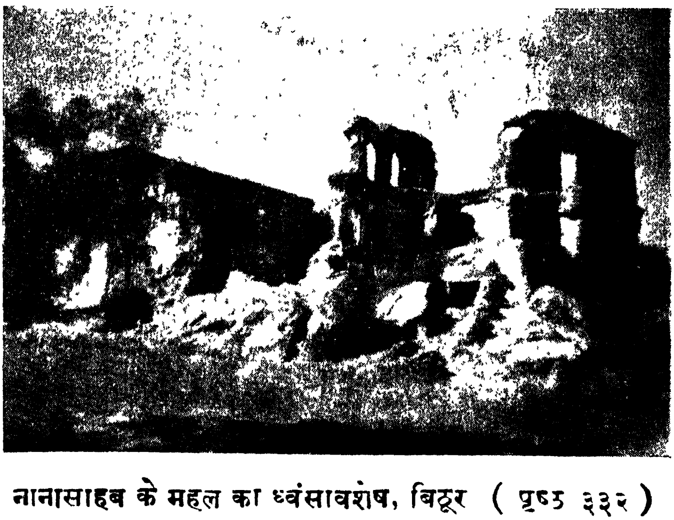
यहाँ सप्ताह में दो दिन बाज़ार लगता है। सन् १८४७ में जनसंख्या १६८१ थी। यहाँ डाकख़ाना तथा अपर प्राइमरी स्कूल भी हैं।

बरई गढ़

यह २६° १३' अक्षांश तथा ८०° २३' देशान्तर-रेखाओं के बीच नरवल से साढ़ जाने वाली सड़क के दक्षिण की ओर स्थित है। कानपुर से यह १८ मील की दूरी पर है। यह बहुत ही समुन्नत गावँ है। सप्ताह में दो दिन बाज़ार लगता है। यहाँ का बाज़ार मवेशियों के लिए प्रसिद्ध है और ज़िले की प्रमुख बाज़ारों में से एक है। यहाँ पान बहुत अधिक होता है। यही इसके नाम पड़ने तथा समृद्धि का मुख्य कारण है। यहाँ का पान कानपुर तथा दूर दूर के अन्य बाज़ारों तक में भेजा जाता है। यहाँ के किसानों में अधिकतर



मखदूमशाह का मजार, जाजमऊ (पृष्ठ ३०७)



नानासाहब के महल का ध्वंसावशेष, बिठूर (पृष्ठ ३३२)

बरई तथा तँबोली लोग हैं। परन्तु ज़मींदारी ब्राह्मणों तथा ठाकुरों की ही है। यहाँ अपर प्राइमरी स्कूल तथा डाकखाना है। भादों के महीने में गहौली देवी का बहुत बड़ा मेला भी लगता है।

बरीपाल

यह तहसील घाटमपुर के अंतर्गत २६°२' अक्षांश तथा ८०° १२' देशान्तर-रेखाओं के बीच दक्षिणी नोन नदी के किनारे स्थित है। कानपुर से यह ३६ मील दूर तथा घाटमपुर से १० मील दक्षिण में है। सजेती से फ़तेहपुर-ज़िले के अमौली नामक स्थान को जाने वाली, रामपुर से कोड़ा जाने वाली तथा भदेउना से आने वाली कच्ची सड़कें यहीं पर मिलती हैं।

गावँ बड़ा है। कुर्मियों की बस्ती अधिक है। ज़मींदारी भी उन्हीं की है। यहाँ के कुर्मियों की आसपास के अन्य गावों में भी बहुत अधिक ज़मींदारी है। कहा जाता है कि कुर्मी लोग पहले पहल बरीपाल में ही बसे और वहीं से बाद में वे घाटमपुर-तहसील के दक्षिण तथा दक्षिण-पश्चिम भागों में फैल गये। यहाँ घी, अनाज तथा रुई की बहुत बड़ी मंडी है। यहां एक जूनियर हाई स्कूल है। अकबर के समय के एक प्रसिद्ध हिंदी-कवि श्री बनारसीदास जैन के 'अर्ध कथानक' नामक आत्म-चरित में भी बरीपाल का उल्लेख है। "कोररा घाटमपुर और बरी, तीनि गांउ की खरियत करी"।

बारा

यह अकबरपुर-तहसील के अंतर्गत २६°२२, अक्षांश तथ ८०° १' देशान्तर-रेखाओं के बीच कानपुर से कालपी जाने वाली सड़क के दक्षिण की ओर कानपुर से २३ मील पश्चिम-दक्षिण पश्चिम तथा अकबरपुर से ४ मील पूर्व में स्थित है। गावँ से पश्चिम की ओर १ मील दूरी पर कालपी-रोड से एक पक्की सड़क की शाख़ निकल कर अकबरपुर को गई है और उसी के द्वारा इसका अकबरपुर से संबध है। कहा जाता हैं कि इसे क़ुतुब बेग ख़ाँ नामक एक मुग़ल सरदार ने बसाया था। इसके बाद मुग़लों ने धीरे धीरे मेव लोगों से ३६ गावँ ले लिये। अकबर के समय में बारा परगना अथवा तहसील था। अवध के शासन-काल में मुग़लों ने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की और कुछ अवाञ्छनीय तरीक़ों द्वारा बहुत बड़ी जायदाद प्राप्त कर ली। बारा तथा अन्य कई गावँ अब भी उनके अधिकार में है। गावँ के पूर्व की ओर का भाग जो नोन नदी के किनारे है दलदली है परन्तु पश्चिम की ओर का भाग अच्छा है। सन् १८६१ में यहाँ की जनसंख्या २६३४ थी जिसमें ६७१ मुसलमान थे। यहाँ प्राइमरी स्कूल, डाक बंगला तथा फौजी पड़ाव के पास ही अकबरपुर के सीतल सुकुल का बनवाया हुआ एक पक्का तालाब है

बिठूर

प्राचीनता के विचार से इस जिले में आजमऊ के बाद बिठूर

का ही स्थान है। बतलाया जाता है कि ब्रह्मा ने सृष्टि-रचना के उपलक्ष्य में यहाँ एक अश्वमेध-यज्ञ किया था और उसके स्मारक-स्वरूप घोड़े की एक नाल स्थापित की थी जो ब्रह्मावर्त-घाट के ऊपर अभी तक विद्यमान है। इसे ब्रह्मनाल या ब्रह्मा की खूँटी कहते हैं। तपस्वी बालक ध्रुव और उसके पिता उत्तानपाद की राजधानी भी यहीं थी। ध्रुव का टीला इस राजधानी का स्थान बतलाया जाता है। बिठूर को आजकल बहुधा ब्रह्मावर्त कहते हैं। इसके अतिरिक्त उत्पलारण्य, उत्पलावर्त-कानन भी इसके नाम कहे जाते हैं। यह भी कहा जाता है कि सीता-परित्याग के समय लक्ष्मण जी सीता को यहीं छोड़ गये थे। बिठूर के पास रमेल नामक गावँ के संबंध में कहा जाता है कि वह रणमेल का अपभ्रंश है। कहते हैं लव-कुश और राम के मध्य युद्ध होने के पश्चात् यहीं पर पिता-पुत्रों में मेल हुआ था। परन्तु पुराने धार्मिक तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों में बिठूर के उपर्युक्त महत्व का कोई प्रमाण नहीं मिलता। वाल्मीकि के आश्रम के भी प्रयाग के पास ही होने के अधिक पुष्ट तथा युक्ति-संगत प्रमाण मिलते हैं। मथुरा, वृन्दावन, काशी, प्रयाग तथा अयोध्या आदि की भांति बिठूर के तीर्थ होने की प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों या ऐतिहासिक विवरणों में कहीं कोई चर्चा नहीं है। मृत पुरुषों की 'नारायण-बलि' करने के निमित्त लोग यहां दूर दूर से आते हैं। अतः बिठूर के प्राचीन तीर्थ होने की बात इतिहास पर नहीं जनश्रुति के आधार पर ही है। ध्रुव के टीले की

खुदाई से सम्भवतः कुछ ऐतिहासिक तथ्य प्रकाश
आवें।

अवध के शासन-काल में बिठूर सूबा इलाहाबाद में प
चकला (ज़िला) था। अलमास अली खां इसका बहुत वर्षों त
आमिल रहा। अलमास अली ने अपनी बुआ के लड़
भागमल जाट को पंजाब से बुलाकर इटावे का आमिल नियु
कराया। भागमल को रमेल की जागीर माफ़ी में मिली। रा
भागमल ने बिठूर में एक हवेली बनवाई और कई ब
लगवाये। सन् १८०१ में कंपनी की हुकूमत क़ायम होने
रमेल की जागीर ज़मींदारी में परिवर्तित होगई।

सन् १८१८ में तृतीय मराठा-युद्ध में हार मान लेने पर उ
अंतिम पेशवा बाजीराव को कंपनी की ओर से ८ लाख
सालाना की पेंशन मिली तो उन्होंने बिठूर में ही रहने की इच्छ
प्रकट की। सन् १८३२ में बिठूर और रमेल का इलाक़ा बाजीर
को जागीर के रूप में दे दिया गया। सन् १८११ में कान
ज़िले के सदर दफ़्तर व अदालतें भी यहीं पर आ गये थे
पर पेशवा के वहाँ आने के कुछ महीने बाद सन् १८१६
वे फिर उठ कर कानपुर चले गये। निर्वासित पेशवा
अपने परिवार और १५००० संगी-साथियों को लेकर आ
से निस्सन्देह बिठूर के इतिहास में एक नवीन अध्याय
आरंभ होता है। अब भी सैकड़ों महाराष्ट्र-परिवार बिठूर
बसे हुए हैं। बिठूर की रौनक़ की अभिवृद्धि के बाजीराव त
उनके कैलाश-वास के अनंतर उनके दत्तक पुत्र नाना सा

धोंडुपंत की छत्र-छाया में खूब हुई। दूर दूर तक इसका यश फैल गया। महाराष्ट्र तथा अन्य प्रांतों के देश-भक्त और धर्म-भीरु लोग यहाँ आने लगे। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का शैशव-काल भी यहीं व्यतीत हुआ। नाना साहब, तात्या टोपे, अजीमुल्ला आदि नर-शार्दूलों ने भी इसी पवित्र भूमि के अञ्चल पर भारतीय स्वतंत्रता के स्वप्न देखे और अवसर आने पर उन्हों ने मातृ-भूमि की दासता की शृंखलाओं को काटने के उद्योग में अपने प्राणों की बाजी लगा दी। ऐसे मनीषियों के चरणों की रज से जो भूमि पुनीत की गई हो वह तीर्थ क्या तीर्थराज के पद की प्रतिष्ठा पाने के योग्य है। उसका प्राचीनतम अतीत हमारे अज्ञान के कारण चाहे पहेली के रूप में हो, किंतु उसके आधुनिक अमर गौरव की धवल-ध्वजा सदा फहराती रहेगी और स्वतंत्र भारत में बिठूर की महिमा चित्तौर, रणथंभोर, रायगढ़ आदि से समता करेगी। इसी महातीर्थ की भूमि में भारत की स्वतंत्रता का बीज बोया गया था। सन् १८६० में बिठूर का परगना भी तोड़ दिया गया। बिठूर की उन्नति ब्रिटिश सरकार के हाथों बहुत कम हुई। पेशवा का पुराना महल (बाड़ा) ग़दर में ध्वस्त कर दिया गया। तात्या टोपे का निवास-स्थान भी ध्वस्त दशा में है। ऐसा जान पड़ता है कि ब्रिटिश सरकार ने जान बूझ कर इसके उजाड़ने में कोई कसर रख न छोड़ी।

बिठूर में गंगा जी के तट पर दूर तक बहुत से सुंदर पक्के घाट बने हुए हैं। इनमें सबसे पुराना घाट गोविंदराव बुंदेले

का बनवाया हुआ है जो बाजीराव प्रथम के समय में बुंदेल खंड के शासक थे तथा जिन्हों ने ही सर्वप्रथम मराठा-परि वारों को बिठूर में रहने के लिए भेजा। ब्रह्मावर्त घाट के सचेंडी के राजा हिन्दूसिंह चदेल ने बनवाया था और बाजी राव पेशवा ने उसका जीर्णोद्धार कराया। सबसे सुंदर घाट राजा टिकैतराय श्रीवास्तव का बनवाया हुआ है जो अवध के नवाब ग़ाज़ी उद्दीन हैदर के मंत्री थे। यह घाट पत्थर का बना हुआ है। श्रीमन्त बाजीराव पेशवा द्वारा निर्मित महा राजाघाट भी है। बिठूर के ये घाट अब जीर्ण अवस्था में हैं। घाटों के अतिरिक्त बिठूर में बहुत से प्रसिद्ध पुराने मंदिर भी हैं।

बिठूर चाहे प्राचीन समय में तीर्थ रहा हो या न रहा हो परन्तु जैसा कि उस समय नियम था-पवित्र भागीरथी के तट पर जगह-जगह ऋषियों के आश्रम बने हुए थे। बिठूर भी उस परंपरा से वंचित नहीं रह सकता था। यही कारण है कि यहाँ बहुत से प्रसिद्ध सँन्यासियों तथा साधुओं के आश्रम हैं। प्रसिद्ध स्वामी विशुद्धानंद सरस्वती, जिनके हजारों अनुयायी थे, बिठूर में बहुत दिनों तक रहे। एक मराठा साधु खांडेराव भी हो गये हैं। स्वामी आत्मानंद स्वयंप्रकाश सरस्वती नामक एक प्रसिद्ध संन्यासी अभी हाल ही में हुए हैं। आप दाक्षिणात्य थे। हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' आपके शिष्य थे। इनके अतिरिक्त यहां के प्रसिद्ध संन्यासियों में स्वामी ब्रह्मानंद का नाम विशेष

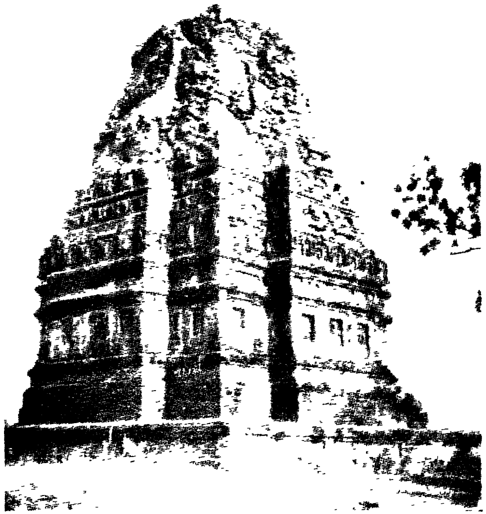
उल्लेखनीय है। आपकी मृत्यु केवल कुछ वर्ष पहले ही हुई है। बिठूर संस्कृत-शिक्षा का भी केन्द्र है। एक ऋषिकुल की स्थापना भी हो गई है।

बिठूर का क़स्बा कानपुर-नगर से १२ मील दूर गंगा जी के तट पर २६° ३७′ अक्षांश तथा ८०° १६′ देशान्तर-रेखाओं में स्थित है। बिठूर दो भागों में विभाजित है कलाँ और ख़ुर्द। श्रीमंत बाजीराव ने गंगा पर दो पुल बनवाये थे, एक रमेल के पास और दूसरा नवाबगंज से पश्चिम खेबरा-ग्राम के पास स्थित जागेश्वर-मंदिर के सामने। परन्तु अब ये पुल नष्ट हो चुके हैं। जाने के लिये कल्याणपुर रेलवे स्टेशन के ठीक सामने ग्रांड ट्रंक रोड से कट कर एक कंकड़ की सड़क जाती है जो क़रीब क़रीब आठ मील लंबी है। रास्ते में नोन नदी पर स्व० राय बहादुर भगवानदास का बनवाया हुआ पुल है। १० नवम्बर, १८८५ को कानपुर-अछनेरा रेलवे (अब बी० बी० सी० आई०) की स्टेशन मंधना से बिठूर के लिए एक शाखा का उद्घाटन हुआ जो ५ मील लंबी है और जिसके निर्माण के लिए बाजीराव के नायब सूबा रामचंद्र पंत के पौत्र व नारायण राव के पुत्र पुरुषोत्तम राव तात्या (सूबेदार साहब) ने रेलवे कंपनी को कई लाख रुपये उधार दिये थे। इसी के उपलक्ष्य में इस लाइन को 'सूबेदार साहब की लाइन' कहते हैं। पर इस लाइन में केवल एक ट्रेन शाम को कानपुर से बिठूर जाती है और सुबह लौट आती है। बिठूर में पुलिस थाना, डाकख़ाना, काँजी हौस तथा अपर प्राइमरी स्कूल हैं। सन् १८५३ में ग़दर

के चार वर्ष पूर्व बिठूर की आबादी १३५८० और रमेल क
६१०६ थी। पर ग़दर की तबाही के बाद इसकी जन-संख्
बहुत घट गई और धीरे धीरे घटती ही गई। सन् १९४१ क
जनगणना में उसकी जनसंख्या केवल २५४३ ही रह ग
है। यदि बिठूर से जाने वाली सड़क बढ़िया बन जाय औ
नोन-नदी पर पुल चौड़ा व सुदृढ़ तैयार हो जाय तथा रेल क
सर्विस भी सुविधाजनक हो जाय तो बिठूर सरीखा प्राची
ऐतिहासिक और रमणीक स्थान एक सुन्दर नगर का रू
धारण कर सकता है। इस पवित्र ऐतिहासिक स्थान की समुं
परमावश्यक है।

बिनौर

यह २६° २३′ अक्षांश तथा ८०° ६′ देशान्तर रेखाओं
बीच रिंद-नदी के बाएँ तट पर बसा हुआ है और कानपुर
१४ मील दूर तथा सचेंड़ी के २ मील दक्षिण में है। यह ए
बहुत बड़ा गावँ है और यहां के लोगों का मुख्य व्यवसा
खेती है। गावँ से होकर रेलवे लाइन गई हुई है किंतु सब
निकट का स्टेशन भीमसेन यहाँ से ४ मील दूर है। या
चंदेल-राजपूतों की संख्या बहुत अधिक है। किसी समय या
चंदेल-वंश का राज्य था। यहाँ के चंदेल-वंश
पूर्वज श्रीयुत हरसिंह (शिवराजपुर को बसाने वा
राजा शिवराजदेव के प्रपौत्र श्री गरगजदेव के पु
थे। गावँ के दक्षिण की ओर अब भी एक छोटी गढ़ी है जि



भीतरगाँव का प्रसिद्ध मंदिर
(पृष्ठ ३५०)



भीतरगाँव के मंदिर का प्रवेश द्वार

उन राजाओं का निवास-स्थान बतलाया जाता है। सचेंड़ी को बसाने वाले राजा चाचकदेव के भाई किन्नरसिंह ने इस रियासत को क़ायम किया था। सचेंड़ी के राजा हिंदूसिंह तथा अवध के नवाब वज़ीर सआदत अली ख़ां से जब युद्ध हुआ तो सचेंड़ी के साथ ही बिनौर भी उनके हाथ से निकल गया। परन्तु उनके पुत्र संभरसिंह ने फिर उसे जीत लिया। सन् १८५८ में सचेंड़ी व बिनौर के गावँ राज्य से ज़ब्त कर लिये गये। १ मील उत्तर की ओर नदी के किनारे पर दूसरा एक बड़ा क़िला है। इस राजवंश के समय में यह बहुत ही समुन्नत गावँ था। सन् १८४७ में यहाँ की जनसंख्या ४१६४ थी परन्तु अब वह घट कर बहुत कम हो गई है। यहाँ लड़कों के लिए एक प्राइमरी स्कूल है।

बिल्हौर

यह क़स्बा कानपुर शहर के ३४ मील दूर उत्तर-पश्चिम में २६° ५०′ अक्षांश और ८०° ४′ देशान्तर रेखाओं के बीच स्थित है। यह ग्रांड-ट्रंक-रोड के किनारे है और इस सड़क के पश्चिम की ओर उसके ही समानान्तर बी. बी. सी. आई. रेलवे की कानपुर-अछनेरा शाख गई हुई है। स्टेशन क़स्बे के उत्तर-पश्चिम में है। स्टेशन के पास ही नानामऊ से रसूलाबाद जाने वाली सड़क ग्रांड-ट्रंक-रोड को पार करती है और थोड़ा और उत्तर की ओर चल कर एक शाख मकरंदपुर को गई है। क़स्बा बहुत अच्छा बसा हुआ और पुराना है और अधिकतर

मकान पक्के हैं जिनमें से कुछ बादशाही जमाने के हैं। बिल्हौर इसी नाम की तहसील का सदर मुक़ाम भी है। तहसील होने के कारण क़स्बे की समृद्धि और भी अधिक हुई है।

इसका बिल्हौर नाम पड़ने के संबंध में भी एक मनोरंजक किम्बदंती है। कहा जाता है कि बीबीपुर के ठाकुर राजा और बिल्हौरीराय नामक एक भाट से विवाह के अवसर पर झगड़ा हो गया। उक्त भाट ने बदला लेने के लिए मुसलमान चौधरियों की सहायता से बाजा बजाते हुए, बीबीपुर में बरात आ रही है, यह बहाना कर फाटक खुलवा कर राजा के घर में प्रवेश कर लिया। लड़ाई हुई। दोनों ओर के आदमी काम आये। रानी पकड़ कर नौमहला (ईसन नदी के किनारे) में क़ैद कर रक्खी गई। फिर उसका निकाह एक चौधरी से हो गया और वह बीबीपुर के पास ही एक नया गाँव बसा कर उसी में रहने लगी। उसी बिल्हौरीराय भाट के नाम पर इसका नाम बिल्हौर पड़ा। राजा भाग कर यमुना पार जा बसा। यह जन-श्रुति मात्र है।

बिल्हौर गल्ले की बहुत बड़ी मंडी है और यहाँ से बहुत बड़े परिमाण में गल्ला बाहर जाता है। निम्न तीन स्थानों में एक न एक जगह प्रति दिन बाज़ार लगता है—दिलावरगंज, छोटी बाज़ार, तथा मुंशी जयनारायण बाज़ार। यहाँ जुलाहे भी बहुत रहते हैं। बिल्हौर और इसके आसपास के गाँवों में खद्दर और गाढ़े का उत्पादन बहुत है। तहसीली के अति-रिक्त यहाँ एक पुलिस थाना, रजिस्ट्री आफ़िस, डिस्पेन्सरी,

ाखाना, काँजी हौस, दौरे पर आने वाले अफ़सरों के ठह- के लिए डाक बँगला, अफ़ीम-कोठी, जूनियर हाई स्कूल तथा मरी स्कूल हैं। सन् १८४७ में क़स्बे की जनसंख्या ४३८२ मुसलमानों की जनसंख्या कुल आबादी के ५० प्रतिशत कुछ ही कम है। आजकल कानपुर-ज़िले में कानपुर-नगर छोड़कर बिल्हौर की ही जनसंख्या सबसे अधिक है।

बीरबल का अकबरपुर

यह राजा बीरबल का बसाया हुआ है। यहाँ एक मंदिर श्री ाकृष्ण का है जिसे बीरबल ने स्थापित किया था। कहते कि राधाकृष्ण की यह मूर्ति यमुना से निकली थी। बाहर क़िला था। उत्तर में कुछ मील दूर पर बीरबल का बनवाया ा पक्का तालाब है। रानीपुर, जो इसके पास ही है, राजा रबल की रानी के नाम से बसाया गया था। यह वही राजा रबल थे जिनकी सम्राट अकबर से परम मित्रता थी और नके क़िस्से तथा लतीफ़े गाँवों में अब भी इतने अधिक सद्ध हैं। बीरबल के संबंध में कुछ लोगों का कथन है कि भाट थे परन्तु कान्यकुब्ज-वंशावली में कश्यप—गोत्र के वरण से पता चलता है कि आशाधर या आशादत्त ने, जो ई की दूसरी स्त्री से पुत्र थे, बीरबल के यहाँ विवाह किया। से उनके वंशज बीरबली तिवारी कहलाये जो यमुना पार ते हैं। इससे तो यही प्रकट होता है कि बीरबल कान्यकुब्ज । शिवसिंह-सरोज में लिखा है कि वे कान्यकुब्ज दुबे थे।

यद्यपि बीरबल के जन्म-स्थान के सबंध में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, परन्तु इतना निर्विवाद है कि वे कालपी की सरकार (जिले) में पैदा हुए थे। कविवर भूषण इन्हें त्रिविक्रमपुर अथवा तिकवाँपुर का निवासी बतलाते हैं। और इसमें सन्देह नहीं कि अकबर के समय में तिकवाँपुर और उसके आसपास की भूमि कालपी के सरकार के अन्तर्गत थी। बीरबल न केवल चतुर मुसाहिब थे किंतु एक श्रेष्ठ और कुशल कवि भी थे। बीरबल की अकबर से इतनी अधिक घनिष्ठता थी कि बहुत कुछ उन्हीं के प्रभाव के कारण अकबर ने हिंदू-धर्म से प्रेम करना आरंभ कर दिया।

पहले बीरबल का अकबरपुर एक परगना था और उसमें ६३ गावँ लगते थे। अवध के शासन-काल में उसे कोड़ा में मिला दिया गया, किंतु उससे पृथक् किये जाने पर इसे घाटमपुर-तहसील में मिला दिया गया।

भीतरगावँ

भीतरगावँ नरबल से घाटमपुर जाने वाली कची सड़क पर रिंद से ३ मील दूर पश्चिम की ओर बसा हुआ है। यह २६°१२' अक्षांश तथा ८०°१६" देशान्तर रेखाओं के बीच स्थित है। कानपुर-हमीरपुर-रोड से भी वह केवल कुछ ही मील दूर है।

रिंद-नदी के किनारे स्थित मंदिरों में सबसे प्राचीन और प्रसिद्ध मंदिर भीतरगावँ में है। भीतरगावँ के इस मंदिर का

ए संभवतः गुप्त-काल में अर्थात् ५ वीं या ६ ठीं शताब्दी
गा होगा। इतना पुराना मंदिर इस जिले में तो दूसरा है
हीं और समस्त भारत में भी इस युग के बहुत कम मन्दिर
ाये हैं। इसी से इसकी महत्ता स्पष्ट है।
ान्दिर और मंडप की लम्बाई ४७ फुट और चौड़ाई ३६॥
है। इसकी ईंटों की लम्बाई १८ इंच, चौड़ाई ९ इंच और
ई ३ इंच है। छै सीढ़ियों पर चढ़ने के बाद एक छोटी सी
। है जिसकी लम्बाई ८ फुट और चौड़ाई ७॥ फुट है
फिर ८ फुट लम्बा एक छतदार रास्ता है जिसके अंत में
र का मुख्य भाग है जिसकी लम्बाई व चौड़ाई १५ फुट
ीवारों की मोटाई ८ फुट है। इसके ऊपर एक चौकोर
है। सन् १८५० में मन्दिर के ऊपर का कोठा बिजली
से टूट गया और सन् १८६४ में मंडप गिर गया।
र की दीवार के बाहरी भाग में और बड़ी बड़ी ईंटों
पड़ों में काट-छाँट कर बड़ा सुंदर काम किया गया है।
पौराणिक कथाओं के दृश्य खुदे हुए हैं। इसकी छत
क्रमशः कम चौड़ी होती गई है। नोकीली मेहराब का
पुराना दृष्टान्त भारतवर्ष में यहीं पर पहले पहल
में आता है।

भोगनीपुर

ोगनीपुर, जिसके नाम पर ही उक्त तहसील का नाम पड़ा,
छोटा सा गाँव है। यह कानपुर शहर से ४१ मील दूर

दक्षिण-पश्चिम में उस स्थान पर स्थित है जहाँ कालपी-रोड से मुग़ल-रोड मिलती है। तहसील का सदर मुक़ाम सन् १८६४ में यहाँ के हटकर पुखरायाँ चला गया। कहा जाता है कि इसे आज से लगभग ३०० वर्ष पूर्व भोगचंद नामक एक कायस्थ ने बसाया था जो शायद कविवर मतिराम के आश्रय दाताओं में से थे। उसने गावँ से मिला हुआ एक बहुत बड़ा तालाब भी खुदवाया जिसे भोगसागर कहते हैं। जब से तहसीली यहाँ हट कर पुखरायाँ चली गई इस गावँ का कोई महत्व नहीं रह गया है। यहाँ एक ब्राञ्च डाकखाना तथा डाक-बँगला और नहर की कोठी हैं।

मंगलपुर

यह डेरापुर-तहसील में ५६°३०′ अक्षांश तथा ७६°४३′ देशान्तर रेखाओं के बीच कानपुर से ४० मील, झींझक स्टेशन से ४ मील तथा डेरापुर से ६ मील उत्तर-पश्चिम की ओर रसूलाबाद से सिकंदरा तथा यमुना-नदी की ओर जाने वाली कच्ची सड़क पर स्थित है। डेरापुर से इटावा-ज़िले के फफूँद नामक स्थान को जाने वाली सड़क यहाँ से होकर निकली है। इसके अतिरिक्त औरैया तथा सिठमरा को भी यहाँ से सड़कें गई हैं।

किसी समय यह तहसील था। पहले इस पर गौड़-क्षत्रियों का अधिकार था और उन्होंने इसका नाम न्योरा रक्खा था। परन्तु जब सिकंदरा-परगने के ५२ गावों की जागीर मंगल ख़ाँ नामक एक सरदार को मिली तो उसने इसका नाम बदल कर

लपुर रक्खा। सन् १८०६ में यहाँ की तहसील तोड़ कर उसे
ुर में मिला दिया गया।

गावँ बड़ा है। सन्१८६१ में यहाँ की जन सख्या २२५५
मुसलमानों की संख्या भी काफ़ी है। यहाँ पुलिस थाना,
ख़ाना, काँजीहौस, प्राइमरी स्कूल तथा लड़कियों का भी
स्कूल है। बाज़ार भी लगता है।

मँझावन

यह कानपुर तहसील में २६°१८′ अक्षांश तथा ८०°१६
न्तर रेखाओं के बीच कानपुर-नगर से १३ मील दूर
ण की ओर सचेंडी से साढ़ जाने वाली सड़क पर स्थित है।
े समय में यह तहसील था जिसे बाद में जाजमऊ तथा
सलेमपुर के साथ मिला दिया गया।

इसके नाम के संबंध में ऐसा विदित होता है कि यह
ा-वन' रहा होगा। प्राकृत में 'मध्यवन' का 'मज्झवन' हो
ा बिलकुल स्वाभाविक है। आगे चलकर मज्झवन
मँझावन हो जाना सम्भव है। कुछ इतिहास-लेखकों
ःथन है कि महमूद ग़ज़नवी अपने एक हमले के समय
तक आया था। परन्तु और बहुत से लेखक इस
से सहमत नहीं हैं। गावँ बड़ा है। उसमें डाकख़ाना तथा
ारी स्कूल हैं। सप्ताह में दो दिन बाजार लगता है।
दुओं के अतिरिक्त मुसलमान भी यहाँ काफी संख्या में
ा हैं। इनमें जुलाहे भी हैं। सन् १८४७ में यहाँ की जन-

संख्या २८७८ थी। यहाँ की 'रोशनचौकी' प्रसिद्ध है। कानपुर-ज़िले में चौबेपुर तथा मँझावन ही ऐसे दो स्थान हैं जहाँ रोशन-चौकी बाजा बहुत कर्णप्रिय होता है। गावँ में मुसलमानों के बहुत से पुराने मक़बरे भी हैं

मकनपुर

मकनपुर का प्रसिद्ध गावँ कानपुर शहर से ४० मील दूर बिल्हौर-तहसील के अंतर्गत २६°५२' अक्षांश तथा ८०°१' देशान्तर रेखाओं में ईसन-नदी के दाहिने तट पर स्थित है। बिल्हौर-क़स्बे से यह आठ मील उत्तर-पश्चिम में है तथा यहाँ से दो मील की दूरी पर कानपुर-ज़िले की सीमा समाप्त होकर फ़र्रुखाबाद-ज़िले की सीमा आरंभ हो जाती है। मकनपुर से अरौल स्टेशन तक, जिसका नाम बदल कर अब मकनपुर-अरौल स्टेशन हो गया है, ३॥ मील लंबी एक पक्की सड़क गई हुई है, जो फिर वहाँ से आगे कच्ची सड़क के रूप में रसूलाबाद तक चली गई है। अन्य सड़कें बिल्हौर तथा फ़र्रुखाबाद-ज़िले के ठठिया नामक स्थान को गई हैं।

मकनपुर की ख्याति शाह मदार की दरगाह तथा इसी संबंध में लगने वाले मेले के कारण ही है। जहाँ तक इसके नाम का संबंध है किम्बदंती है कि यहाँ मकनादेव नामक एक राक्षस रहता था जिसे उक्त मुसलमान पीर शाहमदार ने यहाँ से भगा दिया। दूसरी जनश्रुति यह है कि शाह मदार के दो शिष्य मकन खां तथा पहाड़ खां थे। जौनपुर के सुल्तान इब्राहीम



मदारशाह का मजार, मकनपुर (पृष्ठ ३४६)



औरंगजेब की मसजिद, मकनपुर (पृष्ठ ३४६)

शाह ने इन्हीं दोनों के नाम यह जमीन प्रदान की थी और इसी लिए इसको लोग मकनपुर-पहड़िया भी कहते हैं। परन्तु उपर्युक्त दोनों धारणायें किम्वदंती-मात्र ही हैं। उनका कोई पुष्ट ऐतिहासिक आधार नहीं मिलता।

मकनपुर से समीपवर्ती ऐतिहासिक स्थलों को देखने से मालूम पड़ता है कि वहाँ संभवतः मग्नदेव नामक कोई बौद्ध या जैन साधु रहते होंगे। उन्हीं के नाम पर इसका नाम मग्नपुर अथवा मकनपुर अथवा मगनपुर पड़ गया। सुप्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् महापंडित राहुल सांकृत्यायन के अनुसार अरौल, जो मकनपुर से केवल ३½ मील दूर है, प्राचीन समय में आलम्बिकापुरी कहलाता था, जहाँ एक बार गौतम बुद्ध ने चातुर्मास किया था। मकनपुर तथा अरौल के बीच हरीपुरा नामक एक और गावँ है जिसमें पुराने समय की बहुत सी प्रस्तर-मूर्तियाँ मिलती हैं। इनसे विदित होता है कि संभवतः प्राचीन काल में वहाँ भी कोई बौद्ध मठ या विहार रहा होगा। इस प्रकार मकनपुर नाम के संबंध में उपर्युक्त ऐतिहासिक आधार ही विशेष तर्क-संगत प्रतीत होता है। जहाँ तक राक्षस वाली किम्वदंती का प्रश्न है, जैसा कि मुसल्मान हिंदू-देवताओं को प्रायः देव या 'जिन' के नाम से संबोधित करते रहे हैं, उक्त मग्नदेव के संबंध में भी ऐसा ही हुआ होगा। वहाँ शाह मदार के अधिकार जमा लेने पर उक्त किम्वदंतियाँ प्रचलित हो गई होंगी।

शाहमदार

यह सूफ़ी फ़क़ीर थे। इसका असली नाम शाह बदीउद्दीन क़ुतुबुल मदार था। पहले यह यहूदी थे। बाद में मुसलमान हो जाने पर यह सीरिया से भारतवर्ष आये। इनकी जन्म-तिथि ७३५ हिजरी अर्थात १३३५ ईसवी है। मक्का-मदीना होते हुए ये भारतवर्ष में आकर सन् १४१३ या सन् १४२६ ईसवी में मकनपुर में बस गये। यह लगभग १२१ वर्ष तक जीवित रहे।

जौनपुर के सुल्तान इब्राहीम शाह शर्क़ी आपके बड़े भक्त थे। उन्होंने ही आपकी दरगाह बनवाई तथा मकनपुर का इलाक़ा उन्हें माफ़ी में दे दिया। शाह मदार की दरगाह के पास अनेक बादशाहों और दूसरे लोगों ने कई इमारतें बनवाईं। दरगाह को 'रोज़ा मुबारक' कहते हैं। लगभग ६० फ़ुट लंबे और इतने ही चौड़े सहन के बीच में यह बनी हुई है और इसकी लंबाई व चौड़ाई ३१॥ फ़ुट है। गुंबद बहुत ऊँचा नहीं है। इसके सहन को 'हरम' कहते हैं और इसके भीतर कोई स्त्री नहीं जा सकती तथा यहाँ कोई रोशनी नहीं होती। इसको सुल्तान इब्राहीम या उसके बेटे सुल्तान महमूद शर्क़ी ने बनवाया था। कहते हैं कि सम्राट औरंगज़ेब ने इस मज़ार को संगमरमर से बनवाना चाहा। पर शाह मदार 'ज़िंदा पीर' ने शायद सपने में उसे ऐसा करने से रोका। औरंगज़ेब ने केवल मज़ार के दरवाज़ों पर संगमरमर की झँझरियाँ लगवा दीं। परन्तु कुछ समय बाद 'ख़ादिमों' ने दक्खिन तरफ़ की झँझरी निकाल कर उसमें चंदन की एक

खिड़की लगा दी जिससे उसे खोल कर झँझरियों के अंदर फेंके हुए रुपये-पैसे, कपड़े, जेवर इत्यादि निकाले जा सकें। क़ब्र के ऊपर ८५ गज़ लंबी एक चादर पड़ी रहती है। औरंगज़ेब ने ही मस्जिद, हौज़, फौवारा, उत्तर व दक्षिण के फाटक व 'हरम' के मकान बनवाये। बाद को मानता मानने वालों ने गुंबद पर पाँच सुनहले कलश चढ़वा दिये। 'हरम' के अतिरिक्त कई और सहन हैं। साँकर-दरबार के फाटक पर एक साँकर अर्थात् जंजीर लटकती है। पाकरख़ाने में एक पाकर का पेड़ है। धमालख़ाने में मलंग (अवधूत) लोग मस्त होकर नाचते गाते हैं। नक़्क़ारख़ाने की इमारत मस्जिद व रोज़े के बीच में है। इसे बिठूर के राजा नागमल जाट ने बनवाया था। नक़्क़ारख़ाने में एक बड़ा भारी नक़्क़ारा तथा कुछ देग़ रक्खे हुए हैं। उर्स व मेलों के मौक़ों पर नक़्क़ारा बजाया जाता है और देग़ों में खाना पकाया जाता है जो ग़रीबों को बाँटा जाता है। हरम शरीफ़ के दो फाटकों पर उनके बनने की तारीख़ें दी हुई हैं। रोज़े के पास एक कोठरी मकनादेव की है। दरगाह के आसपास के क्षेत्र में ही अन्य कई मक़बरे भी हैं। शाह मदार के सबसे प्रसिद्ध शिष्य की मज़ार माबर नामक गाँव में है जो उस जगह स्थित है जहाँ कालपी-रोड सेंगुर-नदी पर से होकर जाती है। यह मज़ार हज़रत मुताहिर की है। अब भी आपकी पूजा होती है।

हर साल बसंत-पंचमी के दिन मकनपुर में बड़ा भारी मेला लगता है जिसकी गणना इस प्रांत के सबसे बड़े मेलों में

है। अब यह मेला कुछ फीका हो गया है। पर १६० ई० में प्रकाशित कानपुर-गज़ेटियर में लिखा है कि उ समय इस मेले में एक लाख का जमाव होता था। आ कल भी वहाँ गाय, बैल, भैंस, ऊँट, घोड़े और बकरी विक्री खूब होती है। लकड़ी का हाथ का बना तरह तर का सामान—जैसे गाड़ी और गाड़ी का सामान, चौख दरवाज़े, संदूक़, तिपाई तथा घरेलू चीज़ें भी बहुत आत हैं। यह बात ध्यान देने की है कि यह मेला बसंत-पंचमी दिन होता है जब कि शाह मदार साहब के उर्स की तारी दूसरी है यानी १७ वीं जमादी-उल-अव्वल। इस दिन भ जमाव होता है पर बहुत हलका।

हिंदू और मुसलमान सब इस मेले में आते हैं औ समान रूप से शाह मदार की क़ब्र की पूजा करते हैं। लो तरह तरह की मानता मानते हैं और उसके पूरी होने पर क़ पर चद्दर, फूल-माला, मिठाई, रुपया-पैसा व ज़ेवर इत्यादि चढ़ाते हैं। इस आपसी मेल की जड़ में वेदान्त-धर्म व सूफ़ धर्म की आधारभूत एकता ही कही जा सकती है।

मकनपुर-गावँ का विशेष महत्व नहीं है। उसमें डाक ख़ाना तथा एक प्राइमरी स्कूल है तथा सप्ताह में दं दिन बाज़ार लगता है। गावँ में कायस्थ-ब्राह्मण तथा बनिये की ज़मींदारी है। कानपुर के प्रसिद्ध नागरिक स्वर्गीय पं० सूर्यप्रसाद मिश्र यहीं के रहने वाले थे। मकनपुर के पास ही धर्मशाला नामक एक गावँ है जिसमें दोआब क

प्रसिद्ध डाकू दराबशाह पैदा हुआ था। आसपास जुलाहों के कई गावँ होने के कारण यहाँ खादी व गाढ़े का काम बहुत होता है।

मन्धना

सरकारी काग़ज़ों में मन्धना नामक किसी गावँ का कोई उल्लेख नहीं है। वास्तव में बहलोलपुर, बगदौधी इत्यादि गावों से मिलकर मंधना बन गया है। यहाँ से ग्रांड-ट्रंक-रोड तथा बिठूर जाने वाली रेलवे लाइन गई हुई है।

मंधना उक्त रेलवे लाइन का जँक्शन है। इन दोनों के होने से ही मंधना की महिमा बढ़ गई है। यहाँ जूनियर हाई स्कूल, डाकखाना, गावँ सहकारी-समिति, संस्कृत-पाठशाला, ज़िला बोर्ड का औषधालय तथा एक पुस्तकालय है। इस पुस्तकालय का नाम शारदा-पुस्तकालय है तथा कानपुर-ज़िले में इतना बड़ा पुस्तकालय अन्य किसी गावँ में नहीं है। मंधना के नाम के संबंध में ऐसा विदित होता है कि १८ वीं शताब्दी के प्रारंभ में शिवराजपुर में मांधातासिंह नामक जो चन्देल-राजा राज्य करते थे उन्हीं के नाम पर संभवतः यह मांधातानगर कहलाया जिसका अपभ्रंश होकर मंधना हो गया। राजा मान्धातासिंह सन् १७१५ तक जीवित थे।

मसवानपुर

यह कानपुर-तहसील के अंतर्गत २६°२९′ अक्षांश तथा

८०°१७′ देशान्तर रेखाओं के बीच ग्रांड-ट्रंक-रोड पर नहर गंग तथा कल्याणपुर के बीच कानपुर से ६ मील की दूरी पर स्थित है। इसका शुद्ध नाम मोहसिनपुर है। अकबर के समय में यह एक पृथक् परगना था किंतु बाद में उसे तोड़कर बिठूर तथा जाजमऊ में मिला दिया गया। यहाँ के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती ही है। कानपुर-नगर की आबादी बढ़ने के साथ ही साथ यहाँ की आबादी भी बढ़ी है। सन् १८६१ में यहाँ की जनसंख्या ३२२० थी। गाँव में डाकखाना तथा प्राइमरी स्कूल है और सप्ताह में दो दिन बाज़ार लगता है। किन्तु अब यह वृहत्तर कानपुर की सीमा के अन्तर्गत आ गया है।

महाराजपुर

यह कानपुर-तहसील के अंतर्गत २६°१८′ अक्षांश तथा ८०°६६′ देशान्तर रेखाओं के बीच में कानपुर से १३ मील दक्षिण-पूर्व तथा नरवल से ७ मील की दूरी पर ग्रांड-ट्रंक-रोड पर स्थित एक बड़ा गाँव है। यहाँ से नरवल को पक्की सड़क गई है जो सिरसौल स्टेशन से होकर निकली है। सिरसौल स्टेशन यहाँ से २ मील दूर है। यहाँ से उत्तर की ओर जाज-मऊ तथा दक्षिण-पूर्व में नजफ़गढ़ को भी कच्ची सड़कें गई हैं। गाँव में पुलिस थाना, डाकख़ाना, डाक बँगला, फ़ौजी पड़ाव, काँजी हौस तथा प्राइमरी स्कूल हैं। सप्ताह में दो दिन बाज़ार लगता है। यहाँ बैस-क्षत्रियों की किसी समय प्रधानता थी।

मूसानगर और चपरघटा

मूसानगर का क़स्बा तहसील भोगनीपुर के धुर दक्षिण में यमुना-नदी के किनारे बसा हुआ है। यह ८०°१०′ अक्षांश और ७६°५८′ देशान्तर रेखाओं में स्थित है। यह पुखरायें से लगभग ६ मील तथा कानपुर से ३४ मील दूर है। मूसानगर से ही मिला हुआ ग़ौसगंज है जो इसी में शामिल माना जाता है। सन १८४७ में मूसानगर की जनसंख्या ५२७४ थी।

मूसानगर का पुराना नाम अवश्य मुक्तानगर रहा होगा क्योंकि यहाँ मुक्ता-देवी का एक अत्यन्त प्राचीन मंदिर है। जनश्रुति के अनुसार इसका निर्माण त्रेता-युग में राजा बलि ने किया था। पर मंदिर की शैली अवश्य मुसल्मानों के भारत में आने के पहले की है। मराठों के समय में पेशवाओं के पारिवारिक पुरोहित श्री पंडित-गंगाधर ने मंदिर का जीर्णोद्धार किया और कुछ नई इमारत बनवाई। यहाँ 'देवयानी' नामक कुंड भी है, जिसे कहते हैं कि राजा ययाति की रानी ने बनवाया था। इसी कुण्ड के निकट उमरगढ़ नामक एक पुराना क़िला है, जिसे संवत् १५०४ में कुबेर शाह पँवार शासक ने बनवाया था। आज़मगढ़ नामक दूसरे क़िले का निर्माण औरंगज़ेब के बड़े पुत्र अज़ीम या आज़म ने किया था। पठानों के शासनकाल में ग़ौसगंज बसा। संभवतः शमशेर ख़ाँ के शासन में यह बसाया गया।

आगरे से इलाहाबाद जाने वाली पुरानी मुग़ल-रोड मूसा-

नगर से होकर जाती है। मूसानगर से गजनेर तथा मोहान को भी सड़कें गई हैं। कानपुर-झाँसी-रोड पर पुखरायाँ से २ मील आगे भोगनीपुर नामक प्राचीन गावँ पर यह मुगल रोड मिलती है और पूर्व की ओर जाती है। कुछ मील दू सेंगुर-नदी पर चपरघटा का बादशाही जमाने का पाँच मेह राबों का पुल मिलता है। फिर मूसानगर मिलता है चपरघटा के पास सेंगुर और यमुना दोनों के बड़े विक कगार आसपास की समस्त भूमि में कोसों तक चारों ओ फैले हुए हैं। बबूल, रियाँ तथा अन्य काँटेदार पेड़ों औ झाड़ियों की घनी उपज के कारण यहाँ अब तक अनेक हिंस जन्तु—तेंदुए तक—निवास करते हैं।

चपरघटा बादशाही जमाने में डाकुओं का दुर्ग था औ यहाँ लूट-मार खूब होती थी। तभी तो अभी तक मस मशहूर है—"दिल्ली की कमाई चपरघटा में गँवाई"। चपरघ में सन् १५५५ में शेरशाह सूर के वंशज मुहम्मदशाह आदि ने बंगाल के शासक मुहम्मदशाह को हराया था। आदिलशा का सेनापति राजा हेमू बहुत ही बीर एवं सुयोग्य सेनाप था। उस समय देश की अशांति-जनक स्थिति का लाभ उ कर बंगाल का शासक मुहम्मदशाह बिहार पर अधिकार ज लेने के बाद दोआब पर भी अधिकार करने के लिए ए फौज जौनपुर भेज कर कालपी की ओर यमुना के बाएँ किन से बढ़ता जा रहा था। चपरघटा के पास उसकी सेना अश्वारोही व पैदल बहुत अधिक संख्या में व्यूह-रचना क



देवयानी-सरोवर, मूसानगर (पृष्ठ ३५१)



चपरघटा का बादशाही पुल (पृष्ठ ३५२)

एकत्र हो गये। सुल्तान आदिल की फ़ौज यमुना के उस पार कालपी के पास थी। उसका वीर सेनापति हेमू भी बयाना में था जो फ़ौज लेकर अपने स्वामी की सहायता के लिए द्रुत गति से आ रहा था। हेमू के आते ही आदिलशाह के जी में जी आया। आते ही हेमू ने अपने ओर की समस्त सेना को रातों-रात यमुना पार कराया। शायद देवरहट या अहरौली के घाट से ही हेमू की सेना ने नदी पार की होगी। स्वयं हेमू ने हाथी की पीठ पर बैठकर यमुना को मँझाया। बंगाली फ़ौज को हेमू के आगमन और उसकी सेना के यमुना पार करने तक की ख़बर न लग पाई। उसके सैनिकों में तहलका मच गया। मुहम्मदशाह का दिल दहल गया। केवल एक साधारण झड़प के बाद ही बंगाल की सेना के पैर उखड़ गये। घने जंगलों के निविड़ अंधकार में उसके सिपाहियों की बड़ी दुर्गति हुई। सब ख़ीमे छोड़-छोड़ कर इधर-उधर प्राण-रक्षा के लिए भागे, पर चारों ओर से हेमू के सैनिकों ने उन्हें घेर कर भेड़-बकरी की भाँति बुरी तरह काट डाला। बहुत नर-संहार हुआ। बड़े-बड़े ऊँचे सरदार व अफ़सर मौत के घाट उतारे गये। स्वय मुहम्मदशाह की लाश तक का किसी को पता न लगा।

प्रसिद्ध अंग्रेज यात्री विलियम फिश्च, जिसने १६०८ से १६११ तक जहाँगीर के जमाने में भारत-भ्रमण किया था, चपरघटा की सराय को भारत भर में सबसे उत्तम बताता है। वह कहता है "इसे सराय नहीं एक अच्छा ख़ासा क़िला कहना

चाहिए। पत्थर की कोठरियाँ हैं और उनमें ताला-चाभी क
भी सुभीता है और एक हज़ार यात्री इसमें एक साथ ठह
सकते हैं। इसके पास एक सुन्दर पुल है। दोनों सराय व पु
एक ही आदमी के बनाये हुए हैं। रास्ते में चोरों का ख़तर
है।" शाहजहाँ के समय में इटालियन यात्री पीटर मुंडी
भी इस स्थान का वर्णन किया है।

पुराने समय में एक व्यापारिक केन्द्र के रूप में मूसानग
के महत्व एवं प्रसिद्धि का कारण यह था कि यमुना-नदी
उत्तरी किनारे पर इटावा तथा इलाहाबाद के बीच एक-मा
यही ऐसा स्थान था जिसे कुछ भी बड़ा कहा जा सकता था
इस प्रकार दोआब तथा अवध के साथ बुंदेलखंड के व्यापा
के लिए यह स्वाभाविक मार्ग था और आल, जिससे खारुआ
रँगा जाता है, तथा अन्य रँगों के बनाने के लिए यह विशे
रूप से प्रसिद्ध था। रंगों के इस व्यवसाय में मूसानगर
प्रायः एकाधिपत्य सा क़ायम कर रक्खा था। इसी के परिणाम
स्वरूप बुनाई-छपाई तथा रँगाई का बहुत बड़ा काम यहाँ हो
लगा और यह अभी हाल तक जारी रहा परन्तु जब विदेशी
रंगों के सामने आल की माँग कम हो गई तो इस व्यवसा
की भी अवनति होने लगी। मूसानगर के आस-पास कुश की
पैदावार भी बहुत है। उसकी जड़ ख़स कहलाती है औ
इसका इत्र यहाँ प्रचुर परिमाण में बनता है। पास के जंगलो
में बिघारा भी मिलती है। क़स्बे की अवनति का एक अन्य
कारण पक्की सड़कों के बन जाने तथा कालपी से रेलवे लाइन

आने के कारण व्यापारिक मार्ग में परिवर्तन हो जाना भी है। इस समय मूसानगर-गौसगंज एक छोटा सा क़स्बा रह गया है जहाँ सप्ताह में केवल दो दिन बाजार लगता है। यहाँ पुलिस थाना, डाकखाना, काँजीहौस तथा एक प्राइमरी स्कूल हैं। यहाँ के पेड़े दूर दूर तक प्रसिद्ध हैं।

रसधान

यह २६°२१' अक्षांश तथा ७९°४२' देशान्तर रेखाओं में सिकंदरा से डेरापुर जाने वाली सड़क के दक्षिण की ओर स्थित है। कानपुर से यह ४२ मील दूर है और अकबरपुर यहाँ से १६ मील है। सन् १८०४ के पूर्व इसके इतिहास के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं लगता। सन् १८०४ में हिम्मतबहादुर गोसाईं के उत्तराधिकारियों को जब सिकंदरा का परगना जागीर के रूप में मिला तो उन्होंने रसधान को ही अपना निवास-स्थान अथवा सदर मुक़ाम बनाया। उक्त परगना सन् १८४० तक इन लोगों के अधिकार में रहा।

हिम्मतबहादुर का असली नाम अनूप गिरि था। इनके एक भाई भी था उसका नाम उमराव गिरि था। ये दोनों भाई महादजी सिंधिया, अवध के नवाब शुजा उद्दौला, सम्राट् शाह आलम तथा लार्ड कार्नवालिस आदि के समकालीन थे। उस समय देश की अशांत स्थिति से लाभ उठाकर उन्होंने अपनी ईश्वरदत्त शक्तियों के बल पर वे करतब दिखाये जिनसे महादजी सिंधिया जैसे प्रबल पराक्रमशाली एवं चतुर राज-

नीतिज्ञ के भी छक्के छूट गये। इन गोसाईं-बन्धुओं के पास, जो मूल रूप से झाँसी-ज़िले के मोठ गावँ के स्वामी थे, प्रायः २०-२२ हज़ार फ़ौज थी जिसमें रिसाला, पैदल और बंदूक़ची शामिल थे। इसकी सहायता से इन्होंने उस समय कभी अवध के नवाब, कभी शाह आलम, कभी मराठों तथा कभी अंग्रेज़ों की सहायता की। अनूपगिरि की वीरता और साहस से ही मुग्ध होकर अवध के नवाब शुजाउद्दौला ने उन्हें हिम्मत-बहादुर की उपाधि प्रदान की।

सन् १८०३ में हिम्मतबहादुर और कम्पनी के बीच एक अहदनामा हुआ जिसके अनुसार हिम्मतबहादुर ने बाँदा के नवाब शमशेर बहादुर को हराकर अंग्रेज़ों को बुन्देलखंड पर क़ब्ज़ा जमाने में सहायता करने तथा अंग्रेज़ों ने बदले में उसे २० लाख रु० वार्षिक आय की एक माफ़ी जागीर बुंदेलखंड में देने का वादा किया। हिम्मतबहादुर की फ़ौज की मदद से बुंदेलखंड पर अंग्रेज़ों का क़ब्ज़ा हो गया। पर अंग्रेज़ हिम्मतबहादुर को न तो नाराज़ करना चाहते थे और न उसे बुंदेलखन्ड में रहने ही देना चाहते थे। जागीर के काग़ज़ात की लिखा-पढ़ी में कुछ देरी हुई। इसी बीच ३ जून १८४० को हिम्मतबहादुर का देहान्त हो गया। उसके मरने पर अंग्रेज़ों को बहाना मिल गया। उनका कहना था जागीर हिम्मतबहा-दुर के जीवन भर के लिए थी और उसके उत्तराधिकारियों को वह न दी जायगी। पर अंत में यह तै हुआ कि उसके कथित पुत्र नरेन्द्र गिरि को बुंदेलखन्ड के बदले यमुना के पार

कानपुर-ज़िले में बिलासपुर-सिकन्दरा परगने की जागीर माफ़ी में दे दी जायगी जिसकी सालाना आमदनी १ लाख २६ हज़ार ३२० रु० थी । इस माफ़ी के काग़ज़ों पर १ मार्च १८०६ को हस्ताक्षर हुए । इस जागीर का सदर मुकाम 'रजधान' कहलाया जिसे अब रसधान कहते हैं । नरेन्द्रगिरि की मृत्यु सन् १८४१ में कानपुर शहर में बीमारी से हुई । वह १४ लाख रुपया क़र्ज़ छोड़ गया । नरेन्द्र गिरि के मरने के बाद उसकी स्त्री राजरानी उसकी जगह जागीर की मालकिन हुई पर उसके पति का १४ लाख का क़र्ज़ अदा करने के विचार से उसकी जागीर को सरकार ने अपने हाथ में ले लिया । जागीर की आय का पाँचवा भाग मालगुज़ारी इकट्ठा करने के खर्च में काटकर बाक़ी ८० प्रतिशत में ७० से क़र्ज़ अदा किया जाता था और १० में से राजरानी तथा नरेन्द्र गिरि की रखेली स्त्रियों से उत्पन्न लड़कों, जैइन्द्र गिरि और पद्मइन्द्र गिरि को बराबर बराबर भाग दिया जाता था । सिकंदरा की माफ़ी नेकचलनी व बफ़ादारी की शर्त पर थी । वह किसी भी समय इन कारणों से जब्त हो सकती थी । सन् १८५७ के विद्रोह में इन दोनों लड़कों ने सरकार की कुछ सहायता न की । इसलिए २० जून १८६० को सदर बोर्ड की चिट्ठी के अनुसार इनके हिस्से जब्त हो गये पर इन दोनों को सौ सौ रुपये की पेंशन मिलने लगी । राजरानी को अपना हिस्सा मिलता रहा और वे अपने को 'रसधान की रानी' कहती रहीं । कानपुर में वर्तमान सब्ज़ीमंडी नामक मुहल्ला इसी रानी के नाम पर पहले 'रानी की गड़ैया' कह-

जाता था। अब भी कुछ पुराने लोग उसे इसी नाम से पुकारते हैं। अब भी इस वंश के अनेक उत्तराधिकारी थोड़ा-बहुत वसीक़ा पाते हैं।

सन् १८४७ में रसधान एक महत्वपूर्ण बाज़ार था और घी तथा कुसुम का वहाँ बहुत बड़ा व्यापार होता था। परन्तु अब उसका उक्त महत्व नहीं रहा तथा क़स्बे की आबादी भी पहले से घट गई है। सप्ताह में दो दिन बाज़ार लगता है। गाँव में डाकख़ाना, काँजीहौस तथा प्राइमरी स्कूल हैं। यहाँ गोसाइयों का बनवाया हुआ केशवदेव का प्रसिद्ध मन्दिर है।

रसूलाबाद

यह बिल्हौर-तहसील में २६°४०′ अक्षांश तथा ७६° ४८′ देशान्तर-रेखाओं के मध्य में स्थित है। यह झींझक स्टेशन से उत्तर की ओर ११ मील, बिल्हौर से दक्षिण-पश्चिम २२ मील तथा कानपुर से उत्तर-पश्चिम ४० मील की दूरी पर है। यहाँ से कई कच्ची सड़कें विभिन्न दिशाओं को गई हुई हैं, जैसे झींझक और सिकंदरा, बिल्हौर और नानामऊ, मकनपुर और आँकिन, शिवली और कानपुर, रूरा और अकबरपुर, तथा उत्तर-पश्चिम में इटावा ज़िले के बिधूना और पश्चिम में फफूँद को। रसूलाबाद पहले तहसील तथा परगना था किन्तु सन् १८६४ में उसका विभाजन कर तहसील के कुछ गाँव बिल्हौर तथा कुछ डेरापुर में मिला दिये गये।

मुग़ल-काल में रसूल ख़ाँ नामक सूबेदार ने इसे बसाया

था। अकबर के समय में यह परगना मालकुसा अथवा मालगोसा के नाम से प्रसिद्ध था जो संभवतः रसूलाबाद से ही मिलता-जुलता है। सन् १७५६ से १७६२ तक इस पर मराठों की ओर से गोविंदराव पंडित का शासन रहा जिन्होंने मिट्टी की दीवारों से बनी हुई गढ़ी का पुनर्निर्माण कराया। इसी गढ़ी के अन्दर तहसीली की इमारत थी। अब इसमें पुलिस वालों के क्वार्टर हैं। कहा जाता है कि इस गढ़ी के मूल-निर्माता अमनदास थे। आप यहाँ रहने वाले प्रमुख गहलोत क्षत्रिय-वंश के पूर्वज थे। गावँ बहुत बड़ा है और अब अधिकतर खेती ही यहाँ का मुख्य व्यवसाय रह गया है। सप्ताह में दो दिन बाजार लगता है। बाजार में कुछ दूकानें हैं तथा गावँ में कुछ व्यापारी रहते भी हैं। परन्तु गावँ का कोई विशेष व्यापारिक महत्व नहीं है। सन् १९०१ में यहाँ की जन-संख्या ३६६५ थी जिनमें ६४७ मुसलमान थे। मौजे का रक़बा बहुत बड़ा है। ठाकुरों तथा मुसलमानों की ही अधिकतर आबादी है। गावँ में पुलिस थाना, डाकखाना, काँजीहौस तथा प्राइमरी स्कूल हैं।

रावतपुर

यह कानपुर-नगर से पश्चिम की ओर केवल ३ मील की दूरी पर २६°२६ अक्षांश तथा ८०°१७ देशान्तर-रेखाओं के मध्य बसा हुआ है। यह एक बहुत बड़ा गावँ है। सन् १८४४ में इसकी जनसंख्या ४३१६ थी।

रावतपुर में भी चंदेल-वंश का ही राज्य था। सपई के राव

सुमेरसाह ने अपने छोटे भाई रामसाह को रावत की उपाधि दी। उन्होंने ही रावतपुर बसाया। इस वंश के पास ४८ गावँ थे परन्तु बाद में कंसराय नामक इस वंश के एक पुरुष को, जिसकी संतान काकादेव वाले हैं, ४८ गावँ मिल गये। इस प्रकार इस तालुक़े का बँटवारा हो गया। गिरधरसिंह इस वंश में विशेष प्रतापशाली हुए। संवत् १८२४ में उनकी लड़की का विवाह राजा रामपुर के यहाँ हुआ था। लोग कहते हैं कि कभी कोई ऐसी बरात नहीं आई। कुछ काल बाद रणधीरसिंह गद्दी पर आया। उसके शिवसिंह नामक एक पुत्र था। सन् १८७२ में रणधीरसिंह और उसके ५ दिन बाद शिवसिंह भी मर गया। कोई संतान न होने के कारण सन् १८७३ में इलाक़ा कोरट हो गया। शिवसिंह के मरने पर इस वंश की विधवाओं ने इसी वंश के लड़के को गोद लेने का निश्चय किया। पर गोद लेने की प्रथा पूरी होने के पहले ही वह भी चल बसा। इसके बाद रावतपुर की रानी बघेलन ने शिवरतनसिंह को गोद ले लिया। कोई ५० वर्ष हुए रावतपुर की रियासत के निमित्त रानी बघेलन व शिवरतनसिंह और बघेलन की सास रानी जनवारिन के बीच दीवानी में मुक़दमा चला था और अंत में जायदाद ठाकुर जी के मंदिर में लगा दी गई।

इस समय ज़मींदारी का प्रबंध उक्त राजवंश के पुरोहितों के अधिकार में है। गावँ के अधिकांश लोग जीविका के निमित्त शहर से संबंधित हैं और वहीं नौकरी-व्यवसाय आदि करते हैं। फल-स्वरूप यहाँ कोई बड़ा बाज़ार या व्यवसाय आदि



चपरघटा का क़िला
(पृष्ठ ३५८)



मुक्तादेवी का मंदिर, मूसानगर
(पृष्ठ ३५५)

नहीं है। सप्ताह में दो दिन एक छोटा सा बाजार लगता है। लड़कों के लिए यहाँ एक प्राइमरी स्कूल है।

रावतपुर के इस वंश के लोग देवली, बनायतपुर, कल्याणपुर, खुर्द खजूरी, कैधा, कल्यानपुर कलाँ तथा काकादेव में रहते हैं। अब यह वृहत्तर कानपुर की सीमा के अन्तगत है। रावतपुर-नामक छोटी लाइन का स्टेशन भी है।

रूरा

यह अकबरपुर-तहसील के अंतर्गत २६°२६′ अक्षांश तथा ७६०५४°′ देशान्तर-रेखाओं के बीच कानपुर से २८ मील पश्चिम में तथा अकबरपुर से ८ मील उत्तर में स्थित है। यहाँ से अकबरपुर तथा डेरापुर को पक्की सड़कें गई हैं। गावँ के उत्तर की ओर से एक कच्ची सड़क निकली है, जो नहर शाख इटावा को पार करने के पश्चात्, जो गावँ के निकट से निकली है, दो भागों में बँट जाती है। एक सड़क उत्तर-पूर्व की ओर शिवली को तथा दूसरी उत्तर-पश्चिम की ओर रसूलाबाद चली गई है। नहर पर पुल बना है और उसी के पास नहर-विभाग का डाक-बँगला है। गावँ के दक्षिण की ओर से ई० आई० आर० की मेन लाइन गई हुई है। रूरा में उसका स्टेशन है और स्टेशन से गावँ को एक छोटी सी पक्की सड़क गई है।

रूरा व्यापार की, और मुख्यतः अनाज की, एक बड़ी मंडी है। सप्ताह में दो दिन बाजार लगता है। गावँ बड़ा है। डाक-

ख़ाना, काँजीहौस, प्राइमरी स्कूल, हायर सेकंडरी स्कूल हैं तथा लड़कियों का भी एक स्कूल है। यहाँ स्वामी भास्करानंद का मन्दिर है जिसमें उनकी संगमरमर की मूर्ति संस्थापित है।

शिवराजपुर

शिवराजपुर कानपुर से २१ मील उत्तर-पश्चिम में ग्रांड-ट्रांक रोड पर २६° ४१′ अक्षांश तथा ८०° ६′ देशान्तर-रेखाओं के बीच स्थित है। इसी सड़क के समानान्तर रेलवे लाइन भी जाती है और शिवराजपुर के पास ही बर्राजपुर नामक स्टेशन भी है। क़स्बे के भीतर से होकर एक और सड़क गई है जो सरैयाँघाट में गंगातट से शिवली को जाती है। जब सन् १८११ में अवध और ईस्ट इन्डिया कम्पनी के मध्य संधि के अनुसार गंगा-यमुना के दोआबे का नीचे का भाग अंग्रेजों की अमलदारी में आया तो कानपुर-ज़िले में १५ परगने थे। शिवराजपुर भी उनमें से एक था। प्रत्येक परगने का हाकिम तहसीलदार होता था। परन्तु सन् १९१२ में शिवराजपुर की तहसील तोड़ दी गई।

शिवराजपुर को चंदेल-वंशीय राजा शिवराजदेव ने सन् १३३६ में बसाया था। इनके पूर्वज कन्नौज के निवासी थे। कालान्तर में शिवराजपुर के इस चंदेल-वंश की अनेक शाखायें हुईं जो कानपुर-ज़िले के अन्य स्थानों में फैल गईं। शिवराजपुर के राजा रामचंद्रदेव को सम्राट् अकबर ने अपने शासन के ३९ वें वर्ष (सन् १५९५) में एक फ़रमान

देकर ६५ गावँ की जमींदारी और राजा की पदवी दी थी। ब्रिटिश सरकार ने शिवसिंह को सन् १२१० फ़सली, १२१३ फ़सली और १३१६ फ़सली के बंदोबस्तों में ६३ गावों का जमीदार मान लिया। सन् १२२५ फ़सली में शिवसिंह के पुत्र महेन्द्रसिंह के साथ चौथा बंदोबस्त हुआ। उस समय मि० राबर्टसन् जज ने यह आपत्ति की कि इतने अधिक गावँ एक जमींदार के पास होने से बलवे की आशंका है। इस पर सरकार की आज्ञा हुई कि मुक़दमा करके इस पर निर्णय किया जाय। १२२६ में मुक़दमा हुआ और राजा महेन्द्रसिंह ताल्लुक़ेदार मान लिया गया। वह अभी तक नाबालिग़ थे। उनके शीघ्र ही मर जाने पर उनके चाचा दानसिंह के साथ बंदोबस्त हुआ। वह भी जल्दी मर गया। सन् १८२३ ई० में उसका पुत्र राजा सतीप्रसाद, जो नाबालिग़ था, क़ायम मुक़ाम हुआ। इलाक़ा कोर्ट आफ़ वार्ड्स में चला गया। उन्हें १२४३-६२ फ़सली के बीसबरसी बंदोबस्त में १५ फ़ीसदी मालिकाना नियत हुआ। महेंद्रसिंह की रानी अपने पति के मरने पर उससे साथ सती हो गई थी। जब चिता पर रानी का आधा बदन जल गया तो उसने अपने पितिया-ससुर दानसिंह को पुत्र होने का वरदान दिया। यह रानी अवध-स्थित माधवगंज के माधवसिंह रैकवार ठाकुर की पुत्री थी। जब यह वरदान पूरा हुआ और दानसिंह के लड़का पैदा हुआ तो उसका नाम सतीप्रसाद रक्खा गया। सतीप्रसाद ने राजा होने पर सरैयाँ घाट में गंगा के तट पर सती का मन्दिर बनवाया।

सन् १८५६ के विद्रोह में राजा सतीप्रसाद पर विद्रोह में भाग लेने का सन्देह किया गया। उनका इलाक़ा ज़ब्त कर लिया गया। गढ़ी, जिसमें उनका परिवार रहता था, गिरा दी गई। गढ़ी का ध्वस्त भाग अब भी मौजूद है। ये सब बातें उनके फ़रार रहने की अवस्था में हुई। इससे बाद जब वे पकड़े गये तो उन पर विद्रोहियों के नेता होने का अभियोग लगा कर अंग्रेज कमिश्नर मि० हेनरी प्रिंसेप फ़ेन ने ७ वर्ष सख़्त क़ैद की सज़ा दी। उनके क़ैद रहने से समय के ही पहले उनकी स्त्री तथा बाद में उनका एकलौता लड़का मर गये। जेल से छूटने पर उन्होंने अपने गुज़ारे के लिए प्रार्थना की। पर कोई सरकारी निर्णय होने के पहले ही सन् १८७१ में उनका स्वर्ग वास हो गया। इसके बाद यह वंश समाप्त हो गया।

सन् १८५७ के विद्रोह में शिवराजपुर में अंग्रेज़ी सेना तथा तात्या टोपे की सेना में युद्ध हुआ था। जब ग्वालियर से फ़ौज लाकर तात्या ने कानपुर-शहर का घेरा डालना आरंभ किया तो उन्होंने शिवराजपुर को भी अपने अधिकार में कर लिया और वहाँ एक हज़ार सैनिक तथा चार तोपें रख दीं। पकड़े जाने पर तात्या ने अपना जो बयान दिया था उसमें शिवराजपुर की उक्त लड़ाई का ज़िक्र करते हुए उन्होंने कहा कि—"कानपुर का घेरा पूरा हो जाने पर विद्रोहियों की सेना ने ११ दिन तक अंग्रेज़ी सेना का मुक़ाबला किया। ११ दिन के बाद विद्रोहियों की सेना पराजित हुई और हम सब को भागना पड़ा। इसके दूसरे दिन शिवराजपुर में अंग्रेज

सेना से हमारा फिर युद्ध हुआ और यहाँ भी हमारी हार हुई। मैं, बाला साहब तथा राव साहब सब लोगों ने नानामऊ के घाट में गङ्गा पार की और अवध में चले गये।" शिवराजपुर की उक्त लड़ाई वहाँ गङ्गा जी के किनारे सरैयाँघाट नामक स्थान पर हुई थी। इस लड़ाई का विस्तृत विवरण काकूपुर वाले वर्णन में दिया जा चुका है।

यहाँ पुलिस थाना, डाक-बंगला, काँजीहौस, डिस्पेन्सरी, जूनियर हाई स्कूल, प्राइमरी स्कूल तथा लड़कियों का स्कूल हैं। शिवराजपुर-ख़ास एक बहुत छोटा गावँ है परन्तु शिवराजपुर क़स्बे की बस्ती मुख्य रूप से राजपुर तथा बरांजपुर की ज़मीन में बसी हुई है तथा दुबियाना, मुंडेरी और पटकापुर भी उसमें शामिल हैं। यहाँ जुलाहों द्वारा कपड़ा बुनने का ही मुख्य व्यवसाय था जो अब नष्ट हो गया है। छतरपुर में, जो शिवराजपुर के पास ही है, शिवरात्रि के अवसर पर खेड़ेश्वर महादेव का बड़ा मेला लगता है। तहसील टूट जाने के कारण शिवराजपुर की महिमा बहुत घट गई है।

शिवली

यह एक बहुत बड़ा गावँ है जो २६°३६' अक्षांश तथा ८०°४' देशान्तर-रेखाओं के बीच पांडो-नदी के किनारे पर कानपुर से २२ मील-उत्तर-पश्चिम तथा शिवराजपुर से १० मील दक्षिण-पूर्व में बसा हुआ है। गावँ अत्यन्त प्राचीन है। इसके नाम के सम्बन्ध में बतलाया जाता है कि एक बंजारे को जंगल में सफ़ाई

करते समय एक शिव-मूर्ति मिली। उक्त 'शिव-लिंग' का अपभ्रंश होकर इसका नाम 'शिवली' हो गया। पहले यह त सील था जिसमें औनहाँ तथा सखरेज के ताल्लुके शामिल थे परन्तु सन् १८६१ में यहाँ की तहसीली तोड़कर शिवराजपुर मिला दी गई। पहले यह चंदेल-क्षत्रियों के राज्य में सम्मिलि था परन्तु अब यहाँ की जमींदारी उक्त वंश के हाथ से बिलकु निकल गई है। सन् १८५७ के विद्रोह में तात्या की सेना कानपुर का घेरा डालते समय शिवराजपुर आदि अन्य थानों साथ-ही साथ शिवली पर भी अधिकार कर लिया था और वह दो हज़ार सैनिक तथा चार तोपें रक्खी गई थीं।

इस गावँ की एक विशेषता यह है कि नरवल की भाँति यह भी शिक्षित व्यक्ति बहुत अधिक हुए हैं। इनमें सुप्रसिद्ध आर्य समाजी विद्वान् पं० हनुमानप्रसाद त्रिपाठी का नाम विशे उल्लेखनीय है। आपका जन्म संवत् १९३५ में तथा मृत् संवत् १९७५ में हुई। आपकी स्कूली शिक्षा केवल चौथी कक्ष तक ही हुई थी परन्तु आपने स्वाध्याय-द्वारा दशोपनिषद् तथ वेदों का पूर्ण ज्ञान अल्पावस्था में ही प्राप्त कर लिया आपने संस्कृत में कई ग्रन्थ लिखे जिनमें 'रामचरित-चिन्ता मणि' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है। आपके अतिरिक्त संस्कृत के अन्य कई विद्वान् भी यहाँ हुए। सन् १७७५ में कानपुर की जजी के २५ वकीलों में शिवली के भी दो सज्जन थे, जिनके नाम श्री ईश्वरीप्रसाद तथा श्री हीरालाल थे कानपुर के प्रतिष्ठित नागरिक तथा रिटायर्ड डिप्टी कलेक्टर

राय बहादुर डिप्टी श्यामलाल का परिवार भी यहीं का निवासी था। डिप्टी साहब की पुत्री श्रीमती विष्णुकुमारी श्रीवास्तव 'मंजु' हिंदी की प्रसिद्ध कवियित्रियों में से हैं।

शिवली कई तरफ़ से आने वाली सड़कों के चौराहे पर स्थित है। यहाँ कानपुर, शिवराजपुर, बिठूर, सचेंडी, तिगाँव तथा रसूलाबाद से आने वाली कच्ची सड़कें परस्पर मिलती हैं। रसूलाबाद से आने वाली सड़क में डेरापुर तथा रूरा से आने वाली सड़कों की शाखें भी मिल जाती हैं। गावँ में चार थोक हैं जिसके नाम बिर्तियाना, तिवारियाना, धाकन तथा हीरामन हैं। पहले दोनों थोकों में ब्राह्मणों का ही अधिकार है। बाक़ी दोनों थोकों में ब्राह्मणों तथा बेंगर-क्षत्रियों की ज़मींदारी है। यहाँ के ज़मींदारों में पंडित सधारीलाल चौबे विशेष रूप से प्रसिद्ध हुए हैं। सन् १६०१ में यहाँ की जनसंख्या ४२८७ थी। गावँ में ब्राह्मणों की संख्या अधिक है। यहाँ जूनियर हाई स्कूल, पुलिस थाना, डाकख़ाना, काँजी हौस, लड़कियों का एक स्कूल तथा संस्कृत-पाठशाला हैं।

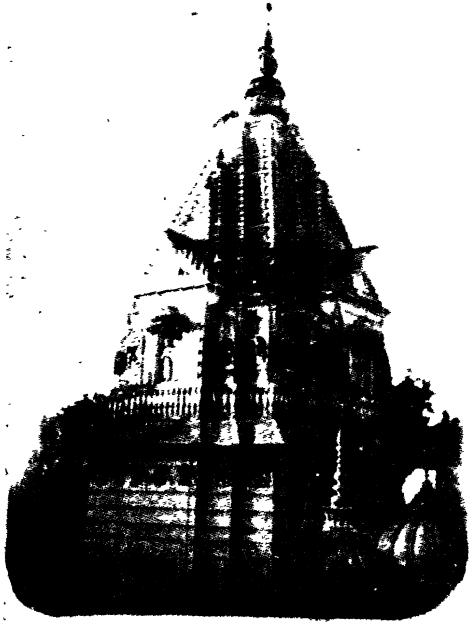
शिवली से संबंधित एक मनोरंजक घटना का उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। सन् १८०१ में जब कानपुर अवध की अमलदारी से हटकर कम्पनी के अधिकार में आया तो शासन के हस्तान्तरित होने से जो गड़बड़ी संक्रान्ति-काल में हुई उसमें लाभ उठाकर कुछ अधिकारियों ने पुराने ज़मींदारों से गावँ छीन कर अपने रिश्तेदारों और मित्रों के नाम उनपर दर्ज कर दिये और सरकारी कागज़ों में जाली ख़ानापूरी कर

दी। शिवली के तहसीलदार उस समय राममोहन घोष थे जिनके नाम से बंगाली-मुहाल में अभी तक 'राममोहन का हाता' प्रसिद्ध है। इन राममोहन महाशय ने उपयुक्त अवसर पाकर अपने पालतू बंदर किशनमोहन के नाम भी एक मौज़ा लिख दिया। स्पेशल कमीशन ने बाद में इस मज़ेदार चोरी का पता लगाया।

सचेंड़ी

यह एक छोटा क़स्बा है जो कानपुर-शहर से १३ मील दूर कालपी-रोड पर स्थित है। साढ़ से शिवली जाने वाली एक कच्ची सड़क भी गावँ के भीतर से गई है। गावँ के पूर्व की ओर से नहर- गंग की कन्नुआ-शाखा गई हुई है। सचेंड़ी को चंदेल राजा चाचकदेव ने बसाया था। तभी तो यह बहुधा चचेंड़ी कहलाता है जो इसका शुद्ध रूप है।

कानपुर-ज़िले के प्राचीन इतिहास में चंदेलवंशी क्षत्रियों का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इनके पूर्वज १४ वीं शताब्दी में कन्नौज से आकर यहाँ बसे। राजा शिवराजदेव ने सन् १३७५ के आसपास शिवराजपुर बसाया, कालान्तर में इस वंश की अनेक शाखायें हुईं जो सपई, पचोर, मुहम्मदाबाद, बिनौर, पहाड़ी, कुँवरपुर, रावतपुर, औनहाँ, खरगपुर, शिवली, बैरी, जाजमऊ, सिकन्दरपुर, काकादेव, तरी, नौरंगाबाद, प्रधानपुर ढोकापुर, दुर्गापुर, बेहटा, सखरेज आदि स्थानों में जा बसीं। इनमें से सपई, औनहाँ, पचोर, रावतपुर, काकादेव, सखरेज,



खेड़ेश्वर का मंदिर, छत्रपुर-काकूपुर

(पृष्ठ [illegible])



सरैयाँघाट पर राजा मनीप्रसाद का मंदिर

(पृष्ठ [illegible])

तथा बिनौर वाली शाखायें अधिक प्रसिद्ध हुईं। बिनौर वाली शाखा के संस्थापक हरसिंह थे, जो राजा शिवराजदेव के पौत्र गरगजदेव के तीसरे पुत्र थे। ये बिनौर में जा बसे। इनकी आठवीं पीढ़ी में जादोराय हुए, जो उदयकरण के सब से बड़े पुत्र थे। जादोराय के चार पुत्रों में सब से बड़े प्रताप-सिंह थे जो सचेंडी या चचेंड़ी में जाकर बसे।

इन्ही प्रतापसिंह राय के ज्येष्ठ पुत्र हरसिंह राय के हिन्दूसिंह नामी प्रतापी पुत्र हुए। इनके समय में सचेंड़ी की ख्याति ख़ूब बढ़ी। हिन्दूसिंह ने अपने बाहुबल से आसपास के प्रदेश में अपनी पूरी धाक जमा ली। हिन्दूसिंह की मृत्यु के बाद उसके एक-मात्र पुत्र सम्भरसिंह ने सन् १७४२ में अपने बाहु-बल से फिर सचेंड़ी का राज्य जीत कर अपने कुल की कीर्ति को उज्ज्वल किया और शिवराजपुर के राजा रिसालसिंह को उसकी राजधानी से खदेड़ कर बदला चुकाया। परन्तु सम्राट् मुहम्मद शाह ने पहले ही सन् १७३५ ई० वाले फ़रमान द्वारा सम्भर-सिंह को लगभग ६० गावों का राजा स्वीकार कर लिया था।

सम्भरसिंह ने निस्संतान होने के कारण दरियावसिंह को गोद लेकर अपना उत्तराधिकारी बनाया। दरियावसिंह के भीमसिंह व पृथ्वीसिंह दो पुत्र हुए। भीमसिंह के पुत्र राजा दुर्गाप्रसाद ने सन् १८५७ के विद्रोह में भाग लिया। बाद में डर के मारे उन्होंने सचेंड़ी छोड़ कर कोटरा-मकरन्दपुर में रहना आरंभ कर दिया। उनकी अनुपस्थिति में उनके सब गावँ ज़ब्त कर लिये गये और ज़मींदारी नीलाम कर दी गई।

सन् १८५७ के नवम्बर महीने में मोहनसिंह पँवार नामक एक ठाकुर, जिसके पूर्वज सचेंड़ी के राजा के यहाँ नौकर रह चुके थे, उन्हें गिरफ़्तार करके थाना घाटमपुर ले गया, पर बात ही बात में झगड़ा बढ़ जाने पर राजा दुर्गाप्रसाद ने उसे गोली से मार डाला। राजा भी मारा गया। उसके दो पुत्र बेनीप्रकाश व माधवप्रकाश हुए। उन्हें सरकार ने उनका पुराना घर लौटा दिया। उन्होंने अपने रिश्तेदार बाबू शिव-बख्शसिंह बघेले ठाकुर के नाम से सचेंड़ी का कुछ हिस्सा ख़रीद लिया।

सन् १८४७ में संचेंड़ी की जनसंख्या ५२१७ थी। यहाँ पुलिसथाना, डाकख़ाना, काँजी-हौस तथा प्राइमरी स्कूल हैं। एक बहुत घना बाग़ भी है जिसे हिन्दूसिंह का बाग़ कहते हैं। लोगों का कहना है कि उसे राजा हिन्दूसिंह ने लगवाया था। कानपुर के लाला रामनारायण गर्ग का एक गूदड़ साफ़ करने का मिल भी यहाँ है। राजा हिन्दूसिंह की गढ़ी का ध्वस्त भाग अब भी देखा जा सकता है। उसके खण्डहरों के चिन्ह दूर तक फैले हुए हैं।

सपई

सपई कानपुर से ११ मील दक्षिण-पश्चिम की ओर उत्तर २६°२०′ अक्षांश तथा ८०°११′ पूर्व देशान्तर-रेखाओं के बीच रिंद-नदी के किनारे बसा हुआ है। इसे शिवराजपुर को बसाने वाले राजा शिवराजदेव के छोटे भाई लघुदेव ने राव की

उपाधि पाकर संवत् १३६१ में बसाया । इनकी छठवीं पीढ़ी में सम्भरसाह (सुमेरशाह) हुआ जिसने अपने भाई रामसाह को रावत की उपाधि दी और उसने रावतपुर बसाया। सपई के इस वंश के ही लोग खेउरा, रावतपुर, कठारा, जाम्मू, अटरी, कुँडरी, पनका, पतारा, दुवारी, सीढ़ी तथा धरहरा में रहते हैं।

गावँ का मुख्य व्यवसाय खेती है । जमींदारी चंदेल ठाकुरों की ही है । गावँ की जनसंख्या बहुत अधिक नहीं है । सन् १६०१ में यह केवल १२८६ थी । गावँ में प्राइमरी स्कूल तथा लड़कियों का भी एक स्कूल है ।

साढ़-सलेमपुर

ये दोनों गावँ यद्यपि अलग अलग हैं परन्तु उनका पुराना सम्बन्ध होने के कारण लोग उनको सम्मिलित नाम से ही पुकारते हैं । साढ़ २६°१४′ उत्तर अक्षांश तथा ८०°२१′ पूर्व देशान्तर-रेखाओं के मध्य में कानपुर से दक्षिण की ओर १५ मील की दूरी पर स्थित है । यह पहले तहसील रह चुका है । सन् १८४३ में तहसील यहाँ से हट कर नरवल चली गई । तब से इस स्थान का महत्व भी कम होगया । यह घाटमपुर से सलेमपुर जाने वाली सड़क के किनारे पर बसा हुआ है । शिवली से कोड़ा जाने वाली सड़क भी यहीं पर उक्त पहली सड़क को काटती हुई निकल गई है । यहाँ डाकखाना, कॉंजीहौस तथा प्राइमरी स्कूल हैं । आबादी अधिकतर ब्राह्मणों की है । यहाँ गत शताब्दी में पण्डित बैजनाथ अवस्थी अपनी विद्या के लिए प्रख्यात थे।

सलेमपुर २६°२१′ उत्तर अक्षांश तथा ८०°३५′ पूर्व देशान्तर-रे-खाओं के बीच कानपुर से दक्षिण-पूर्व की ओर ११ मील की दूरी पर जाजमऊ से महाराजपुर जाने वाली सड़क पर स्थित है। यह भी तहसील रह चुका है और इसमें अकबर के शासन-काल के मँझावन तथा जाजमऊ के महाल शामिल थे। सन् १८३४ में सलेमपुर-परगने को तोड़कर साढ़ में मिला दिया गया और इस प्रकार तहसील का नाम साढ़-सलेमपुर हो गया। बाद में इसी को तोड़कर नरवल को तहसील बनाया गया जो स्वयं अब कानपुर-तहसील में सम्मिलित कर दिया गया है। कहा जाता है कि इसे उक्त नये परगने के चौधरी सलेम ख़ाँ ने बसाया था परन्तु उनके सम्बन्ध में विशेष कुछ हाल नहीं मिलता। किसी समय यहाँ नील का बहुत बड़ा व्यापार होता था।

सिकंदरा

सिकंदरा भोगनीपुर-तहसील में एक पुराना क़स्बा है। यह कानपुर से ४५ मील दूर उत्तर २६°२२′ अक्षांश तथा ७९० ३७ पूर्व देशान्तर-रेखाओं में स्थित है। यहाँ से रसधान, डेरापुर, बीजामऊ, मंगलपुर, रसूलाबाद तथा बिल्हौर को सड़कें गई हुई हैं। कहा जाता है कि सिकंदर लोदी ने इसे बसाया था। परन्तु इतिहास में इसके संबंध में इसके सिवा और कुछ पता नहीं लगता कि यह बिलासपुर नामक एक गाँव में, जो यमुना के किनारे बसा हुआ एक पुराना गाँव था तथा सन् १८६१ तक

परगना रहा था, लगता था। सन् १८०४ से १८४० तक यह प्रदेश हिम्मतबहादुर गोसाईं के वंशजों की जागीर के रूप में रहा। उक्त गोसाईं के संबंध में अधिक हाल प्रसिद्ध वंशों के वर्णन में बतलाया गया है। तृतीय पिंडारी तथा मराठा युद्ध के समय लार्ड हेस्टिंग्स ने सिकंदरे को ही अपना सदर मुक़ाम बनाकर कई महीने तक यहीं से सारे युद्ध का संचालन किया था। प्राचीन मुग़ल-रोड पर होने के कारण पुराने समय में इस क़स्बे का कुछ महत्व था। परन्तु अब यहाँ का बाज़ार केवल स्थानीय महत्व का रह गया है। यहाँ मुग़लों की बनवाई हुई एक पुरानी सराय है तथा और अन्य बहुत सी पुरानी इमारतो और मक़बरों के ध्वंसावशेष पाये जाते हैं जिससे इसके पुराने समय में समृद्धिशाली होने का प्रमाण मिलता है। सन् १८४७ नगर की आबादी ३८८४ थी। यहाँ पुलिस थाना, डाकख़ाना, काँजीहौस तथा प्राइमरी स्कूल हैं। सप्ताह में दो दिन बाजार लगता है। किसी समय यहाँ के बनने वाले शक्कर के ओले दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे, परन्तु उस कुएं के सूख जाने के कारण, जिसके जल से बनाये जाने के कारण ये ओले इतने अच्छे होते थे, उक्त व्यवसाय अब नष्ट हो गया है।

सिरसौल

यह कानपुर-तहसील के अंतर्गत २६° १६′ उत्तर अक्षांश तथा तथा ८०° ३०′ पूर्व देशान्तर-रेखाओं के बीच कानपुर से १५ मील

दूर ग्रांड-ट्रंक-रोड पर स्थित है। यह ई० आई० आर० का स्टेशन है परन्तु वास्तव में स्टेशन फुफुआर नामक पास के गावँ में है। स्टेशन से एक पक्की सड़क महाराजपुर को मिलाती हुई नरवल जाती है।

यह गावँ अपने आकार तथा जन-संख्या के कारण ही प्रसिद्ध है। सन् १८६१ में यहाँ की जन-संख्या ३५०२ थी। बैस-क्षत्रिय यहाँ के प्रमुख निवासी हैं। बैसों और ब्राह्मणों की बस्ती अधिक है। यहाँ डाकखाना तथा प्राइमरी स्कूल हैं और सप्ताह में दो दिन बाज़ार लगता है। दशहरे के अवसर पर मेला भी लगता है।

परिशिष्ट—१

उपर्युक्त अध्याय में कुछ स्थानों का वर्णन यथास्थान देने से रह गया है। वह इस परिशिष्ट में दिया जाता है।

कहिंजरी (तहसील ' डेरापुर)

कहिंजरी अथवा कैंजरी नाम के कई गावँ पास ही पास बसे हुए हैं जिनके नाम मकरंदपुर-कहिंजरी, भगवन्तपुर-कहिंजरी, कहिंजरी खुर्द और बरनपुर-कहिंजरी हैं। इनमें से मकरन्दपुर-कहिंजरी ही सबसे बड़ा है। यह २६° ३६′ उत्तरी अक्षांश और ७६° ५५′ पूर्वीय देशान्तर-रेखाओं पर स्थित है जो शिवली-रसूलाबाद की सड़क पर रसूलाबाद से

८ मील और कानपुर से ३२ मील दूर है। यह बहुत समय से गौड़वंशीय क्षत्रियों के अधिकार में रहा है। इस वंश का विस्तृत इतिहास अगले अध्याय में दिया हुआ है। सन् १६०१ की गणना के अनुसार इसकी जन-संख्या १८४६ थी। यहाँ के ब्राह्मणों में धन्नी के शुक्ल प्रसिद्ध हैं जिनमें "शिवसिंह-सरोज" के अनुसार कुछ कवि भी हुए हैं। कहिंजरी ख़ास से मकरन्दपुर का गावँ लगभग ४ मील दूर पश्चिम की ओर है। कहिंजरी से कुछ ही दूर दक्षिण की ओर रिन्द-नदी के किनारे औंमान नामक गावँ है जहाँ एक प्राचीन गढ़ी है और जहाँ कुछ प्राचीन सिक्के, मूर्तियों के खण्ड आदि मिले हैं। यहाँ एक जूनियर हाई स्कूल, एक प्राइमरी स्कूल, एक डिस्पेन्सरी, काँजीहौस तथा लड़कियों का स्कूल है। कुछ समय तक यहाँ पुलिस का थाना भी था जो अब तोड़ दिया गया है। सप्ताह से में दो बार बाज़ार भी लगता है। जो पक्की सड़क चौबेपुर से बिधूना को बन रही है वह कहिंजरी से होकर जायगी और तब इसका महत्व कुछ बढ़ेगा। कहिंजरी और मकरन्दपुर के बीच में इटैली की झील है। कहिंजरी का गावँ ४ खत्तों में विभक्त है जिनके नाम भूरदेव, भीखदेव, बड़ा गावँ और बरई झाल हैं।

काशीपुर (तहसील अकबरपुर)

काशीपुर का गावँ काफ़ी बड़ा है और कुछ वर्षों तक इसकी जन-संख्या भी अच्छी ख़ासी थी, जिसकी चर्चा 'जन-संख्या'

वाले अध्याय में हो चुकी है। शिवली से रूरा जाने वाली कच्च सड़क पर शिवली से ६ मील और कानपुर से २८ मील दूर यह बसा हुआ है। इसकी स्थिति २६°३५′ उत्तरी अक्षांश और ७९ ५७′ पूर्वीय देशान्तर-रेखाओं के बीच में है। यहाँ एक प्राइमरी स्कूल, एक लड़कियों का स्कूल और डाकखाना है। सन् १८६ में यहाँ एक स्त्री सती हुई थी, जिसकी चर्चा अन्यत्र हो चुकी है। यह स्थान भी गौड़-क्षत्रियों के इलाक़े में प्रसिद्ध रहा है।

गहलौं (तहसील अकबरपुर)

२६° ३१° उत्तरी अक्षांश और ७९° ५८′ पूर्वीय देशान्तर रेखाओं के मध्य में गहलौं का गाँव रिंद-नदी के पूर्वीय अथव बाएँ किनारे पर बसा हुआ है। यह रूरा स्टेशन से उत्तर पूर्व ५ मील दूर है। आसपास के क्षेत्र में तम्बाकू की काफ़ी खेती होने से यहाँ का बाज़ार जो सप्ताह में दो दिन लगत है और कुछ स्थानीय महत्व रखता है। गौड़ों के प्रसिद्ध पुरुष पटहर देव के ७ पुत्रों में से बूलरसिंह के वंशजों के हाथ गहलौं-तालुक़े के २४ गाँव किसी समय थे। गहलौं स्वयं एक बहुत छोटा गाँव है, पर इसमें इसके पास के बहुत से छो मौज़े भी शामिल हैं। उनके नाम गहलौं, अर्वी, निजाबतपुर भरती, टीपू, सहसी, सिरसी, नरसूफा, मुरीदपुर, भैरौं-शाह जहाँपुर आदि हैं। इस ज़िले में कान्यकुब्ज-ब्राह्मणों में प्रभाकर के अवस्थियों का यह प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ भी एक प्राइमरी स्कूल और डाकखाना है।

पतारा (तहसील घाटमपुर)

कानपुर से हमीरपुर जाने वाली सड़क पर कानपुर से २० मील दूर २६° १४′ उ० अक्षांश तथा ८०° १२′ पू० देशान्तर-रेखाओं के बीच पतारा का गावँ स्थित है। यह भी गौड़वंश का पुराना गावँ है। यहाँ पर चैत के महीने में नचेलिया देवी का मेला लगता है। कानपुर बाँदा लाइन पर यह एक स्टेशन भी है। यहाँ पर लड़कों और लड़कियों के प्राइमरी स्कूल हैं।

पूरा (तहसील बिल्हौर)

कानपुर-अछनेरा लाइन तथा ग्रांड-ट्रंक-रोड पर कानपुर से २५ मील दूर पूरा-नामक गावँ है जो २६° १४′ उत्तर अक्षांश तथा ८०° १२′ पूर्व देशान्तर-रेखाओं पर स्थित है। इसके पास ही उतरी-नामक गावँ है। इसीलिए इन दोनों को मिलाकर उतरी-पूरा कहते हैं। यहाँ के बाजार का बहुत कुछ स्थानीय महत्व है। गावँ में प्राइमरी स्कूल और डाकखाना भी हैं।

बिधनू (तहसील कानपुर)

कानपुर-हमीरपुर-रोड पर कानपुर से १३ मील दूर यह गावँ है जो २६° १९′ उ० अक्षांश और ८०° १६′ पू० देशान्तर-रेखाओं की बीच स्थित है। यहाँ से एक कच्ची सड़क सचेंडी को जाती है जो कालपी-रोड में मिल जाती है। कानपुर-बाँदा-

लाइन पर पहले यह स्टेशन था, पर द्वितीय महायुद्ध दे अनन्तर जब इस लाइन का पुनरुद्धार हुआ तो इसको पतार से मोड़कर भीमसेन ले जाने से बिधनू छूट गया। यहाँ एव जूनियर हाई स्कूल, एक प्राइमरी स्कूल, डाकखाना औ पुलिस-थाना हैं। पास के गावँ खिरसा को मिलाकर इसे खिरसा-बिधनू कहते हैं। यहाँ बाज़ार भी सप्ताह में दो दि लगता है। यहाँ पहले डाक्टर इक़बालनारायण गुर्टू की ज़मीन्दारी थी जो अब बेंच दी गई है।

मैथा (तहसील अकबरपुर)

मैथा का गावँ ई० आई० आर० के स्टेशन मैथा से २ मील दूर स्थित है। इसी के पास लालपुर-गावँ है। इसलिए इसे मैथा-लालपुर कहते हैं। यह ब्राह्मणों और विद्वानों का प्राची स्थान है। आधुनिक युग में इसे पंडित मनीराम त्रिवेदी औ श्री स्वामी भास्करानन्द सरस्वती की जन्म भूमि होने का सौभा ग्य प्राप्त हुआ। स्वामी जी अपनी विद्या, तपश्चर्या और पूर्ण वैराग्य के कारण देश-विदेश में प्रसिद्ध हुए। बाल्यावस्था में ही आप गृह-त्याग कर काशी चले गये और वहीं योगा भ्यास और विद्याध्ययन कर रहने लगे। वहीं आनन्द-बाग़ में अमेठी के राजा-द्वारा निर्मित उनकी सुन्दर संगमरमर की समाधि है। आपने ६ जुलाई सन् १८९९ को नश्वर शरीर का त्याग किया। गावँ में उनकी संगमरमर की मूर्ति एक मंदिर में स्थापित है। इस ज़िले के अनेक धनी-मानी व्यक्ति

श्री स्वामीजी महाराज के शिष्य थे, जिनमें से छोटेलाल गयाप्रसाद फ़र्म के लाला गयाप्रसाद भी थे। छोटेलाल गया-प्रसाद ट्रस्ट की ओर से काशी के भदैनी मुहल्ले में एक क्षेत्र व धर्मशाला का श्री स्वामी भास्करानन्द की पुण्य-स्मृति में अभी कुछ वर्ष पहले निर्माण हुआ। नरवल का श्री॰भास्करानन्द हायर सेकेंडरी स्कूल भी आप ही की स्मृति में है। एक दूसरे संन्यासी बाबा मंगलीदास भी मैथा के आसपास के पलास के जंगलों में बहुधा निवास करते थे। ये परम त्यागी और सिद्ध महात्मा थे।

मैथा में डिस्पेंसरी, डाकख़ाना और प्राइमरी स्कूल भी हैं।

रमईपुर (तहसील घाटमपुर)

कानपुर-हमीरपुर-रोड पर कानपुर से ११ मील दूर रमई-पुर-नामक गावँ है जो अकबर और बीरबल के समकालीन रमई त्रिपाठी का स्मरण दिलाता है। ये अपने समय के प्रति-ष्ठित ब्राह्मण थे। इन्हीं के चार पुत्र दमा, गोपाल, गोवर्द्धन और चत्तू थे जिनके नामों से कान्यकुब्ज त्रिपाठियों के चार प्रसिद्ध वंश चले। रमईपुर से एक कच्ची सड़क मँझावन और कुंदौली को जाती है।

किसी समय रमईपुर चौहानों की बड़ी जागीर की राज-धानी था। मैनपुरी के राजा घनश्यामसिंह ने १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में यहाँ अपना आधिपत्य स्थापित किया। सचेंडी

के राजा हिन्दूसिंह ने इन्हें २२ गावँ दिये जिनमें रमईपुर औ नरवल भी थे। इन स्थानों में पहले गौतमवंशीय शासक थे राजा घनश्यामसिंह अपने समय के एक प्रसिद्ध व्यक्ति और कहते हैं कि उन्होंने ५२ क़िले बनवाये। कानपुर-नगर इतिहास में यह कहा जा चुका है कि राजा हिंदूसिंह के आदे से राजा घनश्यामसिंह ने पुराने कानपुर में दो फाटक शह पनाह के, तथा एक पक्का घाट और मकान भी बनवाये। पुरा कानपुर की ज़मींदारी भी पहले इन्हीं के हाथ में रही। प अवध-शासन-काल में इनके वंशज बेदखल कर दिये गये अंग्रेज़ी शासन स्थापित होने पर राजा घनश्यामसिंह के वंश राजा खिरनेतसिंह को ज़मींदारी की सनद न मिली और त से इस चौहान वंश का वैभव अस्त हो गया।

सखरेज (तहसील बिल्हौर)

सखरेज का राज्य पचोर के चंदेल रावत छत्रसिंह द्वितीय पुत्र सिंहमन द्वारा स्थापित हुआ। सन् १८०१ अंग्रेज़ी शासन क़ायम होने पर इस वंश के राजा के पास गावँ शेष थे। राजा ज़ोरावरसिंह ने सखरेज, सकरवाँ अ रामपुर को बेच डाला और सन् १८७५ में केवल ४ गावँ इस वंश के पास रह गये थे। अब सखरेज के राजा नामधा व्यक्ति नितान्त निर्धन हैं।

सखरेज पांडो-नदी और गंगा की नहर की कानपुर-शा के बीच में बसा हुआ है जो शिवली से ३ मील उत्तर है। य भी प्राइमरी स्कूल, डिस्पेन्सरी और डाकख़ाना हैं।

सजेती (तहसील घाटमपुर)

कानपुर से हमीरपुर जाने वाली सड़क पर कानपुर से ३३ मील दूर २६° ३′ उ० अक्षांश और ८०° १०′ पू० देशान्तर-रेखाओं के बीच में सजेती का गावँ है। यहाँ से फ़तेहपुर-ज़िले के अमौली-गावँ को कच्ची सड़क जाती है। यहाँ पुलिस थाना, प्राइमरी स्कूल और डाकख़ाना हैं। इस ओर यमुना के किनारे तक इसी थाने का इलाक़ा होने के कारण इसका विशेष महत्व है।

सरवनखेड़ा (तहसील अकबरपुर)

सरबनखेड़ा का गावँ कानपुर-झाँसी रेलवे लाइन के पामाँ स्टेशन से २ मील दक्षिण-पूर्व, अक़बरपुर से १० मील दक्षिण-पूर्व की ओर कानपुर से १६ मील दूर बसा हुआ है। यह २६°२१′ उ० अक्षांश और ८०°६′ पू०. देशान्तर में स्थित है। सचेंडी से गजनेर जाने वाली कच्ची सड़क यहाँ से होकर जाती है। यहाँ बहुत दिनों तक सेंउथा के चौहानों की ज़मींदारी रही, पर अब वे केवल किसान की हैसियत से यहाँ काफ़ी संख्या में रहते हैं। यहाँ एक डाकख़ाना और एक प्राइमरी स्कूल है। हफ़्ते में दो दिन बाज़ार भी लगता है।

परिशिष्ट—२

स्थानो के नामों की व्युत्पत्ति

कानपुर-जिले के स्थानों के नामों का व्युत्पादन भाषा-शास्त्र की दृष्टि से तो एक अत्यन्त रोचक विषय है ही, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से भी वह अपना महत्व रखता है। साधारण रूप से अनेक गावों के नाम निरर्थक प्रतीत होते हैं, परन्तु यदि भाषा शास्त्र द्वारा निर्धारित नियमों से विधि मिलाई जाय तो उनमें से बहुत अनगढ़ और अनमिल नाम सार्थक सिद्ध होने लगते हैं। जो रूढ़ शब्द फिर भी बच रहते हैं वे भी अधिक छानबीन और शोध के परिणाम-स्व-रूप योगिक रूप धारण कर सकते हैं। उनका रूढ़त्व हमारे अपूर्ण ज्ञान का ही परिचायक है। सहस्रों वर्षों से विभिन्न युगों के इतिहास की छलनियों से छनते छनते स्थानों के नाम ऐसे घिस गये हैं कि आज वे सर्वथा अपरिचित जान पड़ते हैं, पर सूक्ष्म गवेषणा से हम उनमें उन सभी युगों के प्रभावों को प्रतिबिम्बित पा सकते हैं। इन स्थानों के नामों में भी इतिहास के विभिन्न स्तर विद्यमान हैं।

इस व्युत्पादन के कार्य में हमें कुछ सर्वपरिचित प्राचीन स्थानों के नामों और उनके वर्तमान अपभ्रंश रूपों का सहारा लेना पड़ेगा। और उन्हीं के आधार पर हमें अपने जिले के

स्थानों के नामों में से कुछ अर्थ निकालने का उद्योग करना पड़ेगा। संस्कृत में स्थानवाची कुछ शब्द ये हैं :—

नगर, नगरी, पुर, पुरी, धाम, स्थान, स्थल, स्थली, वास, निवास, आवास, ग्राम, बन, द्वीप, ओघ, क्षेत्र, हट्ट, पल्ली, पत्तन, वती, गिरि, मेरु, अद्रि, सर (तालाब) आदि।

इनमें से मेरु, गिरि और अद्रि पर्वतसूची होने कारण हमारे जिले की समतल भूमि के लिए अप्रासंगिक हैं। पत्तन का प्रयोग भी समुद्र के तट पर बसे हुए नगरों—बन्दरगाहों—के लिए ही विशिष्ट हो गया था। हमारे यहाँ ये भी नहीं मिलेंगे। शेष स्थानवाची संस्कृत शब्दों के बिभिन्न प्राकृत एवं अपभ्रंश रूप बनते गये और विद्वानों ने इन सब को एकत्र कर इनके क्रमिक विकास का शास्त्रीय अध्ययन किया है। अब हम दृष्टान्त के रूप में कुछ नाम देते हैं जिनके आद्य, मध्यवर्ती और उत्तरवर्ती रूपों से इस विषय के अध्ययन में विशेष सहायता मिलेगी।

१. नगर :— कुशिनगर गौतम बुद्ध के समय में कुशिनार होकर आज कसिया कहलाता है। नगर का एक दूसरा संक्षिप्त रूप नेर भी है, जैसे साँगानगर से साँगानेर। नन्दनगर से नँदना में 'ना' नगर का संक्षिप्त रूप है।

२. पुर :— पुरुषपुर से पेशावर, लबपुर से लाहोर, शृंगपुर से सिंगरौर, चन्द्रपुर से चन्दवार, आर्यपुर से ऐहोल, कुसुमपुर से कुमरार, सिद्धपुर से सिद्धौर, हिरण्यपुर से हिंदौन।

३. पुरी :— मधुपुरी से महोली, राजपुरी से राजौरी।

४. स्थल :— कपिस्थल से कैथल ।

५. स्थली :— वामनस्थली से बनथली

६. स्थान :— मातृस्थान से माईथान, मूलस्थान से मुलतान ।

७. वन :— कूर्मवन से कुमाऊँ, यष्टिवन से जेठियान बुद्धवन से बुधैन।

८. ग्राम :— नंदग्राम से नँदगावँ, मयूरग्राम से मौरावँ, मौरावाँ और मौरायाँ, मल्लग्राम से मल्लावाँ।

९. वती :— लक्ष्मणावती से लखनौती, चर्मणवती से चम्बल, वेत्रवती से बेतवा ।

१०-क्षेत्र अथवा खेटक :— शूकरक्षेत्र से सूकरखेत, बनक्षेत्र से बनखेड़ा ।

११-पल्ली :— पल्ली से पाली ।

१२. द्वीप :— मालद्वीप से मालदीप और मालदीब ।

१३. वास :— वनवास से बनबसा ।

१४. ओध :— दम (दमयंती)+ओध=दमोध, दमोह ।

१५. हट्ट :— द्वै हट्ट से बेहटा

अब उपर्युक्त दृष्टान्तों अथवा सूत्रों के आधार पर हम अपने ज़िले के अनेक गावों के नामों का व्युत्पादन सरलता से कर सकते हैं। ऊपर दी हुई संख्याओं के अनुसार अब इस ज़िले के स्थानों का वर्गीकरण कीजिए ।

१—मान्धातानगर से मन्धना, गजनगर से गजनेर, नन्दनगर से नँदना, वत्सनगर से बछना, राधानगर से राधन,



एक प्राचीन मंदिर, घाटमपुर (पृष्ठ ३०२)



राजा वीरबल द्वारा निर्मित वीरेश्वर महादेव का मंदिर, सजेती

(पृष्ठ ३८१)

कायस्थनगर से कायथान, दुवेनगर से दुबियान, कोलीनगर से कोरियान, औंड़ेरी सम्भवतः बौद्धकालीन उदुंवरनगरी है।

२—फूफापुर (?) से फुफुआर, वरपुर से बरौर, विल्वपुर से बिल्हौर, पचपुर से पचोर, आलम्बिकापुर से अन्ततोगत्वा अलौर और फिर अरौल, खिरसपुर से खिरसौल (संस्कृत में र और ल में परस्पर परिवर्तन हो जाता है), वेणुपुर से बिनौर।

३—मधुपुरी से महोली (हमारे यहाँ भी इस नाम के कई गावँ हैं), गाधिपुरी से गहोली, बुद्धपुरी से बुधौली, चीलपुरी से चीलौली, कुन्दपुरी से कुन्दौली, वृद्धपुरी से बढ़ौली और फिर बढ़ौलिया, कुष्टपुरी से कुढ़ौलिया, आभीरपुरी से अहरौली।

४—बनस्थल से बनथर।

५—वनस्थली से बनसथी।

६—मातृस्थान से मैथान और मैथा, कपिस्थान से कैथा, स्वामीस्थान से सैंथा।

७—काकवन से कक्कवन, मध्यवन से मँझावन, ओझावन से झौझान। 'ओझा' शब्द उपाध्याय का विकृत रूप है।

८—शनिग्राम से सनिगवाँ, करवीग्राम से करबिगवाँ, पुष्कर-ग्राम से पुखरावाँ और फिर पुखरायाँ, आभीरग्राम से अहिरवाँ।

९—सम्भवतः मौती भगवती का रूपांतर है।

१०—खेटकेश्वर अथवा क्षेत्रेश्वर से खेड़ेश्वर। खेड़ा नाम के अनेक स्थान इस जिले में हैं, जैसे धाऊखेड़ा, पासीखेड़ा।

११—पाली, पाल्हेपुर आदि नाम पल्ली से बने हैं। बरी पाल भी शायद इसी वर्ग का शब्द है।

१२—सम्भवतः परास, मलासा आदि नामों में वास-शब्द का कुछ प्रभाव है।

१३—निग्रोध (बरगद) से सम्भवतः निगोह और निगोही

१४—बेहटा-नाम के गावँ और ज़िलों की भांति इस ज़ि में भी अनेक हैं। जहाँ दो बार (सप्ताह में) बाज़ार लगे व द्वैहट्टा अर्थात् बेहटा।

उपर्युक्त नामों के अतिरिक्त मऊ नाम के गावँ भी हैं, जैसे जाजमऊ, नानामऊ, सीसामऊ, बीरामऊ, हारामऊ, नरामउ गोगोमऊ, घिमऊ, भंदेमऊ, सिमरामऊ। इनमें से कुछ तो अ प्राचीन हैं। मऊ-शब्द सम्भवतः संस्कृत की 'मू' धातु से निकल है, जिसके अर्थ हैं घेरना, ढकना। कुछ अन्य स्थानों के नाम ऊका रान्त हैं, जैसे सैंबसू भैंसऊ, बरई-गढ़ू, बिधनू, मनेथू आदि सम्भव है इनका ऊकार मऊ का ही रूपान्तर हो।

कुछ ईकारान्त नाम भी हैं, जैसे सचेंड़ी (जो पहले चचेंड़ कहलाता था और जिसे चाचकदेव चन्देल ने बसाया थ चन्देरी, शृंगेरी, माचेड़ी अर्थात् प्राचीन अलवर, बहेड़ा, औ सम्भवतः बरेली आदि नाम भी इसी वर्ग के प्रतीत होते है कंजती, जिनई, कहिंजरी, पड़री, वरी, इटैली आदि, इनमें पु शब्द का आभास है।

कुछ आकारान्त नाम हैं, जैसे, बर्रा, निटर्रा, अटर्रा, रूर महेरा, सिरुआ, कठारा, कठेरुआ, ओरिया, रुयोरा, ज्योरा, पूर

पतारा, चौरा, बारा आदि जिनमें सम्भवतः पुर अथवा पुरा शब्द की ध्वनि है। खमैला, गुजरैला, नदीहा, आदि का व्युत्पादन हमारी समझ में नहीं आता। गहलौं सम्भवतः गुहिलवन होगा जिस प्रकार जालौन गालवबन हो सकता है।

इन प्राकृत अथवा अपभ्रंश नामों का विकास सम्भवतः बौद्धकालीन और उसके बाद के युग में हुआ होगा। और इसलिए इन स्थानों को हम उन स्थानों से प्राचीन मान सकते हैं जिनके नाम तत्सम अथवा अर्द्धतत्सम रूप में है, जैसे महाराजपुर, मंगलपुर, शिवराजपुर, राजपुर, भगवन्तपुर, दलीपनगर, रामपुर, कीर्तिपुर, दुर्गापुर, चौबेपुर, विक्रमपुर, घाटमपुर, डेरापुर, रावतपुर, रामनगर, चम्पतपुर, संभरपुर, कल्याणपुर आदि। ये अवश्य उस युग का स्मरण दिलाते हैं जब प्राकृत और अपभ्रंश की महिमा फीकी पड़ गई थी और शुद्ध संस्कृत शब्दों की फिर दुहाई दी जाने लगी थी। यह विचार-धारा अभी तक चल रही है। आजकल जो नये मुहल्लों व नगरों के नाम रक्खे जाते हैं वे तत्सम होते हैं, जैसे गान्धीनगर, गांधीधाम, जवाहरनगर, गोबिन्दपुर, मोतीनगर, तिलकनगर, आर्यनगर, आदि।

मध्यकालीन युग में मुसलिम शासन के आधिपत्य में अरबी और फ़ारसी भाषाओं का प्रभाव स्थानों के नामों पर पड़ना अनिवार्य था। कुछ प्राचीन नाम बदल दिये गये, जैसे मगनपुर, से मकनपुर मुक्तानगर, से मूसानगर, विपोसी से नजफ़गढ़, मालकोसा से रसूलाबाद, गुरईखेरा से अकबरपुर।

कुछ नये बसे हुए गावों के नाम अरबी, फ़ारसी और संस्कृत-मिश्रित रक्खे गये, जैसे मुहसिनपुर, ख्वाजा फूल, मताहिरपुर, अब्दुलपुर, तारापति का नेवादा, अग्निहोत्री नेवादा, शाहजहाँपुर, जहाँगीराबाद, मुहम्मदपुर, शाहपुर, असालतगंज, नबावगंज आदि। इन स्थानों के मध्यकालीन अथवा आधुनिक होने में तो सन्देह है ही नहीं। मराठों का शासन तो इस ज़िले में कुछ वर्षों तक रहा, पर उसका प्रभाव गावों के नामों पर नहीं पड़ा। चौबेपुर और शिवराजपुर के बीच ग्रांड-ट्रंक-रोड पर स्थित ताँतियागंज ही एक ऐसा गावँ है जिसमें मराठी-भाषा की झलक है। इसे बिठूर के सूबेदार परिवार के तात्या साहब ने बसाया था। अंग्रेज़ी शासन में कोई अंग्रेज़ी नाम किसी स्थान को नहीं मिला। हाँ, कान्हपुर से कानपुर (वह भी अंग्रेज़ी की विचित्र स्पेलिंग में) अवश्य होगया और जाजमऊ को कुछ अंग्रेज़-भक्त लोगों ने जार्जमऊ लिखना शुरू ही किया था कि अंग्रेजी राज्य समाप्त होगया। कानपुर-नगर में कुछ सड़कों औरमुहल्लों के नामों में अंग्रेज़ी शासन की गन्ध अभी विद्यमान है, जैसे लाटूश रोड, मेस्टन रोड, हेबलाक रोड, हेस्टिंग्स रोड, क्लाइड रोड, मोलगंज, बेकनगंज, मैकराबर्टगंज, सूटरगंज आदि। अंग्रेज़ों ने भारत में अपने नामों के बहुत कम नगर बसाये और पुराने नामों में परिवर्तन भी बहुत कम किये। लायलपुर, राबर्ट्सनगंज, कैम्पबेलपुर, ऐबटाबाद, काक्स बाज़ार, मांटगोमरी आदि थोड़े से ही नगर इस श्रेणी के हैं। हाँ, उन्होंने अपनी भाषा और उच्चारण के विचार से हमारे

प्राचीन नामों को विकृत खूब कर दिया। कानपुर कानपोर, लखनऊ लकनाऊ, कलकत्ता कैलकटा, मुंबई बाम्बे और दाना-पुर पहले डैनापुर और फिर डीनापुर बन गया। ये विकृत नाम यदि शुद्ध न किये गये तो भविष्य में अंग्रेज़ी शासन की निशानी के रूप में बने रहेंगे।

'गंज' शब्द आज कल मंडी के अर्थ में प्रयुक्त होता है, किन्तु फ़ारसी और संस्कृत दोनों में यह समूह-वाची है। चीनी यात्री ह्यून सांग के अनुसार नालन्दा-महाविद्यालय के पुस्तक-संग्रह को धर्मगंज कहते थे। कानपुर-नगर के मुहल्लों में गंज वाले नाम बहुत हैं

———

पन्द्रहवाँ अध्याय

प्रसिद्ध वंश

ऐतिहासिक युग में कानपुर-जिले से अनेक प्रसिद्ध वंशों एवं परिवारों का सम्पर्क रहा, जिनकी संक्षिप्त चर्चा पिछले अध्यायों में यत्र-तत्र हो चुकी है। साधारण इतिहास के साथ उनका विस्तृत वर्णन अप्रासङ्गिक सिद्ध होता। स्थानों के वर्णन के साथ भी उनकी विरदावली गाना उचित प्रतीत न होता। इस अन्तिम अध्याय में हम कुछ ऐसे वंशों का विस्तृत इतिहास देंगे जिन्होंने अपने-अपने युगों में अपनी-अपनी विशिष्ट ध्वजायें फहरा कर यशोपार्जन किया। हमारे सौभाग्य से अनेक क्षत्रिय तथा अन्य वंशों एवं परिवारों की प्रामाणिक वंशावलियाँ उपलब्ध हैं। "कानपुर-गजेटियर" में संक्षिप्त रूप में और "तारीखे-जिला कानपुर" में विस्तृत रूप से कुछ परिवारों के इतिहास मिलते हैं। इनके अतिरिक्त गौड़ों के

इतिहास के सम्बन्ध में दो प्रकाशित ग्रन्थ पं० शिवप्रसाद त्रिपाठी-विरचित "गौड़ क्षत्रियेतिहास" तथा होलीपुर (ज़िला रायबरेली) निवासी बन्दीजन रामबख्श विरचित "रामेश्वर विलास पिंगल" भी हमारे मित्र कहिंजरी-निवासी श्री ठाकुर गुलालचन्द्रसिंह गौड़ के सौजन्य से हमें देखने को मिले। चन्देलों का प्रामाणिक इतिहास मुंशी दरगाहीलाल के ग्रन्थ में विशद रूप से दिया हुआ है जो अवश्य इस वंश की प्राचीन शाखावलियों और परम्पराओं के आधार पर संकलित किया गया था, क्योंकि उक्त लेखक इस वंश की प्रभुता अस्त होने के समय, अर्थात् १८५७-५८ में, कानपुर की कचहरी के प्रमुख वकीलों में था और उसने इस वंश के अनेक मुक़द्दमों में पैरवी की थी। अन्य वंशों के वर्णन भी 'गज़ेटियर' तथा "तारीखे ज़िला कानपुर" में दिये हुए हैं। अवध-राज्य से सम्बन्धित अनेक प्रकाशित ग्रन्थों से भी हमने इस अध्याय में वर्णित अनेक वंशों के इतिहास की सामग्री सङ्कलित की है। गोसाईं-वंश और हिम्मतबहादुर का विस्तृत इतिहास जिस आकार-प्रकार में इस अध्याय में दिया हुआ है वैसा शायद पहले कभी प्रकाशित नहीं हुआ। इसी प्रकार पेशवा-वंश तथा तत्सम्बन्धी अन्य मराठा परिवारों का विस्तृत वर्णन भी अनेक अंग्रेज़ी और मराठी प्रकाशनों के आधार पर सङ्कलित किया गया है। सत्तावनी क्रान्ति के बाद जिन परिवारों ने कानपुर के विभिन्न क्षेत्रों में यश प्राप्त किया उनका इतिहास उनके वर्तमान प्रतिनिधियों से पूछताछ के बाद लिखा गया है

और उपलब्ध लिखित सामग्री का भी यथासम्भव उपयोग किया गया है। इस परिवारों में से कुछ का वर्णन इस भाग में किया गया है। अन्य प्रसिद्ध परिवारों का वृत्त इस ग्रन्थ के दूसरे भाग में कानपुर के औद्योगिक और व्यापारिक इतिहास के साथ देना अधिक युक्तिसङ्गत प्रतीत हुआ। इसी प्रकार अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियों की जीवनियाँ भी उचित प्रसङ्ग में दूसरे भाग में ही दी जायंगी।

१—गौड़-वंश

उत्पत्ति—कानपुर-ज़िले के प्राचीन क्षत्रिय शासकों में गौड़ों और चन्देलों का महत्व अत्यधिक है। संख्या के विचार से आजकल गौड़ ही सब क्षत्रियों से अधिक हैं। जनश्रुति के अनुसार गौड़-वंश सूर्यवंशी कौशलाधिपति महाराज दशरथ के पुत्र भक्तशिरोमणि भरत के वंशज हैं। तक्षशिला भरत की राजधानी थी। वहाँ से कुछ परिवार गौड़-देश (पूर्व बङ्गाल के वर्तमान मालदा-ज़िले में प्राचीन गौड़-नगर के भग्नावशेष हैं) में जा बसे। तभी से वे गौड़ कहलाये। फिर, कहते हैं, प्रसिद्ध योद्धा पृथ्वीराज चौहान के आश्रय में बच्छराज और बावन नामक दो गौड़-बन्धु अजमेर जा बसे। राजपूताने में इनकी अनेक नई शाखायें फैलीं।

नारऋषिदेव—तक्षशिला वाली आद्य शाखा में नारऋषिदेव नामक एक राजा हुए। एक बार ये गङ्गा स्नान करने सम्भवतः प्रयागराज गये। वहाँ से लौटते समय ये बिठूर गये।

इन्होंने विठूर के समीपवर्ती देश की रमणीकता और पवित्रता पर मुग्ध होकर यहीं बसने का संकल्प किया। इन्होंने रिन्द-नदी के निकट अपने नाम पर "नार" नामक एक गावँ बसा-कर वहाँ एक गढ़ी भी बनवाई। वहीं पर उन्होंने नारद ऋषि के नाम पर एक मन्दिर भी बनवाया। यह नार-ग्राम झींझक स्टेशन से ५ मील पश्चिमोत्तर है और डेरापुर-तहसील के अन्तर्गत है। 'रामेश्वर-विलास" के रचयिता ने इसका आद्य नाम "नार-कालञ्जरी" लिखा है। इसी का अपभ्रंश नार-कहिंजरी हो गया। इस जिले के गौड़ों का यही सर्वप्रथम स्थान है और यहीं से वे कानपुर-जिले के अनेक स्थानों तथा अवध के अमेठी-नामक नगर और वहाँ से अन्य स्थानों में फैल गये। रायबरेली-जिले के अन्तर्गत शिवगढ़-राज्य संयुक्त-प्रान्त में गौड़ों का प्रमुख राज्य है।

बाहरदेव—एक दूसरी अनुश्रुति के अनुसार सीताराम गौड़ बंगाल से मारवाड़ में आ बसे और वहाँ के (प्रतिहार) परिहार-शासकों के सामन्त हो गये। इन प्रतिहारों में से नागभट्ट बड़े प्रतापी हुए जिन्होंने कान्यकुब्ज के राजा चक्रायुध को हराकर कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया। नागभट्ट के साथ मारवाड़ से जसवन्तसिंह गौड़ के चार पुत्र बाहरदेव, नाहरदेव, उदयसिंह और रणसिंह भी कन्नौज आये। उदय-सिंह व रणसिंह तो युद्ध में काम आये, किन्तु बाहरदेव और नाहरदेव को कालपी की जागीर नागभट्ट द्वारा मिली। वहीं दोनों भाई रहने लगे। वहाँ से अपने पूर्वज नारऋषिदेव द्वारा

स्थापित नार-ग्राम की प्रशंसा सुनकर बाहरदेव ने नार ही रहना शुरू कर दिया और कन्नोज के अधीन यहीं इन्हें जागी मिली। बाहरदेव के पुत्र शिवरामदेव ने नार में क़िला बनवाया। यह घटनायें सम्भवत: १० वीं शताब्दी के प्रारम्भ की हैं। अभी उत्तर भारत पर तुर्कों के हमले प्रारम्भ नहीं हुए थे शिवरामदेव के प्रपौत्र अमानदेव ने फींफंक में एक गढ़ बनवाई। उनके बाद अजयदेव हुए जिन्होंने नार-खुर्द बसाय और वहीं पर अजबसागर तालाब बनवाया। अजयदेव के पौत्र प्रतापदेव ने फरसू-मधवापुर और परवर गावँ बसा और अपनी रानी के नाम पर वृन्दावन ग्राम भी बसाया इनके प्रपौत्र बनसिंह ने 'बिरहुन, बानवास और खेड़ा ग्रा बसाये और मधवापुर में एक गढ़ी भी बनवाई। इनके पौ संग्रामदेव ने मालगावँ में चामुण्डा देवी का मन्दिर निर्मा कराया संग्रामदेव के पुत्र मोहकमदेव ने नैलाशहर में क़ि बनवाया और मौरगावँ बसाया। मोहकमदेव के पुत्र सव जीत ने शाहपुर में क़िला बनवाया। इनका समय बारहवें शताब्दी का प्रारम्भ था। इस समय कन्नौज में चन्द्रदे गाहरवाड़ राज्य करते थे।

सवजीत और चन्द्रदेव से युद्ध की नौबत आ गई। पर सव जीत ने चन्द्रदेव की अधीनता स्वीकार कर क्षमा-याचना की सर्वजीत के पुत्र विश्रामदेव ने विश्रामसागर तालाब बनवाया विश्रामदेव के पुत्र पृथ्वीनाथ थे, जिन्हें कान्यकुब्जाधिपति मह राज गोविन्दचन्द्र की बहिन ब्याही थी। यह घटना १२

शताब्दी के मध्य की है। पृथ्वीचन्द्र के पुत्र कान्हदेव महाराज गोविन्दचन्द्र के सेनापति भी रहे, जिन्होंने अवध के अमेठी नामक स्थान से 'भर' लोगों को मार भगाया और वे वहीं बस गये। तब से गौड़ों की यह शाखा 'अमेठिया' कहलाई। शिवगढ़ के राजा इसी में से हैं। पृथ्वीचन्द्र तुर्कों के साथ युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। इन के द्वितीय पुत्र सिंहदेव नार-ग्राम वाली जागीर के अधिकारी हुए। राजा सिंहदेव के पौत्र बनवीरदेव हुए जिन्होंने परवर में क़िला बनवाया। इनके पुत्र हरदेव ने मालगावँ में क़िला बनवाया और एक तालाब भी खुदवाया।

हरदेव के वंशज—हरदेव से कानपुर-ज़िले के गौड़ों के वंश-विस्तार का वास्तविक इतिहास प्रारम्भ होता है। हरदेव के ७ पुत्र थे:—रसिकचन्द्र, वत्सराज, बावनसिंह, बुलारसिंह, रौचन्द्र, हृदयचन्द्र और भौनिकचन्द्र। राजा हरदेव के मरने के अनन्तर उनके द्वितीय पुत्र वत्सराज उनकी गद्दी के अधिकारी हुए क्योंकि उनके सबके बड़े पुत्र रसिकचन्द्र अन्धे थे। पर वत्सराज ने अपनी ओर से अपने बड़े भाई रसिकचन्द्र के ज्येष्ठ पुत्र गोपालचन्द्र को नार का राज्य और दूसरे पुत्र विजयसिंह अथवा बिम्बदेव को बाण की जागीर दी। इनके वंशज खानपुर-डिलबल और जलिहापुर की शाखाओं वाले हैं। तीसरे पुत्र आशिषचन्द्र को घाटमपुर का इलाक़ा मिला, जहाँ इनके वंशज चौधरी कहलाये। चौथे कुवँर होरिलचन्द्र को अन्देमऊ का परगना मिला। इनके वंशज रावत कहलाये।

वत्सराज ने अपने भाई बुलारसिंह को गहलों का परगना औ भौनिकचन्द्र को बरहापुर का परगना दिया। वत्सराज अपने तीन भाइयों बावनसिंह, रौचन्द्र और हृदयचन्द्र के साथ तीर्थ यात्रा के लिए चले गये। जब वे पुष्कर पहुँचे तो उनका नागौर के राजा दयासिंह से युद्ध हुआ। दयासिंह महाराज पृथ्वीराज चौहान का विरोधी था। दयासिंह इस युद्ध में मारा गया रौचन्द्र और हृदयचन्द्र भी काम आये। महाराज पृथ्वीराज ने वत्सराज (बच्छराज) और उनके भाई बावनसिंह को अजमेर तथा उसके आसपास के परगने केकड़ी, देवली कुचामन, मारोठ आदि देकर अपनी दो कन्याओं का विवाह भी उनके साथ कर उनका सम्मान किया। यह शाखा 'अजमेरा गौड़' के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह वर्णन पं० शिवप्रसाद त्रिपाठी के अनुसार है।

'कानपुर-गजेटियर' में दिया हुआ वृत्तान्त इससे बहुत कुछ भिन्न है। उसके अनुसार गौड़ों का इस जिले में आगमन इन्दौर के निकट गढ़-गजनी अथवा गढ़ गंजाना से अथवा नारनोल से हुआ। इस जिले के गौड़ चमर-गौड़ शाखा वाले हैं। उनके पूर्वज पृथ्वीदेव ने कान्यकुब्जाधिपति जयचन्द की कन्या से विवाह किया और कालपी तथा कड़ा की जागीर उन्हें दायज में मिली। तदनन्तर पृथ्वीदेव ने रहनियापुर (वर्तमान अकबरपुर-तहसील में) अथवा कसरूखेड़ा के मेव राजा की कन्या का अपहरण किया। मेव लोगों ने पृथ्वीदेव तथा उनके साथियों का छलपूर्वक वध कर डाला

पृथ्वीदेव की मेव रानी ने एक ब्राह्मण परिवार में और कन्नौजी रानी ने एक चमार के झोंपड़े में जाकर शरण ली। इसीलिए इनके वंशज क्रमशः ब्राह्मण-गौड़ और चमर-गौड़ कहलाये। कन्नौज वाली रानी विधवा होने के समय गर्भवती थी। उसके पुत्र पटहरदेव इस प्रकार चमर-गौड़ों के आदि-पुरुष हुए। पटहरदेव ने मेवों से अपने पिता के वध का बदला चुकाया। उस समय इस जिले का अधिकतर भाग मेवों के अधिकार में था। पटहरदेव ने मेवों को अनेक बार हराकर उनका राज्य छीन लिया। पटहरदेव ने अपने सात पुत्रों को मेवों से छीने हुए गावँ दे दिये। सबसे जेठे लड़के भाटकदेव को मकरन्दपुर समेत ४२ गावँ मिले। इसकी चार शाखायें मकरन्दपुर-कहिंजरी, मलखानपुर, समाऊँ और इटैली में फैलीं। पटहरदेव के दूसरे कुँवर डुंडनदेव को बनीपारा-समेत २४ गावँ मिले। तीसरे पुत्र बच्छराज को नार-समेत २५ गावँ मिले। बच्छराज ने राजा की उपाधि ग्रहण की और शनैः-शनैः उनके पास कुल ५६ गावँ हो गये। उनके बाद यह राज्य धीरे धीरे बँट गया। सन् १८०१ में ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन की स्थापना के समय नार के गौड़ राजा के पास केवल ४२ गावँ शेष बचे थे और अगले वर्षों में मालगुजारी अदा न होने के कारण ३६ गावँ नीलाम पर चढ़ा दिये गये। पटहरदेव के चौथे लड़के बाजनदेव को वर्तमान अकबरपुर-तहसील में स्थित नरीहा की जागीर मिली जिसे बारा के खलील खाँ ने कुछ काल के लिए छीन लिया था, पर स्पेशल

कमीशन ने उसे फिर गौड़ों के अधिकार में सौंप दिया पटहरदेव के पाँचवे लड़के रखिकदेव को भींभक समेत २४ गावों की जागीर मिली। उनके सबसे जेठे लड़के बिम्बदेव को बाग की जागीर और राना की उपाधि मिली। बाग से इस वंश वाले पहले सुरासी और फिर मंगलपुर में जा बसे। खानपुर-डिंगवल और जलिहापुर की शाखायें इन्हीं बिम्बदेव के वंश में हैं। रखिकदेव के दूसरे पुत्र, असीसदेव, घाटमपुर के चौधरियों के पूर्वज हैं। रसिकदेव के तीसरे पुत्र म ऊसिंह भन्देमऊ के रावत कहलाये, जिनके पास कुवँ थे।ल १२ गा पटहरदेव के छठे पुत्र बुलारसिंह थे, जिन्हें गहलों की २४ गावों की जागीर मिली। पटहरदेव के सातवें पुत्र रोशनदेव को आजकल अकबरपुर तहसील में स्थित बरहापुर की जागीर मिली।

कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि हरदेव ही पटहरदेव थे। उनके बड़े कुँवर चाहे भाटकदेव हों चाहे रखिकचन्द्र, यह तो निश्चित है कि उनके ७ पुत्र थे और उन की शाखायें इस जिले में फैली। उपर्युक्त गावों के अतिरिक्त किशोरा, रामपुर, आलमपुर, सिकरसी, अकारू, रतनपुर, महेरा, काशीपुर, अपौनी, बम्हापुर, सलेमपुर, मालगावँ गजेन, रसूलपुर-रावतगावँ आदि में भी इस गौड़ वंश की शाखा-प्रशाखायें फैली हैं।

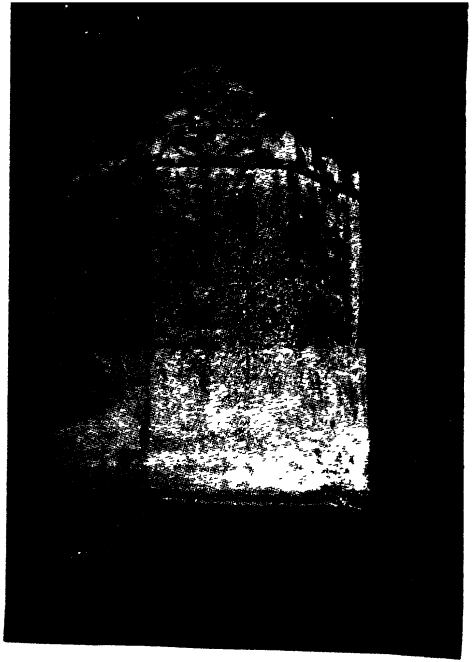
सन् १८५७ के पहले और बाद—कानपुर-जिले से गौड़-वंश का अति प्राचीन सम्बन्ध है। जो कुछ भी इतिहास उपलब्ध है

उससे यह तो निश्चय सा है कि लगभग बारह सौ वर्षों से यह यहाँ बसा हुआ है, किन्तु कनौजीराय राजा जयचन्द्र के समय से यह वंश अधिक ख्याति में आया। पृथ्वीचन्द्र के वंशज पटहरदेवके समय से इस जिले में गौड़ों पूरी धाक जम गई। बादशाही जमाने में इस वंश की प्रतिष्ठा चन्देलों से कम नहीं रही। अंग्रेजों ने भी इस वंश के अधिकारों और उपाधियों को मान्यता दी। कम्पनी के शासन ने खड़गचन्द्र (अथवा लक्ष्मीचन्द्र) और फिर उनके पुत्र हेमचन्द्र को नार का राजा माना और सिकरसी का गावँ, जो सम्राट् अकबर के समय से इस वंश में माफ़ी के रूप में चला रहा था, माफ़ी में दिया गया। हेमचन्द्र के पुत्र सुरतिचन्द्र के दुर्व्यसनों और कुप्रबन्ध के कारण बहुत से गावँ बिक गये। सुरतिचन्द्र के दो पुत्र थे—लायकचन्द्र और दरियावचन्द्र। लायकचन्द्र के निरसंतान मर जाने के कारण उनके बाद उनकी रानी प्रतापकुँवरि ने ज्ञानचन्द्र को गोद लिया। पर दरियावसिंह ने नार के राज के लिए अपने आधे अधिकार का दावा किया। ब्रिटिश अदालत ने उनका यह दावा मान कर उन्हें आधा राज्य दिला दिया। पर इस बीच में सन् १८५७ की क्रान्ति भड़क उठी। इसमें दरियावचन्द्र ने नानासाहब का नेतृत्व स्वीकार कर अपनी देशभक्ति का परिचय दिया। पर विद्रोह के विफल होने पर दरियावचन्द्र ग्वालियर भाग गये। वहाँ गिरफ्तार होकर उनको विद्रोह के दण्ड में फाँसी दी गई। उनकी जमीन्दारी का आधा भाग, अर्थात् सिकरसी, भवनपुर, जगदीशपुर,

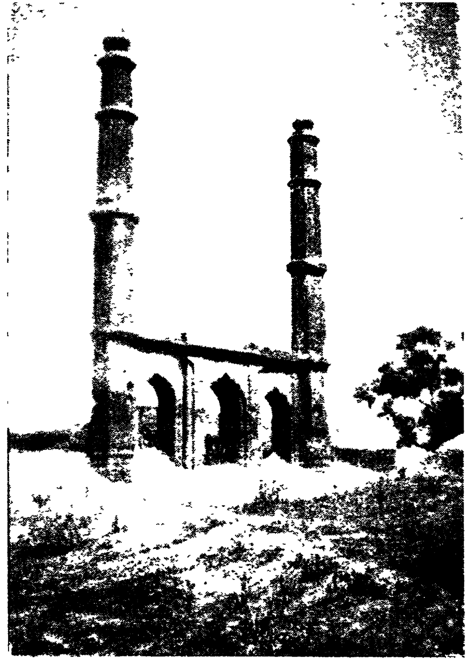
ढाकनपुरवा, खानपुर-डिलवल के गावँ अंग्रेज-भक्त जमीन्दार कन्हरसिंह (किन्नरसिंह) गौड़ को इनाम में मिले और शेषांश ज्ञानचन्द्र को मिल गये। दरियायचन्द्र के जीवन की अन्य घटनायें बहुत जाँच से भी ज्ञात न हो सकीं। गौड़ों के इतिहास में इस देशभक्त का नाम स्वर्णाक्षरों के लिखा हुआ है। ज्ञानचन्द्र के पुत्र ठा० राजनारायणचन्द्र हैं।

राजा पटहरदेव के पुत्र रसिकचन्द्र के द्वितीय पुत्र विजयसिंह (बिम्बदेव) के वंश की एक शाखा खानपुर-डिलवल में स्थापित हुई थी। इसी में केशरीसिंह हुए जिनके ज्येष्ठ पुत्र, मोहकमसिंह के चार पुत्र किन्नरसिंह, गुमानसिंह, भाऊसिंह और चन्दीसिंह हुए। किन्नरसिंह को दरियावचन्द्र के गावँ इनाम में मिले और उन्हें डेरापुर की तहसीलदारी का पद भी मिला। सन् १८६८ में कानपुर स्टेशन में रेल की दुर्घटना में इनका प्राणान्त हुआ। इनके तीन पुत्र, ज्ञानसिंह, खुमानसिंह और पहलवानसिंह हुए। ठाकुर ज्ञानसिंह अपने समय में जिले के नामी और प्रतिष्ठित जमीन्दारों में गिने जाते थे। इनको सरकार ने आनरेरी मजिस्ट्रेट भी बनाया। ठाकुर ज्ञानसिंह के पुत्र गोविन्दसिंह के पुत्र ठा० धर्मपालसिंह हैं। ठा० खुमानसिंह के ३ पुत्र, शिवबख्शसिंह शोभासिंह और गोकुलसिंह हुए। ठा० पहलवानसिंह के पौत्र गङ्गासिंह हुए।

ठाकुर मोहकमसिंह के दूसरे पुत्र गुमानसिंह के तीन पुत्र रूपसिंह, शिवदयालसिंह और दुर्गासिंह हुए। उनके



वीरेश्वर के निकट एक दूसरा छोटा मंदिर, सजेती



मिल्की जाति-द्वारा निर्मित एक प्राचीन मसजिद के खँडहर, बिल्हौर

तीसरे पुत्र भाऊसिंह निस्सन्तान रहे। चौथे पुत्र चन्दीसिंह के पौत्र ठाकुर राजेन्द्रबहादुरसिंह हैं।

जलिहापूर-शाखा में ठाकुर बलदेवसिंह नामी हुए।

मकरन्दपूर-कहिंजरी की शाखा में ठाकुर दलेलसिंह ने अपनी ज़मीन्दारी खूब बढ़ाई। इनके पुत्र ठाकुर रोशनसिंह हुए और उनके ठाकुर हुलाससिंह हुए, जिनके द्वितीय पुत्र ठाकुर गुलालचन्दसिंह एक सुशिक्षित व्यक्ति हैं और जो डिस्ट्रिक्ट बोर्ड कानपुर के कई वर्षों तक सदस्य रह चुके हैं।

२—चंदेल-वंश

उत्पत्ति—गौड़ों के समान ही इस ज़िले में चन्देल-वंश का विस्तार और मान रहा है। यों तो बुन्देलखण्ड ही चन्देलों का आदि-स्थान माना जाता है। महाराज पृथ्वीराज चौहान और महाराज जयचन्द्र गाहरवाड़ के समकालीन राजा परमार्दि अथवा परमाल का नाम उत्तर भारत में सुप्रसिद्ध है। आल्हा और ऊदल के आश्रयदाता होने के नाते राजा परमाल का नाम अमर हो गया है। महोबा इनकी राजधानी था। किन्तु बुन्देलखण्ड के चन्देलों से हमारे ज़िले के चन्देलों का क्या सम्बन्ध है यह इतिहास को विदित नहीं है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि १४ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में कन्नौज से धामदेव चन्देल राधन-ग्राम में आकर बसे।

धामदेव का उपनाम जयराजदेव था। धामदेव ने गंगा के तट पर राधन-नामक स्थान में बस कर अपना क़िला बनाया,

जो अब पूर्णतया ध्वस्त दशा में है। धामदेव के तीन पुत्रों में राजा शिवराजदेव सबसे बड़े थे जिन्होंने १४ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में शिवराजपुर बसाया और वहाँ एक क़िला बनवाया। धामदेव के द्वितीय पुत्र राव लघुदेव सपई में जा बसे और वहाँ उन्होंने एक गढ़ी बनवाई। धामदेव के तृतीय पुत्र राव पतिदेव ने पचोर के चन्देलों की शाखा चलाई।

(क) शिवराजपुर के राजा

शिवराजपुर के राजा ही इस ज़िले के चन्देलों में अग्रणी एवं प्रमुख माने जाते थे। राजा शिवराजदेव के अनन्तर पहलदेव, गरगजदेव, करचंददेव, उदयचन्ददेव, देवराज, चन्द्रदेव, करमदेव, संसारचन्द्र, अजयचंद्र, जयतिसिंह, खेमकरन और रामचन्द्र क्रमानुसार राजा हुए। सम्राट् अकबर ने अपने शासन के ३९ वें वर्ष, अर्थात् सन् १५९५, में एक फ़र्मान द्वारा शिवराजपुर के राजा रामचन्द्रदेव को ९५ गावँ जमीन्दारी में दिये। इन गावों में कुछ के नाम तो अब पहिचाने नहीं जाते। जो नाम समझ में आते हैं वे ये हैं :—राघन, उतरी, अभयपुर, अजौली, दहे, इन्धना, एकघरा, बरीजपुर, भदसेनी, बेहटा, भैरोली, बिरैचामऊ, बैरीखुर्द, बहरामपुर, बेलहन बुज़ुर्ग, पटकापुर ख़ास, पहाड़ी, भौनापुर, मटपुरा, मैंमऊ, शिवराजपुर, तरी, जवाँसी, जगदीशपुर, दोदेपुर, देदूपुर, रवान, शाहपुर-कमान, रौतीपुर, शाहपुरलोधा, खादीपुर, सिकन्दरपुर, नीसोन, ईसपुर, काकूपुर-कन्दू, काकूपुर-रब्बन, गुरेनी, मनोह, कौंसामऊ, मदनीपुर,

गौरी बरलस, गौरी चौंसठ, बाघपुर, तोदरपुर, रैकेपुर, शेरपुर, बिसौसी, मलिकपुर, शेखूपुर, ढेकिया, ककरदही, तौहा टिकरी, भूंठपुर, अंटी, बलुआपुर, भीखर, हन्नूमऊ, रेपारपुर, नौगवाँ, अली का नेवादा, असाखेरा, पतरापुर, बाराखेड़ा, चचेंडी, धूल, मीरकपुर, हवेली, बहादुरपुर, बसेन, भिडुरी, तीलोकपुर, चौबेपुर, डाँड़ा शिवली, जेवरी, सोभन, सलीमपुर, भितरी, गजनपुर, नोनहाँ-कल्यान, नोनहाँ-नरसिंह, मरियानी, निगोह, केउना, मालौं, बरुआ, आटा, सेउंदा, रव्वाजगीपुर, बालेपुर, कैंधा. गोहैयापुर ।

राजा रामचन्द्र के पुत्र राजा जगतमन को इसी प्रकार का एक फ़र्मान सम्राट् जहाँगीर से प्राप्त हुआ। जगतमन के बाद लालमन, सबलशाह, इन्द्रजीत, जोरावरसिंह, मान्धाता और हिन्दूपति क्रमानुसार राजा हुए। हिन्दूपति का शासन-काल सन् १७१५ से १७५७ तक है। राजा हिन्दूपति के पुत्र राजा रिसालसिंह ने १७८० तक राज्य किया।। रिसालसिंह के ज्येष्ठ पुत्र शिवसिंह और कनिष्ठ पुत्र दानसिंह थे। जब कानपुर-ज़िले में सरकार कम्पनी की अमलदारी सन् १८०१ में क़ायम हुई तो शिवसिंह ही शिवराजपुर के राजा थे और उन्हीं को नई सरकार ने जमीन्दारी की सनद दी। सन् १८०६ में शिवसिंह के देहावसान पर उनके पुत्र महेन्द्रसिंह को गद्दी मिली। इस समय इस वंश के पास ६२ गावँ शेष थे। कम्पनी की सरकार ने

१२१०, १२१३, और १२१६ फ़सली के बन्दोबस्तों में

इतने गावों के एक जमीन्दार के पास होने पर कोई आपत्ति नहीं की, किन्तु सन् १२२५ के चौथे बन्दोबस्त में जिला-जज मिस्टर राबर्टसन ने इस पर आपत्ति की, क्योंकि उनका खयाल था कि एक ही व्यक्ति के पास इतने अधिक गावों का होना खतरनाक हो सकता है। पर अगले वर्ष में अदालत ने राजा महेन्द्रसिंह को उनकी समस्त पैतृक सम्पत्ति का अधिकारी स्वीकार कर लिया। वे अभी तक पूर्णवयस्क भी न हो पाये थे कि उनका देहान्त हो गया। महेन्द्रसिंह की रानी अपने मृत पति के साथ सती हो गई। जब चिता पर रानी का आधा शरीर जल चुका था तो उसने अपने पति के चाचा दानसिंह को पुत्रवान् होने का वरदान दिया। इस बीच में दानसिंह ही को शिवराजपुर की गद्दी का अधिकार मिला। पर वे भी सन् १८३२ में चल बसे। उनकी मृत्यु के अनन्तर उनके पुत्र सतीप्रसाद (जो सती रानी के वरदान के बाद उत्पन्न हुए थे) को गद्दी मिली। राजा सतीप्रसाद ने सरैयाँघाट में गंगा-तट पर सतीरानी की पुण्य स्मृति में एक मन्दिर बनवाया।

राजा सतीप्रसाद का बलिदान—सन् १८५७ के विद्रोह में राजा सतीप्रसाद ने अपने देश की स्वतन्त्रता के निमित्त नाना साहब का साथ दिया। नाना के वीर सेनानी तात्या टोपे ने मोरार से सेना लाकर कानपुर पर घेरा डालना आरम्भ कर दिया था। शिवराजपुर पर भी उन्होंने अधिकार कर लिया और वहाँ अपने एक हजार सैनिक तथा चार तोपें रखने का

आयोजन कर दिया। कानपुर-नगर में ११ दिन तक विकट संग्राम के बाद जब तात्या के पैर वहाँ से उखड़ गये, तो वे भाग कर शिवराजपुर आ पहुँचे और गंगा पार कर अवध चले जाने की तैयारी करने लगे। जनरल होप ग्रान्ट एक फ़ौज की टुकड़ी लेकर तात्या का पीछा करते आ धमका। तात्या की सेना गंगा-तट पर सरैयाँघाट में नदी पार करने को उद्यत थी। इसी समय अंग्रेज सेना ने उस पर प्रचंड गोलावारी आरम्भ कर दी। पर तात्या बराबर लड़ते हुए बिठूर की राह साफ़ निकल गये। इस युद्ध में राजा सतीप्रसाद का कोई प्रत्यक्ष सहयोग नहीं था। फिर भी वे फ़रार हो गये। इस पर उनकी रियासत के ज़ब्त किये जाने का हुक्म हुआ। उनके पूर्वजों की गढ़ी, जिसमें उनके परिवार के लोग रहते थे, गिरा दी गई। कुछ समय बाद जब वे पकड़े गये, तो उन पर विद्रोही नेता होने का अभियोग मि० हेनरी प्रिंसेप .फेन कमिश्नर की अदालत में लगाया गया। इसमें उन्हें ७ वर्ष के कठोर कारावास का दंड मिला। जब वे यह सज़ा भुगत रहे थे, उनकी स्त्री और फिर एकमात्र पुत्र का देहान्त हो गया! इन दैवी आघातों को सहन कर जब वे जेल से छूटे तो उन्होंने सरकार से अपने लिए गुज़ारे की माँग की। उनकी प्रार्थना विचाराधीन ही थी कि सन् १८७१ में इस नर-पुंगव का स्वर्गवास हो गया। उनकी मृत्यु से शिवराजपुर का चंदेलवंश समाप्त हो गया।

(ख) सपई के राव

राजा धामदेव अथवा जयराजदेव के वंशजों की अनेक शाखाएँ फैलीं। इनमें से सपई, पचोर, रावतपुर, औनहाँ, काकादेव, सखरेज तथा बिनौर वाली शाखाएँ अधिक प्रसिद्ध हुईं। राजा धामदेव के दूसरे पुत्र लघुदेव राव की उपधि पाकर संवत् १३९१ में सपई में जा बसे। इन्होंने सपई की गढ़ी बनवाई जो अभी तक अच्छी हालत में है और जहाँ इन्हीं के वंशजों का अभी तक अधिकार है। राव लघुदेव की गद्दी पर क्रमानुसार वृजदेव, हरभानदेव, अशोकमल, सुमेरशाह (सम्भरशाह), पहाड़ सिंह, धीरशाह, दलजीतसिंह, मदनसिंह, बसंतसिंह, चन्द्रहंस देव, राघवराम, बरियारसिंह, गजसिंह, दलीपसिंह, प्रतापसिंह शिवसिंह, छत्रपति, हीरासिंह, भगवानसिंह, पहलवानसिंह, महाराजसिंह आदि हुए। इस जिले के चन्देलों में यही रियासत अच्छी दशा में रह गई है।

(ग) पचोर के रावत

धामदेव के तीसरे पुत्र पतिदेव को रावत की उपाधि और पचोर का राज्य मिला। पतिदेव के उत्तराधिकारी बुद्धसिंह, पृथ्वीसिंह, महासिंह, जोधासिंह, बैरीसाल, पृथ्वीसिंह (द्वितीय), ईश्वरीसिंह, छत्रसिंह, देवराय, संग्रामशाह, खेमचन्द, मेलेसिंह, कस्तूरीसिंह, जयसिंहराय, सूरतसिंह, कुँवरसिंह, जुगराजसिंह आदि हुए। सखरेज के चन्देल शासक इसी शाखा में से हैं।

(घ) औनहाँ के रावत

शिवराजपुर के राजा संसारचंद्र ने अपने अनुज मेदिनी-मल को रावत की उपाधि और ३४ गावँ देकर औनहाँ में बसाया। संवत् १५३२ में मेदिनीमल ने औनहाँ और शिवली में रहना शुरू किया। दोनों स्थानों में उन्होंने एक-एक गढ़ी भी बनवाई। मेदिनीमल की छठी पीढ़ी में पृथ्वीराज हुए जिन्हें सम्राट् औरंगज़ेब ने अपने शासन के ३४ वें साल में कुछ गावों की ज़मीन्दारी की सनद दी। इन गावों में से कुछ ये थे—शिवली, जैतपुर, भेवान, गोसौं, तौंतमऊ, हथिका, कोड़वा, टिकरी, मारग, गारब, मौंडा, मुज़फ्फ़रपुर, रावतपुर, औरंगाबाद, मदनपुर, लालपुर, पुरवा मान, मरहमताबाद, मकरंदपुर, रायपुर, पुरवा बुजुर्ग, बिकरू, भीटी, बोझा, भौसान, कीरतपुर, राजपुर, देवकली, कंजनी, कैलई, मवैया, करोम, मुज़फ्फ़राबाद। मेदिनीमल के उत्तराधिकारी क्रमानुसार ये थेः—किशनसिंह, कल्याणसिंह, गोपालसिंह, बीरसिंह देव, कीरतसिंह, पृथ्वीसिंह, उद्योतसिंह, चम्पतराय, खुलक़सिंह, भूपालसिंह, गजसिंह, सिरनेतसिंह, शिवराजसिंह।

(ङ) रावतपुर के रावत

सपई के राव सुमेरशाह ने अपने छोटे भाई रामशाह को रावत की उपाधि देकर रावतपुर की जागीर के ४८ गावँ दिये। काकादेव के चन्देल इसी वंश की एक शाखा हैं। गिरधरसिंह

इस वंश में बड़े प्रतापी हुए। गिरधरसिंह के बाद घनश्याम-सिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके सौतेले भाई अर्जुन-सिंह व दुर्जनसिंह ने उसके विरुद्ध अपने अधिकार के लिए दीवानी अदालत में दावा किया, पर वह ख़ारिज हो गया। उसके बाद रणधीरसिंह गद्दी पर आया जिसका पुत्र शिवसिंह था। सन् १८७२ में पहले रणधीरसिंह का और उसके ५ दिन बाद शिवसिंह का स्वर्गवास हो गया। परिणाम-स्वरूप इनका इलाक़ा कोर्ट आफ़ वार्ड्स के सिपुर्द हो गया। उसके बाद इस वंश की विधवाओं ने इसी वंश के एक लड़के को गोद लेना चाहा पर कराल काल ने यह न होने दिया। फिर दूसरा लड़का गोद लिया गया। फिर जो मुक़दमेबाज़ी हुई उसका वर्णन मसवानपुर के वर्णन में पढ़िए। इस वंश की गद्दी के उत्तराधिकारियों के नाम ये हैं:—रामशाह, भीखमशाह, मनियारसिंह, सिंहराय, जसकरन, खेमकरन, कल्यानसिंह, शरजीतसिंह, विक्रमाजीत, खड्गराय, खोंडेराय, कल्यानसिंह (द्वितीय), भगवंतसिंह, गिरधरसिंह, घनश्यामसिंह, रणधीर-सिंह, शिवसिंह।

(च) काकादेव का वंश

रावतपुर के रावत विक्रमाजीत के पुत्र खड्गराय और कंसराय थे। कंसराय ने गावों का आधा भाग माँगा, पर खड्गराय ने देने से इनकार किया और बादशाह अहमदशाह से शिकायत कर उसने कंसराय को क़ैद करवा दिया। बादशाह को आगरे

के क़िले में स्थित समन-बुर्ज से यमुना में एक मगर दिखाई दिया। उस पर बादशाह ने कई बार गोली चलाई, पर कोई न लगी। तब बादशाह ने यह आज्ञा निकाली कि जो कोई इस मगर को समन-बुर्ज से गोली चला कर मार देगा उसे बहुत इनाम दिया जायगा। क़ैदी कंसराय ने उस मगर को मार डाला। इस पर प्रसन्न होकर बादशाह ने उसकी इच्छानुसार रावतपुर के इलाक़े को दो भागों में विभक्त कर दोनों भाइयों को २४—२४ गाँव दिये। कंसराय काकादेव में आकर बसे। इस वंश को रावत की उपाधि नहीं मिली।

(छ) सखरेज के राना

पचोर के रावत छत्रसिंह के द्वितीय पुत्र सिंहमन को राना की उपाधि मिली और वे सखरेज में जा बसे। जब सन् १८०१ में अवध के हाथ से निकल कर यह ज़िला कम्पनी के शासन में आया तो सखरेज के राना के पास १४ गाँव थे। परन्तु धीरे-धीरे ये सभी गाँव इस वंश के हाथ से निकल गये और सन् १८७५ में केवल ४ गाँव ही शेष रह गये थे। अभी तक अपने को सखरेज के राना कहने वाले तो जीवित हैं, पर हैं वे बिल्कुल अकिञ्चन।

सिंहमन के उत्तराधिकारियों के नाम ये हैं :—कल्यानसिंह, ईश्वरीसिंह, हरवंशसिंह, प्रतापसिंह, किशनसिंह, चन्द्रभान, फ़तेहसिंह, विजयसिंह, लायकसिंह, जवाहरसिंह, भवानीसिंह और पदुमसिंह।

(ज) सचेंड़ी के राजा

शिवराजपुर के संस्थापक राजा शिवराजसिंह के वंशज गरगजसिंह के तीसरे पुत्र हरसिंहदेव बिनौर-ग्राम में जा बसे। उनकी आठवीं पीढ़ी में जादोराय उत्पन्न हुए जिनके ४ पुत्र हुए। प्रथम पुत्र संग्रामसिंह के वंशज सोना, लालपुर और तरगाँव में रहते हैं। दूसरे पुत्र आधारमल के वंशज आँट, कठारा और रैपालपुर में हैं और तीसरे पुत्र लालमन की शाखा वाले उदयपुर-नामक गाँव में बसे हुए हैं। चौथे पुत्र प्रतापसिंह के ३ लड़के थे। पहले हरदेव थे जिनकी शाखा वाले गंगागंज में जा बसे। दूसरे लड़के जुगराजसिंह के वंश वाले बिनौर में ही रहे। प्रतापसिंह के तीसरे पुत्र हरसिंह राय थे। ये सचेंड़ी अथवा चचेंड़ी में जाकर बसे। इसे इनके पूर्वज चाचकदेव ने बसाया था।

राजा हिन्दूसिंह—हरसिंहराय के समय तक चन्देलों की यह शाखा अप्रसिद्ध थी। किन्तु हरसिंहराय के प्रतापी पुत्र हिन्दू-सिंह ने अपने बाहु-बल और बुद्धि-बल से सचेंड़ी का नाम समस्त उत्तर भारत में उजागर किया। उन्होंने राजा की उपाधि धारण की। राजा हिन्दूसिंह ने आस-पास के देश में अपनी पूरी धाक जमा ली। सचेंड़ी के वर्णन में राजा हिन्दूसिंह की संक्षिप्त जीवनी दी गई है। यहाँ पर हम अधिक विस्तार से उनके चरित्र पर प्रकाश डालेंगे।

राजा हिन्दूसिंह उस युग में सचेंड़ी के शासक थे जब औरंगज़ेब की मृत्यु हो चुकी थी और मुग़ल-साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो रहा था। समस्त देश में अराजकता फैल रही थी। उत्तर भारत में मराठों के हमले शुरू होने लगे थे। औरंगज़ेब के शासन-काल ही में मराठों व बुंदेलों के विद्रोह प्रबल रूप धारण कर चुके थे। महाराज छत्रपति शिवाजी ने दक्षिण में और महाराज बुंदेला-नरेश छत्रशाल ने मध्यभारत और बुंदेलखंड में अपने-अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिये थे। औरंगज़ेब मराठों व बुंदेलों से यावज्जीवन लड़ता रहा, पर इनके साहस और स्वातन्त्र्य-प्रेम को पददलित न कर सका।

शिवाजी तो अल्पायु ही (सन् १६८०) में परमधाम की यात्रा कर चुके थे, पर वीर छत्रशाल ने दीर्घायु पाई। उनकी मृत्यु ८२ वर्ष की उम्र में सन् १७३१ में हुई। औरंगज़ेब के अन्त समय तक (सन् १७०७) वे मुग़लों के दाँत खट्टे करते रहे। जो अग्नि शिवाजी ने भड़काई थी वह बुझ नहीं सकती थी। हिन्दू-स्वाधीनता का झंडा छत्रशाल सदा ऊँचा किये रहे। अन्य हिन्दू सामन्तों ने भी शिवाजी और छत्रशाल के आदर्श एवं दृष्टान्त का अनुकरण कर स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिये। इन्हीं में सचेंड़ी के चंदेल शासक हिन्दूसिंह भी थे। उपयुक्त अवसर पाकर इन्होंने वर्तमान कानपुर-ज़िले के अधिकतर भाग में अपना पूरा आधिपत्य जमा लिया।

अभी तक इस वंश में शिवराजपुर के शासक ही 'राजा कहलाने के अधिकारी थे। अन्य शाखा वाले केवल 'रावत' य 'राव' ही कहलाते थे। पर अब १८ वीं शताब्दी के प्रारंभ शिवराजपुर का राज्य निर्बल होकर क्षीण हो चुका था, औ औनहाँ, सपई, रावतपुर, पचोर, सखरेज, सचेंड़ी आदि उसी वंश के रावत या राव राज्य करते थे। इन सब सर्वोपरि सचेंड़ी के रावत हिन्दूसिंह थे। उन्होंने औरंगजेब वं किसी उत्तराधिकारी से 'राजा' का खिताब प्राप्त कर लिय था। समस्त चंदेल-राज्यों में सचेंड़ी का राज्य ही इस समय अधिक शक्तिशाली हो गया था। अपने मंडल में इसके राज हिन्दूसिंह ही का प्रभुत्व था। राजा हिन्दूसिंह ने सचेंड़ी औ बिनौर में मजबूत क़िले बनवाये और अपना सैन्य-दल बढ़ाया हिन्दूसिंह के उत्कर्ष को उनके वंश वाले अन्य चंदेल-शासक तथा आस-पास के क्षत्रिय राजा सहन न कर सके। इधर अवध भी साम्राज्य से स्वतन्त्र हो रहा था। वहाँ के सूबेदार बुरहानुल्मुल्क सआदतअली खाँ नाममात्र के लिए मुग़ल सम्राट् के शासन के अधीन थे। सन् १७१९ में मुहम्मदशाह सैयद-बन्धुओं की सहायता से मुग़ल-राज-सिंहासन पर आसीन हुआ। उसने दोनों सैयदों, अब्दुल्ला और हुसेन अली का अन्त कर उनसे छुटकारा पा लिया। पर अवध के नवाब वजीर सआदतअली ख़ाँ ने भी मौक़ा पाकर बनारस, ग़ाज़ीपुर जौनपुर, चुनार, इलाहाबाद, कड़ा, कोड़ा-जहानाबाद आदि पर

अपना प्रभुत्व जमा लिया। अवध के राज्य का अपूर्व विस्तार हो गया। सचेंड़ी के राजा हिन्दूसिंह का मान-मर्दन किये बिना नवाब वज़ीर का सिक्का इस मंडल में नहीं जम सकता था। यमुना के उस पार महाराज छत्रशाल का राज्य था, जो वयोवृद्ध होते हुए भी पुराने वीर प्रसिद्ध थे। छत्रशाल ने अपने राज्य के तीन भाग कर दिये थे। दो भाग अपने दो पुत्रों हृदयसिंह व जगतराज को और तीसरा भाग पेशवा बाजीराव प्रथम को उन्हें अपना पुत्र मानकर देना निश्चय कर लिया था। बाजीराव के हिस्से में कालपी, सागर, झाँसी, सिरोज व हृदयनगर पड़े। फ़र्रुख़ाबाद में बंगश पठानों के सरदार मुहम्मद ख़ाँ का दबदबा क़ायम हो गया था। रुहेलखंड में रुहेलों की स्वतन्त्र हुकूमत भी क़ायम हो चुकी थी। ऐसी परिस्थिति में सचेंड़ी का राज्य सैनिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। यदि हिन्दूसिंह छत्रशाल या बंगश या रुहेलों से मिल जायँ तो अवध के लिए वे बग़ल में काँटे के समान सिद्ध होंगे। इसीलिए सन् १७२९ में ६० हज़ार फ़ौज लेकर नवाब सआदत अली ख़ाँ सचेंड़ी पर चढ़ आया। इतनी बड़ी फ़ौज का खुले मैदान में सामना करना कठिन समझ कर राजा हिन्दूसिंह अपनी फ़ौज समेत सचेंड़ी के क़िले में चले गये। अवध की फ़ौज ने सचेंड़ी के क़िले पर घेरा डाल दिया। बहुत दिन तक घेरा डाले रहने पर भी सआदत अली ख़ाँ की कुछ दाल न गली। न क़िले की सुदृढ़ दीवारें ही ध्वस्त हो सकीं और न

राजा हिन्दूसिंह का साहस ही टूट सका। तब खिसिया कर नवाब वज़ीर ने एक चाल चली। उसके साथ भदावर के राजा गोपालसिंह भी अपने सैन्य-सहित सहायतार्थ आये थे। शायद भदौरिया राजा भी हिन्दूसिंह की बढ़ती हुई शक्ति से जलता था। राजा गोपालसिंह को सिखा-पढ़ा कर उसने हिन्दूसिंह से सन्धि की वार्ता करने के लिए क़िले के अन्दर भेजा। लोहे से ही लोहा काटने की नीति बहुधा सफल होती है। गोपालसिंह ने हिन्दूसिंह को यह पट्टी पढ़ाई कि सआदतअली मुग़ल सम्राट् का नवाब वज़ीर, सबसे आला अफ़सर, है। उसकी लाज रखना आवश्यक है, नहीं तो हिन्दूसिंह को सम्राट् के कोप का भाजन बनना पड़ेगा। इसलिए यद्यपि सआदत अली सचेंड़ी के घेरे में सर्वथा असफल रहा है उसकी इज्ज़त बचाना ज़रूरी है। सिर्फ़ नाक बचाने के लिए सआदत अली यह चाहता है कि २-३ दिनों के लिए हिन्दूसिंह सचेंड़ी के क़िले को खाली कर दे। इसके बाद नवाब वज़ीर स्वयं क़िला छोड़कर अपनी राजधानी लौट जायगा। यदि हिन्दूसिंह इस बात पर राजी न होगा तो नवाब वज़ीर की बड़ी किरकिरी होगी और वह बादशाह के सामने मुँह दिखाने लायक़ न रहेगा। राजा गोपालसिंह ने बड़ी कूटनीतिज्ञता से अपना दूतत्व किया। उसने शपथ खाकर हिन्दूसिंह को यह विश्वास दिला दिया कि इस सलाह में कोई छल नहीं है। हिन्दूसिंह उसकी पट्टी में आगये। उनकी फ़ौज ने क़िला खाली

कर कुछ मील दूर जाकर पड़ाव डाला। सचेंड़ी के क़िले पर अवध के नवाब वज़ीर का झंडा फहराने लगा। तीन दिन क्या महीने बीत गये, बरस बीत गये, सआदत अली ने सचेंड़ी को ख़ाली न किया। सचेंड़ी के बाद बिनौर तथा अन्य स्थान भी उसने जीत लिये। धीरे-धीरे हिन्दूसिंह का कुल राज्य उनके हाथ से निकल गया। वे स्वयं निराश होकर यमुना पार कर सपरिवार महाराज छत्रशाल की शरण में चले गये और इसी दशा में कुछ ही साल बाद (सन् १७३४ के लगभग) उनका प्राणान्त हुआ। महाराज छत्रशाल का निधन सन् १७३० में हुआ। राजा हिन्दूसिंह को मृत्यु तक यही दुःख रहा कि एक क्षत्रिय के वचन मानने पर उन्हें धोखा हुआ और उनका राज्य चला गया। सआदत अली खाँ ने, ऐसा जान पड़ता है, सचेंड़ी के राज्य को शिवराजपुर के राजा के सिपुर्द कर दिया। यह भी कूट-नीति और फूट-नीति के सर्वथा अनुकूल था। हिन्दूसिंह की मृत्यु के बाद उसके एकमात्र पुत्र सम्भरसिंह ने सन् १७४२ में अपने बाहु-बल से फिर सचेंड़ी का राज्य जीत कर अपने कुल की कीर्ति को उज्ज्वल किया और शिवराजपुर के राजा रिसालसिंह को उसकी राजधानी से खदेड़ कर बदला लिया। परन्तु सम्राट् मुहम्मद शाह ने पहले ही अपने सन् हिजरी ११४८ (सन् १७३५ ई०) वाले फ़र्मान के द्वारा सम्भरसिंह को लगभग ६० गावों का राजा स्वीकार कर लिया था।

सम्भरसिंह ने निस्सन्तान होने के कारण सोना के दरियाव-

सिंह को गोद लेकर अपना उत्तराधिकारी बनाया। दरियावसिंह के भीमसिंह व पृथ्वीसिंह दो पुत्र हुए।

राजा दुर्गाप्रसाद—राजा भीमसिंह के बड़े पुत्र राजा दुर्गाप्रसाद नाना साहब के समकालीन थे। जब सन् १८५७ की क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ तो राजा दुर्गाप्रसाद ने भी उसमें योग-दान करने का संकल्प किया। शिवराजपुर, सखरेज तथा काकादेव के चन्देल-नरेशों ने भी ऐसा ही किया। जिले के कुछ चौहान, पवाँर, गौतम तथा अन्य क्षत्रिय शासकों ने भी विदेशी सरकार को उखाड़ कर अपनी स्वतन्त्रता स्थापित करने का प्रण किया। धीरे-धीरे प्रायः समस्त जिले में कम्पनी की अमलदारी समाप्त हो गई। जब पहली जुलाई सन् १८५७ को नाना साहब ने बिठूर में अपने को स्वतंत्र पेशवा घोषित किया, तो ये सब क्षत्रिय राजा उनके सामन्त बने। पर जब कुछ काल के उपरान्त विदेशी सेनाओं की फिर विजय प्रारम्भ हुई तो सचेंड़ी में भी अन्य स्थानों की भाँति दोबारा थाना क़ायम हुआ। पर राजा हिन्दूसिंह के वंश में अभी उनकी वीरोचित परम्परा सर्वथा मिटी नहीं थी। उनकी राजधानी पर पुनः ब्रिटिश पताका फहराये यह सहन नहीं किया जा सकता था। सागर की ४१ वीं नेटिव इन्फ़ेन्ट्री के विद्रोही सैनिकों ने कालपी से कानपुर आते हुए, मार्ग में सचेंड़ी के वीर चन्देलों की सहायता से फिर वहाँ से ब्रिटिश शासन की निशानी मिटा दी। थाने के सभी अधिकारी तलवार के घाट उतार दिये गये। पर

भाग्य ने फिर पलटा खाया। ब्रिटिश सेना फिर विजयी हुई और धीरे-धीरे समस्त जिले में विद्रोह की ज्वाला शान्त हो चली। इसलिए समय की गति परख कर राजा दुर्गाप्रसाद सचेंड़ी छोड़ कर कोटरा-मकरन्दपुर में जा छिपे। उनकी गद्दी गिरा दी गई और उनके १२६ गाँव ज़ब्त कर लिये गये। पर नवंबर सन् १८५७ में मोहनसिंह पँवार नामक एक जाति-द्रोही ने, जिसके पूर्वजों ने सचेंड़ी के राजाओं का नमक खाया था, धोखा देकर राजा दुर्गाप्रसाद को घाटमपुर के थाने में गिरफ़्तार करवा दिया। पर मौक़ा पाकर राजा दुर्गाप्रसाद ने उसे गोली से मार डाला। राजा साहब फिर भाग निकले और कोटरा-मकरन्दपुर जा पहुँचे। पर ब्रिटिश शासन के गुर्गे चारों ओर से उन्हें घेरे हुए थे। उनके एक नौकर ठाकुरप्रसाद ने इस बार उन्हें दाँव में फाँस कर गिरफ़्तार करवा दिया। उन पर कानपुर की सेशन अदालत में राज-विद्रोह के अपराध में मुक़दमा चला और उन्हें फाँसी की सज़ा का हुक्म हुआ। पर प्रान्तीय सरकार उन्हें क्षमा दान देने और उनके गाँव वापस करने के लिए उत्सुक थी। केवल एक शर्त थी और वह यह कि राजा हिन्दूसिंह का यह वंशज अंग्रेज़ी सरकार के प्रति राजभक्ति की शपथ ले। पर राजा दुर्गाप्रसाद ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया। उन्होंने बड़े हर्ष और गर्व से फाँसी के तख़्ते पर झूलना स्वीकार किया।

राजा दुर्गाप्रसाद के दो पुत्र माधवप्रकाश और बेनीप्रकाश

थे जिन्हें अंग्रेजी सरकार ने केवल उनके ध्वस्त पैतृक घर के वापस करने की कृपा की। बेनीप्रकाश निस्संतान हुए। राजा माधवप्रकाश के पुत्र ठाकुर इक़बालबहादुर हुए और उनके पुत्र खड़गेन्द्र बहादुर, गजेन्द्रबहादुर और राजेन्द्र बहादुर हैं।

वंश-परम्परा—सचेंड़ी के राज-वंश की परम्परा इस प्रकार थी; गरगजदेव के द्वितीय पुत्र हरसिंहदेव और फिर क्रमवार साहबदेव, नरसिंहराज, मानसिंह, धाँधूराय, चाचकदेव (चँचेड़ी अथवा सँचेड़ी नाम इन्हीं के कारण पड़ा), उदयकरन, जादोराय, प्रतापसिंह, हरसिंहराय, राजा हिन्दूसिंह, सम्भरसिंह, दरियाव-सिंह (दत्तक), भीमसिंह, दुर्गाप्रसाद, माधव प्रकाश।

कानपुर-जिले के इतिहास में चन्देलों की कीर्ति अत्यन्त धवल है।

३—चौहान-वंश

मोहाना के चौहान—आल्हखंड में मैनपुरी के चौहानों की बहुत अधिक चर्चा है। तब से आज तक मैनपुरी का जिला इसी क्षत्रिय वंश का मशहूर अड्डा बना हुआ है। मैनपुरी के खेमसिंह चौहान ने बादशाही जमाने में कानपुर-जिले के मेव लोगों के दमन में बहुत सहायता दी थी। इसके बदले में उन्हें अकबरपुर के दक्षिण में ३६ गाँव मिले। यह वंश पहले पहल मोहाना में आकर बसा और इनके अधिपति को दी हुई राय की उपाधि अभी तक चल रही है। मोहाना से ये लोग सेंउथा जा बसे। पर कालान्तर में अपरिमित व्यय और कुप्रबन्ध के

कारण इस वंश के पास अब नाममात्र के लिए ही ज़मीन्दारी शेष रह गई है।

रमईपुर के चौहान—इस ज़िले में जिस चौहान-वंश ने अत्यधिक प्रतिष्ठा और ख्याति प्राप्त की वह रमईपुर वाला है। इस वंश के पास सुरक्षित वंशावली और प्रामाणिक काग़ज़-पत्रों से यह ज्ञात होता है कि मैनपुरी के चौहानों में उत्तराधिकार के निमित्त झगड़ा हो जाने के कारण भूपतिराय चौहान मैनपुरी से भाग कर वर्तमान कानपुर-ज़िले की घाटमपुर-तहसील के अन्तर्गत धर्मंङ्गलपुर नामक गाँव में आकर बस गये। उनके साथ उनके दोनों पुत्र तिलोकसिंह और घनश्यामसिंह भी आये उस समय कानपुर-ज़िले के अधिकतर भाग में सचेंड़ी के राजा हिन्दूसिंह चन्देल का ही आधिपत्य था, यद्यपि यह राज्य अवध के अन्तर्गत था। भूपतिसिंह और हिन्दूसिंह एक दूसरे के सम्बन्धी भी थे। हिन्दूसिंह ने इस नवागन्तुक चौहान-परिवार को आश्रय दिया और उन्हीं की अनुमति से घनश्यामसिंह ने कटरा-घनश्याम नामक गाँव भी बसाया। यह घटना १८ वीं शताब्दी से प्रारम्भ की है जब मुग़ल सम्राट् औरंगज़ेब अपनी वृद्धावस्था में दक्षिण भारत में मराठों से लड़ने में अपनी समस्त शक्ति को लगाने पर भी अपने मनोरथ में सफल न हो कर मरणासन्न हो रहा था। परिणामस्वरूप चारों ओर अराजकता फैल रही थी और साम्राज्य लड़खड़ा रहा था। औरंगज़ेब के मरने पर

धीरे-धीरे प्रायः सभी सूबेदार स्वतन्त्र हो गये। हमारे जिले को अवध के सूबेदार ने अपने अधीन कर लिया।

राजा घनश्यामसिंह—भूपतिराय की पहली स्त्री से तिलोकसिंह और घनश्यामसिंह और दूसरी से सूरतसिंह थे। घनश्यामसिंह ने अवध के नवाब शुजाउद्दौला की सेवा में एक दावा पेश किया जिसमें यह प्रार्थना की गई थी कि घनश्यामसिंह को अवध-शासन की ओर से राजा की उपाधि स्वीकृत की जाय तथा उनके पुराने पद और प्रतिष्ठा के अतिरिक्त ३ हजार पैदल और ३ हजार सवार रखने की भी इजाजत दी जाय और मँझावन के परगने की जागीर बिना नज़राने के दी जाय। सन् फ़सली ११६८ खरीफ़ से मँझावन का परगना उन्हें बिना नज़राने के राजा की उपाधि-सहित प्राप्त हुआ। क़ाज़ी ग़ुलाम नबी की मुहर से मुद्रित नवाब शुजाउद्दौला के सन् जलूस ३ जमादी-उस्सानी की पहली तारीख़ को यह फ़र्मान प्रकाशित हुआ। इस राजाज्ञा के आधार पर राजा घनश्यामसिंह की स्थिति पक्की हो गई और यद्यपि उनका और राजा हिन्दूसिंह का मैत्री का सम्बन्ध इसके बाद भी क़ायम रहा, फिर भी राजा घनश्यामसिंह की अवध-शासन द्वारा स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार कर ली गई। कहते हैं इसके पहले एक बार दिल्ली की शाही फ़ौज ने सचेंड़ी पर आक्रमण किया पर घनश्यामसिंह की सहायता से हिन्दूसिंह को सफलता मिली और दिल्ली की सेना हार गई थी। राजा हिन्दूसिंह की आज्ञा से घनश्यामसिंह ने कानपुर के गावँ में गंगा-तट पर एक घाट, एक मकान और

दो फाटक भी बनवाये, जिनकी चर्चा अन्यत्र हो चुकी है। कानपुर का मौज़ा इन्हीं के अधिकार में इस समय था। इधर सम्राट् और हिन्दूसिंह के बीच का झगड़ा भी समाप्त हो चुका था और लाहौर तथा अन्य स्थानों में घनश्यामसिंह ने सरकारी आज्ञा से लड़ाई में भी भाग लिया था। उनकी वीरता और राज-भक्ति के उपलक्ष्य में उन्हें बादशाह की ओर से रमईपुर के इलाक़े के नरवल-समेत २२ गाँव माफ़ी में तथा घाटमपुर, कोड़ा, बिठूर व साढ़ के परगनों में १३ गाँव ज़मीन्दारी में मिले। इनकी निकासी ९६ हज़ार रुपये थी। इस प्रकार राजा घनश्यामसिंह रमईपुर के स्वामी हुए और यहाँ के चौहानों की यही राजधानी हो गई। राजा घनश्यामसिंह ने रमईपुर में एक क़िला बनवाया तथा एक-एक मील की दूरी पर ५२ गढ़ियाँ भी बनवाईं और उन सब में सेना की टुकड़ियाँ रक्खीं। रमईपुर पहले सवायदपुर के गौतम-वंशीय ठाकुर प्रतापसिंह के हाथ में था। ९६ हज़ार रुपये की निकासी वाले १३ गाँवों की ज़मीन्दारी कुछ काल के बाद राजा घनश्यामसिंह के हाथ से निकल गई। किन्तु रमईपुर की २२ गाँवों की जागीर उनके पास बनी रही।

कानपुर-ज़िले के वीर शासकों में राजा घनश्यामसिंह का नाम सदा प्रसिद्ध रहेगा।

चौहानों का पतन—राजा घनश्यामसिंह के निधन के अनन्तर राजा गिरिवरसिंह रमईपुर की गद्दी पर बैठे। हिम्मतबहादुर अनूपगिरि ने सन् ११७२ फसली (सन् १७६४-६५ ई०) में एक

सनद राजा गिरिवरसिंह को दी जिसमें उन्हें मँझावन, कोड़ा, जाजमऊ, बिंदकी और बिठूर के परगनों के कुछ गावों का जमीन्दार कहा गया है और जिसमें उन्हें खजुहा परगने के ५ गावों और जाजमऊ परगने में कानपुर गाव के दिये जाने की आज्ञा दी गई है। गिरिवरसिंह के बाद सामन्तसिंह राजा हुए। सामन्तसिंह गिरिवरसिंह के दत्तक-पुत्र और तिलोकसिंह के पाँचवें पौत्र उम्मेदसिंह के औरस-पुत्र थे जो नरवल में रहते थे। सामन्तसिंह ने नरवल में ही रहना शुरू किया। गिरिवरसिंह के मरने के समय सामन्तसिंह नाबालिग़ थे। इसलिए तिलोकसिंह के दूसरे पौत्र बहादुरसिंह ही उनके राज्य का प्रबन्ध करने लगे। सामन्तसिंह की नाबालिग़ी और अयोग्यता से लाभ उठाकर बहादुरसिंह ने सारे राज्य को हथिया लिया और उनके मरने के बाद उनके पुत्र सरनेतसिंह ही रमईपुर-नरवल राज्य के राजा हुए। अब भूपतिराय के बड़े लड़के तिलोकसिंह की शाखा के हाथ में यह गद्दी आगई। वास्तव में राजा गिरिवरसिंह के निस्सन्तान होने और उम्मेदसिंह के लड़के सामन्तसिंह को गोद लेने तथा सामन्तसिंह की नाबालिग़ी में बहादुरसिंह के प्रबन्धक बनाये जाने से तिलोकसिंह की शाखा की महत्ता बढ़ना स्वाभाविक ही था। सन् १८०१ में राजा सरनेतसिंह ने नई कम्पनी सरकार की अधीनता स्वीकार न की। नये अंग्रेज़ी शासन ने चौहानों से रमईपुर-नरवल की जमीन्दारी छीन कर फ़ुफ़ुवार के बैसवंशीय ठाकुर पद्ममसिंह को इसे दिया। पर तीसरे बन्दोबस्त (सन् १८०८) में राजा सरनेतसिंह की विधवा रानी के गोद

लिये हुए लड़के उम्रसिंह ने अपने पैतृक अधिकार के लिए कम्पनी की सरकार के समक्ष प्रार्थना-पत्र उपस्थित किया। उम्रसिंह तिलोकसिंह के सातवें पौत्र और बहादुरसिंह तथा उम्मेदसिंह के छोटे भाई रमईपुर-निवासी रुद्रसिंह के औरस-जात पुत्र थे। कम्पनी की सरकार ने उम्रसिंह का दावा मान कार उन्हें रमईपुर-नरवल की रियासत का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया। चौथे बन्दोबस्त (सन् १८१२) में भी उम्रसिंह को ही इस इलाक़े की जमीन्दारी मिली। पर कुछ समय अनन्तर राजा सामन्तसिंह ने सरकार के सामने अपने पुराने राज्य को पाने के लिए अर्जी दी। वास्तव में उनके पुराने अधिकार से कौन इनकार कर सकता था ? फिर भी उनकी नाबालिग़ी और निष्क्रियता के कारण उनके अधिकारों पर खमास लग चुका था। उसे अब सर्वथा मिटाया भी नहीं जा सकता था। इसीलिए कम्पनी की सरकार ने अब इस चौहान-राज्य को दो भागों में विभक्त कर दिया। रमईपुर का इलाक़ा उम्रसेन के ही हाथ में रहा, पर नरवल का इलाक़ा राजा सामन्तसिंह को मिला। राजा सामन्तसिंह ने अपने कई गावँ बेंच डाले और कुछ मालगुजारी अदा न करने से नीलाम हो गये। अब केवल ८ मौजे राजा सामन्तसिंह के पास बचे। उनकी मालगुजारी भी ठीक समय पर जमा न होने से जौनपुर के शेख़ अहमद बख़्श उनके ठेकेदार नियुक्त हुए। अहमद बख़्श उस समय कानपुर का सदर-नाजिर था और उसने बेईमानी से बहुत गावँ अपने और अपने सम्बन्धियों के नाम चढ़ा लिये थे। (देखिए पृ० २४७),

पाँचवें बन्दोबस्त में यही प्रबन्ध स्वीकार किया गया। पर सन् १२५२ फ़सली (सन् १८४५ ई०) में यह प्रबन्ध समाप्त कर दिया गया और फिर राजा सामन्तसिंह अपनी बची-खुची रियासत के स्वामी मान लिये गये। सन् १२७२ फ़सली सन् १८६५ ई० में राजा सामन्तसिंह का देहान्त हुआ और उनके पुत्र (प्रथम भार्या से) बलदेवसिंह तथा द्वितीय भार्या महाराज कुँवर और उसके पुत्र महावीरसिंह व शत्रुजीतसिंह को हाईकोर्ट की आज्ञा से बराबर-बराबर भाग राजा साहब की रियासत में से मिले। कुँवर महाबीरसिंह के तीसरे पुत्र प्रतापसिंह के बड़े लड़के ठाकुर कालिकासिंह हैं और छोटे ठाकुर श्यामसिंह हैं, जिनकी कृपा से हमें यह वंश-विवरण प्राप्त हुआ है। आप इस समय 'प्रताप' प्रेस कानपुर में खज़ांची हैं।

रमईपुर-शाखा के उग्रसेन के दोनों लड़के दरियावसिंह और किशोरसिंह निस्सन्तान मर गये। अब इस वंश की दशा हीन हो गई है और थोड़ी सी ज़मीन्दारी कुछ लोगों के पास रह गई है।

४—गौतम-वंश

वर्तमान फ़तेहपुर-ज़िले में कोड़ा-जहानाबाद के पास स्थित अर्गल एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान है। यहाँ के गौतम राजा दिल्ली के मुसलमानों के समय से ही अपने वैभव और बाहुबल के लिए प्रख्यात रहे हैं। अब से लगभग साढ़े पाँच सौ वर्ष पूर्व अर्गल से कुछ गौतम-परिवार इस जिले की भूमि में आ

बसे। अर्गल के एक गौतमवंशीय सरदार ,ने जिनका नाम बहरामशाह था, गंगा के तट पर बिपोसी को अपनी राजधानी बनाया। बिपोसी को अब नजफ़गढ़ कहते हैं। यह राज्य बहुत दिन न चल सका और नष्ट-भ्रष्ट हो गया। नरबल के पास चिरली नामक गाव में गौतमों की एक दूसरी रियासत भी क़ायम हुई। उसके स्वामी राव कहलाते थे और उनके पास पाँडो और रिन्द नदियों के बीच वाले इलाके में २४ गाव थे। उनके वंशजों के पास इनमें से बहुत से गाव अभी तक हैं। सीसीपुर और रायपुर में गौतमों की तीसरी बस्ती है और आस-पास के १२ गाव इन लोगों के पास थे। कई अन्य गाँवों में भी गौतमों की बस्तियाँ हैं।

५—बैस-वंश

इस जिले के बैस क्षत्रिय उन्नाव-जिले में स्थित डौंड़िया-खेड़ा के प्रसिद्ध वंश की एक शाखा हैं। सबसे पहले ये वर्तमान कानपुर-तहसील के अन्तर्गत तिलसहरी-नामक गाव में आकर बसे। वहाँ से वे पहले इतवारीपुर, सलेमपुर, पाली और फिर अकबरपुर-तहसील के फ़तेहपुर रोशनाई गाव में जाकर बस गये, जहाँ उन्होंने मेवों से १२ गावँ पुरानी राजधानी कसरू खेड़ा के सहित ले लिये। पतारा (तहसील घाटमपुर) तथा भोगनीपुर के कुछ गाँव में भी तिलसरी से ही बैस लोग फैले।

६—पँवार-वंश

कहते हैं कि राजा भोज की राजधानी धारानगरी (वर्तमा धार) के कुबेरसिंह पँवार एक बार तीर्थ-यात्रा करने गये औ इस ज़िले में स्थित वर्तमान मूसानगर के पास देवयानी-सरोव पर आ पहुँचे। उसकी शोभा पर मुग्ध होकर वे वहीं बस गये कुबेरसिंह के एक वंशज पुलंदरशाह ने पुलंदर-नामक गाव बसाया। उनके पास १२ गाँव थे। कालान्तर में इस वंश क दो शाखाएँ हो गईं। एक शाखा के अधिष्ठाता को अवध व नवाब वज़ीर की ओर से राजा की उपाधि मिली। गुलौल इनकी राजधानी थी। पर यह शाखा अब हीन-क्षीण हो गई है भोगनीपुर की तहसील में कुछ परिवार पँवारों के हैं।

घाटमपुर-तहसील में स्थित कोटरा-मकरंदपुर नामक स्था के पँवार धारानगरी के एक दूसरे पँवार भागदेव के वंशज हैं १५वीं शताब्दी में भागदेव को हमीरपुर के राजा से १२ गाव अपने विवाह के दायज में मिले। पँवारों की एक तीसरी स्वतन्त्र शाखा सम्राट् अकबर के समय में घाटमपुर के दक्षिण अमौल गाँव में आ बसी। मानसिंह और नारायणदास नामक दो शाही फ़ौज के रिसालदार उक्त गाँव में आये और वहाँ से दोहरू और कोहरा में भी इस परिवार वाले बस गये। पँवारों की चौथी स्वतन्त्र शाखा शायद सबसे प्राचीन है। उनकी अनुश्रुति के अनुसार उज्जैन के सूरशाह पँवार को उनके स्वामी कान्यकुब्जा-धिपति राजा जयचन्द्र गाहरवाड़ से गंगा और ईसन के बीच

के दोआबे की समस्त भूमि जागीर में मिली। गंगा के किनारे स्थित आँकिन-नामक स्थान में उनकी राजधानी थी। वहाँ से मरियानी, भिठुरी और काकूपुर में इनका विस्तार हुआ। पँवारों की यह शाखा उज्जैनी कहलाती है। बिहार में प्रसिद्ध डुमराँव के राजवंश वाले भी अपने को इसी नाम से पुकारते हैं। पँवारों की स्थिति अब इस जिले में अत्यन्त साधारण है।

७—गाहरवाड़-वंश

कन्नौज के समीपवर्ती होने के कारण इस जिले में गाहरवाड़ों का होना स्वाभाविक है। किसी समय बिल्हौर के दक्षिण और दक्षिण-पूर्व की समस्त भूमि गाहरवाड़ों के अधीन थी। पर राजा जयचन्द्र के पतन के अनन्तर गाहरवाड़-वंश के सभी प्रमुख व्यक्ति अपने प्राण की रक्षा के निमित्त पहाड़ों में चले गये। फिर बाद में वहाँ से मानिकचन्द के एक पुत्र लौट कर औरंगपुर-साँभी नामक गाँव में आये, जहाँ से उन्होंने पँवारों को निकाल बाहर किया और गंगा के किनारे सेंग (जो बाद को अकबरपुर-सेंग कहलाया) को अपना अड्डा बनाया। वे सेंग के राजा कहलाये और उनके पास २८ गाँव थे जिनमें २१ गंगा के इस पार और ७ उस पार थे। इस वंश की एक शाखा वालों के पास १७ गाँव थे और उनकी राव की उपाधि थी। मदारी उनका सदर मुक़ाम था। अब यह शाखा समाप्त हो गई है। अवध के शासन-काल में सेंग के राजा के पास केवल ९ गाँव बच गये। राजा भवानीसिंह के दत्तक-पत्र राजा

तख्तसिंह के जमाने में सेंग की रियासत कोर्ट आफ़ वार्ड्स के सिपुर्द हो गई। राजा तख्तसिंह के पुत्र राजा प्रतापनारायण-सिंह हुए।

८—गहलौत-वंश

कन्नौज के राजाओं के युग में एक गहलौत-वंशीय व्यक्ति गोविन्दराव ने मेवों को निकाल कर कुछ गाँव बिल्हौर के पश्चिमोत्तर तथा निकटवर्ती फ़र्रुखाबाद-जिले में अपने अधिकार में कर लिये। गोविन्दराव से चार पीढ़ी बाद नरसिंहभान ने अपने बड़े लड़के हमीर को ३३ गाँव और छोटे लड़के आस को २५ गाँव अपने राज्य के बाँट दिये। पूर्व की ओर फैलकर इनके वंशजों ने पुराने बिल्हौर परगने के पश्चिमी भाग से गौड़ों को निकाल दिया। उट्टा का गहलौत-परिवार हमीर के वंशजों में है।

६—दीक्षित क्षत्रिय

घाटमपुर-परगने में सबसे प्रथम जिस क्षत्रिय-वंश ने निवास किया वह दीक्षित कहलाता था। उसके संस्थापक घाटमदेव थे, जिनके नाम से घाटमपुर का नाम पड़ा। किसी समय में दीक्षितों के अधिकार में १८१ गाँव थे। पर बाद को इस वंश की एक शाखा ने मुसलिम धर्म ग्रहण कर लिया और उसके पास भी कुछ गाँव चले गये। इस शाखा का मुख्य केन्द्र रेवना है।

१०–विविध क्षात्रिय वंश

इन प्रमुख क्षत्रिय वंशों के अतिरिक्त कुछ अन्य वंश भी ज़िले के विभिन्न भागों में बसे हुए हैं। घाटमपुर-तहसील में गुजेला-नामक ग्राम पड़िहारों का अड्डा है जहाँ वे आज से लगभग साढ़े छः सौ वर्ष पहले आकर बसे थे। पुराने बिल्हौर परगने के पश्चिमी भाग में सोमवंशियों का भी एक छोटा सा इलाक़ा है जो गौड़ों और गहलौतों के इलाक़ों के आस-पास है। भोगनीपुर-तहसील के अहरौलीघाट नामक मौजे में सीसोदियों की ज़मीन्दारी है। पुराने बिल्हौर-परगने में बगदौधी, पेम और करसौली में जनवार-वंश का इलाक़ा है। इटावे से आकर सेंगर लोग तथा आगरे-ज़िले की बाह (बटेश्वर) तहसील से भदौरिये भी आकर इस ज़िले में बसे। नरबल में भदौरियों की ज़मीन्दारी है। तुनारी में अभी हाल में जादौ क्षत्रियों का अधिकार हुआ है। भोगनीपुर तथा अन्य तहसीलों में अपने को कछवाहा, चौहान, चन्देल, गौतम आदि कहने वाले कुछ परिवार हैं जिन्हें अन्य क्षत्रिय शुद्ध नहीं मानते। वे सम्भवतः पहले मेव थे, पर बाद में अपने को क्षत्रिय कहने लगे। उनमें मेव जाति के गुण विद्यमान हैं। अन्य क्षत्रियों से इनका रोटी-बेटी का कोई सम्बन्ध नहीं है।

क्षत्रियों का ऐतिहासिक महत्त्व—उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि क्षत्रियों के प्रसिद्ध ३६ वंशों में से १४-१५ वंशों ही के प्रतिनिधि इस ज़िले में बसे हुए हैं। 'अग्नि-कुल' क्षत्रियों में से

चौहान (चाहमान), पड़िहार (प्रतिहार) और पवाँर (परमार) ही यहाँ हैं। चौथे कुल चालुक्य का यहाँ कोई नामोनिशान नहीं है। गाहरवाड़ तो हैं पर राठौर कहलाने वाली शाखा नहीं है। फ़तेहपुर-ज़िले में स्थित असोथर के प्रसिद्ध खीची अथवा खीचर-कुल का विस्तार भी इस ज़िले में नहीं है—यह आश्चर्य की बात है। खीची वास्तव में चौहानों की ही एक शाखा है।

जितने भी क्षत्रिय वंश इस ज़िले में आ बसे वे यहाँ के इतिहास में प्रसिद्ध हुए। शासक के रूप ही में नहीं, पौराणिक हिन्दू धर्म की रक्षा, ब्राह्मणों के प्रश्रय तथा कला की उन्नति में वे सदैव तत्पर रहे। हिन्दू देवी-देवताओं के अनेक सुन्दर मन्दिर इनके द्वारा निर्मित हुए जिनके भग्नावशेष ज़िले में अभी मिलते हैं। रक्षा के निमित्त इन्होंने अनेक छोटे-बड़े क़िले (गढ़ियाँ) भी बनवाये। संस्कृत और हिन्दी के अनेक कवियों को इन शासकों ने आश्रय देकर साहित्योन्नति में हाथ बँटाया। "कान्यकुब्ज-वंशावली" के अनुसार शिवराजपुर तथा अन्य स्थानों के राजाओं ने अनेक यज्ञ करवाये और ब्राह्मणों को बहुत से गावँ दान में दिये। कान्यकुब्ज-ब्राह्मणों के "स्थान" अधिकांश इसी ज़िले के अन्तर्गत हैं।

११-प्रथम जाट-वंश

अवध के नवाब शुजाउद्दौला (१७५६-७५) के समय में अ? मासअली ख़ाँ नामक एक ख़्वाजा-सरा दिल्ली से किसी

बेगम के साथ लखनऊ आया। वह पंजाब के एक जाट परिवार में पैदा हुआ था। पर बचपन में ही वह ख़्वाजा-सरा बनाया गया था। शुजाउद्दौला ने उसकी सेवा और योग्यता पर मुग्ध होकर उसे "रुकनुद्दौला नसीरुल्मुल्क फ़तेहजंग बहादुर" का ख़िताब दिया और अनेक ऊँचे पदों पर काम करने के बाद वह पहले चकला बिठूर का आमिल बनाया गया। यह चकला (ज़िला) सूबा इलाहाबाद में था और उसमें बिठूर, मुहसिनपुर (मसवानपुर), सचेंड़ी, मँझावन, जाजमऊ, शिवराजपुर, शिवली के मुहाल (परगने) थे। सन् १७७३ में अल्मास अली कोड़ा-जहानाबाद के सूबे के नाज़िम (शासक) नियुक्त हुए। मुग़ल बादशाह शाह आलम के सन् १७७१ में इलाहाबाद से दिल्ली चले जाने पर कोड़ा व इलाहाबाद ज़िले फिर अवध को वापस कर दिये गये थे। पर मराठे दोआब में अपनी शक्ति बढ़ाते जाते थे। उनसे मोर्चा लेने के लिए उमरावगिरि और हिम्मतबहादुर गोसाईं कुछ काल तक कानपुर के संरक्षक और दोआब के कुछ भाग के जागीरदार रहे। पर १७७६ में वे अवध की नौकरी छोड़ कर दिल्ली चल दिये। १७७८ से यहाँ अंगरेज़ी फ़ौज की छावनी बनी। १० नवम्बर सन् १८०१ तक, जब नवाब वज़ीर ने कानपुर के वर्तमान ज़िले की भूमि ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दे दी, अल्मास इस सूबे का शासक रहा। ३०-४० वर्ष तक उसका सम्बन्ध इस ज़िले से रहा। उसने पंजाब से अपने फूफा के लड़के भागमल को भी अवध में नौकर करवा दिया। भागमल जालन्धर-ज़िले के गुड़ा (गौरा) नामक गाँव के गौर-

जातीय बुधसिंह जाट सरदार का पुत्र था। अवध की हुकूमत की ओर से इन्हें इटावे के चकले का शासन-भार मिला, जिसमें पहले अल्मास अली थे, और जो कोड़ा सूबे में था। इसके अतिरिक्त बिठूर के पास रमेल गाँव की जागीर भी इन्हें माफ़ी में मिली। नवाब वज़ीर ने उसे राजा का ख़िताब भी दिया। इटावा चकले में सिकंदरा, डेरामंगलपुर, बिठहौर, देवहा, रसूलाबाद, कन्नौज, औरैया, फफूँद आदि परगने थे। राजा भागमल का सदर मुक़ाम फफूँद था। इस प्रकार इस ज़िले का पूरा भाग और उसके आस-पास के फ़र्रुख़ाबाद, इटावा और फ़तेहपुर-ज़िलों के कुछ भाग इन दोनों भाइयों के हाथ सन् १८०१ तक रहे। इन दोनों में ख़ूब पटती थी और दोनों आपस में सलाह कर अपने-अपने इलाक़ों का शासन करते रहे। हिम्मतबहादुर और उमरावगिरि गोसाईं से भी इनकी मित्रता थी। गोसाईं-बन्धुओं के परिवार को अल्मास ने ऐसे आड़े समय में अपनी संरक्षता में रक्खा जब माहादजी सिंधिया दिल्ली की हुकूमत का सर्वेसर्वा बना हुआ था और गोसाईं-बन्धु सिंधिया के कोप-भाजन बन कर वहाँ से भाग कर इधर-उधर भटक रहे थे और सिंधिया नवाब वज़ीर पर बार-बार यह ज़ोर डाल रहा था कि गोसाईं-बन्धुओं और उनके परिवार को अवध-राज्य में शरण न दी जाय। यह सन् १७८५ की बात है। अल्मास अपने प्रभु नवाब वज़ीर आसफ़उद्दौला के कोप की चिन्ता न कर गोसाईं-बन्धुओं को गुप्त सहायता दे रहा था। जिस तरह मुग़ल-सम्राट् का शासन शिथिल हो गया था



हरदेवजी की मूर्ति, बुधौली



मरयाँघाट स्थित एक मंदिर

और सब सूबेदार स्वतन्त्र हो गये थे, उसी प्रकार अवध के नवाब वज़ीर के नाज़िम व आमिल भी स्वतन्त्र होने का प्रयत्न कर रहे थे। इधर कानपुर अंग्रेज़ी व्यापार का केन्द्र हो रहा था, और उसकी रक्षा तथा मराठों पर निगाह रखने के लिए, अवध सरकार के ख़र्च से यहाँ अंग्रेज़ी फ़ौज की एक ब्रिग्रेड सन् १७७८ से रक्खी गई। यह फ़ौज पहले हरदोई-ज़िले के बिलग्राम-नामक स्थान के पास फ़ैज़पूर-कम्पू में कन्नौज के सामने गंगा के उस पार रहती थी।

अल्मासअली और राजा भागमल के शासन में यह ज़िला बहुत दिन रहा। दोनों काफ़ी योग्य और चतुर शासक थे। ज़िले की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति उस समय से डावाँ-डोल थी जब से मुग़ल-साम्राज्य का शासन-सूत्र ढीला हो चला था और स्थानीय राजा और सरदार स्वतन्त्र होने लगे थे। इस बीच में हमारे ज़िले की भूमि में मराठों, फ़र्रुख़ाबाद के बंगश पठानों और अवध के नवाब वज़ीरों के बीच प्रभुत्व प्राप्त करने के निमित्त परस्पर ख़ूब छीनाझपटी हो चुकी थी। इन तीनों शक्तियों के भाग्य के उतार-चढ़ाव के दृश्य इस ज़िले के निवासियों ने अपनी भूमि में देखे थे। शिवराजपुर और सचेंड़ी के चंदेल राजा भी इस अभिनय के प्रमुख पात्र रह चुके थे। उन्होंने भी अवसर पाकर अपने हितों के साधन का प्रयत्न किया था। अन्त में मराठों और पठानों के पैर यहाँ से उखड़ गये और अवध का ही प्रभुत्व स्थापित हो गया। पठानों के एक पुराने

जागीरदार दायम खाँ के पास पुखरायाँ की जागीर थी। उससे अल्मासअली से मित्रता थी। गत पचास वर्षों की अराजकता का प्रभाव इस जिले की आर्थिक दशा पर बहुत बुरा पड़ा था। इन सब परिस्थितियों में अलमास अली व भागमल का शासन-कार्य सुकर नहीं था। पर अपनी योग्यता से उन्होंने सफलता-पूर्वक प्रबन्ध को सँभाला। स्थानीय ज़मींदारों और शासकों की अराजक प्रवृत्ति को दाब कर उन्होंने शान्ति स्थापित की और लोकहितैषी कार्यों का सम्पादन भी किया। अलमासअली का सदर मुक़ाम कोड़ा था, पर वह कानपुर अक्सर आकर महीनों मुक़ाम करता था, क्योंकि यहाँ अङ्गरेज़ी फ़ौज की छावनी थी, और कानपुर की शनैः-शनैः उन्नति हो रही थी। इस काल में जाजमऊ, इटावा, फ़रुखाबाद, कन्नोज, बिलग्राम आदि के कई परिवार क़िराने, ग़ल्ले, नील या कपड़े के व्यापार-व्यवसाय, फ़ौज में नौकरी या कमसरियट की ठेकेदारी या महाजनी के सुभीते से यहाँ आ बसे। अंग्रेजी अमल क़ायम होने पर इन परिवारों का वैभव और भी बढ़ा। कानपुर की प्रारम्भिक उन्नति का श्रेय इन्हीं परिवारों को है। इसमें सन्देह नहीं कि १७७३ से १८०१ तक अलमास अली के सुयोग्य शासन की गोद में ही कानपुर-रूपी नवजात शिशु का पालन-पोषण हुआ।

वर्तमान कानपुर-जिले की सीमा के अन्तर्गत भूमि की माल-गुज़ारी अवध सरकार के क़ाग़ज़ी हिसाब से २२ लाख ५६ हज़ार १५६ रुपये होती थी, पर वास्तव में इसका कितना भाग जमा होता था इसका ठीक-ठीक अनुमान लगाना कठिन है।

उस समय की पद्धति के अनुसार प्रत्येक गाँव की मालगुज़ारी ठेके पर उठा दी जाती थी और ये ठेकेदार ज़मींदार अपनी रिआया से मनमाना लगान वसूल करते थे। पर फिर भी अल्मासअली के शासन-काल में रिआया की आर्थिक दशा इतनी बुरी नहीं थी जितनी कि वह अंग्रेज़ी अमल क़ायम होने पर नये बन्दोबस्तों के कारण हो गई। जब कानपुर के पहले कलेक्टर मि० वेलाण्ड ने १८०२ में इसका चार्ज लिया तो उसने पूर्ववर्ती शासन की काफ़ी निन्दा की। अपने ३१ मई १८०२ वाले पत्र में मि० वेलाण्ड ने मि० हेनरी वेलेज़ली को, जो अवध द्वारा अङ्गरेजों को दिये हुए ज़िलों के लेफ्टीनेन्ट गवर्नर नियुक्त किये गये थे, यह लिखा "नवाब वज़ीर और मीर अल्मासअली खाँ की यह नीति थी कि जितना रुपया जिस उपाय से भी हो सके जमा किया जाय। प्रत्येक फ़सल के शुरू में उसके चलाने के लिए सामान दिया जाता था, यहाँ तक कि ख़ुराक, खाना, कपड़े और रिआया के मकानों तक का अधिकतर नियंत्रण होता था और हुकूमत की ओर से उन्हें इन कामों के लिए रुपया दिया जाता था। पिछली फ़सल के काटने के समय किसानों से सब गल्ला छीन लिया जाता था; इसलिए अगली फ़सल की तैयारी के लिए उन्हें रुपया बीज, जानवर, हल आदि तक़सीम किये जाते थे और फ़सल काटने पर मूल का सवाया वसूल किया जाता था। आमिल सर्वशक्तिमान् था और पैदावार का अधिक से अधिक भाग ले लेता था।" वह दूसरी जगह लिखता है—"देश के इस भाग की रिआया अत्यन्त दयनीय

निर्धनता की दशा में है। सारे इलाके में खोजने से भी न तो कोई कारीगर मिलेगा और न टैक्स दे सकने की क्षमता रखने वाला व्यक्ति। सब जगह उजाड़ पड़ी है जिसमें अभी तक अत्याचार का ही सर्वत्र राज्य रहा है।" इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यह वर्णन अतिरंजित और द्वेष-पूर्ण है। वह फिर कहता है कि "नाना प्रकार के नाजायज कर और चुँगियों के लिये जाने से व्यापार में बाधा पड़ती है। सब दूकानदारों पर 'परजोत' नामक एक कर लगता है। नमक, मछली, चटाई, आदि पर कर हैं। तोलने के बाँटों की परख पर 'संगबज़नी' नामक कर है। कोई पुलिस नहीं है और न जान-माल की रक्षा का प्रबन्ध है। किसान को खेत बोते समय यह संतोष कभी नहीं होता था कि वह अपनी फ़सल काट भी सकेगा। खेती घट गई है, तिजारत कम हो गई है, और अधिकतर लोग या तो अपनी सम्पत्ति की रक्षा में या दूसरे की सम्पत्ति के लूटने में लगे रहते हैं।" अंग्रेज़ी अमल की नियामतों को बढ़ा कर दिखाने के लिए ही मि० बेलाण्ड ने अल्मासअली के शासन को ऐसा काला पोतने की कोशिश की है। ख़ुद बहुत से अंग्रेज़ लेखकों और अगले बन्दोबस्तों के अफ़सरों के लेख इस अतिरंजित वर्णन का खंडन करते हैं। मेजर स्लीमन, जो अवध राज्य के अन्तिम दिनों में लार्ड डलहौज़ी द्वारा नियुक्त लखनऊ का रेज़ीडेंट था, अपनी "अवध-राज्य की यात्रा" में कहता है कि "अल्मासअली अवध के सम्पूर्ण इतिहास में सबसे महान् और श्रेष्ठ पुरुष हो गया है।" १८वीं शताब्दी भारतीय इतिहास का

सबसे अधिक काला युग है। सर्वत्र देश भर में अराजकता और आर्थिक दुरवस्था का साम्राज्य था। अल्मासअली का शासन उस युग की दुर्दशा को ख़याल में रखते हुए काफ़ी अच्छा और शान्तिपूर्ण था। और फिर १९वीं शताब्दी में हमारे नये प्रभुओं का शासन भी बहुत काल तक कुछ पहले से अच्छा नहीं रहा, रिआया की माली हालत कहीं अधिक हीन हो गई।

अल्मासअली और भागमल दोनों ने निष्पक्ष और सर्व-प्रिय शासक बनने का उद्योग किया। अल्मास ने जहानाबाद में एक तालाब और कुछ मकान बनवाये, कानपुर में गंगा के किनारे एक कोठी बनवाई और अर्दली बाज़ार बसाया। उसकी मृत्यु लखनऊ में १८०८ में हुई। ज़िला इटावा में कुदरकोट में उसने १६ बुर्जों का एक क़िला बनवाया जिसे शुजाउद्दौला ने गिरवा दिया, क्योंकि वहाँ की प्रजा ने यह शिकायत की थी कि इतने बड़े सुरक्षित गढ़ में रह कर कोई भी हाकिम अन्याय और अत्याचार ही करेगा और लोग उसका कुछ बिगाड़ न सकेंगे। बाबरपुर की सराय भी इसी ने बनवाई। राजा भागमल ने बिठूर में एक कटरा व मकान का निर्माण किया और कई बाग़ लगवाये। अपनी पैदा की हुई रक़म से उसने २७ गाँव ख़रीदे और कुछ इनाम में पाये। उसने फफूँद में कई मन्दिर व तालाब व एक रहने का मकान व सन् १७९६ में एक मस्जिद का निर्माण अल्मास के आदेश से किया। वहाँ का पुराना क़िला भी उसी की सृष्टि है। मकनपुर में मदारशाह के मज़ार के पास एक नक़्क़ारख़ाने की इमारत भी भागमल ने बनवाई।

औरैया में एक विशाल मन्दिर और देहली दरवाजा व मदार-दरवाजा भी इनके बनवाये हुए हैं। इनका देहान्त फफूँद के पास सहार ग्राम में सन् १८०८ में हुआ। जब सन् १८०१ मे इटावे का इलाक़ा भी अवध से अंग्रेजी हुकूमत में आया तो राजा भागमल से अंग्रेजी सरकार की सहायता करने को कहा गया, पर इन्होंने यह कह कर साफ़ इन्कार कर दिया कि जिसका नमक इतने दिन खाया उसके विरुद्ध हम नहीं हो सकते। रमेत की जागीर जो इन्हें अवध से माफ़ी में मिली थी; अब ज़मींदारी में परिवर्तित हो गई। १८१८ में बाजीराव पेशवा भी विठूर आ गये। उनके परिवार से इनकी ख़ूब मित्रता थी। पर ग़दर में यह परिवार तटस्थ रहा। इनके बुद्धसिंह, जोधसिंह और खुशालसिंह ये चार पुत्र थे।

निरंजनसिंह—सबसे और बड़े बुद्धसिंह बिठूर ही में बसे रहे और उनके पुत्र जवाहरसिंह और उनके हरनामसिंह हुए। हरनामसिंह के देवासिंह और उनके पुत्र सरदार निरंजनसिंह अब सीसामऊ में "निरंजन-निवास" में रहते हैं और अत्यन्त मिलनसार सज्जन हैं। आपने अपनी जायदाद का प्रबन्ध बहुत अच्छा कर लिया है। वे संयुक्तप्रान्तीय सेन्ट्रल सिक्ख दीवान के ११४० से ४५ तक प्रधान और यू० पी० जाट सभा के मन्त्री रह चुके हैं। आपके पुत्री का विवाह पटियाला नरेश के साले के साथ हुआ है। उनके पास राजा भागमल के समय के २७ गावों में से ४ गाय अभी तक हैं। इनमें से दो इटावा-जिले में और दो कानपुर में हैं, तथा बिठूर की ज़मींदारी

का भी कुछ भाग है। आपने अपने दो पुत्रों को शान्ति-निकेतन महाविद्यालय में पढ़ाया है। पंजाब के सिक्ख राज्य-घरानों में इस परिवार की बड़ी प्रतिष्ठा है।

राजा भागमल के दूसरे पुत्र जोधसिंह ने नगीना, ज़िला बिजनौर, में एक लाख क़ीमत की एक जायदाद क़ायम की। पर इनके वंशजों ने कुप्रबन्ध और भोगविलास में यह जायदाद उड़ा दी। जहानाबाद इनकी ज़मींदारी का सबसे बड़ा मौज़ा था।

अलमास अली खाँ और राजा भागमल हमारे ज़िले के अन्तिम भारतीय शासक थे। उनकी बनाई हुई इमारतें अपनी भग्नावस्था में भी उनकी कीर्ति को जाग्रत किये हुए हैं और राजा भागमल के वंशज अभी हमारे मध्य में विद्यमान हैं। कानपुर का यही प्राचीनतम जाट और सिक्ख परिवार है।

१२—गोसाईं-वंश

श्री शंकराचार्य के गिरि, पुरी, भारती आदि दस प्रमुख शिष्य थे। इन दसों ने अपनी-अपनी शिष्य-परम्परा चलाई। इन शाखाओं के शिष्य गोस्वामी या गोसाईं कहलाये। बहुत समय तक गोसाइयों की शिष्य-परम्पराओं में विद्या एवं उच्च धार्मिकता का नियम चलता रहा। ये गोसाईं लोग यावज्जीवन ब्रह्मचारी रह कर धर्म का प्रचार करते थे। उनके उत्तराधिकारी उनके प्रमुख शिष्य ही होते थे। पर फिर अन्य संस्थाओं की भाँति इसमें भी अनाचार और पथभ्रष्टता का सूत्रपात हुआ।

पुराने नियम टूट गये, केवल दिखावटी घटाटोप अवशिष्ट रह गया।

गिरि-परम्परा में एक राजेन्द्र गिरि नामक नागा-गोसाईं थे, जो झाँसी-जिले के मोठ गाव के स्वामी थे। उनकी शिष्य-मण्डली में दो सनाढ्य-ब्राह्मण-कुमार भी दीक्षित हुए, जो हमीर-पुर-जिले के कुलपहाड़ गाव के रहने वाले थे। इनके पिता का देहान्त इनके बचपन ही में हो गया था, अकाल के मारे इनकी माता इनका पालन न कर सकीं। इसलिए उसने इन्हें राजेन्द्र गिरि के हाथ बेंच डाला, जिसने इन दोनों का नाम उमराव गिरि और अनूप गिरि रक्खा। गुरु के मरने के बाद यही दोनों उसके उत्तराधिकारी हुए। कहते हैं कि राजेन्द्रगिरि की सेवा ही में रहते हुए अनूप गिरि मिट्टी के सवार और प्यादे बनाकर उनकी लड़ाई कराया करता था। गुरु जी ने उसकी सेवा पर प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया कि तू बड़े होने पर सचमुच बहुत बड़ी फ़ौज का सरदार होगा। सन् १७५० में राजेन्द्र गिरि मुग़ल-साम्राज्य के प्रसिद्ध वजीर और अवध के द्वितीय नवाब सफ़दर जंग की नौकरी में भर्ती हुआ और दोनों चेले भी उसके साथ गये। राजेन्द्र गिरि सफ़दर जंग के साथ बंगश-पठानों के विरुद्ध १७२० में और दिल्ली के कर्ता-धर्ता इमादुल्मुल्क के विरुद्ध १७५३ में लड़ा। राजेन्द्र गिरि के १७५३ में कैलासवासी होने पर नवाब साहब ने उसकी जगह उमराव गिरि को नागा फ़ौज का सरदार नियुक्त किया। सन् १७५४ में सफ़दर जंग के मरने के बाद उसके पुत्र नवाब शुजाउद्दौला ने भी इन दोनों

'इयों की प्रतिष्ठा कर उन्हें एक हज़ार सवार फ़ौज का सर-
र बनाया। शुजाउद्दौला ने अनूप गिरि की योग्यता और
रता पर मुग्ध होकर उसे 'हिम्मत बहादुर' का ख़िताब भी
या। युवावस्था में शुजाउद्दौला बहुत ऐयाश तबियत वाला
ार व्यभिचारी था। उसके ऐसे कामों में भी उमराव गिरि व
म्मत बहादुर उसकी जी-जान से मदद करते थे। शुजाउद्दौला
' ओर से सन् १७६२ में हिम्मत बहादुर ने महोवा के राजा
न्दूपत से युद्ध किया, पर उसमें उसकी करारी हार हुई
ार उसका साथी करामत खाँ पठान इस युद्ध में मारा गया।

इन दिनों अंग्रेजों की भाग्य-लक्ष्मी बंगाल क्या समस्त
रत और अमेरिका तक में जगमगा रही थी। सप्तवर्षीय युद्ध
विजयी होकर उन्होंने फ़्राँस वालों का पूरा मान-मर्दन कर
या था। बंगाल व बिहार में उनकी तूती पलासी के युद्ध के
नन्तर बोलने लग गई थी। पानीपत के तृतीय युद्ध (सन्
'६१) में मराठों की शक्तिपददलित हो चुकी थी। शाह आलम
़खड़ाते हुए मुग़ल-सिंहासन पर बैठ चुका था। मुर्शिदाबाद
मसनद पर मीर जाफ़र को पदच्युत कर कलकत्ता कौंसिल
मीर क़ासिम को नवाब नियुक्त किया था (१७६१)। पर
घ्र ही मीर क़ासिम और अंग्रेजों के बीच युद्ध छिड़ गया। सन्
६४ में पञ्चमहाल और बकसर के ऐतिहासिक युद्धों में मुग़ल-
ाट् शाह आलम और अवध के नवाब वज़ीर शुजाउद्दौला
साथ मीर क़ासिम की हार हुई। इन युद्धों में अवध की फ़ौज
हिम्मत बहादुर की नागा-फ़ौज भी लड़ी थी। पञ्चमहाल की

लड़ाई में नागा-फ़ौज की संख्या ५-६ हज़ार के लगभग थी। ये बिल्कुल नंगे थे, उनके तमाम बदन पर भस्म लगी हुई थी और उनके लम्बे बाल कन्धों के नीचे तक लटक रहे थे। वे तलवार और तीर-कमान से लड़ते थे। शुजाउद्दौला का सितारा अस्त हो रहा था। ऐसी दशा में दोनों गोसाईं-बन्धु भरतपुर के राजा जवाहरसिंह जाट के यहाँ चले गये, पर दिसम्बर १७६६ में वे उसे छोड़ कर मराठा सरदार सागर-नरेश रघुनाथ राव के यहाँ नौकर हो गये। पर अगले वर्ष मराठों के पैर उत्तर भारत से पलटते देख कर ये फिर अपने पुराने संरक्षक शुजाउद्दौला की शरण में लौट आये। लार्ड क्लाइव ने इलाहाबाद के सन्धि-पत्र (१७६५) के अनुसार शुजाउद्दौला को अवध का राज्य वापस कर दिया था और उसका सितारा डूबते-डूबते बच गया। सन् १७६९ में जब मराठे फिर दोआब पर चढ़ आये तो नवाब वज़ीर ने उमराव गिरि को गुप्तचर की हैसियत से उनके पास भेजा। १७७१ में जब मराठों का ख़तरा और बढ़ गया तो नवाब ने दोनों भाइयों—उमराव गिरि और हिम्मत बहादुर—को कानपुर के रक्षक के पद पर नियुक्त करके भेजा, क्योंकि इस समय मराठे लोग वर्तमान कानपुर-ज़िले के बहुत से भाग पर अपना अधिकार जमाये हुए थे। १७७२-७३ में रुहेला-युद्ध हुआ और रुहेलखंड जीत कर नवाब शुजाउद्दौला ने इन गोसाईं-बन्धुओं के सिपुर्द उसका शासन कर दिया। सन् १७७५ में शुजाउद्दौला मर गया और उसके स्थान में उसका पुत्र आसफ़उद्दौला अवध का नवाब हुआ। उसने उमराव गिरि को एक लाख सालाना की

जागीर दी और हिम्मत बहादुर को दोआब की नैयाबत ४८ लाख सालाना मालगुज़ारी अदा करने पर दे दी। इस प्रकार हिम्मत बहादुर हमारे ज़िले के अधिकांश का शासक नियुक्त हुआ।

पर इन गोसाईं-बन्धुओं में महत्वाकांक्षा और साहस की मात्रा बहुत अधिक थी। लखनऊ की हालत क्षीण देख कर उन्होंने वहाँ के नवाब से स्वतन्त्र होकर अन्य सरदारों और शासकों की तरह अपनी प्रभुता स्थापित करने की ठानी। यह समाचार पाकर नवाब आसफ़उद्दौला घबड़ाया और उसने अंग्रेज़ों से मदद माँगी। गोसाईं-बन्धु, अवध की नौकरी पर लात मार कर सन् १७७६ में बादशाह शाह आलम के मन्त्री मिर्ज़ा नजफ़ खाँ की शरण में अपनी ६-७ हज़ार फ़ौज के समेत जा पहुँचे। इलाहाबाद की संधि की अनुसार शाह आलम का इलाहाबाद के क़िले में ब्रिटिश संरक्षता में रहना तै हुआ था। कोड़ा व जहानाबाद के ज़िले निजी जागीर की तरह पर उसे दिये गये थे और बंगाल-बिहार की दीवानी का हक़ कम्पनी को सिपुर्द कर देने के उपलक्ष्य में बादशाह को २६ लाख सालाना की पेंशन मिलने की शर्त हुई। पर १७७१ में बादशाह इलाहाबाद के क़िले से निकल कर दिल्ली लौट गया। उस समय मिर्ज़ा नजफ खाँ का दिल्ली में सिक्का जमा हुआ था और उनसे और आसफ़उद्दौला से लाग-डाँट थी। गोसाईं-बन्धुओं को दिल्ली में बड़ी आवभगत हुई। हिम्मत बहादुर ने उसी वर्ष डीग के घेरे में नजफ़ खाँ की सहायता की और मुग़ल सरकार और

मराठों के बीच दूतत्व का काम भी किया। १७८२ में नजफ़ का देहान्त हो गया और दिल्ली के अमीरों में आपसी छीना-झपटी का बाज़ार गरम हो उठा। पर हिम्मत बहादुर की धाक वहाँ जमी रही। दिल्ली में कई गुट्ट थे। पहले पहल हिम्मत बहादुर मीरन शफ़ी के गुट्ट में शामिल हुआ और उसका दाहिना हाथ बन गया। हिम्मत बहादुर के प्रयत्नों से जून १७८३ में चम्बल नदी के किनारे मीरन शफ़ी और माहादजी सिंधिया की मुलाक़ात हुई। मीरन शफ़ी माहादजी की सहायता से अपने प्रतिद्वन्द्वियों, अफ़रासियाब खाँ और आगरे के सूबेदार मुहम्मद बेग हमदानी, के प्रभाव को नष्ट करना चाहता था। पर इस मुलाकात के कुछ ही महीने बाद मीरन शफ़ी को उसके प्रतिद्वन्द्वियों ने क़त्ल करवा दिया। अब अफ़रासियाब का सितारा चमका और हिम्मत बहादुर उसके गुट्ट का प्रतिष्ठित सदस्य बन गया। अफ़रासियाब के वकील और सर्वेसर्वा की हैसियत से से वह कई बार माहादजी से मिला और इन दोनों में मुलाक़ात कराने का प्रबन्ध कर ही रहा था कि अफ़रासियाब का भी वध हो गया (नवम्बर १७८४)। दिल्ली में दलबन्दी की दलदल और बढ़ गई। अफ़रासियाब का पूरा घरेलू प्रबन्ध तथा उसका पूरा ख़ज़ाना हिम्मत बहादुर की सिपुर्दगी ही में था। अब उसने यह कोशिश की कि अफ़रासियाब के रिक्त स्थान में उसने नाबालिग़ पुत्र को मीर बख्शी बनवाया जाय। और गुट्ट वाले अपने अपने आदमी की नियुक्ति के पक्ष में यत्नशील थे। पर बिना माहादजी सिंधिया को सहायता के कोई भी सफल न हो सकता

था। हिम्मत बहादुर ने अफ़रासियाव के भरे-पूरे ख़ज़ाने का प्रलोभन सिंधिया को दिया, जिससे उसने अफ़रासियाव के ६ वर्ष की उम्र वाले पुत्र का ही समर्थन किया। हिम्मत बहादुर सिंधिया का घनिष्ठ मित्र हो गया। सिंधिया का मान दिल्ली में सर्वोपरि स्थापित हो गया। पर एक मियान में दो तलवारें कैसे रह सकती थी ? हिम्मत बहादुर और माहादजी में खटपट हो गई। अफ़रासियाव के ख़ज़ाने की रक़म हिम्मत बहादुर और उसके साझीदार राजा नारायणदास ही घताये रहे, सिंधिया को एक पैसा उसमें से न मिल सका। उधर हिम्मत बहादुर ने शेखी में कह डाला कि मैं हमदानी से आगरे का क़िला छीन लूँगा। इसमें उसे कामयाबी न मिली। उसकी साख माहादजी के दिल से उतर चुकी थी। काठ की हाँडी कितनी बार आग पर चढ़ेगी ? सिंधिया ने नारायणदास को अफ़रासियाव की सम्पत्ति ग़बन करने के अभियोग में क़ैद करा दिया। अब वह दूसरे घाघ हिम्मत बहादुर की घात में था। बादशाह शाह आलम के कान भी उसने हिम्मत बहादुर के विरुद्ध भर रक्खे थे। अपने विरुद्ध वातावरण को सूँघ कर हिम्मत बहादुर का कलेजा काँप रहा था। सिंधिया ने हिम्मत बहादुर के ग़बन, राज-द्रोह, कुटिलता आदि के प्रमाण एकत्र कर लिये थे और वह उसको दाँव में फाँसने की तैयारी कर रहा था। पर ब्राह्मण और फिर गोसाईं जान कर वह उसे मारना नहीं चाहता था। उसे यह हुक्म मिला कि दोनों भाइयों के नाम की २० लाख सालाना की जागीर जब्त कर दी गई। पर हिम्मत बहादुर के

विनय-अनुनय करने पर उसे मोठ और बृन्दावन की जागीरें दी गईं, और यह शर्त लगाई गई कि वह अपनी नागा-पल्टन का ख़र्च ख़ुद दे और सिंधिया के मातहत रक्खे, पर वह स्वयं बृन्दाबन-धाम में गोसाईं-जीवन व्यतीत करे। इससे अधिक दंड इस पुराने कूटनीतिज्ञ, तिकड़मबाज़, काँइयाँ गोसाईं को क्या मिल सकता था? उसका अपमान और अधिक क्या हो सकता था? वह सिंधिया के चंगुल में पूरी तरह आ गया था। पर फिर भी वह अपनी सहज चतुरता को छोड़ नहीं सकता था। दो चालाक-दिमाग़ पुरुषों की कुश्ती थी। हिम्मत बहादुर मौक़ा पाकर, जब सिंधिया जयपुर की ओर गया हुआ था, मराठा फ़ौज की निगरानी से भाग निकला। कहते हैं ब्रिटिश रेज़ीडेंट मि० ऐंडरसन की साज़िश और सहायता से वह ऐसा कर सका। कुछ भी हो, वह अब सिंधिया का जानी दुश्मन हो गया। जब तक दोनों जिये एक दूसरे के विनाश का मार्ग ढूँढ़ते रहे। पर कहाँ एक ओर महाराज सिंधिया, जो एक प्रकार से बादशाह शाह आलम का सर्वेसर्वा हो गया था, और जिसकी शक्ति के सामने पूना की सरकार का प्रधान नाना फड़नवीस, तथा ब्रिटिश गवर्नर जनरल भी थर्राते थे, जिसने कुछ समय बाद जाट, राजपूत तथा अन्य नरेशों को भी अपनी मुट्ठी में कर लिया था, और जिसकी फ़ौज की यूरोपीय टुकड़ी जो फ़्रांसीसी जनरल डीबायन के कमान में थी, समस्त देश में अपनी निराली छटा रखती थी? और दूसरी ओर एक ग़रीब सनाढ्य ब्राह्मण का पत्र, फटकनन्द गिरधारी नागा गोसाईं? उसे किसी ने

सैनिक शिक्षा न दी थी और न राजनीतिक पटुता प्राप्त करने का उसके पास कोई साधन था। ज़माने की उथल-पुथल से लाभ उठा कर उसने अपनी ईश्वरदत्त शक्तियों के बल पर वे करतब दिखाये जिनसे माहादजी सिंधिया के छक्के छूट गये। उससे बैर मोल लेकर सिंधिया को बहुत भुगतना पड़ा।

हिम्मत बहादुर के जीवन में एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। सिंधिया ने केशव पन्त को गोसाईं-बन्धुओं की बृन्दावन वाली जागीर पर क़ब्ज़ा करने के लिए भेजा। उमरावगिरि उस जागीर का प्रबन्धक था। उसने कुछ गावँ तो भलमन्सी से केशव पन्त के हवाले कर दिये, पर फिर हाथरस और मुरसान के जाट राजा की मदद से उसने मराठों को मार भगाया और केशव पन्त का बध भी कर डाला। यह जाट-नरेश राजा महेन्द्र-तप्राप का पूर्वज था। हिम्मतबहादुर भी अपने भाई की सहायता के लिए आ पहुँचा। सिंधिया से बदला चुकाने का यह अच्छा अवसर था। दोआबा के केन्द्र में मराठा-राज्य विच्छिन्न होते देख माहादजी सिंधिया जयपुर के राजा से बिना निपटे हुए अलीगढ़ की ओर लौट पड़ा। इस बीच में गोसाईं-बन्धुओं ने सिंधिया के अनेक क़िले जीत लिये और मकनपुर आकर इटावे में नवाब वज़ीर द्वारा नियुक्त शासक अलमास अली ख़ाँ से मुलाक़ात करने के लिये रवाना हुए। इधर इस उथल-पुथल से घबड़ा कर कम्पनी की सरकार ने कानपुर में नवस्थापित अपनी फ़ौज को हुक्म दिया कि वह गोसाईं-बन्धुओं की सहायता करे और मराठा फ़ौज को आगे न बढ़ने दे। माहादजी ने

आभाजी बबले के अधीन एक फौज भेजी, पर उमरावगिरि ने उसको बुरी तरह हरा दिया। फिर अम्बाजी इङ्गले एक बड़ी फौज के साथ भेजे गये। उमराव गिरि ने उसका सामना करना उचित न समझ कर पीछे हटना निश्चय किया। भाग कर वह गंगा के किनारे अनूपशहर जा पहुँचा जहाँ से वह उस पार अवध राज्य में स्थित रुहेलखंड आसानी से जा सके। यह घटनाएँ सन् १७८५ के प्रारम्भिक महीनों की हैं। एक वर्ष तक गोसाईं-बन्धु अवध की अमलदारी में शान्तिपूर्वक बने रहे। उनका इरादा फिर अवध में नौकरी करने का था। माहादर्जी यह खबर पाकर घबड़ाया। उसने लार्ड कार्नवालिस को लिख भेजा कि कम्पनी की सरकार गोसाईं-बन्धुओं को अवध में न बसने दे, बल्कि उन्हें गिरफ्तार करा के दिल्ली भेज दे, क्योंकि वे बादशाह की मुलाजिमत से बागी होकर अवध सरकार की नौकरी करने गये हैं। कार्नवालिस ने अपने लखनऊ वाले रेजी-डेन्ट को यह आदेश दिया कि गोसाईं-बन्धुओं को नवाब वज़ीर से न मिलने दिया जाय, पर उनको पकड़ कर सिंधिया के हवाले करने की उसने अवहेलना कर दी। गोसाईं-बन्धुओं का हेल-मेल और झुकाव अब अंग्रेजों की ओर बढ़ता गया। उधर कार्नवालिस की यह स्पष्ट नीति थी कि माहादजी सिंधिया की बढ़ती हुई शक्ति को रोका जाय। सालबाई की सन्धि के द्वारा उसे वारेन हेस्टिंग्स ने शक्ति के पथ पर अग्रसर किया था, और अपनी प्रतिभा और वीरता से वह इस समय मुग़ल-सम्राट् का वकील-मुतलक़ और मीर बख्शी, सर्वेसर्वा बन गया था।



ज़ाजमऊ का ध्वस्त क़िला

(पृष्ठ ३०६)



राजा हिन्दूसिह-द्वारा निर्मित मंदिर, सरैयाँघाट

अंग्रेज इस अपने पुराने मित्र को फूटी आँखों भी नहीं देख सकते थे। ऐसी परिस्थिति में गोसाईं-बन्धुओं को अपने क़ब्जे में रखने ही में अंग्रेजों का हित था। अवसर पड़ने पर उनका उपयोग किया जा सकेगा। उधर इटावे का शासक अल्मास अली खाँ भी अपने प्रभु नवाब वजीर से कुछ रुष्ट था। वह भी गोसाईं-बन्धुओं के महत्व से वाक़िफ़ था और उनका गुप्त सहायक था। सिंधिया की शक्ति दोआब में कुछ काल के लिए अत्यन्त क्षीण हो गई थी और राजपूतों द्वारा लालसोट नामक स्थान पर पराजित होकर उसकी साख घट गई थी। इस परिस्थिति से लाभ उठा कर गोसाईं-बन्धुओं ने अपनी वृन्दावन वाली जागीर को जीत कर वापस लेने का उद्योग प्रारम्भ कर दिया। फ़ीरोजाबाद पर उमराव गिरि ने घेरा भी डाल दिया। पर अप्रैल १७८८ में उसकी हार हुई और वह सिंधिया के हाथों क़ैद हो गया। पर एक ही मास के बाद सिंधिया ने उसे अपनी ओर मिलाने के विचार से मुक्त कर दिया। इधर लार्ड कार्नवालिस ने सिंधिया द्वारा दोबारा प्रार्थना करने पर अवध के नवाब को आदेश देकर यह घोषणा प्रकाशित कराई कि गोसाईं-बन्धुओं को अवध में शरण न दी जायगी और वे अवध के राज्य में जहाँ मिलें पकड़ लिये जायँ। हिम्मतबहादुर भाग कर दिल्ली जा पहुँचा और फिर बादशाह शाह आलम से जा मिला। सिंधिया इस समय अपने दोआब के राज्य की रक्षा में व्यस्त अधिकतर अलीगढ़ व मथुरा में रहता था। शाह आलम के साथ

हिम्मतबहादुर जयपुर गया और वहाँ के राजा ने हिम्मतबहादुर के समझाने-बुझाने से बादशाह की अधीनता फिर स्वीकार कर ली। गोकुलगढ़ के बाग़ी सरदार नजफ़ कुली ख़ाँ को हराने में भी बादशाह का असली मददगार हिम्मतबहादुर ही था। पर इस बीच में बादशाह शाह आलम पर मारकेश का योग लगा। जुलाई १७८८ में रुहेला सरदार ग़ुलाम क़ादिर ने दिल्ली पर धावा किया। बादशाह को क़ैद कर उसने अपनी घोर निर्दयता का प्रदर्शन किया। बेचारे बादशाह की आँखें निकलवा लीं, बेगमों को कोड़े लगवाये और अनेक प्रकार से अपमानित किया, और सब माल ख़ज़ाना लूट लिया। अन्त में उसने बादशाह शाह आलम को तख़्त से उतार कर भूतपूर्व सम्राट् अहमद शाह के पुत्र राजकुमार बेदार बख़्त को शाहजहानाबाद के दीवाने-ख़ास में सिंहासन पर बैठाया। हिम्मतबहादुर ने बादशाह का बड़ी लगन से साथ दिया, पर रुहेलों के पशु-बल के सामने वह अपने स्वामी की रक्षा न कर सका। सिंधिया जब यह हृदयविदारक समाचार पाकर दिल्ली लौटा तो हिम्मतबहादुर को शाह आलम के साथ पाकर उसे बहुत बुरा लगा। सिंधिया इधर बहुत दिनों से बीमार रहता था। उसे किसी ने विश्वास दिला दिया था कि हिम्मतबहादुर गोसाईं जादू-टोना में भी निपुण है और अपना बैर चुकाने के लिए उसने सिंधिया पर मारण-मन्त्र (मूठ) का प्रयोग किया है। सिंधिया अपनी बीमारी का यही कारण मानने लगा। उसने फिर हिम्मतबहादुर के पकड़ने का प्रयत्न किया, पर असफल रहा और न

नवाब वज़ीर ही ने उसके परिवार के लोगों के गिरफ़्तार करने और उसकी समस्त सम्पत्ति ज़ब्त करने में उसकी सहायता की।

अब दिल्ली में हिम्मतबहादुर की दाल नहीं गल सकती थी। इसलिए अपने उद्यम का एक नया क्षेत्र उसने सोच निकाला। बुन्देलखंड उसका जन्मभूमि थी। अभी तक वहाँ उसने कोई विशेष करतूत नहीं दिखलाई थी। मराठे उस देश में महाराज छत्रशाल बुन्देला के समय से ही फैल गये थे। राजा हिन्दूपति की मृत्यु सन् १७७५ में हो गई। उसके मरते ही पन्ना में गृह-कलह फैल गई। बेनी चौबे और खेमराज चौबे, जो सगे भाई थे, कुछ काल तक पन्ना में कर्ता-धर्ता और राज-विधाता बन बैठे, पर फिर आपस में लड़ पड़े। बाँदा के राज्य में भी राजा की नाबालिगी से बखेड़े बढ़ गये। वहाँ नोने अर्जुनसिंह पवाँर कर्ता-धर्ता थे। ऐसी परिस्थिति में समस्त बुन्देलखंड के बुन्देले शासकों के मध्य एक विकट युद्ध हुआ जिसे "बुन्देलखंड का महाभारत" कहा गया है। पन्ना, बाँदा, चरखारी, ओड़छा, दतिया आदि सभी इसमें शामिल हुए। सन् १७८३ में गढ़चौरा (छत्रपुर से ३ मील पूर्व) के स्थान पर यह महाभारत हुआ। इस युद्ध में ऐसे-ऐसे वीर-पुंगव खेत रहे कि बुन्देलखंड की भूमि 'वीर-विहीन' हो गई। माहादजी ने भी मौक़ा पाकर एक फ़ौज अप्पा खंडेराव के साथ सन् १७८५ में बुन्देलखंड भेजी। पहले तो लगभग सब बुन्देला शासकों ने सिंधिया की अधीनता स्वीकार कर ली, पर फिर उजाड़खंड में

किसी विशेष लाभ की आशा न देखकर कालिंजर के घेरे के बाद माहादजी ने अपनी फ़ौज़ वापस बुला ली। इधर पूना सरकार की ओर से अली बहादुर बुन्देलखंड के प्रबन्ध के लिए १७८० में भेजा गया था। उसके यहाँ हिम्मतबहादुर जा पहुँचा और नौकर हो गया। अपने शत्रु माहादजी सिंधिया को नीचा दिखाने के लिए बुन्देलखंड में अली बहादुर की सहायता करना आवश्यक था। १८०२ ई० तक जब अलीबहादुर की मृत्यु हो गई, हिम्मतबहादुर ने उसका पूरा साथ दिया। हिम्मतबहादुर को उसने २० लाख सालाना की जागीर दी और उसकी मदद से वह २० हजार फ़ौज रखता था। हिम्मतबहादुर ने बाँदा जीत लिया। नोने अर्जुनसिंह और हिम्मतबहादुर से पहले ही से बैर था। अर्जुनसिंह ही इस समय बाँदा में बुन्देला राज्य का सर्वेसर्वा था। बाँदा में बुन्देला राज का अन्त सन् १७९२ में हुआ। अजयगढ़ और बनगाँव के बीच वाले मैदान में घमासान युद्ध हुआ। चरखारी का राजा भी अलीबहादुर के साथ था। इस युद्ध में नोने अर्जुनसिंह मारा गया। कविवर पद्माकर ने अपने ग्रन्थ "हिम्मतबहादुर-विरदावली" में इस युद्ध का आँखों देखा अत्यन्त विस्तृत और ओजपूर्ण वर्णन किया है। पद्माकर के अनुसार इस युद्ध में हिम्मतबहादुर के ही हाथों नोने अर्जुनसिंह की मृत्यु हुई—

"तहँ मची हकाहक भई जकाजक,
 झिनक थकाथक होइ रही।

तब नृप अनूपगिरि सुभर सिंधु तिरि,
अर्जुन सो भिर खड़्ग गही ॥
हय दाबि कन्धैया सुमिरि कन्हैया,
सुगज कन्धैया पर पहुँचो।
झारत तरवारै तकि तकि मारै।
प्रबल पमारै गहि कहुँचो ॥
पटक्यो गज पर तैं उमड़ि उभरतैं,
अरि सिर धर तें काटि लियो ॥
रिपु रुंड धरा को अरपत तागो,
हरहिं हरा को मुंड दियो।
लहि अर्जुन मत्था गिरजा नत्था,
अमित अकत्था नचत भयो ॥
डम डमरु बजावै विरदनि गावै,
भूत नचावै छविन छयो ॥"

इस युद्ध के बाद अली बहादुर बाँदा का नवाब घोषित हुआ। बुन्देला-वंश का वहाँ अन्त हो गया। अलीबहादुर की १८०२ में मृत्यु होने के बाद उसका बड़ा लड़का शमशेर बहादुर नवाब की गद्दी पर बैठा। पर हिम्मतबहादुर शमशेर बहादुर के नाबालिग भाई जुलफ़िक़ार अली खाँ को गद्दी पर बैठाना चाहता था, जिससे उसके पद पर आँच न आने पावे। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने लार्ड वेलेज़ली से पत्र-व्यवहार किया। उसने अंग्रेज़ों को बुन्देलखंड जीतने का निमन्त्रण दिया। ३१ दिसम्बर १८०२ वाली बसीन की सन्धि में पेशवा बाजीराव

द्वितीय ने कम्पनी को बुन्देलखंड में स्थित ३६ लाख १६ हजार सालाना मालगुजारी का इलाक़ा देना स्वीकार कर लिया। हिम्मतबहादुर और कम्पनी के बीच भी सितम्बर १८०३ में एक अहदनामा हुआ जिसकी रू से हिम्मतबहादुर अंग्रेज़ों को बुन्देलखंड पर क़ब्ज़ा जमाने में मदद देगा और अंग्रेज उसे २० लाख सालाना आमदनी की एक माफ़ी जागीर बुन्देलखंड में देंगे, और उसके भाई उमराव गिरि को जो अवध में क़ैद था, छुड़वा दिया जायगा। हिम्मतबहादुर की ४ हज़ार सवार पैदल फ़ौज की मदद से पेशवा द्वारा दिये हुए बुन्देलखंडी इलाके पर अंग्रेज़ों का कब्ज़ा १८०४ में हो गया। पर अंग्रेज हिम्मतबहादुर को न तो नाराज करना चाहते थे और न उसे बुन्देलखंड में रहने देना चाहते थे। जागीर के काग़ज़ात की लिखा-पढ़ी में कुछ देरी हुई। इस बीच में ३ जून १८०४ को ७० वर्ष की उम्र में हिम्मतबहादुर का देहान्त बाँदा के पास कनवारू गावँ में हो गया। बाँदा से २ मील दूर उसकी समाधि है।

गोसाईं-बन्धुओं की जीवन-लीला का समय भारतीय इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संक्रान्ति का युग था। मुग़ल साम्राज्य विच्छिन्न हो रहा था, चारों ओर अराजकता फैली हुई थी, सब सूबेदार तथा अन्य स्थानीय अधिकारी अपनी घात में थे और स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर रहे थे। मराठे, सिक्ख, राजपूत और अंग्रेज अपने-अपने स्वार्थ-साधन में लगे हुए थे। कोई किसी दूसरे पर विश्वास न करता था। कूटनीति, तिकड़मबाज़ी और छीनाझपटी का सर्वत्र राज्य था। पारस्परिक सन्धि

और विग्रह क्षणिक आधार पर ही होते थे, उनमें स्थायित्व का सर्वथा अभाव था। जिसकी अधिक शक्ति होती थी या जिसे उपयुक्त अवसर प्राप्त होता था, वही अपने स्वार्थ की साधना में लग जाता था और अपने पुराने मित्रों या स्वामी को निस्संकोच त्याग कर नये सहायक या संरक्षक चुन लेता था। बाहुबल और आत्मबल का ही उस युग में भरोसा था। ऐसे विचित्र युग में जीवन व्यतीत करने से गोसाईं-बन्धुओं के चरित्र और स्वभाव पर उसी की पूरी छाप लगी। इस तथ्य की प्रवृत्तियों से इतिहासकार को न तो अपनी आँखें बन्द करना चाहिए और न उन्हें उपर्युक्त युग के दोषों के अपराधी ठहराना चाहिए। उस युग के पात्रों में क्लाइव, वारेन हेस्टिंग्स, कार्नवालिस, वेलेज़ली, माहादजी सिंधिया, सफ़दर जंग, शुजाउद्दौला, अफ़रासियाब, मीर जाफ़र, समरू, डी बायन आदि सभी में अधिकाधिक मात्रा में ये दोष विद्यमान थे। उनमें से किसी एक को अलग कर उसकी भर्त्सना करना अनुचित होगा।

गोसाईं-बन्धुओं की महिमा इसी में थी कि वे इन दिग्गजों से कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने की क्षमता रखते थे। उनकी निम्न उत्पत्ति पर ध्यान देकर उनके जीवन-वृत्त का अध्ययन करने से उनकी अद्भुत सफलता पर किसे आश्चर्य न होगा? उनकी राजनीतिक पटुता, नेतृत्व के गुणों और सुअवसर से लाभ उठाने की योग्यता पर उस समय के सभी लोग मुग्ध थे। नवाब वज़ीर, मुग़ल-सम्राट्, माहादजी, अली बहादुर, अँग्रेज आदि सब उनकी धाक मानते थे और उनकी सुसंगठित नागा

फ़ौज का उपयोग करने के लिए लालायित थे। उनकी फ़ौज का सेनापति एक डेनिश सिपाही कर्नल मेसेलबैंक नामी था। अँग्रेज़ अफ़सरों की राय में भी उनकी फ़ौज अन्य भारतीय नरेशों की फ़ौजों से बहुत अच्छी थी। उनकी फ़ौज में रिसाला, पैदल और बन्दूक़ची थे जो अधिकतर नागा-संन्यासी थे। उनकी संख्या घटती-बढ़ती रहती थी। पर अधिक से अधिक उसकी फ़ौज की संख्या २०-२२ हज़ार तक पहुँची।

इन दोनों भाइयों की जीवनी विचित्रता से परिपूर्ण है और उसमें नाटकीय महत्व की सामग्री प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। कविवर पद्माकर ने समझ-बूझ कर ऐसे वीरों की विरदावली गाई है।

१३—पेशवा-वंश और उसके अनुवर्ती

(क) प्रवासी पेशवा बाजीराव

महाराष्ट्र साम्राज्य के अन्तिम पेशवा बाजीराव द्वितीय, रघुनाथ राव अर्थात् राघोबा के ज्येष्ठ औरस-पुत्र थे। १० जनवरी सन् १७७५ ई० को इनका जन्म मालवा में स्थित धार-नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान में हुआ था। उनकी माता का नाम आनन्दीबाई था। रघुनाथराव की मृत्यु १७८३ के अन्तिम भाग में हुई और उसके कुछ मास अनन्तर बाजीराव के छोटे भाई चिम्नाजी अप्पा का जन्म हुआ। इन दोनों भाइयों के

उत्पन्न होने के पूर्व राघोबा ने अमृतराव नामक एक लड़के को गोद भी लिया था।

सन् १७९५ में पेशवा सवाई माधवराव के देहावसान के अनन्तर ये गद्दी पर बैठे और जून १८१८ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की फ़ौज से अष्टी के युद्ध में हार कर ये पदच्युत कर दिये गये। उनकी इन २३ वर्षों की पेशवाई की कथा कहने का यह स्थान नहीं है। मराठा साम्राज्य का दीपक टिमटिमा रहा रहा था और बाजीराव के हाथों वह बुझ गया। ब्रिग्रेडियर जनरल सर जान मलकम की सिफ़ारिश पर लार्ड हेस्टिंग्स गवर्नर जनरल ने इन्हें ८ लाख सालाना पेंशन देना स्वीकार कर लिया, यद्यपि उनकी राय में, मलकम ने इतनी अधिक पेंशन देने का वायदा कर बाजीराव के प्रति अनुचित उदारता का प्रदर्शन किया था। पर उस समय के सभी प्रमुख अफ़सरों, आक्टरलोनी, मनरो, एलफ़िन्स्टन आदि की राय में मराठा-साम्राज्य के भूतपूर्व अधिष्ठाता के लिए ८ लाख सालाना की पेंशन अधिक नहीं थी। बाजीराव के आत्मसमर्पण करने के समय यह भी निश्चय हुआ था कि उन्हें दक्षिण छोड़ कर उत्तर भारत के किसी ऐसे पवित्र स्थान में रक्खा जायगा जहाँ वह रहना पसन्द करें तथा जिसके लिए लार्ड हेस्टिंग्स भी अपनी अनुमति दे दें। मेजर लो के साथ श्रीमन्त बाजीराव पहले मथुरा गये, जहाँ कुछ मास व्यतीत कर उन्होंने बिठूर जाने की इच्छा प्रकट की और गवर्नर जनरल ने उन्हें वहीं रखना निश्चित किया। पास ही कानपुर में अंग्रेज़ी फ़ौज की छावनी

थी और कानपुर-ज़िले के सदर दफ्तर, कलक्टरी व जजी भी सन् १८११ में वहीं उठ गये थे। श्रीमन्त के कुछ स्वामिभक्त सरदार भी उनके साथ बिठूर गये, जिनमें से रामचन्द्र व्यंकटेश पंत उनके दीवान या सूबेदार का काम करते रहे। पेशवा के साथ एक अंग्रेज कमिश्नर भी बिठूर में रहता था। इस पद पर १८१८ से १८२५ तक केप्टेन जान लो, फिर १८२९ तक केप्टेन बेकन, उनके बाद १८५० तक मेजर मैन्सेन और पेशवा के जीवन के अन्तिम वर्ष में मेजर मैलार्ड काम करते रहे।

बिठूर में श्रीमन्त बाजीराव पेशवा के जीवन के ३३ वर्ष व्यतीत हुए। लार्ड हेस्टिंग्स को पहले ही से यह भय था कि इतनी अधिक पेंशन पाकर बाजीराव कहीं स्वतन्त्र होने का फिर उद्योग न करें। इसलिए उन पर कड़ी निगाह रखने की आज्ञा कमिश्नरों को दी गई थी। पर अपने पद-त्याग के पूर्व ही सन् १८२२ में स्वयं लार्ड हेस्टिंग्स को यह विश्वास हो गया था कि "पेशवा का आचरण सब प्रकार से सन्तोषजनक रहा है। पर फिर भी उसने अपने प्राचीन स्थान को पुनः प्राप्त करने की आशा को सर्वथा त्यागा भी नहीं है; और कभी-कभी अपनी पुरानी छलनीति के द्वारा उसने अपने पुराने राज्य में अपनी दुर्दशा के सम्बन्ध में सहानुभूति को जाग्रत रखने का उद्योग किया। सूबेदार रामचन्द्र व्यंकटेश ने भी अंग्रेज कमिश्नर से सदा पूर्ण सहयोग किया और श्रीमन्त को अपने भाग्य पर सन्तोष करने और उसके परिवर्तन की आशा को अपने चित्त से निकाल देने की ही सलाह दी।"

सन् १८२६ में कानपुर की मैक्सवल-बार्नेट एण्ड कम्पनी के मिस्टर ऐडम मैक्सवेल ने अपने एक साथी उमरावअली से षड्यन्त्र कर बाजीराव को यह पट्टी पढ़ाई कि हम आपको फिर पेशवा-पद पर आसीन कराने का उद्योग कर रहे हैं और उन्होंने ११ हज़ार ५०० रुपये ठग लिये। इन दोनों पर कानपुर की सेशन अदालत में दग़ाबाजी के लिए मुक़दमा चला और ऐडम मैक्सवेल को ६ मास की क़ैद और एक हज़ार रुपया जुर्माने की सज़ा का हुक्म हुआ। उमराव अली को भी ५ महीने की क़ैद हुई। मैक्सवेल-बार्नेट एण्ड कम्पनी ही शायद कानपुर में पहली व्यापारिक कम्पनी थी जिसने इस नगर में अंग्रेज़ी व्यापार की नींव डाली। ऐडम मैक्सवेल के अनन्तर शायद उसके पुत्र ह्यू मैक्सवेल ने यहाँ की औद्योगिक उन्नति में पथ-प्रदर्शक का कार्य किया। उसी ने एलगिन मिल्स की स्थापना की। ह्यू मैक्सवेल के लड़के राल्फ़ मैक्सवेल ने भी उस वंश की परम्परा को क़ायम रक्खा।

बाजीराव के बिठूर आने के कुछ ही महीने के अनन्तर जिले की कचहरियाँ फिर कानपुर वापस गईं, क्योंकि वहाँ पेशवा का दरबार सा क़ायम हो गया था और उनके साथ उच्च पद का एक फ़ौजी अफ़सर कमिश्नर की हैसियत से रहता था। कलक्टर और जज का यहाँ रहना अब उचित नहीं प्रतीत होता था। सन् १८३२ में बिठूर और रमेल के गावों की जागीर भी श्रीमंत पेशवा को माफ़ी में मिली जिसे "आराज़ी लश्कर" कहते थे। इस इलाक़े में दीवानी और फ़ौजदारी के शासन का

अधिकार भी उन्हें विलियम बेंटिंक की आज्ञा से मिला। बिठूर में बाजीराव ने अपने रहने के लिए एक विशाल भवन (बाड़ा) बनवाया जो सन् १८५७ में ध्वस्त हो गया और जिसकी एक दीवार का भग्नावशेष अभी तक विद्यमान है। १५ हज़ार साथियों, नौकरों सिपाहियों आदि के साथ श्रीमन्त अपने विशाल भवन में बड़े ठाट से रहते थे और अपने इलाक़े का शासन करते थे। उनके साथियों और फ़ौज-फाटे की संख्या बाद को घटा कर ५ हज़ार कर दी गई। सूबेदार रामचन्द्र उनके दाहिने हाथ थे। पेशवा और सूबेदार दोनों सब प्रकार से ब्रिटिश सरकार के प्रति मैत्री का व्यवहार रखते थे। जब प्रथम अफ़-ग़ान युद्ध के अनन्तर अंग्रेज़ी सेना की दुर्गति हुई और अंग्रेज़ी साम्राज्य-लिप्सा की पूरी किरकिरी हुई तब भारत के अनेक शासकों के हृदयों में स्वतंत्रता की आशा की किरण उद्भासित हुई। पर श्रीमन्त बाजीराव ने मित्र के नाते कम्पनी की सरकार को ५ लाख रुपये उधार दिये क्योंकि उसे रुपये की सख्त ज़रू-रत थी। जब पंजाब-केसरी महाराज रणजीतसिंह के निधन के अनन्तर पंजाब में अराजकता के लक्षण प्रकट हुए और अंग्रेज़ों को यह भय था कि प्रबल ख़ालसा फ़ौज किसी समय भी अचा-नक सतलज पार कर अंग्रेज़ी इलाक़े पर हमला कर देगी और शायद मराठा राज्यों के शासक सिक्खों की सहायता करें, उस कठिन समय पर भी बाजीराव ने कम्पनी की सरकार की मदद के लिए एक हज़ार पैदल और एक हज़ार घोड़सवार फ़ौज को अपने खर्च से तैयार कर भेजने का प्रस्ताव किया था।

बाजीराव ने कुल ११ विवाह किये। इनमें से ६ सन् १८१८ के पहले और ५ बिठूर में हुए। पेशवा की गद्दी पर बैठने के पहले सन् १७८६ में उनका पहला विवाह भागीरथीबाई से हुआ। सन् १७९३ में सत्यभामाबाई इनकी द्वितीय पत्नी होकर आईं। पेशवा बनने के दो वर्ष बाद राधाबाई से उन्होंने गठ-बन्धन किया। फिर वाराणसीबाई से १८०६ में, वेणुबाई (कुसा बाई) से १८०८ में और सरस्वतीबाई से १८१२ में पाणिग्रहण हुआ। इन ६ पत्नियों में से केवल दो, वाराणसीबाई और सरस्वतीबाई, पेशवा के साथ बिठूर आईं। शेष का शायद देहान्त हो चुका था। बिठूर में प्रवासित होकर उन्होंने सत्य-भामाबाई (दूसरी) मैनाबाई, सईबाई, चितले परिवार की एक लड़की तथा बलवन्तराव अठावले के पुत्र गंगाधरराव की एक पुत्री गंगाबाई से विवाह किया। अक्टूबर १८१० में वाराणसी-बाई के एक पुत्र हुआ जिसका नाम वामनराव रक्खा गया। पर वह १८११ में मर गया। सन् १८१६ में वेणुबाई उर्फ कुसा-बाई ने एक पुत्र को जन्म दिया जो केवल १९ दिन जिया। गंगा-बाई से पेशवा के ताईसाहबा और बया साहबा नामक दो पुत्रियाँ हुईं, जो पेशवा के मरने के बाद भी जीवित रहीं। पुत्र-हीन होने के कारण श्रीमन्त पेशवा ने सन् १८२७ में अपने वंश के एक लड़के धोंडुपन्त (नाना साहब) को गोद लिया। उस समय नाना साहब ३ वर्ष के थे। नाना साहब के सगे छोटे भाई सदाशिव राव (बालाराव), तथा नाना साहब के चचेरे भाई गंगाधर राव (बालाभट्ट) को भी उन्होंने गोद लिया इस

प्रकार नाना साहब, बालाराव और बालाभट्ट उनके तीन दत्तक पुत्र थे। बालाराव के पुत्र पाँडुरंग राव (राव साहब) इनके पौत्र थे। इन सभी पुत्रों और पौत्रों ने १८५७-५८ के विद्रोह में भाग लिया, पर नाना साहब और राव साहब का कार्य विशेष प्रकार से वन्दनीय रहा।

बाजीराव के छोटे भाई चिम्नाजी अप्पा ने पेशवा के राज्य के अन्त होने पर बनारस में रहना पसन्द किया था। वहीं १८३० तक उन्होंने कम्पनी सरकार की पेंशन पाकर अपना शेष जीवन व्यतीत किया। उनकी सेवा में मोरोपंत ताँबे नामक एक महाराष्ट्र ब्राह्मण भी रहते थे। वे विपत्ति से ग्रस्त होकर बाजीराव पेशवा के दरबार में बिठूर जा उपस्थित हुए और उन्हीं की सेवा में रहने लगे। कुछ वर्षों के अनन्तर उनकी पुत्री मनूबाई का विवाह झाँसी के राजा गंगाधरराव के साथ हुआ। यही "झाँसी की रानी" के अमर नाम से विख्यात हैं। बिठूर में वह पेशवा परिवार में ही कन्या की भाँति रहती थीं। इस प्रकार भारत के अंग्रेज़ी शासन से मुक्त होने के निमित्त जो प्रथम स्वतन्त्रता-युद्ध १७५७-५८ में हुआ उसके प्रमुख नेताओं और कर्णधारों का शैशव-काल बिठूर की इसी पुनीत भूमि में व्यतीत हुआ। तात्या टोपे और अज़ीमुल्ला भी बाजीराव के समय से ही बिठूर में निवास करते थे।

सन् १८३९ में बाजीराव ने एक वसीयत की जिसके अनुसार उन्होंने नाना साहब को अपनी गद्दी का एक मात्र उत्तराधिकारी नियुक्त किया। ७७ वर्ष की आयु में श्रीमन्त का देहा-

वसान ऐचीसन के अनुसार २८ जनवरी १८५१ को, मराठा इतिहासकार राजवाड़े के अनुसार १४ जनवरी १८५१ को और "तारीखे कानपुर" के समकालीन लेखक, कानपुर की जजी के वकील, मुंशी दरगाहीलाल के अनुसार १८ जनवरी १८५१ को हुआ। जब १८२७ में उन्होंने नाना साहब को गोद लिया था, तो उन्होंने कम्पनी की सरकार से यह प्रार्थना की थी कि नाना साहब उनके दत्तक पुत्र के नाते उनकी पदवी, पेंशन और जागीर के उत्तराधिकारी भी माने जायँ। पर उनकी प्रार्थना स्वीकार न हुई। केवल यह गोलमोल उत्तर दिया गया था कि श्रीमन्त के मरने के बाद उनके वारिसों के जीविका-निर्वाह के लिए कुछ प्रबन्ध कर दिया जायगा। इस आज्ञा के विरुद्ध बाजीराव ने कम्पनी के कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स के समक्ष एक प्रार्थनापत्र भेजने का विचार किया था, जिसे सूबेदार रामचन्द्र का पुत्र नाना नारायणराव स्वयं लेकर इङ्गलैंड जाने वाला था। पर ब्रिटिश कमिश्नर के मना करने पर यह विचार त्याग दिया गया। बाजीराव के निधन के पश्चात नाना साहब उनकी समस्त चल और अचल सम्पत्ति के स्वामी हुए। उस समय बाजीराव के ख़ज़ाने में १० लाख के जवाहरात, ३ लाख की स्वर्ण-मुद्रायें, ८० हज़ार के स्वर्णाभूषण और २० हज़ार रुपये की चाँदी की सिल्लें थी। इस सम्पत्ति के अतिरिक्त १६ लाख के मूल्य के कम्पनी के काग़ज़ भी उनके पास थे।

इस तीस लाख रुपये की पक्की सम्पत्ति के अधिकारी होने के कारण कम्पनी की सरकार ने नाना साहब को किसी भी

प्रकार की पेंशन न दी। बिठूर व रमेल की जागीर भी उनसे छीन ली गई। नाना साहब की ओर से अंग्रेजों के मित्र सूबेदार रामचन्द्र पन्त ने गवर्नर जनरल से प्रार्थना की। कुछ परिणाम न हुआ; नाना साहब ने अपने मित्र अजीमुल्ला को डाइरेक्टरों के सामने अपील करने के लिए इङ्गलैंड भेजा, पर उनकी प्रार्थना ठुकरा दी गई।

बिठूर में प्रवास के लम्बे काल में श्रीमन्त बाजीराव अधिकतर वहीं रहे। कानपुर आना उन्हें पसन्द नहीं था, क्योंकि एक बार जब वे वहाँ आये थे, तो उनकी अभ्यर्थना उचित प्रकार से न हुई थी। न तोपों की सलामी से उनकी प्रतिष्ठा हुई और न और प्रकार से। ब्रिटिश अफ़सर भी उनका कानपुर आना पसन्द नहीं करते थे। परन्तु नाना साहब तथा उनके भाई और सूबेदार रामचन्द्रराव ने कानपुर के सरकारी अधिकारियों और अंग्रेज निवासियों से मित्रता का व्यवहार स्थापित किया था। बाजीराव ने अनेक महाराष्ट्र परिवारों का पालन-पोषण बिठूर में किया, अनेक विधवाओं की सहायता की, अनेक कन्याओं के विवाह कराये और अनेक वेदपाठी और धर्मनिष्ठ ब्राह्मणों की वृत्ति का प्रबन्ध किया। बिठूर के पुराने घाटों तथा बाल्मीकीय आश्रम का जीर्णोद्धार बाजीराव ने कराया। महाराजघाट उन्हीं का बनवाया हुआ है। अपने निवास के निमित्त जो महल उन्होंने बनवाया उसे 'बाड़ा' कहते थे। कानपुर और बिठूर के बीच उन्होंने एक कंकड़ की सड़क बनवाई और गंगा पर दो



वाल्मीकि-आश्रम, बिठूर (पृष्ठ ३३१)



आत्मेश्वर महादेव का मंदिर, बुधौली

पक्के पुल निर्माण कराये, एक रमेल के पास, दूसरा नवाबगंज और खेवरा के बीच जागेश्वर के सामने।

बाजीराव के स्वभाव और आचरण के सम्बन्ध में समसामयिक महाराष्ट्र और अंग्रेज लेखकों ने बहुत कुछ लिखा है। बाजीराव का स्वरूप अत्यन्त भव्य था। उनकी वाग्मिता तथा वार्तालाप की निपुणता की सभी प्रशंसा करते हैं। उनसे प्रथम मिलन का सभी पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था। उनके सौजन्य से लोग बहुत आकर्षित होते थे। एलफिन्स्टन की राय में "बाजीराव में स्वाभाविक गौरव के सभी लक्षण थे।" मैकिंटोश को जार्ज तृतीय, नेपोलियन और बाजीराव तीनों से साक्षात्कार हुआ था। उनके मतानुसार इन तीनों शासकों में बाजीराव ही स्वरूप और शिष्टाचार में सर्वश्रेष्ठ थे। बाजीराव धर्मभीरु भी थे। परन्तु उस युग के दूषणों के प्रभाव उनके स्वभाव और आचरण पर पत्थर की लकीर की भाँति खचित थे। दुराचार, विलासिता, कामुकता, छल, प्रपंच, नीच कूटनीति, दगाबाजी, अनियन्त्रित महत्वाकांक्षा, अविश्वसनीयता आदि दुर्गुण उनके शैशवकाल के बन्धनों एवं बन्दी-जीवन (जब वे अपने पिता के साथ कई वर्षों तक क़ैद रहे), तथा महाराष्ट्र और समस्त भारत के समकालीन वातावरण की देन थे। उनसे ऊपर उठने वाले कितने पुरुष उस युग में हुए होंगे? मराठा साम्राज्य को अस्ताचल पहुँचाने का कलंक उनके मत्थे पर मढ़ा जायगा, पर उसका पतन कई पीढ़ियों से क्रमशः हो रहा था, इतिहास के

विद्यार्थियों से यह छिपा नहीं है। ब्रिटिश शक्ति की अभिवृद्धि के सामने कौन भारतीय राज्य ठहर सका? "सब लाल हो गया", जैसा महाराजा रणजीतसिंह ने भविष्यवाद किया था, और जिसका हैदरअली ने भी अपने पुत्र टीपू को मरण-शय्या से संकेत किया था। ऐसी परिस्थिति में बाजीराव यदि महाराष्ट्र साम्राज्य के अधिष्ठाता के पद से च्युत हो गये और पूना में ब्रिटिश झंडा फहराने लगा, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। बाजीराव दोषी थे, पर पूरे कलंक के भागी नहीं ठहराये जा सकते। कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि अपने प्रवास-काल को उन्होंने बड़ी शान और शान्ति से साथ व्यतीत किया और बिठूर में ऐसे वातावरण का निर्माण किया जिसमें पल कर नाना साहब, राव साहब, लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, अजीमुल्ला आदि स्वतन्त्रतादेवी के उत्कट पुजारी उत्पन्न हुए। एक प्रकार से बाजीराव ही की अधीनता में भारत की भावी स्वतन्त्रता के स्वप्न देखे गये और बीज बोये गये। इस दृष्टि-कोण से श्रीमन्त पेशवा बाजीराव का बिठूर-प्रवास भारत के आधुनिक इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण युग है।

(ख) नाना साहब

पेशवाओं के मूल वंश के निकट सम्बन्धी वंश वाले श्री माधव नारायणराव भट्ट पूना के निकटवर्ती 'कर्जत' तालुका स्थित, वेणु' गावँ के निवासी हो वहीं गल्ले का व्यवसाय करं

थे। आपकी श्रीमती गंगाबाई ने दो पुत्र-रत्नों को जन्म दिया। प्रथम पुत्र श्री बाबा भट्ट का जन्म १८१४ और द्वितीय श्री नाना साहब का शुभ जन्म १८२४ के जून मास में हुआ।

सन् १८२७ में श्री माधव नारायणराव भट्ट श्रीमन्त बाजीराव पेशवा के दर्शनार्थ सपरिवार ब्रह्मावर्त आये। बालक नाना की सतेज मुख-मुद्रा, सहज बाल्य-चपलता और अपनी आयु से कुछ अधिक गुण प्रदर्शनी स्वाभाविकता देखकर बाजीराव मोह गये और इस तीन साल के नाना राव को उन्होंने सविधि दत्तक पुत्र स्वीकार किया। इन्हें गोद लेने के कुछ मास बाद बाजीराव ने इनके चचेरे भाई श्री सदाशिव राव दादा साहब और श्रीगंगाधर राव बाला साहब को भी अपना दत्तक पुत्र बनाया। दादा साहब गोद लिये जाने के कुछ काल बाद ही स्वर्गीय हो गये। तब उनकी पत्नी श्रीमती रोहिणीबाई ने भी पाण्डुरंग राव राव-साहब पेशवा को गोद लिया।

अपने भाइयों और भतीजे राव पेशवा, तात्या तोपे और अपनी मुँहबोली 'छबीली' (झाँसी की रानी) सहित खेल-कूद, पढ़ाई-लिखाई, बौद्धिक, नैतिक, राजनैतिक तथा सैनिक-शिक्षा दीक्षा की प्राप्ति करते हुए युवराज नाना सभी कार्यों में अपने साथियों में अग्रगण्य, कुशाग्रबुद्धि, एवं योग्य प्रमाणित हो युवा हुए।

श्रीमन्त बाजीराव के कैलासवास के अनन्तर नाना ने अपने पिता के पद और पेंशन की प्राप्ति के निमित्त सरकार से प्रार्थना की। गवर्नर जनरल ने इस प्रार्थना को ठुकरा दिया। तब

अजीमुल्ला को पीराजी मुहम्मदअली के सहित लंदन भे
किन्तु वहाँ भी उनकी अपील खारिज हो गई। नाना ने
लिखा था उसका सारांश इस प्रकार था—"मैं पेन्शन के
मिलने वाले चन्द चाँदी के सिक्के नहीं माँगता। मेरा दाव
कि पेशवा को प्राप्त सभी अधिकार मेरे हैं और वे मुझे ज्यों
त्यों प्राप्त होने चाहिए। मैं किसी तरह की रिआयत नहीं च
विशुद्ध न्याय की माँग करता हूँ। अब तक कम्पनी सरका
कोई ऐसी घोषणा नहीं की कि दत्तक पुत्र पुत्र न माना जाय
बल्कि बहुत सी गद्दियों पर तो दत्तक पुत्र, या उसके न
पर दूर-दराज के रिश्तेदारों तक, को ढूँढ़ ढूँढ़ कर बैठालते
अधिकार सौंपे गये हैं। कम्पनी का यह कहना तो कोई
नहीं रखता कि चूँकि बाजीराव पेन्शन से रुपया बचाकर
गये हैं इसीलिए हम रुपया न देंगे। ऐसा आज तक कभी
नहीं हुआ कि कोई भी सरकार अपने किसी भी पेन्शन
वाले से पूछती रही हो कि तुम पाने वाली रक़म से किस
में कितना खर्च करते हो! और अगर उसने कुछ रुपया
लिया हो तो उससे कहा गया हो कि चूँकि तुमने बहुत सा रु
बचा लिया है इसलिए पेन्शन बन्द! हमें मिलने वाली पें
कोई ख़ैरात तो है नहीं। वह एक राज्य सौंपने के बदले में
की गई है। अतः पेन्शन तथा हमारे अन्य अधिकारों का छ
जाना हमारे साथ की गई सन्धि की शर्तों का स्पष्ट उल्लंघन
अन्याय है। इसी अन्याय के विरुद्ध हम न्याय की माँग क

हैं।" पर अजीमुल्ला का दूतत्व निरर्थक सिद्ध हुआ। नाना साहब की अपील खारिज हो गई।

बिठूर में नाना साहब के जीवन के सम्बन्ध में "भारत में ४१ वर्ष" नामी पुस्तक में लार्ड राबर्ट्स लिखते हैं :—"नाना साहब बड़े ही प्रतिभावान्, चतुर और अँग्रेजों की संगति में घुले-मिले रहने वाले व्यक्ति थे।" एक दूसरे अंग्रेज सेनापति लिखते हैं— "नाना सदैव अंग्रेज आफ़िसरों की खातिरदारी को उत्सुक रहते थे। कानपुर छावनी में पहुँचने या वहाँ से गुज़रने वाला शायद ही कोई ऐसा अंग्रेज आफ़िसर हो जिसे बिठूर के महल में जाकर नाना के साथ बिलियर्ड खेलने, उनकी टेबल पर खाना खाने और उनके साथ धूम्रपान करने का सुखद सुअवसर न प्राप्त हुआ हो।"

राइट आनरेबल सर जार्ज ट्रेवेलियन बार्ट अपनी 'कान्पुर' नामक पुस्तक में लिखते हैं :—"१८५७ में लगभग ३६ वर्ष आयु वाले युवक नाना की शारीरिक कान्ति और मुखाकृति मन को प्रसन्न न कर पाने वाली अन्य महाराष्ट्रियों की रूखी रूपरेखा से भिन्न सरस थी। उनके सिर के बाल सफाचट (मुँड़े) रहते थे। स्थूलकाय थे किन्तु इस कारण उनके फुर्तीलेपन में कोई कमी न आई थी। यद्यपि वे हमारी भाषा से अनभिज्ञ थे, किन्तु हमारे सामाजिक रहन-सहन, सरकारी और घरेलू तौर-तरीक़ों, नीति-बर्ताव, कार्यवाहियों और हमारे धर्म, हमारी कला आदि से उन्हें पूरी दिलचस्पी एवं जानकारी थी। वे सभी देशी-विदेशी समाचारपत्र मँगाते तथ नयमि। रूप से अंग्रेजी के अच्छे

ज्ञाता अपने एक अंग्रेज कर्मचारी (मि० टाड—जो गदर्च
काँड में शहीद हो गये थे) द्वारा अनुवाद कराकर उनका सा
तत्व जान लेते थे। महाराजा (नाना) के यहाँ अति आकष
हाथी, कुत्ता, ऊँट और अश्व की शालायें थीं। उनकी पशु-प
शाला में बाघ, बाज़, बन्दर, कबूतर, मोर, गिलहरी और भाँ
भाँति की चिड़ियों का सुन्दर संग्रह था तथा उनका प्रबन्ध
अति उत्तम प्रकार से किया जाता था। अस्त्रशाला में सभी सम
तथा देशों के शस्त्रास्त्र, तोप से लेकर उड़ीसा के पहाड़ियों द्व
इस्तेमाल किये जाने वाले तीर तक मौजूद थे। महल के कमरों
लगे देशी-विदेशी चित्रकारों के कलापूर्ण चित्र नयनाभिराम
यद्यपि कमरे में कुछ ऐसे चित्र भी लगे थे जिन्हें कोई भी म
च्योचित दृष्टि से देखना पसन्द न करता था। नाना के महल
सजे हुए कमरों में बरमिंघम से मँगवाया गया शीशे का साम
था जिसमें बड़े-बड़े क़दे-आदम से ऊँचे शीशे। रत्नखचित
और वैसी ही दमकने वाली कंदीलें छतों में लटकती थ
क़ीमती विदेशी गलीचे नीचे बिछे हुए थे। सारांश यह कि न
के महल की अंग्रेज़ी सामान से भरी पूरी प्रदर्शनीय सजा
अपवादस्वरूपिणी होकर अपना विशेषत्व प्रकट करती थ
पूर्वीय लोगों के रहन-सहन का तरीक़ा सीधा-सादा होता
उसकी आवश्यकताएँ इतनी कम होती हैं कि भारतीय
पुरुष हमारी (अंग्रेजों की) जैसी रहन-सहन के लवाजम
नहीं रखते। न उन्हें अधिक नौकरों की ही आवश्यता होती
जो हमारी तरह की विचित्र घरेलू कारोबारी रीतियों से परि

हो कार्य करते हों। कोई भी पूर्वीय आँग्ल व्यक्ति इतनी अच्छी और विविध प्रकार की अंग्रेज़ों के व्यवहार में आने वाली सामग्री न रखता था जैसी कि नाना के यहाँ संग्रहीत थी। यद्यपि वह अति उत्कृष्ट तो न थी किन्तु हमारे .फैशन के भारतीय केन्द्र कलकत्ते से उत्तर भारत तक जो कुछ आ सका था उसे देखते हुए शायद ही कोई वस्तु हो जो वहाँ न हो। नाना के पास सोने-चाँदी के बर्तनों की बहुतायत थी और शाल-दुशालों, .जेवर, जवाहिरात से उनका गृह-भंडार पूरा तथा महिलाओं को आकर्षित कर सकने में पूर्ण समर्थ था। महाराज के वस्त्र कीमखाब और काश्मीरी कपड़ों के बने होते थे, जिनमें से कुछ में मोती की मालाएँ और रत्न टँके हुए थे। इसके अतिरिक्त एक पेशवाई तलवार थी जिसका मूल्य तीन लाख रुपया आँका जाता था। प्रारम्भकाल से अब तक के पूर्वीय राजाओं की गौरवसम्पन्नता के योग्य सभी कुछ नाना के यहाँ था। लम्बे एकड़ों की परिधि में बना बारहमासी सुखों से अभिभूत नाना का महल सर उठाये खड़ा था।

"नाना कानपुर के आफ़िसरों को अंग्रेजी नृत्य तथा भोज देने का सुयोग पाने पर शायद ही कभी चूकते! यद्यपि वे इसकी प्रति-प्राप्ति से वंचित थे क्योंकि अपनी सलामी आदि आदर पाये बिना अंग्रेजों की छावनी में जाकर किसी उत्सव में सम्मिलित होना वे अपनी मर्यादा के विरुद्ध एवं अपमानजनक मानते थे। नाना सभी अंग्रेजों से सरलता और स्वतन्त्रतापूर्वक मिलते थे। अक्सर मेजर की पत्नी से उनके स्वास्थ्य तथा

प्रसन्न होने का समाचार पुछवाते रहते थे। आफिसरों की प
न्नति पर हर्ष और बधाई-सूचक पत्र भिजवाते थे। उन
धनराशि सभी प्रकार की खातिरदारी और सहायता
लिए समर्थ थी। गावँ-पड़ोसी, रिश्तेदार, पंडित, पुरो
आदि निठल्लों की एक अच्छी खासी पल्टन जैसी स
पूर्वीय राजाओं के यहाँ एकत्र रहती हैं उनके यहाँ भी
रही थी। नाना बिलियर्ड के बहुत अच्छे खिलाड़ी थे यद
उनकी स्थूलता मेज़ के इधर-उधर .फुर्ती से घूमते समय
कष्टकारी होती थी। वे सब से मधुर भाषण करते और अंग्र
महिलाओं को शाल-दुशाले, रत्नाभूषण अक्सर भेंट में देते
वे सभी अंग्रेज़ जिनको नाना से एक बार भी भेंट हुई थी उ
मिलन को सादर स्मरण कर प्रसन्नतापूर्वक नाना के गुणग
करते हुए उन्हें विश्वसनीय, योग्य अधिकारी, राजवंशी
उदार स्वभाव वाला, व्यवहार-कुशल-भद्र पुरुष बताते थे।

"किन्तु नाना के हृदय में हमारे शासन के विरुद्ध जो ज्वा
धधक उठी थी वह कभी बुझ न सकी। अधिकारों के छीने ज
और उनका दावा सही न माने जाने के कारण जो अपम
हुआ था उसका काँटा प्रतिक्षण उनके कलेजे में चुभता र
था। नाना का जीवन ऊपर से मधुर और भीतर से क
लौहनिर्मित सा हो गया था।" इस अनुपम वर्णन में नाना
भावी कार्य-प्रणाली का आभास मिलता है।

इन्हीं दिनों नाना के जीवन में तीन प्रमुख घटनाएँ
घटित हुईं। उन्होंने जब अपनी बहन की शादी की तो उ

पहले लड़की के नाना ने दावा किया कि यह विवाह हमारी जातीय मर्यादा के प्रतिकूल है, अतः वह रोक दिया जाय। दूसरे बाजीराव पेशवा के भाई चिम्नाजी अप्पा के दौहित्र ने एक दावा दायर किया कि पेशवाओं के रक्त-वीर्य से उत्पन्न होने के कारण ब्रह्मावर्त की सम्पत्ति तथा पेशवाई के अधिकारों का हक़दार मैं हूँ। तीसरी घटना यह थी कि अंग्रेजों के यहाँ पल कर नाना के प्रारम्भ से अन्त तक के कार्यों की डायरी डाहपूर्ण हृदय और भाषा में लिखते रहने वाले इन्हीं दौहित्र के पैरोकार नानकचन्द खत्री ने एक दावा दायर किया कि नाना अंग्रेजों के खिलाफ़ देश-व्यापी युद्ध की तैयारी कर रहे हैं, किन्तु अदालत ने इसे झूठा तथा नाना से डाह रखने वाला बताकर इनका दावा खारिज कर दिया। इसी तरह से ऊपर के दोनों दावे भी खारिज कर दिये गये थे।

नाना न तो बहुत बड़े योद्धा थे और न छत्रपति या सम्राट्। अल्प साधनों के बीच लालित-पालित होकर अधिनायक होने वाले नाना की पैनी दृष्टि सभी बिन्दुओं को पहले ही से देखने में समर्थ और उनके प्रतिकार या व्यवहार के लिए दिग्दर्शन करने में सक्षम थी।

कायर पुरुषों की भाँति हाथ पर हाथ धर कर बैठे भाग्य-विडंबना की कहानियाँ कहने वाले कातर व्यक्तियों के विपरीत 'वीर भोग्यावसुंधरा' के सिद्धान्ती नाना ने सम्भवतः अपनी अपील के मसविदे के क़ाग़ज़ अज़ीमुल्ला के हाथों में देते हुए कहा था कि यदि तर्क एवं ईमानदारी से न्याय नहीं प्राप्त होता है

तो वह तलवार, तोप एवं अपने बाजुओं के गट्टे की ताक़त
प्राप्त किया जायगा। नाना की अपील ठुकरा दी गई और
अपील को सफल बनाने की कार्यवाही एक ओर चल रही
उन्हीं क्षणों में ही सतारा की गद्दी की पुनः प्राप्ति में नाका
याब होकर लन्दन में हाथ पर हाथ धरे बैठे श्री रंगो बापू
के पास बैठ बैठकर अज़ीमुल्ला कुछ और ही साट-गाँठ
रहे थे। उन्होंने ब्रह्मावर्त्त पहुँच कर जब लन्दन की सुनी-अ
सुनी कर देने वाली कथा सुनाई तो शार्दूलहृदय नाना के
आग्नेय हो उठे। उनका शौर्य अदम्य उत्साह से पूर्ण हो जाग
उन्होंने परतन्त्रता में फँसे और फँसते जाने वाले अपने देश त
भाइयों की विपदा अनुभव की और क्रान्ति-उन्नयन के प्रय
प्रारम्भ कर दिये।

सन् १८५६ के अन्त से कुछ पहले ही नाना ने क्रान्ति-
एवं अन्यान्य के विरुद्ध स्वातन्त्र्य-युद्ध की तैयारी करने
उत्साह भरने वाले प्रचारक तथा राजाओं और शाहों के प
योग्य दूत भेजने प्रारम्भ किये। मराठों और मुसलमानों
चिरबैर को ऐसे अवसर पर घातक मान भिन्न-भिन्न सत्ताओं
संस्थापन के आदर्श को नाना ने समाप्त कर दिया और प
उद्देश्य देश की स्वतन्त्रता-प्राप्ति, एक कल्पना सभी भारत
एक देश-माता के पुत्र, एक योजना डलहौज़ी की हड़पू नी
और कम्पनी सरकार या विदेशी सत्ता का स्वदेश से उन्मूल
तथा विनाश! एक-नारा फिरंगी को भगा दो!! एक नेता दिल

का सम्राट् !!! आदि नये आदर्श नाना साहब ने देशवासियों के सम्मुख उपस्थित किये।

अंग्रेज कैसा गर्हित खेल खेल रहे हैं, इस रहस्य का भंडा-फोड़ करते हुए इनके विरुद्ध सम्मिलित होकर युद्ध लड़ने के ललकारयुक्त पत्र नाना साहब ने सभी छोटे-बड़े दरबारों को भेजने प्रारम्भ किये। इनके पत्रों का इन्हें कोई उत्तर न प्राप्त हुआ, फिर भी यह निराश न हुए। इन्होंने पत्रों की वर्षा सी प्रारम्भ कर दी। इसी समय वाजिद अली शाह का निष्कासन हुआ और नाना को पत्रोत्तर प्राप्त होने लगे। तब वह तीर्थयात्रा के लिए अज़ीमुल्ला को साथ लेकर निकले और इस बहाने छोटे-बड़े राजाओं से मिल आये। दिल्ली-दरबार से बातें की, शिमला-शैल तक चढ़ कर अंग्रेज़ी फौजी तैयारी देख आये। अवध की राजधानी लखनऊ में हाथी पर बैठाकर उनका बहुत बड़ा जलूस निकाला गया तथा यहाँ के अंग्रेज़ों ने भी इनकी ख़ातिरदारी की। अन्त में वे कालपी आये। यहाँ इनसे बिहारकेसरी कुँवर-सिंह से भेंट एवं मंत्रणा हुई। इसी सफ़र में इन्होंने साँगली के राजा की भतीजी सौभाग्यवती कृष्णाबाई के साथ शादी की।

नाना पुनः कानपुर में आ विराजे। युद्ध-प्रारम्भ की तिथि एक जून निश्चित हो चुकी थी। इसके लिए तैयार रहने को पंडित, पुरोहित, मुल्ला, मौलवी, घर के दरवाजे पर बैठ कर चर्चा करने वाली महिलायें, सभी प्रचार-कार्य में रत थे। 'चपाती' और 'लाल-कमल' क्रांति की प्रतिज्ञा लेते हुए नगर,

गावँ, घर, फ़ौज सभी के बीच हाथों-हाथ एक कोने से दू सिरे तक घूम रहे थे। नाना का संगठन इतना जबर्दस्त था मेरठ की खबर कानपुर अंग्रेज़ी छावनी में पहुँचने से दो वि पहले ही इन्हें मिल चुकी थी और उस पर कमाल यह था नाना पर अंग्रेजों को तब तक सन्देह न हुआ जब तक वे खड़् हस्त हो युद्धक्षेत्र में न कूद पड़े। यही नाना के सुदृढ़ क सफल संगठक होने की खूबी थी।

उन्होंने कानपुर की लड़ाई स्वयं लड़ी और आजीवन अ उद्देश्य की प्राप्ति के लिए लड़ते रहने को अपने प्रिय भर्त राव साहब तथा प्राणप्यारे सखा, तात्या, को सदैव ही निर्दे देते हुए युद्धरत रक्खा। स्वयं रुहेलखण्ड, अवध और नैप तक की लड़ाइयों में आदेश-निर्देश के द्वारा सम्मिलित हो अ स्वाभिमानी साथियों के अंतिम स्वतन्त्र आवास-स्थान के प्रब संगठन में वे सफल हुए। जैसी परिस्थितियाँ थीं उनके बी कार्य करके एक बड़ा से बड़ा जैसा संगठित स्वरूप हो सक था उसका निर्माण कर जो युद्ध किया गया जिसमें यद्यपि ना स्वयं सपरिवार मर-मिटे किन्तु उनके द्वारा जिस निर्धारि लक्ष्य-प्राप्ति के हेतु यह संग्राम-संगठन हुआ वह पूरा हो गय डलहौज़ी की हड़पू नीति समाप्त कर दी गई, ईस्ट-इण्डि कम्पनी की सरकार चल बसी। यही नाना द्वारा किये ग संगठित संग्राम की सफलता थी। वे सफल संगठक और सू धार होकर अपने द्वारा निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति में पूर्ण सफ रहे इसमें संशय नहीं।

कानपुर के अंग्रेज़ी ख़ज़ाने की रक्षा करने के लिए मेजर जनरल ह्वीलर के आदेशानुसार कानपुर के कलेक्टर का आग्रह-पूर्ण पत्र नाना के पास पहुँचा। मेगज़ीन और स्त्री-बच्चे भी सौंपे जाने वाले थे, किन्तु पहले ख़ज़ाना ही सौंपा गया। दो तोपों तथा तात्या टोपे सहित २०० सिपाही लेकर ता० २२ मई ५७ को नाना साहब कानपुर आये। कलेक्टर ने उनका स्वागत-सत्कार किया। जनरल ह्वीलर आदि उच्चपदस्थ अंग्रेजों ने उन्हें विश्वास दिलाया कि यदि वे अंग्रेजों के साथी रहे तो उन्हें पेन्शनादि पुनः प्राप्ति के लिए वे सब मिल कर पूरी कोशिश करेंगे और इस प्रयत्न द्वारा निश्चय ही नाना को पेशवाई मान-मर्यादा प्राप्त हो जायेगी ऐसी पूर्ण आशा है।

अंग्रेज़ों की कानपुरीय देशी सेना के नेता सूबेदार टीकासिंह और शमसुद्दीन थे। इनसे नाना की ओर से ज्वालाप्रसाद एक दो अन्य अपने साथियों सहित मिलते रहते थे। जब नाना साहब का मिलना ज़रूरी हो गया तब वे मिले। पहली बार बहुत देर तक विचार-विमर्श हुआ और दुबारा गंगा की बीच धारा में नाव पर बैठ कर मंत्रणा की गई, तथा प्रतिज्ञा ली गई। कानपुर-नगर में जहाँ अब कम्पनी बाग़ एवं एग्रीकलचर कालेज है उसके निकटस्थ भूभाग पर नाना का सुन्दर बँगला बना था। इसके पार्श्व से एक झील भी बहती थी। नाना कानपुर-नगर आने पर इसी में निवास करते थे और कभी-कभी अंग्रेज़ी छावनी के अति निकट रहने के लिए 'बीबी घर' (वर्तमान 'मेमोरियल गार्डन') के पास स्थित मुहम्मद के होटल में ठहरते

थे। सन् १८५७ के बाद उस होटल में नाना के खाना बनाने का चूल्हा तक बना था। बाद में वह भी समाप्त कर दिया गया। नवाबगंज के निवास-स्थान के निकट ही 'इस समय नाना की सैनिक छावनी बनी। ४ जून की रात्रि में सबसे पहले अपनी टुकड़ियों सहित टीकासिंह फिर उनके पीछे अन्य सैनिक दस्ते अंग्रेज़ी कैम्प से बाहर हो नाना के कैम्प नवाबगंज में जा पहुँचे। इस सेना की ओर से एक प्रतिनिधि-मण्डल ने बिठूर जाकर नाना से निवेदन किया—'महाराज! एक महान् राज्य आपके अभिषिक्त होने की प्रतीक्षा कर रहा है। आप हमारे साहसिक प्रयत्न में सम्मिलित हों। यदि आप हमारे दुश्मनों के सहायक होते हैं तो आपका सर्वनाश निश्चित है।' नाना साहब ने सब की पीठ पर हाथ धरते हुए कहा—"मैं आपही सब का हूँ।' और आदेश दिया कि आप लोग एकत्र होकर अपने अफसरों का चुनाव अपने आप करें। परिणाम-स्वरूप सूबेदार टीकासिंह कमाण्डर-इन-चीफ और जमादार दलगंजनसिंह तथा सूबेदार गंगादीन कर्नल चुने गये। तब सैनिकों ने नाना से प्रश्न किया—'क्या हम दिल्ली जा सकते हैं?' नाना ने स्वीकृति दे दी। किंतु दूसरे दिन जब वे लोग दिल्ली की ओर चल दिये तो समय की सूझ के धनी नाना ने सोचा कि दिल्ली में तो युद्ध हो ही रहा है और जगहों में भी तो होना चाहिए। क्यों न कानपुर में ही मोर्चा बाँध कर लड़ा जाय? वे तुरन्त घोड़े पर चढ़ दौड़े और सेना को कल्यानपुर से लौटा लाये। १२ घंटे पहले उन्होंने अपने अंग्रेज़ मित्रों को युद्ध के लिए तैयार होने की सूचना दे

दी। हाथी पर झण्डा फहरा कर जुलूस निकाला गया तथा नाना की अमलदारी की घोषणा की गई। नाना साहब ने नगर के सम्भ्रान्त नागरिकों को एकत्र कर नगर के प्रबन्धाधिकारी अपने ही में से चुनने को कहा। अतः श्री हुलासीसिंह को नागरिकों ने कलेक्टर तथा मुल्ला नामक एक सज्जन को नगर-रक्षक सेना का अधिपति चुना। नाना ने इसे स्वीकृत किया। अदालतें क़ायम की गईं। बाबा भट्ट, अज़ीमुल्ला आदि न्यायाधीश का कार्य करने लगे। २० दिन तक युद्ध करने के बाद इक्कीसवें दिन अंग्रेज़ों ने सुलह का सफ़ेद झंडा फहराया। नाना ने युद्ध बन्द करते हुए कहला भेजा,—'जो डलहौज़ी की नीति के हामी न हों तथा उसके कृत्यों से दूर रहने की प्रतिज्ञा करें वे प्रयाग जा सकेंगे।' शाम को नाना ने अपने सैनिक आवासस्थान में प्रमुख साथियों को एकत्र कर संधि की शर्तें प्रस्तुत कीं और चाहा कि अंग्रेज़ उसी दिन प्रयाग चल दें, किन्तु अंग्रेज़ों ने दूसरे दिन जाने की ज़िद की। जब २७ जून को अंग्रेज़ नावों पर चढ़ चुके थे, नाना साहब ने अपने मित्र जेनरल ह्वीलर के पास पत्र भेज कर कष्टों से मुक्ति पाने पर हर्ष करते हुए सकुशल, सुखद यात्रा की कामना की। ह्वीलर ने इसके उत्तर में कृतज्ञता प्रकट करते हुए धन्यवाद का पत्र लिखा। जैसे ही नाना का दूत यह उत्तर लेकर चला गया वैसे ही अंग्रेज़ मारे जाने लगे। ज्योंही यह ख़बर नाना को मिली उन्होंने तुरन्त दूत दौड़ा कर इस हत्या-काण्ड को बन्द करवाया और शेष लोगों को सुरक्षित रूप से

एक स्थान में रहने का प्रबन्ध कर दिया और अपने साथियों तथा सेना सहित वे बिठूर चले गये।

ता० २८ जून, ५७ को संध्याके समय ५ बजे बिठूर के महल में विजेता नाना का दरबार आयोजित हुआ। पहले फौजी क़वायद हुई। घनघोर तथा मधुर बाजे बजे। सिपाहियों के बीच अत्यन्त प्रिय श्री बाला राव पेशवा को, जिनके सफल सैन्यसंचालन-द्वारा कानपुर का युद्ध जीता गया था, सबसे पहले १०१ तोपों की सलामी दी गई। इसके बाद दिल्ली के शाहंशाह की १०१ तोपों की सलामी हुई। तत्पश्चात् नानासाहब के दरबार में प्रवेश करते ही विजयप्रदायक विगत २१ युद्ध-दिवसों की स्मृति-सूचक २१ तोपों की बाढ़ दागी गई। नाना साहब ने कहा,—'यह विजय आप सबकी ही है। आप और आपकी संतति इसका सुख भोगेंगे।' उपरोक्त आशय के संक्षिप्त भाषण के उपरान्त नाना साहब ने एक लाख रुपया सिपाहियों के बीच बाँटने को दिये। इसी समय आपको २१ तोपों की सलामी दी गई। तदुपरान्त श्री बाबा भट्ट तथा श्री राव पेशवा की १७-१७ तोपों की सलामी हुई और बिग्रेडियर ज्वालाप्रसाद, वीरवर टीकासिंह तथा सेनानायक तात्या टोपे के सम्मान में ११-११ तोपें दागी गईं।

ता० १ जुलाई ५७ को नाना साहब का राज्याभिषेक हुआ। पेशवाई सिंहासन पर बहुमूल्य वस्त्रों तथा रत्नाभरणों से सुसज्जित हो अपनी पैतृक पेशवाई तलवार धारण कर श्रीमन्त नानाराव धोंडुपंत पेशवा सिंहासनारूढ़ हुए। पंडितों ने मंगला-



शिवराजपुर में चंदेलों की ध्वस्त गढ़ी
(पृष्ठ २८७)



कालेश्वर महादेव, अमरौधा
(पृष्ठ ३६४)

चरण पाठ करते हुए दिव्य ललाट पर राज-तिलक लगाकर रत्नों से देदीप्यमान राज-मुकुट पहनाया। तत्पश्चात् अन्य उत्सव-कार्य सम्पन्न हुए। इस दिन कानपुर-नगर से सभी संभ्रान्त नागरिकों की एक बहुत बड़ी भीड़ दरबार में बैठने तथा इस समारोह को देखने एवं मेले में सम्मिलित होने को गई थी।

यह सब कार्य सम्पन्न कर नाना साहब तुरन्त अपने साथियों सहित कानपुर आ गये। यहाँ आते ही उन्हें हैवलाक के नेतृत्व में गावों को जलाते तथा अन्य अत्याचार करते हुए कानपुर की ओर बढ़ती चली आने वाली सेना का समाचार मिला। तुरन्त ही उन्होंने अपने बड़े भाई श्री बाबा भट्ट तथा ब्रिगेडियर ज्वाला-प्रसाद और जनरल टीकासिंह को फ़तेहपुर पहुँच कर इस सेना से मोर्चा लेने का आदेश दिया। १४ जुलाई को दूसरे मोर्चे के लिए अपने अनुज श्री बालाराव के नेतृत्व में फ़ौज भेजी। पहले तो श्री बालाराव ने विदेशी-युद्ध-क्षेत्र के दक्ष भयंकर योद्धा सेनापति हैवलाक़ के छक्के छुड़ा दिये। जम कर लड़ाई हुई, बड़ी देर तक बराबरी का युद्ध होता रहा। किन्तु हैवलाक ने जब तितरफ़ी तोपों की मार करते हुए जोरदार धावे किये तो पीछे हट कर श्री बालाराव पांडु-नदी के गलियारे में पुनः लड़े। इस बार यह घायल हो गये और इनको घायल करने वाले तथा इनके द्वारा घायल होने वाले सेनापति मि० रेनाड दो दिन बाद चल बसे। नाना साहब ने श्री बालाराव को 'रण-कुशल' की उपाधि देकर सम्मानित किया।

हैवलाक कानपुर की सीमा पर आ पहुँचा। १६ जुलाई को पाँच हजार सेना सवादे के मैदान में एकत्र हो नाना के अधिनायकत्व में लड़ने लगी। नाना सफ़ेद घोड़े पर बैठे हुए युद्ध-क्षेत्र में अपने जौहर दिखाने लगे। उन्होंने जो व्यूह-रचना की थी हैवलाक भी उससे परेशान हो उठा। किन्तु नये-नये पैंतरे बदल कर उसने जैसे ही भयंकर हमले शुरू किये नाना की व्यूह-रचना विशृंखल होने लगी। नाना साहब ने सैनिकों को उत्साहित करते हुए पुनः अर्धचन्द्राकार की रचना की किन्तु अंग्रेजी तोपों की सधी हुई भयंकर मार से एक ओर के सिपाही हट गये। फिर तो नाना साहब ने डट कर आमने-सामने का युद्ध लड़ा, परन्तु प्रतिकूल समय ने पराजय ही प्रदान की।

कानपुर पर अंग्रेजों का क़ब्जा होते ही नाना साहब बिठूर आये और वहाँ का प्रबन्ध अपने अङ्गरक्षकों के सरदार आभा धनुकधारी को सौंप कर स्वयं अपने तथा तात्या टोपे के परिवार सहित गंगा पार कर चौधरी भूपालसिंह की गढ़ी फ़तेहपुर चौरासी (उन्नाव) में जा विराजे। यहाँ इन्हें खबर मिली कि शिवराजपुर में क्रांतिकारियों की सेना एकत्र हो युद्धोन्मुक है। नाना साहब ने तुरन्त तात्या टोपे को प्रधान सेनापति नियुक्त कर इस सेना के अधिनायकत्व को भेजा। जब तात्या हार कर सेना सहित गंगा की धार से तैर कर पुनः नाना के पास पहुँचे तो उन्होंने मुरार (ग्वालियर) जाकर वहाँ से सेना लाने और कानपुर में लड़ने का सुझाव दिया। जब तात्या ने कानपुर पर पुनः क़ब्ज़ा कर लिया तो आप फिर बिठूर आकर रहे तथा

पुर के मोर्चों की देखभाल की। कालपी में केन्द्र बनने से
ने अपने भतीजे राव पेशवा को तात्या के साथ ही विजय
प्ति के लिए आजीवन और श्री बालाराव को कालपी की
ाई में लड़ने को भेजा। लखनऊ से बुलावा आने पर वहाँ
लड़ाई की देखरेख को गये और कहाँ-कहाँ दौड़ लगाई ठीक
नकारी न होने से नहीं लिखा जा सकता, किन्तु वे सतत
त्नशील रह कर दिग्दर्शन करते रहे। जहाँ आवश्यक हुआ
यं पहुँचे और जहाँ काम चल सका अपने आदेश, निर्देश,
ाव तथा प्रतिनिधि भेजकर यथाशक्ति स्वातंत्र्य-युद्ध का
ालन करते रहे।

सत्तावनी क्रान्ति के प्रत्यक्षदर्शी लेखकों में एकमात्र भारतीय
क अवधशाही दरबार के कर्मचारी श्री सैयद कमालुद्दीन
पनी पुस्तक 'सवानहाते सलातीन अवध' में लिखते हैं—
गस्त मास के तीसरे सप्ताह में नाना का एक वकील बेगम
रत महल के पास उनका खत लेकर आया। उसमें लिखा
कि बिठूर की लड़ाई में हारकर फतेहपुर-चौरासी गाँव (अवध)
आ गये हैं और उनके कारण भयभीत हो हैवलाक बशीर-
त से आगे नहीं बढ़ पा रहा है। वे अवध में रहने की इजा-
त चाहते हैं। बेगम साहब ने तुरन्त जयलाल कलेक्टर को
ाकर हुक्म दिया २ ऊँट, २९ छकड़े, १० गाड़ियाँ, २०-२५,
थी लेकर फतेहपुर-चौरासी जाओ और नानाराव पेशवा को
० जस्सासिंह चौधरी की गढ़ी से लिवा लाओ। ज़ोर का पानी
रस रहा था। ऐसे ही में नाना लखनऊ को रवाना हुए। नस-

रत जंग ने दो सौ सवार, दो हाथी, दो शुतर सवार लेकर लखनऊ की सीमा पर उनका स्वागत किया तथा ११ तोपों की सलामी दी। ता० ५ जिल्हज सन् १२८४ हिजरी को नाना शीशमहल के दौलतखाने में ठहराये गये। मीर वाजिद अली मिजाजपुरसी को आये और दुशाला व रूमाल की खिलअत दी। नाना ने २१ तोपों की सलामी चाही तो कहा गया वह तो सम्राट् की होती है। इसके बाद बेगम साहब ने खिलअत तजवीज की जो तोशेखाने से निकाली गई। २५ हज़ार रुपया दावत के लिए दिये गये। जड़ाऊ तलवार, माला, कंठा, नौरतन पहुँची, दुशाला, रूमाल, कमरबन्द, घोड़ा, नुकरा हाथी बतौर खिलअत बेगम की तरफ़ से भेजे गये।"

तत्कालीन राजाओं तथा शाहों के निकट नाना साहब का कितना ऊँचा आदरणीय स्थान था उपर्युक्त वर्णन से उसकी एक झलक मिल जाती है। इस प्रकार से नाना साहब सन् १८५८ के मई मास तक कार्यकारी रहे। जिस गढ़ी में ठहरे थे उस स्थान के अधिकारी चौधरी भूपालसिंह के चाचा ने डर कर अंग्रेजों को खबर दे दी। फ़ौज आ गई, युद्ध हुआ, अन्त में रात के समय नाना मित्रों तथा सैनिकों के अनुनय-विनय करने पर पीछे की ओर से साफ़ निकल आये। जुलाई से दिसंबर मास-पर्यन्त बहराइच के जंगलों में सपरिवार रहते हुए बाराबंकी की लड़ाई के बाद वे रुहेलखंड से गुज़र कर नैपाल पहुँचे और वहाँ राणा जंगबहादुर को प्रभावित कर अपने तथा अपने साथी उच्च राज्यकुलों के परिवारों को अंग्रेजों के हाथ पड़ने एवं ज़लील होने से बचाने के

लिए नैपाल में उनके आवास की व्यवस्था की तथा वहीं से लड़ाई का संचालन करने लगे।

नाना ने अंग्रेजों को ठीक उन्हीं के सिक्कों में भुगतान दिया। उन्हीं से मिले-जुले रह कर उनके सिर पर सवार हो सब कुछ करते रहे, किन्तु अंग्रेज़ नाना की अंग्रेज़ी शासन-विरोधी कार्यवाहियों का स्वप्न भी न देख पाये। नाना ने अंग्रेज़ों की आँखों का काजल निकालते रहते हुए भी उन्हें अनजान बनाये रख कर जैसा कार्य साधा वैसी पटुता दूसरा कोई भारतीय नरेश न दिखा सका। काश अंग्रेजों की रण-नीति से पहले ही धावे में पूरे जोर के हमले से परेशान हो बहुधा पीछे हट जाने वाले सिपाहियों की जगह नाना के पास भी अंग्रेजों की जैसी रण-सामग्री और देशी-विदेशी युद्ध-क्षेत्रों में ताजी लड़ाइयाँ लड़कर दक्षता प्राप्त सेना तथा सेनापतियों की टुकड़ी होती! यद्यपि नाना के साधन अल्प थे तथापि उन्होंने अपनी चतुरता के बल पर कमाल कर दिखाया। अंग्रेज हमेशा उनकी चतुरता से ज़ेरबार होते रहे। अंग्रेजों के मन और मस्तिष्क के बुखार नाना वर्षों तक ढुँढ़वाये जाने पर भी वे बैरी के हाथ न आये। कितने ही नक़ली नाना पकड़े गये। दो एक नानाओं को फाँसी भी दे दी गई, किन्तु अंग्रेजों के दिलो-दिमाग़ के 'हौवा' नाना की परछाईं को भी वे न पकड़ सके।

इतनी चतुरता व्यवहार में लाते हुए भी नाना ने कभी कोई असद् आचरण नहीं किया। एक भी उदाहरण नहीं है कि नाना ने अपने आदर्श चरित्र से नीचे उतर कर कोई दग़ाबाजी की

हो। अपने मित्र ह्वीलर को उन्होंने पहले ही से पत्र लिखकर आसन्न विपत्ति की आशंका से परिचित कराते हुए सहानुभूति प्रकट की थी। जब लड़ाई लड़े तो १२ घन्टे पहले सूचना दे दी। जैसे ही सत्तीचौरा कांड की खबर उन्हें मिली उसे तुरन्त बन्द करवाया। शेष अंग्रेज प्राणियों को सुरक्षित करते समय जैसे ही उन्हें मालूम हुआ कि कुछ सिपाही, चार मेंमें तथा आया आदि नीच जाति की कुछ औरतें कहीं उड़ा ले गये हैं उन्होंने उन सैनिकों को गिरफ़्तार कराकर तुरन्त औरतों को अपने सामने हाज़िर करवा लिया तथा अभियुक्तों को सेना से निकाल बाहर किया। हिलर्सडन के मार डाले जाने के बाद नियुक्त कानपुर के कलक्टर मि० शेरार नाना के कवित्वपूर्ण कलाप्रिय स्वभाव की मनोरंजक बातें वर्णन करते हुए लिखते हैं—'नाना को युवतियां विशेषतः वेश्याओं की आँखों में महीन काजल की रेखा लगवा कर पीक-लीक से रचे हुए लाल ओष्ठ देखने में बड़ा मज़ा आता था। वे उन्हें दलगत इस प्रकार से सजा-बजा कर बैठाते और निहारते रहते, किन्तु वे कामुक न थे अर्थात् वे कभी भी चरित्र-बल को नहीं खो बैठे।'

यही कारण था कि उनके आदर्श चरित्र का प्रभाव सभी पर पड़ता था। नाना जनतन्त्र प्रणाली के पूरे पालक थे। उन्होंने सेना से स्वयं अपने अपने अधिनायक चुनने को कहा। समस्त नागरिकों की सभा बुलाकर उन्हीं के द्वारा उनके शासक चुनवाये। साथ ही नाना कूटनीति की कठोरता के पालनकर्ता भी थे। अज़ीमुल्ला को अकेले नहीं जाने दिया। उनके साथ

पीरा जी को नत्थी कर दिया। परम सखा तात्या को शक्ति एवं विजय प्राप्ति के अवसरों पर अकेले नहीं रहने दिया; वहाँ भी अपने प्रतिनिधि राव पेशवा को चस्पाँ किये रहे। नाना जिन परिस्थितियों व अल्प साधनों में आँखें खोल कर बड़े हुए थे उससे कहीं अधिक योग्यता का प्रस्फुटन उनमें स्पष्ट हुआ। यही कारण है कि सत्तावनी क्रांति या '१८५७' और 'नाना' दोनों ही नाम पर्य्यायवाची बन गये हैं।

नाना देश के लिए पूर्ण स्वातन्त्र्य की प्राप्ति कर सकने में भले ही असफल रहे किन्तु उन्होंने महान् नैतिक विजय प्राप्त की यह अकाट्य और प्रकट सत्य है।

कानपुर को दूसरी बार जीत लेने के बाद जब तात्या टोपे कालपी चले गये और बिठूर में आभा धनुकधारी ने कतिपय दिनों तक अंग्रेजों के छकाने के बाद (इस लड़ाई की प्रशंसा स्वयं अंग्रेज लेखकों ने की है) जब बिठूर त्याग दिया तब लड़ाई के लिए कोई प्रतिन्द्वद्वी न मिलने से योद्धा अंग्रेज दीवारों से लड़ने लगे। बर्बर कृत्यों की मूर्ति हैवलाक के सिपाहियों ने नाना का नामोनिशाँ संसार से मिटा देने की एक अभूतपूर्व एवं लाजवाब योजना बनाकर कार्यान्वित की। श्रीमन्त बाजीराव पेशवा बिठूर में आकर जिस विशाल भवन में पहले निवासी हुए थे उसका नाम 'गंगामहल' था। इसके भीतर गंगा जी का एक मन्दिर था जिस में रत्नखचित तथा रत्नाभरणों से अलंकृत श्रीगंगाजी की मनोहारी मूर्ति विराजमान थी और महल की दीवारों से टकराती हुई गंगाजी की धारा बहती थी। महल की

बगल में इन्हीं के द्वारा निर्मित महाराजघाट तथा मन्दिर था। अंग्रेजों ने सब से पहले इसे तोपों से उड़ाया तथा जला दिया। इसके एक हिस्से को जो पेशवा के अस्तबल योग्य था अपने अनन्य भक्त तथा पेशवा का नमक खाकर पले हुए पेशवा के दुश्मन एवं घर के भेदी सूबेदार लोगों की रहाइश के लिए दे दिया। इसी महल के पास बने तात्या टोपे तथा अन्य सैनिकों के मकानों को ढहाकर ज़मीं-दोज़ कर दिया तथा आग लगा दी। दूसरे बड़े महल में सात बड़े मह्राबदार फाटकों के बीच से होकर पक्की सड़क गुजरती थी। इस सड़क के किनारे दूकानदार क़ीमती आवश्यक वस्तुएँ लेकर बैठते थे। पेशवा की रहाइश और उनके सभी दफ़्तर विभागीय रूप में इसी के भीतर थे। लगभग ३०—४० एकड़ में बने हुए इस महल के भीतर थोड़े-थोड़े फ़ासले पर सात कुँये थे। इस महल के भीतर भी श्री लक्ष्मीनारायणजी और गणपतिजी के मन्दिर थे। इसे भी लूटा, ध्वस्त किया और जलाया गया। खाली महल जला दिया जाय, सिर्फ़ इससे संतुष्ट न होकर उस समय उसके भीतर जितने भी नौकर-चाकर, स्त्री-पुरुष, बच्चे थे, ज़िन्दा जला दिये गये। इन्हीं जलने वाले प्राणियों में 'मैना' नामक दासी थी जिसे कुछ लेखकों ने नाना की बहन लिखकर उसके सम्बन्ध में न जाने कितनी कथायें लिखी हैं। इसके कुछ दिनों बाद नाना का खजाना अंग्रेजों के हाथ लगा।

सन् सत्तावन के विद्रोह के बाद नाना साहब का क्या हुआ इसके सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें कही जाती हैं। इस बात

से तो सब सहमत हैं कि कानपुर से चलकर वे कुछ समय तक बहराइच के जंगलों में छिपकर लड़ते रहे। फिर अंग्रेजी सेना का दबाव अधिक हो जाने पर वे सपरिवार नैपाल चले गये। इनके परिवार की महिलायें बहुत वर्षों तक वहीं रहीं और उन्होंने वहाँ दो भव्य मन्दिर भी बनवाये। पर नाना साहब कब तक जीवित रहे इसका कोई विश्वसनीय प्रमाण अभी तक नहीं मिल सका। कुछ लोगों कहना है कि वे दो-तीन वर्ष बाद बीमार होकर नैपाल के जंगलों में मर गये। दूसरे लोगों का कथन है कि वे साधू के रूप में बहुत वर्षों तक जीवित रहे। कुछ भी हो इसमें सन्देह नहीं कि ब्रिटिश सरकार के अधिकारी वर्षों तक नाना साहब के भय से आतंकित रहे और तरह-तरह के प्रयत्न करने पर भी उन्हें किसी प्रकार नहीं पकड़ सके।

अपने अनुपम शौर्य, अदम्य उत्साह, अगाध देश-प्रेम एवं अपूर्व संगठन-क्षमता का नाना साहब अद्वितीय दृष्टान्त छोड़ गये हैं।

(ग) तात्या टोपे

महावीर तात्या टोपे के रण-शूरता, साहस और कौशल की प्रशंसा उनके कट्टर शत्रु अंग्रेज सेनापतियों तक ने की है। एक अंग्रेज लेखक ने तात्या के रूप-गुण, रहन-सहन और प्रभाव की सतेजता का गुणगान करते हुए उन्हें भारत का 'गेरीबाल्डी' लिखा है। दूसरे अंग्रेज लेखक ने लिखा है कि यदि उस समय

भारत में आधा दर्जन तात्या टोपे होते तो हमारी हार निश्चित थी।

यवला (जिला नासिक) में बिचुरकर वंश के गृह में 'नरहरि' की पूजा करके जीवन-यापन करने वाला यह परिवार यवलेकर कह कर संबोधित किया जाता था। ब्राह्मणों के सत्कार तथा पूजा-पाठ, दान में शूर श्री बाजीराव पेशवा के सम्पर्क में तात्या के पिता श्री पांडुरंगराव भट्ट (पन्त) पूना में ही आ चुके थे। अतः उन्हीं के साथ यह भी बिठूर आकर पेशवाई धर्मादा-विभाग के प्रधान प्रबन्धाध्यक्ष हुए। पांडुरंग की पहली शादी यवला और दूसरी बिठूर में हुई। प्रथम भार्या सौभाग्यवती रुकमाबाई की कोख से श्री रामचन्द्रराव (तात्या टोपे) और श्री गंगाधरराव जन्मे तथा द्वितीय पत्नी से सुश्री दुर्गाबाई नामक एक पुत्री और सर्व श्री रघुनाथराव, रामकृष्ण-राव, लक्ष्मणराव, बैजनाथराव, सदाशिवराव, विनायकराव नामक पुत्र उत्पन्न हुए।

श्री तात्या ने फाँसी की रस्सी अपने हाथों अपने गले में डालते हुए अन्तिमेच्छा पूछे जाने पर कहा था 'मेरे किसी भी कृत्य के कारण मेरे पिता जो बिठूर में हैं उन्हें कोई कष्ट न दिया जाय।' किन्तु श्री पांडुरंग ने फाँसी का समाचार जानने के बाद काशी जाकर कार्तिक शुक्ल १२ संवत् १९१९ को ७० वर्ष की आयु में संन्यास ग्रहण किया और काशी में ही समाधिस्थ हो गये। उनके परिवार के स्त्री-पुरुष, बच्चे, नौकर-चाकर सब १८

व्यक्तियों को ग्वालियर की जेल में १४ महीने बन्द रक्खा गया। श्री वैजनाथराव उपनाम बाबाराव नैपाल में जा बसने वाली पेशवाओं की रानियों की सेवा करते हुए बाद में नैपाल सरकार की ओर से सूबा तथा नायब सूबा नियुक्त होकर कार्य करते रहे। ये लोग यदा-कदा बिठूर भी आते जाते रहे। श्री रघुनाथराव नैपाल में ही संवत् १९४० में स्वर्गवासी हुए।

श्री रामकृष्ण पंत संवत् १९७० में परलोक सिधारे। इनके पुत्र गजाननराव सूरत की कचहरी में काम करते हैं। श्री गंगाधरराव उपनाम बापूराव और इनके पुत्र नारायणराव अपनी जन्मभूमि यवला में जाकर रहे और अब भी इस कुटुम्ब के लोग वहीं रह रहे हैं। अंग्रेजों-द्वारा जमींदोज और जलाये गये बिठूर के घर की भूमि पर पुनः नई झोपड़ी बनाकर श्री लक्ष्मणराव बिठूर में ही बसे रहे। इन्हीं के पुत्र श्री नारायणराव टोपे अब भी इसी ऐतिहासिक महत्वपूर्ण गृह में रह कर श्री तात्या के निवास-स्थान की स्मृति को जीता-जागता बनाये हैं। श्री तात्या को संवत् १८९८ में श्री सखाराम पंत नामक पुत्र और संवत् १९०० में सुश्री मनोरमाबाई नामक पुत्री की प्राप्ति हुई थी। मनोरमाबाई के पुत्र गोविन्दराव जो लड़ाई के अवसर पर कालपी में संवत् १९१४ में जन्मे थे, संवत् १९८८ में उज्जैन में स्वर्गवासी हुए और तात्या के पुत्र श्री सखाराम नैपाल जाकर यावज्जीवन पेशवा कुटुम्ब की सेवा करते रहे।

श्री त्र्यंबकराव यवलेकर के सुपुत्र श्री पांडुरंगराव के सब से बड़े पुत्र श्री तात्या टोपे का शुभ जन्म यवला (नासिक) में सन् १८१४ में हुआ था। यह नाना साहब से १० वर्ष बड़े थे। ये अपने पिता के साथ बिठूर आये और राजपुत्रों की संगति में ही पढ़ाई-लिखाई, खेल-कूदादि रूपी सैनिक शिक्षा की प्राप्ति की। जीवन के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक रामभक्त हनुमान जी की भाँति ही ये नाना साहब के सेवक एवं आज्ञानुवर्ती रहे। यही कारण था कि जब नाना साहब ने इन्हें सेनापति पद पर नियुक्त कर स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिए यावज्जीवन युद्ध करते रहने को भेजते हुए अपने से पृथक् किया तो यह विचारते हुए भी कि जाने इस जीवन में पुनः दर्शन-मिलाप हो न हो ये अपने आराध्य सखा के आज्ञापालनार्थ बिना ननुनच किये तुरन्त चल दिये और अन्तिम श्वास-पर्यन्त आज्ञा-पालन करते रहे। अनेक अवसरों पर भयंकर मतभेद होते हुए भी नाना के प्रतिनिधि राव पेशवा को नाना के आज्ञानुसार सदैव ही अपना प्रधान अधिकारी मानकर इन्होंने उनका वैसा ही सम्मान किया तथा उनसे आज्ञा लेकर ही समस्त कार्य किया।

बिठूर में तात्या की बाल-चपल बुद्धिमत्ता तथा सैनिक निपुणता से प्रसन्न हो श्रीमन्त बाजीराव पेशवा ने इन्हें एक नवरत्न-जटित टोपी पहनने को दी और उसी समय से उन्हें यवलेकर की जगह 'टोपे' कहने लगे। अतः यह टोपे प्रसिद्ध हो गये।

तात्या का शरीर लगभग ५ फुट ऊँचा था। सतेज निगाह

पूर्ण लम्बी मुखाकृति और भौहें धनुषाकार थीं। यह अल्प-
थे, अतः अधिकतर प्रश्नों का उत्तर 'हाँ' या 'ना' कह कर
। यदि कोई अनावश्यक प्रश्न करता तो 'मालूम नहीं'
कर अपना पिंड छुड़ा लेते थे। तात्या हिन्दी, मराठी, उर्दू,
गुजराती भाषाओं में पारंगत तथा अंग्रेजी में केवल हस्ता-
कर लेते थे। पहले ये पेशवा के महल में एक साधारण
के पद पर नियुक्त हो कार्यकारी रहे थे। इनका मकान
में पेशवा की सेना (लश्कर) के रहाइसी स्थान के बीच
वहीं ये रहते थे।

अंग्रेजी खजाने की रक्षा के बुलावे पर जब नाना साहब
पुर आये, तो तात्या २९० सिपाही और दो तोपों के सहित
के साथ आये। सम्भवतः इसी समय से ये नाना के आयो-
सेनापति या सेना-सचिव का कार्य करने लगे। कानपुर
लड़ाई में ये भी लड़े और २७ जून को जब हारे हुए अंग्रेजी
पुरुष प्रयाग जाने को थे तो उनके विदा-प्रबन्धकों में ये भी
थे। जब सब अंग्रेज नावों में बैठ गये और नाना का दूत
र को नाना का पत्र देकर तथा उत्तर में धन्यवाद की चिट्ठी
लौट चला तो तात्या ने दाहिने हाथ को ऊपर उठा कर
-पीछे हिलाते हुए नावों की रवानगी की आज्ञा दी। नावें
दीं, किन्तु उत्तेजित लोगों ने गोली चलाकर सामूहिक हत्या
भ कर दी। इस सम्बन्ध में तात्या ने अपने बयान में कहा
-"हारे हुए अंग्रेजों को नानासाहब और मैंने सकुशल प्रयाग
ाने का पूरा प्रबन्ध किया था, किन्तु उत्तेजित लोगों ने

हत्या करना प्रारम्भ कर दिया। मैंने सब को बहुत समझाया कि शरणागत अंग्रेज स्त्री-पुरुषों, बच्चों की हत्या पाप है, यह मत करो। किन्तु मेरी किसी ने न मानी। आक्रमणकारी उस समय इतने अधिक क्रोधवन्त तथा उत्तेजित थे कि वे किसी की कोई बात सुनना न चाहते थे।"

नाना साहब बिठूर से बनवासी हो फतेहपुर-चौरासी (उन्नाव) की गद्दी में जा विराजे। वहीं उन्हें शिवराजपुर में लड़ाई के लिये उत्सुक एकत्र क्रान्तिकारियों के एक सैनिक दस्ते के मौजूद होने की खबर मिली। उन्होंने तुरन्त श्री तात्या टोपे को प्रधान सेनापति-पद प्रदान कर उस फ़ौज को लेकर लड़ने के लिए भेज दिया। तात्या आये और डट कर लड़े किन्तु अन्त में सेना सहित गंगा की धारा तैरकर पुनः नाना के पास पहुँचे। नाना साहब ने सुझाया कि मुरार (ग्वालियर) जाकर वहाँ क्रान्ति करने को उत्सुक सिपाहियों को ले आओ तथा कानपुर की लड़ाई लड़ो। श्री तात्या मुरार गये और अपनी चातुरी तथा सैनिक शूरता की प्रगल्भता से प्रभावित कर मुरार के सैनिकों को अपने साथ लाये।

कानपुर से ४६ मील दूर कालपी में एक सुदृढ़ दुर्ग था। कानपुर और कालपी के बीच यमुना नदी बहती थी। सैनिक दृष्टिकोण से कानपुर के बाद कालपी को केन्द्र बनाना ही उपयुक्त था। अतः तात्या ने ग्वालियर से सेना सहित आकर पहले कालपी के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया। जब नाना साहब को सूचना मिली तो उन्होंने श्री बालाराव पेशवा को वहाँ

प्रबन्ध के लिए भेजा। कालपी में शस्त्रास्त्र बनाने का कारखाना खोला गया। श्री तात्या और बालाराव ने परामर्श करते हुए जब जान लिया कि अंग्रेजी सेना लखनऊ की लड़ाई में बुरी तरह व्यस्त हो चुकी है तो तात्या १० नवम्बर, ५७ को ६००० सिपाही और १८ तोपें, गोला-बारूद लेकर कानपुर पर धावा करने को चले। राह के गावँ में अपने अधिकांश शस्त्रास्त्र, गोला-बारूद और खजाने को छिपाया तथा रक्षा के लिए कुछ सैनिक नियुक्त कर दिये। यमुना पार कर कानपुर-जिले के भोगनीपुर, शिवली, अकबरपुर, शिवराजपुर आदि गावों पर क़ब्जा कर लिया। एक सप्ताह के भीतर ही तात्या ने कानपुर-नगर के आधे भाग पर अपना अधिकार जमाया और २० नवम्बर से अंग्रेजी फौज के लिए उस ओर से जाने वाली रसद तथा अन्य आवश्यक सामग्री का जाना बन्द कर दिया। योरोपीय युद्ध-क्षेत्र में अपना जीवन बिताने वाले कमांडर विंढम इस समय कानपुर की अंग्रेजी सेना के अधिनायक थे और कलकत्ते से बराबर अंग्रेजी फ़ौज की टुकड़ियाँ चली आ रही थीं। विंढम ने 'भौंती' के पुल पर मोर्चा क़ायम किया। अकबरपुर-स्थित तात्या की सैनिक टुकड़ी सचेंड़ी में जा धँसी और तात्या सेना सहित २५ नवम्बर, ५७ को पाण्डु-नदी की घाटी में जा डटे। अंग्रेज योद्धाओं ने अपनी रण-नीति के अन्तर्गत यह दृढ़ धारणा बना ली थी कि एशियाई फ़ौजों पर पहले शक्ति लगाकर जोरदार हमला करते हुए घँसने से वे पीछे हटते-हटते अन्त में भाग खड़े होते हैं। तात्या यह बात पहले ही ताड़ गये

थे। अतः विंढम ने जैसे ही ज़ोरदार धावा किया तात्या की सैनिक टुकड़ी पीछे हट गई। विंढम के हाथ तात्या की दो तोपें भी लगीं। वह समझा दुश्मन हार गया और उसकी रण-सामग्री हमें मिल गई। किन्तु तात्या ने जो तोपें पास के जंगल में छिपा दी थीं उन्हें लेकर तात्या की सैनिक बढ़ती हुई विंढम की फ़ौज पर तीन तरफ़ से टूट पड़े। विंढम हार गया। इस प्रकार से १७ जौलाई को अंग्रेज़ों द्वारा जीते गये कानपुर का आधा भाग २७ नवम्बर को पुनः क्रान्तिकारियों के क़ब्ज़े में हो गया। तात्या को पराजित अंग्रेज़ों की सामग्री पाँच लाख रुपया, ग्यारह हज़ार कारतूसों की पेटियाँ, पाँच सौ तम्बू आदि युद्धोपयोगी सामग्री प्राप्त हुई। कानपुर में पुनः विजय-दुन्दुभी बजी और पेशवाई भगवा पताका फहराने लगी। अंग्रेजी सेना के प्रसिद्ध योद्धा बिग्रेडियर कैप्टेन एम-क्री-मार्फ़ी, मेजर स्टरलिंग लेफ्टिनेन्ट गिविन्स के अतिरिक्त, काफ़ी संख्या में फ़ौजी सिपाही काम आये। इस लड़ाई के सम्बन्ध में प्रसिद्ध इतिहास-लेखक मेलीसन लिखता है—"क्रान्तिकारियों का नेता (तात्या) बेवक़ूफ़ न था। विंढम द्वारा काम में लाई गई प्रथम ज़ोरदार हमला कर भयभीत कर भगा देने की ब्रिटिश योद्धाओं द्वारा निश्चित रण-नीति-चाल वह पहले ही से भाँप चुका था। उसने इस कमज़ोरी से फ़ायदा उठाया और विंढम क्या करेगा इस बात को एक खुली किताब के पृष्ठ की तरह पढ़ लिया। अतः दक्ष सेनाध्यक्ष (रियल जेनरल) की भाँति उस स्थिति का पूरा लाभ उठाया।"



वीरेश्वर-मंदिर के द्वार पर एक प्रस्तर-स्तम्भ



बिल्हौर के एक प्राचीन घर में लकड़ी के सुंदर खंभे

बिंढम की फ़ौज से चौबीस घण्टा लगातार लड़ती रहनेवाली अपनी सेना को तात्या ने आज्ञा दी कि सवेरा होते ही दुश्मन का पीछा करो। किन्तु इस फ़ौजी टुकड़ी ने तब तक हथियार नहीं उठाये जब तक शिवराजपुर और शिवली से आने वाली टुकड़ियों ने आकर दाहिनी ओर से अंग्रेज़ी सेना पर गोलावारी शुरू न कर दी। फिर तो ये लोग भी बाँईं ओर से जोशो-ख़रोश के साथ हमला कर जूझने लगे। तात्या की उपर्युक्त आज्ञा विजय प्राप्ति के हेतु अथक परिश्रम एवं लगन का प्रमाण एवं सैनिक चतुरता तथा कुशल नीति की प्राण थी। जब बैरी के पैर उखड़ चुके हैं तो दो धक्के और देकर खदेड़ बाहर करने के समय कैसी नींद, और कैसी भूख और आराम कहाँ?

इस तरह जब तात्या ने बिठूर व कानपुर पर अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया तो नाना साहब पुनः बिठूर में आकर रहे। उधर बिंढम द्वारा खोई गई ब्रिटिश युद्ध-मर्यादा की रक्षा के लिए सेना सहित कमांडर-इन-चीफ़ सर कालिन कैम्पबेल लखनऊ से कानपुर की ओर दौड़ पड़े। तात्या ने उन्हें गङ्गा पार रोक रखने की मोर्चेबन्दियाँ कीं। इस प्रबन्ध की देख-रेख स्वयं नाना साहब ने भी कानपुर आकर की, किन्तु कैम्पबेल गंगा पार करने में सफल हुए। ग्वालियर-सेना की एक टुकड़ी ऐन मौके पर तोपों की मार से आकुल हो भाग खड़ी हुई थी। कैम्पबेल ने सेनापति होप ग्रांट को बिठूर और कालपी की राह रोक कर तात्या को पूरी सेना सहित पकड़ने के लिए भेजा, किन्तु चारों ओर से घिरे तात्या शिवराजपुर के पास सरैयाँ-

घाट, गंगा-तट पर लड़-भिड़ कर बिठूर की राह से अपनी सेना सहित ९ दिसम्बर, ५७ को साफ़ निकल गये। कैम्पबेल द्वारा उन्हें पकड़ने के लिए बिछाया गया जाल बेकार साबित हुआ। नानामऊ के घाट से पार हो तात्या खेड़ा पहुँचे। नाना साहब द्वारा भेजे गये उनके प्रतिनिधि तथा इनके अधिनायक राव पेशवा इनसे यहीं आकर मिले और सदैव के लिए साथी हुए। उनकी आज्ञा से राह से गावँ में छोड़ी हुई सामग्री लेते हुए तात्या कालपी पहुँचे। चरखारी के राजा ने क्रांति-युद्ध में सम्मिलित होने के लिए की गई नाना की प्रार्थना को साफ़ अस्वीकार कर दिया था। अतः नाना उन पर नाराज़ हुए थे। कालपी से कूच कर तात्या ने चरखारी पर आक्रमण किया और क़ब्ज़ा कर लिया। राजा से ३ लाख रुपये और २४ तोपें प्राप्त कीं। यहीं पर इन्हें झाँसी की रानी का पत्र मिला। कालपी जाकर इन्होंने राव साहब से झाँसी जाने की आज्ञा प्राप्त की और १ अप्रैल ५८ को झाँसी के निकट पहुँच कर युद्धारम्भ किया। राह में बरुआसागर पहुँचने पर राजा मानसिंह इनके साथी होकर चले थे। चार-पाँच हज़ार सेना लेकर कानपुर विजय करने वाले तात्या इस समय २२ हज़ार सेना और २८ तोपों सहित झाँसी में युद्धरत हुए। किन्तु दोहरी मोर्चेबन्दी में एक मोर्चे के सम्पूर्ण सिपाहियों के भाग खड़े होने से जैसा अपयश इन्हें इस बार प्राप्त हुआ वैसा कभी प्राप्त नहीं हुआ था और न आगे चल कर ही मिला। इनकी रण-सामग्री का अधिकांश भी अंग्रेज़ी सेना के हाथ लगा। इन्होंने जंगल में आग लगा दी किन्तु

अंग्रेजी सेना आग के भीतर घुस पड़ी। फिर भी ये उसकी पकड़ में न आये।

ये कालपी लौट आये। झाँसी से निकल कर महारानी लक्ष्मीबाई भी कालपी आ गईं। झाँसी जीत कर सेनाधिपति सर ह्यू रोज कालपी जीतने चले। झाँसी की रानी सहित कालपी से ४२ मील आगे बढ़कर तात्या ने लड़ाई लड़ी किन्तु ये पराजित हुए। कालपी पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया। तब ये सब के साथ ग्वालियर गये। वहाँ की लड़ाई में लड़े और १ जून ५८ को सिंधिया भाग खड़े हुए। इस सिंधिया की सेना में से कुछ सिपाही तटस्थ रहे, तथा कुछ तात्या के साथ हो अपने मालिक को विदेशी शक्ति-संस्थापन में संलग्न देख कर उनसे लड़े थे। यह था तात्या का सैनिकों का मन-हरन कर अपना बना लेने वाला प्रभाव। ग्वालियर पर अंग्रेजी आक्रमण होने पर ये भी लड़े, किन्तु जब हार हो गई तो तात्या कुछ सैनिक तथा २५ तोपें लेकर निकल खड़े हुए।

इसके बाद तात्या ने खुले मैदान में अंग्रेजी सेना से संग्राम न करके गुरिल्ला युद्ध की नीति अपनाई। ग्वालियर से चल कर वे जयपुर, टोंक, भीलवारा, कोटरा, झालरापाटन तक लड़ाइयाँ लड़ते हुए पहुँचे। झालरापाटन के राजा से पाँच लाख रुपया वसूल करके अपनी सेना को तीन महीने की तनख्वाह चुकाई। वहाँ के मध्यभारत की रियासतों में घुस गये और घूमते-फिरते दक्षिण में आ पहुँचे। इससे अंग्रेजी सरकार और भी घबड़ाई और उसने तात्या को चारों ओर से घेरने के लिए

बड़ी-बड़ी सेनायें भेज दीं। फिर भी वे उनके चंगुल से निकल कर इन्दौर-रियासत में आ पहुँचे। यहाँ होलकर की सेना को अपना साथी बनाकर थाना नामक स्थान में अंग्रेज़ों को लूट लिया। वहाँ से बड़ौदा की तरफ़ अग्रसर हुए ताकि वहाँ की फ़ौज को भी युद्ध में शामिल किया जाय। पर छोटा उदयपुर नामक स्थान में अंग्रेज़ी सेना ने उनको घेर लिया। वहाँ जमकर लड़ाई हुई और अन्त में अंग्रेज़ी सेना को प्रबल देख कर तात्या बाँसबाड़ा के जंगल में घुस गये। १३ जनवरी १८५९ को नरवर के राजा मानसिंह तथा शाहज़ादा फ़िरोज़शाह सेना सहित उनसे आ मिले। २१ जनवरी को ये सब सीकर (जयपुर) पहुँचे और यहाँ अंग्रेज़ी सेना ने २४ घंटे में ५४ मील का रेगिस्तान पार करके अचानक इन पर हमला कर दिया जिससे इनकी सेना विशृंखल हो भाग खड़ी हुई। तात्या फिर बाँसबाड़ा के जंगल में जा पहुँचे और राजा मानसिंह के साथ छिप कर रहने लगे। अंग्रेज़ों के जासूस उनका पीछा करते हुए वहाँ भी पहुँच गये और चालाकी से राजा मानसिंह को अपनी तरफ़ मिला लिया। उसी की दग़ाबाज़ी से ७ अप्रैल १८५९ को आधी रात के समय ये सोते हुए पकड़ लिये गये।

सिपरी की अंग्रेज़ी छावनी में तात्या के मुक़दमे का फैसला करने के लिए एक फ़ौजी अदालत बैठी। उसके सामने तीन दिन तक तात्या ने अपना ज़ोरदार बयान दिया और अन्त में स्पष्ट कह दिया कि "मैंने जो कुछ किया वह अपने देश को स्वतंत्र करने और अपने स्वामी पेशवा की आज्ञा पालन के लिए किया।

मैंने न तो कभी अँग्रेज़ों की नौकरी की और न मैं उनकी जा ही रहा इसलिए मेरे ऊपर विद्रोही होने का अभियोग लागू नहीं होता।"

१८ अप्रेल १८५९ को तात्या का बयान समाप्त हुआ और उसी दिन संध्या समय उन्हें फाँसी पर लटका दिया गया। बंधन खोलने पर तात्या प्रसन्नतापूर्वक फाँसी के तख़्ते पर जा चढ़े और फाँसी का फन्दा ख़ुद ही गले में डाल कर कूद पड़े। गीता के कथनानुसार उन्होंने निर्भयतापूर्वक अपनी देह को पुराने वस्त्र के समान बदल डाला।

(घ) झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई

श्रीमन्त बाजीराव पेशवा के वैभव के अस्त होने पर पूना-नगरी से अनेक महाराष्ट्र-परिवार इधर-उधर प्रवासित हो गये, बहुत से उन्हीं के साथ जाकर बिठूर में बस गये। बाजीराव के अनुज श्रीमन्त चिम्नाजी अप्पा बनारस चले गये, जहाँ उन्हें ईस्ट इंडिया कम्पनी की सरकार की ओर से पेंशन मिलती थी। उनके साथियों में से मोरोपन्त तांबे नामक एक महाराष्ट्र ब्राह्मण भी थे जो सतारा के समीप कृष्णा-नदी के तट पर स्थित बाई नामक ग्राम के निवासी थे। मोरोपन्त की पत्नी, भागीरथीबाई के कुल को उज्ज्वल करने वाली उनकी एकमात्र कन्या मनुबाई थी। कार्तिक बदी संवत् १८९१ अर्थात् १६ नवंबर सन् १८३४ को उसका जन्म हुआ। परन्तु ३-४ वर्ष ही की अवस्था में उसे मातृ-वियोग का दुख सहना पड़ा। मोरोपंत के संरक्षक चिम्नाजी

का देहान्त सन् १८३० ही में हो चुका था। एक ओर जीविका के लाले पड़ रहे थे, दूसरी ओर दुर्भाग्य के चक्र ने इन्हें गृहस्थ-जीवन के सुखों से वंचित कर दिया, और ऐसी असहाय दशा में मनुबाई के पालन का दुस्तर प्रश्न भी सम्मुख नाचने लगा। मोरोपंत ने श्रीमन्त बाजीराव की शरण जाना निश्चय किया। बिठूर पहुँचकर वे पेशवा के कृपा-भाजन होकर रहने लगे। पेशवा-परिवार में ही मनुबाई की बाल्यावस्था के ३-४ वर्ष व्यतीत हुए। पेशवाके दत्तक पुत्रों, नाना साहब तथा पांडुरङ्गराव के साथ ही यह मातृहीना बालिका रहती थी। पेशवा उसके अनुपम सौन्दर्य के कारण उसे 'छबीली' कहा करते थे। बिठूर के जलवायु के सेवन से बालक ध्रुव ने जिस दृढ़ता का अनुपम दृष्टान्त संसार के सामने रक्खा, और सीता-सुत लव-कुश ने जिस अद्भुत शौर्य की ध्वजा फहराई, उन्हीं दोनों गुणों की अमिट छाप कुमारी मनुबाई के स्वभाव में अंकित हो गई। ८ वर्ष की अवस्था में मोरोपंत ने इसका विवाह झाँसी के राजा श्रीमान् गंगाधरराव के साथ कर दिया और महाराष्ट्रीय प्रथा के अनुसार पति-गृह जाने पर इसका पुनः नामकरण हुआ। अब ये झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

झाँसी के राज्य का इलाक़ा पहले महाराज छत्रसाल बुँदेले के राज्य में था। अपने जीवन-काल में ही उन्होंने बाजीराव पेशवा (प्रथम) को, उनकी सहायता और मैत्री पर मुग्ध होकर, अपना दत्तक पुत्र स्वीकार लिया था, और इसलिए उनके निधन पर उनके राज्य के तीन भाग हो गये। दो भाग उनके

औरस-पुत्रों हिरदेशाह और जगतराजदेव को मिले और तीसरा बाजीराव को मिला। बाजीराव ने अपने भाग को तीन सूबों में विभक्त किया। गोविन्द पन्त बुँदेले को सागर, गुरसराय, जालौन आदि का इलाक़ा, बाजीराव की रखेली मस्तानी के पुत्र शमशेर बहादुर को बाँदा व कालपी का इलाक़ा शासन के लिए मिला और झाँसी के इलाक़े में भी एक सूबेदार नियुक्त हुआ। यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है कि झाँसी का पहला सूबेदार कौन नियुक्त हुआ पर १७५६ में वहाँ पर नागा गोसाइयों के गुरू इन्द्रगिरि गोसाईं ने उपद्रव मचाया और मोठ नामक स्थान में उसने स्वतन्त्र राज्य की स्थापना भी कर ली। तब पेशवा की सरकार की ओर से नारोशङ्कर दानी मोतीवाला झाँसी का शासक नियुक्त होकर आया। उसने इन्द्रगिरि का दमन किया। नारोशङ्कर ने झाँसी के क़िले की वृद्धि की और झाँसी-नगर की बुनियाद डाली। सन् १७७० से १७९४ तक तक रघुनाथ हरी नेवलाकर झाँसी के सूबेदार रहे। रघुनाथ हरी ने चौथेपन में अपने स्थान में भाई शिवराम भाऊ को नियुक्त कर काशी-वास करना निश्चय किया। सन् १८०४ में शिवराम भाऊ ने ईस्ट इंडिया कम्पनी से सन्धि की जिसके अनुसार उनकी पेशवा की अधीनता तो क़ायम रही, पर कम्पनी ने उन्हें अपनी रक्षा में ले लिया। सन् १८१५ में इनके स्थान में इनके नाबालिग़ पौत्र रामचन्द्रराव झाँसी के सूबेदार हुए। २० अगस्त १८३५ को रामचन्द्रराव निस्सन्तान मर गये। उनके स्थान में कम्पनी की सरकार ने शिवराम के ज्येष्ठ पुत्र रघुनाथ-

राव को राजा स्वीकार किया। पर वे भी ३ वर्ष के अनन्तर परलोकवासी हुए। रघुनाथराव कुष्ट-रोग से पीड़ित थे। उनके भी कोई सन्तान न थी। उनके उत्तराधिकारी का प्रश्न निश्चित होने के पहले झाँसी-राज्य के प्रबन्ध को कम्पनी ने अपने हाथ में ले लिया।

अन्त में गवर्नर-जनरल ने उनके छोटे भाई गङ्गाधरराव को गद्दी पर बैठाया। परन्तु फिर भी सन् १८४२ तक झाँसी-राज्य का प्रबन्ध अंग्रेज अफ़सरों के हाथ रहा क्योंकि गङ्गाधरराव कम्पनी सरकार के विचार से कुछ मन्दबुद्धि थे। अपने शासन के अधिकार पाने पर गंगाधरराव ने यह सिद्ध कर दिया कि वे एक योग्य और सर्वप्रिय शासक थे। उन्होंने अनेक लोक-हितैषी कार्य किये। उसी वर्ष उनका विवाह बिठूर-प्रवासी मोरोपन्त ताँबे की कन्या मनुबाई के साथ हुआ। तभी से ये झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई कहलाईं।

सन् १८५१ में लक्ष्मीबाई के एक पुत्र हुआ, पर केवल ३ मास ही जिया। राजा गंगाधरराव ने अपने राज्य का प्रबन्ध बड़ी चतुरता से सँभाला। आस-पास के सभी शासकों से उनकी मित्रता थी और वे अपनी दयालुता के कारण "काका साहब" कहलाते थे। उनकी सुव्यवस्था की प्रशंसा अंग्रेज अफ़-सरों ने भी की। कम्पनी की सरकार से उनकी गाढ़ी मित्रता रही। पुत्र-वियोग के कारण उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। नवम्बर १८५३ में उनका रोग असाध्य मान लिया गया। तब उन्होंने अपने घराने के वासुदेव नेवालकर के पुत्र आनन्दराव

को गोद लिया और दत्तक-विधान पूर्ण कर उन्होंने अपने हाथ ही से बुन्देलखण्ड के असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेन्ट मेजर एलिस को एक ख़रीता दिया, जिसमें कम्पनी की सरकार को यह सूचना दी गई थी उन्होंने आनन्दराव को अपना दत्तक पुत्र नियुक्त किया है, जिसका नाम दामोदरराव रक्खा गया है। उन्होंने यह प्रार्थना भी की कि उनके देहावसान के अनन्तर यही उनकी गद्दी का उत्तराधिकारी माना जाय। उसके दूसरे ही दिन २१ नवम्बर १८५३ को राजा गंगाधरराव ने अपने प्राण त्याग दिये। मृत्यु-शय्या पर उन्हें पूर्ण आशा थी कि झाँसी-राज्य की मैत्री के नाते कम्पनी की सरकार उनके दत्तक पुत्र को उनकी गद्दी पर बैठने की अनुमति दे देगी। रानी लक्ष्मीबाई की अवस्था उस समय केवल १८-१९ वर्ष की थी।

लार्ड डलहौज़ी का शासन-चक्र चल रहा था। कम्पनी की घोषित नीति अब यह थी कि कम्पनी के आश्रित किसी हिन्दू नरेश के निस्सन्तान मरने पर उसके दत्तक को उसकी गद्दी पर बैठने की इजाज़त न मिलेगी और उसका राज्य कम्पनी अपने अधिकार में कर लेगी। गङ्गाधरराव के मरते ही मि० एलिस ने एकदम झाँसी के राजकोष में ताला डाल दिया और गवर्नर-जनरल की आज्ञा की प्रतीक्षा में झाँसी-राज्य का पूरा प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया। चार मास बीत जाने पर भी भारतीय सरकार का कोई हुक्म न आया। इसलिए रानी लक्ष्मीबाई ने सरकार के पास एक ख़रीता भेजा जिसमें अपने वंश और ब्रिटिश सरकार के बीच प्राचीन मैत्री का उल्लेख करते हुए सन् १८१७

के सन्धि-पत्र की ओर संकेत किया गया था, जिसमें शिवराम भाऊ के वंशजों के हाथ में झाँसी-राज्य के सदा क़ायम रखने की शर्त दी हुई थी, और जो सन् १८४२ की सन्धि में काटी नहीं गई थी। पर २७ फरवरी सन् १८५४ में लार्ड डलहौजी ने यह घोषणा प्रकाशित की कि झाँसी-राज्य कम्पनी के राज्य में मिला लिया गया।

जब गवर्नर-जनरल की इस घोषणा को अंग्रेज रेजीडेंट ने रानी लक्ष्मीबाई को पढ़ कर सुनाया तो रानी ने उस पर मधुर स्वर से यह कहा—"मेरा झाँसी देगा नहीं।" अबला की यह दृढ़तापूर्ण वाणी अरण्यरोदन की भाँति अन्तरिक्ष में समा गई। पर ३ वर्ष पश्चात् उसकी प्रतिध्वनि हुई। रानी लक्ष्मीबाई को ५ हजार सालाना पेन्शन मिली और उन्हें झाँसी के राजमहल में यावज्जीवन निवास करने की अनुमति मिली। पारिवारिक सम्पति भी उन्हें मिली। झाँसी के खजाने से ६ लाख रुपया निकाल कर दामोदरराव के नाम कम्पनी के खज़ाने में जमा कर दिया गया। झाँसी के क़िले पर अंग्रेज़ी झण्डा फहराने लगा। तदनन्तर रानी लक्ष्मीबाई ने कम्पनी के कोर्ट-आफ़ डाइरेक्टर्स के पास अपील करने के लिए श्री उमेशचन्द्र बनर्जी नामक एक हिन्दुस्तानी वकील और एक योरोपियन वकील को लन्दन भेजा। पर कुछ परिणाम न निकला। कुछ काल तक रानी ने अपनी पेन्शन लेने से इनकार कर दिया, पर फिर लेना आरम्भ कर दिया। ७ वर्ष की उमर में दामोदरराव का यज्ञोपवीत-संस्कार बड़े ठाट से हुआ। रानी लक्ष्मीबाई ने अपने जीवन

का अत्यन्त सात्विक क्रम बाँध लिया। पूजा-पाठ, कीर्तन आदि के साथ नित्यप्रति घोड़े की सवारी कर वे व्यायाम करती थीं। उनके घर का सारा प्रबन्ध उनके पिता मोरोपन्त ताँबे करते थे।

सन् १८५७ के जनवरी मास से ही कम्पनी की सिपाही फ़ौज में घोर असन्तोष और विद्रोह के लक्षण प्रकट होने लगे थे। बंगाल के दमदम, बारकपुर, रानीगंज, ब्रह्मपुर आदि स्थानों में चर्बी से चुपड़े हुए कारतूसों के प्रति उनके हृदयों में क्रोध की अग्नि भभक उठी थी। धीरे-धीरे उत्तर भारत की प्रायः सभी छावनियों में वह लहर बिजली की तरह फैल गई। झाँसी में उस समय बंगाल नेटिव इनफ़ॅन्ट्री की १२वीं पलटन, १४वीं इरॅगुलर केवलरी और एक तोपख़ाना—यह सैन्य-बल था और कप्तान डनलप इसके कमांडर थे और राजनीतिक व्यवस्था तथा शासन के अधिकारी कप्तान स्कीन थे। इन दोनों को रानी की मित्रता पर विश्वास था, हिन्दुस्तानी फ़ौज की राजभक्ति पर उन्हें भरोसा था।

४ जून को झाँसी में विद्रोह की चिनगारियाँ प्रकट हुईं। कप्तान डनलप और टेलर जो डाकख़ाने में चिट्ठी डाल कर लौट रहे थे, रास्ते में मार दिये गये। ८ जून को विद्रोहियों ने झाँसी का क़िला भी ले लिया। उसके भीतर झाँसी के सभी अंग्रेज पुरुष, स्त्री और बच्चे थे। उन लोगों ने अपनी रक्षा बड़ी वीरता से की, पर अन्त में गोला-बारूद समाप्त हो जाने पर आत्म-समर्पण कर दिया। पर बाद को बाग़ियों के प्रतिनिधि

हकीम सुलह मुहम्मद के हुक्म से झाँसी के जेल-दारोग़ा बख़्शीशअली ने इन सब ७५ मनुष्यों, १६ स्त्रियों और २३ बच्चों को अभयदान देकर भी मौत के घाट उतार दिया। इस हत्याकांड से रानी लक्ष्मीबाई का कुछ सम्बन्ध था या नहीं इस विषय में मतभेद है। रावबहादुर दत्तात्रेय बलवन्त पारसनीस ने अपनी मराठी पुस्तक "झाँसी की रानी" में झाँसी के हत्याकांड से बचे मार्टिन नामक एक अंग्रेज़ के एक पत्र का हवाला दिया है जो उसने सन् १८८९ में दामोदरराव को आगरे से लिखा था और जिसमें उसने यह स्पष्ट मत प्रकट किया है कि रानी का इस दुर्घटना में कोई हाथ न था।

झाँसी में कोई भी अंग्रेज़ ज़िन्दा न बचा था। समस्त हिन्दुस्तानी फ़ौज, पुलिस और अफ़सर बाग़ी हो गये थे। इस लिए रानी लक्ष्मीबाई ने झाँसी का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया। बाग़ी सिपाहियों ने रानी का महल भी घेर लिया और उनसे एक लाख रुपये लेकर माने। उन्होंने बाद में "महारानी लक्ष्मीबाई की जय" बोल कर उन्हें झाँसी की रानी घोषित किया। इस बीच में स्वर्गीय गङ्गाधरराव का एक वंशज सदाशिवराव नारायण अपने को झाँसी की गद्दी का उत्तराधिकारी घोषित कर उपद्रव मचाने लगा। उसका दमन रानी लक्ष्मीबाई को करना पड़ा। फिर ओरछा-राज्य के दीवान नत्थेख़ाँ ने २० हज़ार सेना लेकर झाँसी पर चढ़ाई की। बड़ी वीरता से रानी ने नत्थेख़ाँ से मोर्चा लेकर उसकी फ़ौज को खदेड़ दिया।

ब्रिटिश सरकार के होश उड़ चुके थे। अंग्रेज़ अधिकारियों को इस घोर विपत्ति के समय में शत्रु और मित्र का ज्ञान न रहा था। प्रत्येक हिन्दुस्तानी को वे सन्देह की दृष्टि से देखते थे। रानी लक्ष्मीबाई की ओर उनका संदेह पहले ही से था। "जाकी धन धरती लई ताहि न लीजै संग" वाली नीति से प्रभावित होकर सरकार ने रानी को विद्रोही मान कर उनके दमन के लिए प्रबन्ध करने की तैयारी की। इधर रानी ने भी झाँसी के शासन का पूरा प्रबन्ध कर लिया। सैनिक महत्व के स्थानों को सुरक्षित बनाने के साधन एकत्र किये गये। नई तोपें ढाली गईं, नए सिपाही भर्ती किये गये, एक टकसाल खोला गया। शासन के प्रत्येक विभाग में रानी के दृढ़ चरित्र का प्रभाव पड़ा। इस २३ वर्षीया महिला ने अनुपम उत्साह, उद्योग एवं अध्यवसाय से अपने सभी साथियों और निवासियों के हृदयों में मोहन-मन्त्र फूँक दिया। रानी शासन-कार्य की देख-भाल स्वयं करती थीं। उनका पहनाव एक समकालीन लेखक ने वर्णन किया है। वे सिर पर एक चमकदार लाल रेशम की टोपी लगाती थीं, जिसमें चारों ओर घेरे में मोती और जवाहिरात जड़े रहते थे। एक लाख के मूल्य की हीरों की एक छोटी-सी माला उनके कंठ की शोभा बढ़ाती थी। उनकी कंचुकी सामने खुली रहती थी और कमर तक लटकती थी और एक ज़री के काम वाला कमर-बन्द उसे बाँधे रहता था। इस कमरबन्द में दमिश्क़ की नक़्क़ाशी के चाँदी मढ़े हुए दो तमञ्चे खोंसे हुए थे। साड़ी के स्थान में वे ढीला पायजामा पहनती थीं। इस तेजस्वी वेष का प्रभाव सब

पर पड़ता था। प्रतिदिन महालक्ष्मी के मन्दिर में वे घोड़े व पालकी पर सवार होकर दर्शन करने जाती थीं। घोड़े की सवारी का उन्हें व्यसन-सा था और अश्व-परीक्षा में भी वे अत्यन्त निपुण थीं।

जून सन् १८५७ से मार्च १८५८ तक रानी लक्ष्मीबाई ने झाँसी में बड़े वैभव से निष्कण्टक राज्य किया। कम्पनी की हुकूमत उत्तरी भारत के अनेक स्थानों से उखाड़ कर फेंक दी गई थी। कानपुर में नाना साहब पेशवा घोषित हो गये थे। वीर तात्या टोपे उनकी आज्ञा से चारों ओर विजन बोल रहे थे। ग्वालियर के महाराज जयाजीराव सिंधिया ने अंग्रेज़ सरकार का साथ दिया, पर उनकी फ़ौज ने विद्रोह का झण्डा ऊँचा किया। उसने रानी लक्ष्मीबाई को सहायता देने का प्रण किया। दिल्ली में मुग़ल सम्राट् बहादुरशाह को विद्रोहियों ने बादशाह घोषित कर दिया था। जगदीशपुर के बाबू कुँवरसिंह ने आरा-दानापुर में कम्पनी के छक्के छुड़ा दिये थे। बरेली में खान बहादुर खाँ ने अपने को मुग़ल बादशाह का वाइसराय घोषित कर दिया। फ़ैज़ाबाद में मौलवी अहमदशाह अपनी अप्रतिम योग्यता से अंग्रेज़ों के छक्के छुड़ा रहे थे। बुन्देलखण्ड के कई स्थानों में भीषण विद्रोह चल रहा था। ऐसी सामूहिक विपत्ति में फँसकर अंग्रेज़ सरकार ने झाँसी के जीतने का विचार स्थगित कर रक्खा था। विलायत से अधिक सेना आ रही थी। उसके आने पर ही कुछ उपाय करने का विचार हो रहा था। सितम्बर १८५७ में मेजर जनरल सर ह्यू रोज़ बम्बई

आये। उन्हें पश्चिम और मध्यभारत में विद्रोह के दमन करने का। कार्य सौंपा गया। इन्दौर के पोलिटिकल एजेन्ट सर राबर्ट हेमिल्टन भी छुट्टी से लौट पड़े। उन्होंने महू को केन्द्र बनाकर आसपास के इलाक़े में विद्रोह शान्त करने का कार्य प्रारम्भ किया। इन दोनों अफ़सरों ने मिलकर मालवा और मध्यभारत में बड़ी तत्परता से काम किया। सर ह्यू रोज़ ने महू से चल कर सिहोर, रोहतासगढ़, बरोदिया, सागर, सनोडा, गढ़ाकोटा, मदनपुर आदि स्थानों में युद्ध करते हुए १९ मार्च १८५८ को झाँसी से १४ मील दूर चंदनपुर में पहुँच कर अपना कैम्प गाड़ा। ता० २० मार्च को उन्होंने एक तोपखाना और कुछ घुड़-सवार झाँसी के मार्गों की देखभाल करने के बाद नाकाबन्दी करने के लिए रवाना किये। सर राबर्ट हेमिल्टन भी उनके साथ थे। ये दोनों झाँसी की ओर फ़ौज लेकर जाने ही वाले थे कि उनके नाम कमांडर-इन-चीफ़ सर कालिन कैम्पबेल और गवर्नर-जनरल लार्ड कैनिंग के आवश्यक पत्र मिले, जिनमें यह लिखा था कि—"तात्या टोपे ने चरखारी के वफ़ादार राजा रतनसिंह पर चढ़ाई की है। उसकी रक्षा अत्यन्त शीघ्र की जाय। झाँसी पर चढ़ाई उसके बाद की जाय।" इन दोनों अफ़सरों ने सलाह की कि यदि उक्त आज्ञा का अक्षरशः पालन किया जायगा तो सैनिक दृष्टि से एक बड़ी भारी भूल होगी, क्योंकि चंदनपुर से झाँसी केवल १४ मील रह गया था, और चरखारी जाने के बदले यदि पहले झाँसी पर आक्रमण किया जाय तो उनकी दृष्टि से अधिक उत्तम होगा। हेमिल्टन ने बड़े

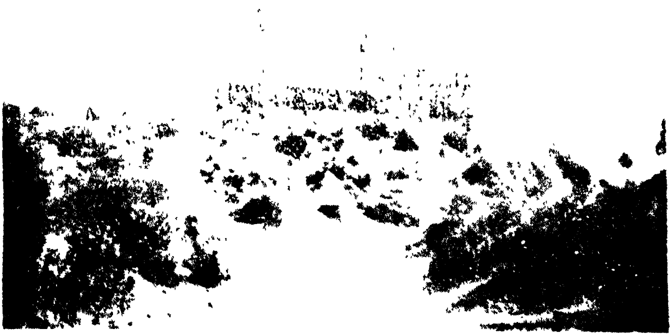
लाट और जंगी लाट की इस आज्ञा के विपरीत ह्यू रोज़ को पहले झाँसी लेने की अनुमति दी और इस आज्ञा के उल्लंघन का दोष अपने सिर पर लेकर बड़े लाट को इस बारे में सूचना दी। ता० २० मार्च को प्रातःकाल ७ बजे सर ह्यू रोज़ की सेना झाँसी के समीप जा पहुँची।

झाँसी का क़िला नगर के पश्चिम ओर एक छोटी सी पहाड़ी पर बना है। उसके चारों ओर पत्थर और चूने की मज़बूत दीवारें हैं, जिनकी चौड़ाई १६ से २० फ़ुट तक है। बीच-बीच में गोलाबारी के बुर्ज हैं। इस क़िले का विध्वंस करना कठिन था, क्योंकि जिस पहाड़ी पर यह है वह ग्रेनाइट पत्थर की है। इसके चारों ओर सजाई हुई तोपों के कारण उसके पास शत्रु की सेना का पहुँचना कठिन था। गरगज नामक बुर्ज सबसे बड़ा ४० हाथ लंबा उतना ही चौड़ा और सवा सौ हाथ ऊँचा था। उसके चारों कोनों पर तोपें लगी रहती थीं। क़िले में तोपों की संख्या ५१ थी, जिनमें कड़कबिजली, घनगर्ज, भवानीशंकर, नालदार आदि नामवाली तोपें अत्यन्त प्रसिद्ध थीं। क़िले के चारों ओर एक गहरी खाईं थी। प्रकृति एवं मनुष्य की रचना के सहयोग से इस गढ़ की अजेयता और दृढ़ता बहुत बढ़ गई थी। शहर की रक्षा के लिए एक कोट (शहरपनाह) था; जिसमें भी स्थान-स्थान पर बुर्ज थे, जिन पर तोपें रक्खी हुई थीं। इसमें ५ बिशाल फाटक थे। नगर का घेरा लगभग साढ़े चार मील का था।

इस समय नगर और क़िले में कुल ११ हज़ार सैनिक थे,



एक मुग़लकालीन मसजिद, सिकन्दरा (पृष्ठ ३७३)



मुग़लों के समय की एक सुंदर मसजिद मूसानगर

जिसमें कम्पनी के बाग़ी सिपाही तथा रानी के भर्ती किये हुए जवान थे। सर ह्यू रोज़ ने आते ही झाँसी शहर और क़िले की मज़बूती का अन्दाज़ लगा लिया। रानी ने झाँसी के आस-पास की भूमि में घास का एक पत्ता और अन्न का दाना भी न रहने दिया था। पर ओरछा और ग्वालियर के राजाओं ने अंग्रेज़ी फ़ौज के लिए रसद का पूरा प्रबन्ध कर दिया। २३ मार्च को युद्ध प्रारम्भ हुआ। १७ दिन तक घिरी हुई रानी की फ़ौज और सर ह्यू रोज़ की घेरा डालने वाली सेना से डट कर झपटें होती रहीं। रानी लक्ष्मीबाई प्रत्येक महत्वपूर्ण अवसर पर स्वयं उपस्थित रहती थीं और अपने दृष्टान्त एवं वाक्यों से अपने वीर सिपाहियों के उत्साह को चौगुना कर देती थीं। जब एक दिन क़िले की दीवार का एक भाग अंग्रेज़ी तोपों की मार से गिर गया तो उसकी मरम्मत में क़िले में घिरी हुई स्त्रियों ही ने नहीं बच्चों तक ने अकथ परिश्रम से काम किया। ड्यूटी पर काम करने वाले सैनिक भी खाना और पानी पहुँचाते थे। रानी के नेतृत्व पर सभी को पूर्ण विश्वास था और सभी अपने कर्तव्यपालन में दत्तचित्त थे। इस घमासान में रानी के गोलंदाज़ ग़ुलाम ग़ौस ख़ाँ ने अद्‌भुत शौर्य प्रदर्शन किया, और उसे रानी ने पुरस्कृत भी किया।

रानी ने तात्या टोपे से, जो इस समय तक चरखारी पर अधिकार प्राप्त कर चुके थे और जहाँ उन्हें २४ तोपें और ३ लाख रुपये हाथ लगे थे, झाँसी आने की प्रार्थना की। तात्या

टोपे की सेना की संख्या इस समय २२ हज़ार हो गई थी और उनके पास २८ तोपें भी थीं। आस-पास के अनेक स्वतन्त्रता-प्रेमी राजाओं से उनको पूरी सहायता मिल रही थी और ग्वालियर की सेना के ५-६ रेजिमेंट भी उनके साथ सम्मिलित हो गये थे। इस विशाल दल को लेकर वीर तात्या टोपे चरखारी से झाँसी आ पहुँचे। सर ह्यू रोज़ के होश उड़ गये। उनके एक ओर झाँसी के क़िले में घिरी हुई अदम्य उत्साह से लड़ती हुई रानी की ११ हज़ार सेना थी और इधर पूर्व की ओर तात्या टोपे की उमड़ती २२ हज़ार फ़ौज आ डटी। सर ह्यू को यह डर था कि इन दोनों के बीच में उनकी फ़ौज की कहीं वही दशा न हो जो चक्की के दो पाटों के बीच चने की होती है। अंग्रेज़ी सेना कुल १५०० थी, जिनमें केवल ५०० अंग्रेज़ थे। पर सर ह्यू ने यह निश्चय किया कि इसी छोटी सेना से एक ओर झाँसी पर घेरे का क्रम जारी रहे और दूसरी ओर तात्या टोपे से भी मोर्चा लिया जाय। ३१ मार्च की शाम तक अंग्रेज़ी फ़ौज इस दोहरे मोर्चे के लिए तैयार हो गई थी। पहली अप्रैल को प्रातः ४ बजे तात्या ने इस पर धावा बोला। यद्यपि तात्या के सैनिक बड़ी बहादुरी से लड़े, पर अंग्रेज़ों की अधिक अनुभवी और अनुशासित सेना के सामने उनके पैर उखड़ गये। सर ह्यू ने तात्या की सेना के दाहिने और बायें दोनों पार्श्वों पर आक्रमण करने के लिए एक-एक टुकड़ी अपनी फ़ौज की भेज दी थी। अपनी फ़ौज को गिरते देख कर तात्या ने अपने पीछे जंगल में आग लगा दी और जलते हुए जंगल की लपटों और

धुएँ को चीर हुए अपनी सैन्य को पीछे पलट कर बेतवा पार करने की आज्ञा दी। तात्या टोपे और उनकी अवशिष्ट सेना बेतवा पार कर गई और फिर उन्होंने कालपी की ओर प्रयाण किया। पर इस भगदड़ में उनकी प्रायः सभी तोपें शत्रुओं के हाथ लगीं और उनके हताहतों की संख्या १५०० तक पहुँच गई।

जब यह घमासान हो रहा था, अनुकूल अवसर पाकर रानी की घिरी हुई फ़ौज ने और भी अधिक उत्साह के साथ शत्रुओं से मोर्चा लिया। "हर हर महादेव! रानी झाँसी की जय!" आदि की गगनभेदी ध्वनि अनवरत सुन पड़ती थी। परन्तु तात्या टोपे के कालपी लौट जाने पर क़िले में निस्तब्धता और निरुत्साह की लहर फैल गई। पहली अप्रेल की रात ही से सर ह्यू रोज़ ने क़िले की ओर अपना मोर्चा प्रबल किया। दूसरी तारीख़ को उसकी दीवार का काफ़ी भाग ध्वंस हो गया। तीसरी को क़िले पर अन्तिम धावा बोला गया। रानी के सिपाहियों ने अपने प्राणों की बाज़ी लगा कर उन्हें टूटी हुई दीवार से घुसने और सीढ़ियाँ लगा कर चढ़ने से रोकने का प्रयत्न किया। एक अंग्रेज़ अफ़सर डाक्टर लो के शब्दों में "शत्रु की अग्नि की मार अत्यन्त प्रबल हो गई, और बन्दूक़ों की गड़-गड़ाहट, तोपों की गरज, अग्निवाणों की सरसराहट और भड़क, बड़े-बड़े पत्थरों के गिरने की धमक, शैतानी चर्खों की खड़-खड़ाहट, तथा बड़े भारी वृक्षों के नीचे लुढ़कने की मिश्रित तुमुल ध्वनि एवं प्रलय से सभीत होकर पहले तो उनके (अंग्रेज़ी

सेना के) पैर कुछ उखड़ गये और वे पत्थरों के पीछे जा छिपे। परन्तु फिर सँभल कर अनेक सीढ़ियों से वे क़िले की दीवार पर चढ़ने लगे। इनमें से बहुतों के प्राण चले गये, कुछ गोली के शिकार हुए, कुछ ढकेल दिये गये और कुछ की गर्दन काट ली गई।" दोनों ओर अनुपम वीरता, बलिदान, उत्साह और देश-भक्ति के ज्वलन्त दृष्टान्त देखने में आये। अन्त में अंग्रेज़ी झण्डा क़िले पर गाड़ दिया गया। तब शत्रु की एक टुकड़ी ने झाँसी नगर में स्थित राजमहल पर धावा बोला। सड़कों पर, एक-एक पग पर युद्ध हुआ। अंग्रेज़ों को दोनों क़तारों के जलते हुए मकानों के बीच से गुज़रना पड़ा। महल के द्वार, सहन, प्रत्येक कमरे में उनका डटकर मुक़ाबला किया गया। जब तक राजमहल के वीर रक्षक मर मर कर या घायल होकर धराशायी न हुए उन्होंने शत्रुओं से क़दम-क़दम पर लड़ाई लड़ी और उनके छक्के छुड़ाने में कुछ कसर रख न छोड़ी। वीरवर गोलंदाज़ ग़ुलाम ग़ौस ने भी वीरगति पाई। महल पर क़ब्ज़ा होने के बाद अस्तबल में जमकर संगीनों का युद्ध हुआ। यहाँ पर रानी के ५० अंग-रक्षकों ने अपनी स्वामिनि की सेवा में अपने प्राण अर्पण कर दिये। झाँसी के अनेक कोनों में भी ऐसी ही वीरता के अनेक दृश्य देखने में आये। "मेरा झाँसी देगा नहीं" प्रत्येक नर, नारी, आबाल-वृद्ध का महामन्त्र बना हुआ था। झाँसी शत्रुओं के लिए सचमुच "गले की फाँसी" सिद्ध हुई।

इस भयंकर परिस्थिति में लक्ष्मीबाई ने निराशा और भय को त्याग कर अपने डेढ़ हज़ार वीर अफ़ग़ानी सैनिकों के साथ

क़िले के बड़े फाटक से निकल कर शत्रु की फ़ौज पर धावा किया। जब रौद्र रूप धारण किये हाथ में नंगी तलवार लिये रानी लक्ष्मीबाई घोड़े पर सवार होकर आगे बढ़ रही थी तो साक्षात् महिषासुर-मर्दिनी देवी चंडिका का रूप जान पड़ती थीं। पर गोरी फ़ौज की भयंकर अग्नि-वर्षा के सामने यह अप्रतिम शौर्य निष्फल सिद्ध हुआ। नगर में चारों ओर शत्रुओं ने लूट-मार और प्रलय मचा रक्खी थी। ऐसी स्थिति में रानी लक्ष्मीबाई ने अपने मंत्रियों की सलाह से कालपी जाना निश्चित किया। ४ अप्रैल को रानी ने अपने साथ दो सौ आदमी लिये, तथा जो कुछ धन-सम्पत्ति आसानी से ले जा सकी उसे अपने सिपाहियों की कमर में बाँध कर और एक हाथी पर लादकर वे कालपी की ओर चल पड़ीं। शहर के उत्तरी दरवाजे से यह दल बाहर निकला। इस दरवाजे पर अभी अंग्रेज़ लोग काफ़ी प्रबन्ध न कर पाये थे और न उसके पास इतनी फ़ौज ही थी कि वे उससे क़िले और शहर में मज़बूत नाकेबन्दी कर सकते। इस समय रानी ने मर्दा नी पोशाक पहनी, शरीर में अँगरखा, सिर में साफ़ा, कमर में तलवार धारण कर अपने सफ़ेद घोड़े पर सवार होकर अपने दत्तक-पुत्र दामोदरराव को अपनी पीठ पर पटके से मज़बूत बाँधकर कालपी की ओर चल दीं। अंग्रेज़ों को जब उनके निकलने का पता लगा तो पीछा करने के लिए अश्वारोही दौड़ाये जिनसे रानी के साथियों का कई बार जम कर युद्ध हुआ। रानी के पिता, जो धन से लदे हुए हाथी के साथ थे, घायल होकर भटक कर दतिया जा पहुँचे। दतिया-दरबारने

मोरोपन्त ताँबे को पकड़कर झाँसी भेज दिया, जहाँ उन्हें फाँसी की सज़ा दी गई। झाँसी में अंग्रेज़ों का पूरा आधिपत्य जम गया। सब मिलाकर घेरे, युद्ध और विजय के पश्चात् मार-काट में रानी के ५ हज़ार आदमी काम आये और शत्रु की सेना में ३६ अफ़सर और ३०७ सिपाही खेत रहे।

रानी कालपी की ओर बढ़ी जा रही थीं और उनका पीछा लेफ़्टिनेंट बोकर कर रहे थे। झाँसी से २१ मील दूर भाडेर नामक ग्राम में बोकर ने रानी को क़रीब-क़रीब पकड़ लिया। पर रानी ने उनसे टक्कर ली और उन्हें घायल कर धराशायी कर दिया। २४ घन्टे के भीतर ही १०२ मील की कठिन यात्रा कर लक्ष्मीबाई कालपी जा पहुँचीं। कालपी यमुना के दाहिने किनारे पर एक प्रसिद्ध नगर है। मुग़ल काल में यह बहुत प्रसिद्ध क़िला और व्यापारी स्थान रह चुका था। इसके तीन ओर कोट बना हुआ था और चौथी तरफ़ यमुना है। नदी के दोनों ओर बड़ी भयंकर कगारें हैं। इसी एक कगार पर कालपी का क़िला बना हुआ है। सर ह्यू रोज़ ने झाँसी लेने के बाद कालपी जाने की तैयारी की। वहाँ रावसाहब, तात्या टोपे और रानी लक्ष्मीबाई उपस्थित थे और भविष्य में अंग्रेज़ों से मोर्चा लेने की युक्ति सोच रहे थे। बानपुर, शाहगढ़, जिगनी आदि के विद्रोही राजा तथा बाँदा के नवाब अपनी-अपनी फ़ौजें लेकर कालपी आ पहुँचे। ग्वालियर की फ़ौज के बाग़ी सिपाही भी आने वाले थे। इतने सैन्यबल से सर ह्यू रोज़ की छोटी सी टुकड़ी का डटकर सामना किया जा सकता था।

कालपी को यमुना और उसकी ऊबड़-खाबड़ कगारों ने बहुत सुरक्षित बनाया था। उन कगारों पर मोर्चेबन्दी की गई थी। इसके अतिरिक्त कालपी के बाहर चौरासी गुम्बद और फिर सुदृढ़ नगर-कोट ने उसको और सुरक्षित कर रक्खा था। कालपी के क़िले के भीतर रावसाहब ने गोली-बारूद बनाने, तोप-बन्दूक़ आदि ढालने और मरम्मत करने के लिए पूरा साधन भट्टी, धौंकनी, घन, मिट्टी के साँचे, औज़ार आदि जुटाया था। बम के गोले चलाने वाली दो बड़ी तोपें, १५ अन्य तोपें भी थीं। विलायती गोले का एक ढेर भी जमा था। बारूद का एक विशाल कोष भी था। वास्तव में विद्रोहियों के लिए युद्धसामग्री बनाने और भेजने का अड्डा कालपी ही था। यही विद्रोही सेना का सबसे बड़ा कारखाना था। खाद्य सामग्री भी यहाँ काफ़ी मिक़दार में जमा थी। विद्रोहियों के हिसाब से इसकी रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक था। कालपी की हार-जीत का प्रभाव न केवल बुन्देलखण्ड के युद्ध पर, बल्कि कानपुर, लखनऊ, ग्वालियर आदि की स्थिति पर भी पड़ेगा। यह समझ कर रावसाहब ने यमुना के कगारों, चौरासी गुम्बद, कोट तथा आस-पास के स्थानों में मोर्चेबन्दी कर रक्खी थी। वे स्वयं सब प्रबन्ध के अधिष्ठाता थे। एक ओर की सेना बाँदे के नवाब की अध्यक्षता में, दूसरी ओर बरेली से सहायतार्थ आई हुई रुहेलों की पल्टन और तीसरी ओर बंगाल नेटिव इन्फैंटरी के विद्रोही सिपाहियों की टुकड़ी थी। रानी लक्ष्मीबाई के मातहत लालवर्दी के १५० घुड़सवार स्वतन्त्र रूप से उत्तर की ओर यमुना किनारे

रख दिये गये थे। १५ मई को अंग्रेजी सेना कालपी से ६ मील दूर दक्षिण यमुना के तट पर गुलौली गावँ के पास सीधा मार्ग छोड़ कर कुछ घूम कर आ पहुँची। वहाँ पर कालपी की फ़ौज की एक टुकड़ी से उसकी मुठभेड़ हुई जिसमें उसे कुछ क्षणिक सफलता मिली। पर बाद की लड़ाई में उनकी करारी हार हुई। यद्यपि विद्रोही सेना यमुना-मैया की शपथ खाकर मरने और मारने के लिए शत्रु से जूझ रही थी, पर नेतृत्व की निर्बलता और अनुभवहीनता ने उन्हें सफलता से वंचित रक्खा। कालपी की सेना के अगले भाग की पराजय का समाचार पाकर रानी लक्ष्मीबाई ने स्वयं अपने लालवर्दी सवारों के साथ आगे बढ़ना निश्चय किया और अंग्रेजी फ़ौज के पार्श्व पर उन्होंने अकस्मात् धावा बोल दिया। उनके लालवर्दी सवारों की मार से अंग्रेजी दल में प्रलय मच गया। अंग्रेजी तोपों से २० फ़ुट के पास तक जाकर रानी घुस गई। रानी की वीरता और क्षणिक सफलता का समाचार पाकर कालपी की फ़ौज के जवानों के हृदय में अपनी स्वतन्त्रता और अकर्मण्यता पर लज्जा आई और वे भी उसकी सहायता के लिए पिल पड़े। बड़ी घमासान लड़ाई हुई। रानी दाँतों से घोड़े की लगाम दबाये, दोनों हाथों से तलवार चलाकर शत्रुओं को खीरे-ककड़ी की तरह काट रही थी। सर ह्यू रोज़ और बिग्रेडियर स्टुअर्ट ने ऊँट सवार फ़ौज की एक टुकड़ी से कालपी की सेना पर भयंकर आक्रमण किया। उनकी बन्दूक़ों और तोपों की फिर दनादन वर्षा शुरू हुई। उनके सामने रानी की सेना ठहर न सकी और अन्त में उसके पैर उखड़

गये। रानी ने भाग कर कालपी के क़िले में शरण ली। अब स्टुवर्ट एक फ़ौज लेकर यमुना के किनारे से और ह्यू रोज़ दूसरी फ़ौज के साथ सीधे कालपी की ओर बढ़े। विद्रोहियों की हिम्मत हार चुकी थी। यद्यपि बढ़ती हुई शत्रु की सेनाओं का उन्होंने मुक़ाबला किया, पर कालपी के भाग्य का निबटारा गुलौली के मोर्चे पर ही हो चुका था। विजयी सेना ने कालपी-नगर में प्रवेश कर उसके क़िले पर २४ मई को यूनियन जैक फहरा दिया। उसी दिन महारानी विक्टोरिया का जन्म-दिवस था। उसके तथा विजय के उपलक्ष में कालपी के मैदान में तोपों की सलामी दगी और ख़ूब आनन्द मनाया गया। पर भारतीय स्वतन्त्रता के संग्राम पर कालपी के पतन का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। स्वतन्त्रता के पुजारियों का यह प्रसिद्ध दुर्ग धड़ाम से गिर पड़ा और समस्त उत्तरी भारत में इसका शोर सुनाई पड़ा। कालपी के क़िले में रक्खी हुई समस्त सामग्री, जिसकी क़ीमत दो लाख रुपये से भी अधिक थी, शत्रु के हाथ में पड़ गई। कालपी के कारख़ाने के निकल जाने से स्वातन्त्र्य-संग्राम की गति-विधि पर बड़ा गहरा घाव लगा। पर इसमें सन्देह नहीं कि, जैसा कर्नल मैलिसन स्वीकार करता है, कालपी की रक्षा के लिए "विद्रोहियों ने ऐसी कुशलतापूर्वक आयोजना प्रस्तुत की थी कि यदि वह साहस एवं दृढ़ता से कार्यान्वित की जाती तो उसकी सफलता की काफ़ी सम्भावना थी।"

कालपी पर अंग्रेज़ी का अधिकार होने के पूर्व रावसाहब और लक्ष्मीबाई उससे निकल भागे। ये दोनों ग्वालियर की

ओर चल पड़े। रास्ते में गोपालपुर नामक स्थान में तात्या टो और बाँदा के नवाब भी उनसे आ मिले। कौंच के युद्ध के अनन्तर तात्या टोपे अपने माता-पिता से मिलने चुरखी, जो जालौन से ४ मील है, चले गये थे। वहाँ से कालपी के पतन का दुःखद समाचार सुनकर वे चल दिये। सारा बुन्देलखण्ड फिर अंग्रेजों के हाथ में आ गया था।

अब क्या करना चाहिए? इस विषय पर गोपालपुर में इन सब नेताओं के बीच विचार-विमर्श हुआ। अन्त में रानी लक्ष्मीबाई की सलाह ही सब ने पसन्द की। उनका मत यह था कि अब झाँसी या कालपी को फिर जीतने का उद्योग करना मूर्खतापूर्ण होगा। ग्वालियर का क़िला यहाँ से केवल ४६ मील दूर है। ग्वालियर की फ़ौज का काफ़ी भाग विद्रोही हो चुका है। शेष सेना में भी असंतोष की अग्नि फैल चुकी है। हमें ग्वालियर जाकर उसे अपने अधिकार में कर लेना चाहिए उसके अपने हाथ में आ जाने से ग्वालियर-राज्य की वसुधा तथा सेना की सहायता हमें उपलब्ध हो जायगी, और तब हम शत्रुओं से फिर डट कर मोर्चा ले सकेंगे, इधर-उधर भटकने से नहीं। यह मत मानकर ये सब ग्वालियर की ओर शीघ्रता से चल पड़े। सभी इतिहासज्ञों ने इस योजना की नवीनता और अनुपम कुशाग्रता की प्रशंसा की है। एक अंग्रेज लेखक ने इसकी तुलना क्लाइव-द्वारा किये हुए अर्काट के धावे से की है। ३० मई की रात को ये लोग ग्वालियर के पास मुरार पहुँच गये। महा-राज जयाजीराव सिंधिया और उनके दीवान दिनकरराव बे

संकट में पड़ गये। अभी तक उन्होंने बड़ी चतुरता से अपने राज्य में शान्ति रखने का उद्योग किया था। ग्वालियर कंटिं-जेंट फ़ौज के बाग़ी हो जाने पर भी उन्होंने अंग्रेज़ी सरकार से मैत्री क़ायम रक्खी थी। समस्त मध्यभारत, मालवा, बुंदेलखण्ड और उत्तर भारत में विद्रोह की ज्वाला भयंकर रूप धारण कर चुकी थी। बाजीराव के वंशज इस संग्राम के प्रमुख नेता थे। ग्वालियर की सैनिक महत्ता इतनी अधिक थी कि लोग इसे "हिन्दुस्तान का जिब्राल्टर" कहते थे। यदि महाराज सिंधिया अपनी बाग़ी फ़ौज का नेतृत्व अपने ऊपर ले लेते, तो इसमें सन्देह नहीं कि आसपास के समस्त राजा उनका साथ देते और फिर ऐसी परिस्थिति में अंग्रेज़ी राज्य पर खग्राम की दशा लग जाती और शायद इस स्वतन्त्रता-संग्राम का परिणाम ही दूसरा होता। पर दिनकरराव ने महाराज को नाना साहब, लक्ष्मीबाई आदि के उज्ज्वल किंतु कंटकाकीर्ण पथ पर चलने नहीं दिया। पर अब उन पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। १ जून को ही प्रातःकाल स्वयं महाराज सिंधिया अपने ६००० पैदल, १५०० सिलेदार और ८ तोपों को लेकर राव साहब, तात्या टोंपे और लक्ष्मीबाई की सेना से भिड़न्त करने के लिए मोरार की ओर बढ़े। सिंधिया का तोपखाना महाराज माहादजी के समय में तो ब्यायन आदि प्रसिद्ध फ़रासीसी जनरलों-द्वारा निर्मित हुआ था। यद्यपि कम्पनी के हुक्म से उसकी संख्या बहुत घटा दी गई थी फिर भी उसकी महिमा अब भी ख़ूब थी। इस ओर ७००० पैदल, ४००० सवार और १२ तोपों की

सेना लड़ने को प्रस्तुत थी। पहली झपट में राव साहब की सेना के पैर उखड़ते देख कर रानी लक्ष्मीबाई ने एक टुकड़ी के साथ आगे बढ़ बात की बात में ग्वालियर की सेना को हतोत्साह कर दिया। उसके बहुत से सैनिक, जो बहुत समय से सिंधिया सरकार की खैरख्वाही पर कुढ़े हुए थे, इस ओर आ मिले। महाराज जयाजीराव समर-क्षेत्र से भाग खड़े हुए और आगरे जाकर उन्होंने विश्राम लिया। अब क्या? रावसाहब, लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे आदि की सेना ने ग्वालियर पर क़ब्ज़ा कर लिया। वहाँ के क़िले पर पेशवा का झंडा फहराने लगा। उसका समस्त राजकोष, युद्ध का सामान विजेताओं के हाथ लगा। ३ जून को फूलबाग़ में बड़ी शान से दरबार हुआ जिसमें सब सरदारों ने रावसाहब की ताज़ीम कर उन्हें पेशवा स्वीकार किया। रावसाहब ने शान में आकर बहुत धन बाँटा और नष्ट किया।

सर ह्यू रोज़ ने कालपी पर अधिकार कर उसकी शासन-व्यवस्था का प्रबन्ध समाप्त कर भारतीय सरकार को अपने अवकाश-ग्रहण करने की सूचना दी थी। पर जब उन्हें यह समाचार मिला कि राव साहब आदि ग्वालियर की ओर धावा कर रहे हैं तो उन्हें पहले इस समाचार की सत्यता पर सन्देह हुआ, क्योंकि झाँसी, कोंच और कालपी की पराजय के बाद उनकी समझ में महान् से महान् सेनापति ग्वालियर जैसे दुर्ग के लेने का दुस्साहस न करेगा। पर जब ग्वालियर के पतन और महाराज सिंधिया के पलायन का हाल उन्हें मालूम हुआ

तो उन्होंने अपनी छुट्टी मंसूख़ कर अपनी थकावट की चिंता न कर ग्वालियर की ओर शीघ्र से शीघ्र जाने का विचार किया। "हिन्दुस्तान के जिब्राल्टर" को बाग़ियों के हाथ में छोड़कर वे विश्राम नहीं ले सकते थे। ६ जून को सर ह्यू रोज़ ने कालपी से प्रयाण किया और १६ जून को उनकी सेना मोरार के बहादुर-पुर गावँ जा पहुँची। यहाँ पर महाराज सिंधिया की हार १५ दिन पहले हुई थी। राव साहब अपने विजयोत्सव में मग्न थे। प्रचुर सम्पत्ति और युद्ध-सामग्री पाकर भी उन्होंने ग्वालियर की रक्षा का प्रबन्ध न किया था। ग्वालियर में तहलका मच गया। जल्दी में कुछ सेना मोरार की ओर भेजी गई। उसने शत्रु से मोर्चा लिया, पर दो ही घंटे में वह परास्त हो गई। सिंधिया की बाग़ी फ़ौज के कुछ अफ़सर फिर अंग्रेज़ों की शरण चले गये। मोरार अंग्रेज़ों के हाथ चला गया। ऐसी परिस्थिति में रानी लक्ष्मीबाई सैनिक वेष धारण कर और घोड़े पर सवार शत्रु से संघर्ष करने के लिए अपने चुने हुए सुसज्जित साथियों के साथ रणांगण में कूद पड़ी। ग्वालियर से ५ मील दूर कोटा की सराय नामक स्थान पर अंग्रेज़ी फ़ौजें ब्रिगेडियर स्मिथ और मेजर आर के आधिपत्य में एकत्र हुईं। रानी ने भी अपनी व्यूहरचना बड़ी चतुरता से की। १७ जून को लड़ाई शुरू होने का बिगुल बजा। बड़ा घमासान होने लगा। रानी के अलौकिक शौर्य एवं साहस को देखकर कायरों और कापुरुषों की नसों में वीर-रस का संचार हो गया। भीषण मारकाट हुई। एक सँकरी घाटी से एक-एक इञ्च लड़ कर ब्रिटिश सेना स्मिथ

की अध्यक्षता में बढ़ रही थी और पग-पग पर उसका मुक़ाबला रानी के वीर सिपाही कर रहे थे। रानी के सभी सैनिक या तो वीर-गति पा चुके, या घायल होकर गिर गये या शत्रु को भयंकर मार से पीछे हट गये। पर रानी अपने घोड़े को आगे बढ़ाने का प्रयास कर रही थी। रानी का घोड़ा उस मार को न सह सका। वह पीछे की ओर मुड़ कर भागा। रास्ते में एक सूखी नहर को फाँदने में वह फिसल कर गिर गया। कहते हैं कि यह रानी का प्रिय सफ़ेद घोड़ा न था। वह बीमार था और इस अवसर पर रानी को धोखा देने वाला सिंधिया के अस्तबल का एक घोड़ा था। एक सवार ने रानी का पीछा किया और उनके मर्दाने भेस के कारण उन्हें न पहचान कर उनको तलवार से बुरी तरह घायल कर धराशायी कर दिया, और शत्रु-दल में किसी को भी यह न मालूम हुआ कि रानी कहाँ चली गई। रानी को मरणासन्न देख उनका एक सरदार उन्हें पास ही की एक झोंपड़ी में उठा ले गया। वह बाबा गंगादास की कुटी थी। वहाँ रानी को प्यास लगी, उन्होंने पानी माँगा। बाबा जी ने उन्हें गंगाजल पीने को दिया। रानी का सारा शरीर रक्त से लाल हो गया था और घावों की असह्य वेदना से वह व्यथित थ । कुछ ही क्षण के उपरान्त रानी-लक्ष्मीबाई ने अपने प्राण त्याग दिये। अंग्रेजों को उनकी मृत्यु की खबर कई दिनों बाद मिली। यह अच्छा ही हुआ, क्योंकि इस बीच में उनके शव का नियमित रूप से दाह-संस्कार भी समाप्त हो गया। अन्यथा यदि उनका शव शत्रुओं के हाथ

पड़ता तो न जाने उसकी क्या कुगति होती। ता० १९ जून १८५८ को २४ वर्ष की आयु में इस भारतीय 'जोन आफ़ आर्क' का बलिदान भारत की स्वतन्त्रता की वेदी पर हुआ। झाँसी को कभी न देने का प्रण इस महिलारत्न ने किया था।' पर झाँसी उनके हाथ से निकल गया, कालपी भी गया। पर अपने अदम्य पराक्रम से ग्वालियर के क़िले पर पेशवा की विजय-पताका फहराकर इस प्रातःस्मरणीया रानी ने अपनी प्रतिज्ञा के निष्फल हो ने का प्रतिकार किया और फिर भारतमाता के अंक में अपने प्राणों को अर्पण कर दिया। विजयी सर ह्यू रोज़ ने उनके आत्मोत्सर्ग का समाचार पाकर अपनी घोषणा में कहा, 'शत्रु-दल की ओर यदि कोई सच्चा मर्द था तो वह झाँसी की रानी थी।' इन अमर शब्दों के द्वारा सर ह्यू रोज़ ने रानी की प्रशंसा तो की ही अपने को भी समादृत किया।

(ङ) अज़ीमुल्ला खाँ

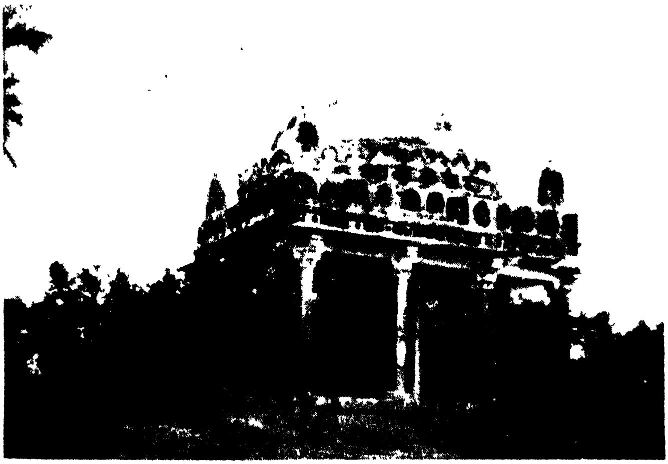
अज़ीमुल्ला खाँ का जन्म एक नीच कुल में हुआ था। वयस्क होने पर उन्होंने एक अधगोरे परिवार में खिदमतगारी की नौकरी कर ली और फिर धीरे-धीरे बावर्ची हो गये। इनकी प्रतिभा का विकास यहीं से प्रारम्भ होता है। इस नीचे दर्जे की नौकरी करते हुए भी अपने अध्यवसाय के बल पर इन्होंने यहीं अंग्रेजी तथा फ्रेंच भाषा इतनी सीख लीं कि दोनों भाषाओं को ये अच्छी तरह से लिख-बोल लेने लगे।

इसके बाद इन्होंने कानपुर .फ्री स्कूल में नाम लिखाया औ फिर वहीं मास्टर हो गये। यह .फ्री स्कूल उस समय कानपुर अकेला ही अंग्रेजी स्कूल था जिसका संचालन ईसाई मिश द्वारा होता था। इस पद पर इन्होंने अच्छी तरह ख्याति प्रा की। इनकी विद्वत्ता तथा प्रतिभा की चर्चा नाना साहब के दरबा बिठूर में पहुँची और वहाँ से बुलावा आया। इनसे मिल क नाना साहब इतने सन्तुष्ट व प्रभावित हुए कि उन्होंने इ मास्टरी छुड़ा कर अपने पास रख लिया। यहाँ रह कर अपन योग्यता के कारण ये नाना साहब के दाहिने हाथ हो गये औ अन्त तक बराबर बने रहे। अज़ीमुल्ला खाँ की बातचीत मुलायमियत व मिठास इतनी अधिक थी कि जो इनसे ए बार बात कर लेता था वह प्रायः इन्हीं का हो जाता था। सौंद के तो यह मानों स्वरूप ही थे।

जब नाना साहब ने सन् १८५३ ई० में बाजीराव पेशवा व पेंशन प्राप्त करने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों नाम एक मेमोरियल भेजने का विचार किया तो अज़ीमुल्ला ही यह काम सौंप कर इङ्गलैण्ड भेजने का निश्चय किया। वा जाकर वे अपने उद्देश्य में तो सफल न हो सके, क्योंकि डा रेक्टरों ने नाना साहब की प्रार्थना ठुकरा दी। पर इङ्गलैण्ड रहकर अज़ीमुल्ला खाँ ने बड़ी ख्याति पाई। अपने नवा आचार-विचार, वेष-भूषा, रहन-सहन व रूप-रंग के कार इनका प्रवेश बड़े-बड़े उच्च परिवारों में हो गया। अनेक ब घरानों की लेडियाँ इन पर मुग्ध हो गईं और वे इन्हें प्रेम-



बिल्हौर के एक प्राचीन द्वार में लकड़ी की नक्क़ाशी का नमूना



औरंगज़ेब द्वारा निर्मित एक फ़क़ीर का मक़बरा, बिल्हौर

लिखा करती थीं। जब ग़दर के बाद बिठूर का पतन हुआ तो अंग्रेज लोग ये सब पत्र जो फ्रांस और इङ्गलैण्ड से आये थे उठा ले गये। ये प्रेम-पत्र अजीमुल्ला ख़ाँ के भारत लौट आने पर भी आते रहे और वे एक पुस्तक के रूप में "इण्डियन प्रिंस एण्ड दी इङ्गलिश पियरेस" के नाम से छप भी चुके हैं, क्योंकि विलायत के लोग अजीमुल्ला ख़ाँ को भारतीय राजा ही कहते थे। अजीमुल्ला ख़ाँ के जीवन में यह विदेश-यात्रा अपना विशेष महत्व रखती है और इसमें सन्देह नहीं कि भावी क्राँति पर इसका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

जिस समय अजीमुल्ला ख़ाँ नाना साहब की अपील की पैरवी कर रहे थे, उसी समय सतारा के राजा की ओर से एक पुरुष रंगोजी बापू भी शिवाजी के वंशजों की ओर से सतारा का राज्य तथा उस रियासत के लौटाने के प्रयत्न में गया था। उसका यह कहना था कि राज्य तो छत्रपति शिवाजी के वंशजों का है, पेशवा तो उनके केवल मन्त्री थे। रंगोजी बापू को भी वही टका सा जवाब मिला जो अजीमुल्ला ख़ाँ को। यद्यपि ये दोनों मनुष्य एक दूसरे के बिल्कुल विरोधी कामों की पैरवी में गये थे, पर दोनों के साथ बराबर अन्याय होने के कारण एक में मिलने का अवसर प्राप्त हो गया। अजीमुल्ला ख़ाँ ने अपनी प्रतिभा व बुद्धि के बल से रंगोजी बापू को भी अंग्रेजों के विरुद्ध बनाकर अपनी ओर कर लिया और दोनों ने यह निश्चय कर लिया कि जब तक अंग्रेजी राज्य की जड़ भारत

से उखाड़ कर न फेंकी जायगी तब तक भारतीयों को न्याय मिलने की आशा नहीं की जा सकती। रंगोजी बापू ने तो भारत लौट कर दक्षिण भारत में ही ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन की आग सुलगाने में अपने को लगाया, पर अजीमुल्ला खाँ की प्रतिभा-सम्पन्न दृष्टि ने यह देखा कि केवल भारत के आन्दोलन के बल पर इनसे पार पाने में बड़ी कठिनता होगी। इसलिए उन्होंने योरप व एशिया के दूसरे राष्ट्रों से मदद लेने का प्रयत्न किया। उस समय क्रीमिया की लड़ाई चल रही थी। और उसमें अंग्रेजी व फ्रांसीसी दोनों रूस से हार रहे थे, इसलिए अजीमुल्ला खाँ की दूर दृष्टि से यह बात छिपी न रह सकी कि अंग्रेजों की इस कमजोरी का लाभ उठा कर रूस से भी सहायता प्राप्त की जाय। इसी उद्देश्य से फ्रांस, तुर्की होते हुए क्रीमिया इसलिए पहुँचे कि रूसी लोगों से मिल कर यह तय किया जाय कि क्या वे एशिया में भी अंग्रेजों के खिलाफ़, लड़ाई जारी रक्खेंगे, और यदि आवश्यक हो तो उनके साथ युद्ध और बचाव की सन्धि कर ली जाय। सेवास्तोपोल में, जहाँ अंग्रेजों और फ्रांसीसियों की मिली हुई शक्ति को रूस ने विध्वंस किया था, रसेल नामक 'लंडन-टाइम्स' समाचारपत्र का लड़ाई की खबरें भेजने वाला एक संवाददाता था। उसी के ख़ेमे में अजीमुल्ला उससे मिले और उससे कहा, "मैं यह प्रसिद्ध शहर देखना चाहता हूँ और उन रुस्तमों से मिलना चाहता हूँ जिन्होंने अंग्रेज व फ्रांसीसी बहादुरों को मार भगाया है।" अजीमुल्ला की रसेल ने अपने ख़ेमे में बड़ी आव-

भगत की ओर वहाँ से वे दिन भर रूसियों की गोलाबारी देखते रहे। कुछ रूसी अफ़सरों से भी वे मिले, और पता चलता है कि रूस से उन्होंने लिखा-पढ़ी भी की जिसमें भारत में अंग्रेज़ों के प्रति असन्तोष का दिग्दर्शन भी कराया। इसी बीच में टर्की व मिश्र के शासकों के साथ भी लिखा-पढ़ी की। इस प्रकार बाहर का काम पूरा करके वे भारत लौट आये।

अपनी इस यात्रा में अज़ीमुल्ला को दृढ़ विश्वास हो गया था कि अंग्रेज़ों का बल क्षीण हो रहा है और भारत में विद्रोह की लहर के उठ पड़ने पर वे उसे सँभाल नहीं सकेंगे। ब्रह्मावर्त आने पर उन्होंने नये सिरे से पेशवाओं का झंडा लगवाया। पुराने नगाड़े फिर से बजने लगे और नाना साहब की मोहर भी लगने लगी। अज़ीमुल्ला ख़ाँ की दृष्टि से यह बात छिपी नही थी कि जब तक पूरे हिन्दुस्तान में एक ही समय में विद्रोह न छिड़ेगा तब तक अंग्रेज़ जैसी प्रबल जाति का सामना नहीं हो सकेगा। इसलिए उन्होंने नाना की ओर से गुप्त दूत दिल्ली, लखनऊ, कालपी, झाँसी, नागपुर, सतारा, मैसूर के शासकों तथा और छोटे-मोटे राजाओं के यहाँ छद्मवेष में भेजे और एक गुप्त-लिपि निकाली जिसमें लिखकर पत्र भेजे जाते थे। पहले तो बहुत से लोगों ने जवाब ही नहीं दिये, क्योंकि वे समझते थे कि जाने यह काम हो या न हो। पर लार्ड डलहौज़ी की राज्य छीनने की नीति ने इसमें बड़ी सहायता की और सब असन्तुष्ट ख़ान्दान धीरे-धीरे इस संगठन में आने लगे। अन्त में अवध के अपहरण ने घी की आहुति का काम किया। अवध

के निर्वासित बादशाह वाजिदअली शाह व उनके वज़ीर अली-नक़ी ख़ाँ ने बारकपुर वग़ैरह की फ़ौजों में विद्रोह की आग भड़काई और इस तरह पर यह समूचे भारत का संगठन, जिस में हिन्दू-मुस्लिम एकता की पराकाष्ठा थी, अपने असली रूप में आया। यह समझाया गया कि अंग्रेज लोग भारत के सब राज्य हड़प लेना चाहते हैं। क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी।

प्रायः दो वर्ष तक गुप्त दूत ब्रह्मावर्त दरबार से भिन्न-भिन्न राजाओं के यहाँ जाते रहे और उनको अन्तिम लड़ाई के लिए तैयार करते रहे। इन दिनों नाना साहब का परराष्ट्र-विभाग ही अज़ीमुल्ला ख़ाँ की अध्यक्षता में सबसे अधिक काम करता रहा और उसी पर पर्याप्त धन व्यय होता रहा। तब अज़ीमुल्ला ख़ाँ ने नाना साहब को, जो बिठूर के राजमहल से निकल कर अधिकतर कानपुर ही सैर-सपाटे, आमोद-प्रमोद और अंग्रेज मित्रों से मिलने-मिलाने जाया करते थे, इस बात के लिए तैयार किया कि वे सब राजाओं से स्वयं मिलें, क्योंकि भारतवर्ष की विचार-धारा के अनुसार यहाँ इस बात पर आत्म-सम्मान का झगड़ा सदा ही खड़ा हो जाता है कि क्या कोई राजा किसी से हीन है कि वह उससे मिलता नहीं, चिट्ठी-पत्री से काम निकालता है, और यदि कोई बड़ा आदमी किसी के घर पहुँच जाता है तो अत्यन्त अनिच्छा होने पर भी वह आगन्तुक के सम्मान के लिए उसकी बात मानने को तैयार हो जाता है। अतएव नाना साहब व अज़ीमुल्ला ख़ाँ ने दिल्ली, शिमला, दक्षिण भारत के कुछ स्थानों, कालपी, झाँसी, लखनऊ आदि की यात्रा की।

इन जगहों में जाने में जो बीच में राजा व सरदार मिले उनसे भी भेंट की और अपना उद्देश्य समझाया। ऐसा करने में अजीमुल्ला ने यह सोचा कि लोग प्रसन्नता-पूर्वक नाना साहब ही को अपना प्रधान चुन लेंगे और हुआ भी ऐसा ही। इस प्रकार सब क्षेत्र तैयार करके सब फ़ौजों व सर्वसाधारण में स्वातंत्र्य-युद्ध के बीज बोये गये।

पहले तैयारी यह थी कि ३१ मई सन् १८५७ में विद्रोह प्रारम्भ हो और सब लोग सीधे दिल्ली पहुँचें, वहाँ दिल्ली के बादशाह को नेता मान लें। अतएव जब कानपुर में फ़ौजें बिगड़ीं तो ये सब सीधे दिल्ली की ओर रवाना हुईं। रात को कल्यानपुर में पड़ाव पड़ा। उस समय अजीमुल्ला खाँ ने नाना साहब को समझाया कि अकेले दिल्ली में ही लड़ने से क्या? जगह-जगह लड़ाई हो। अतएव उन्होंने फ़ौजों से कहा कि तुम लोग अपना नेता यहीं चुन लो और कानपुर लौट कर उस पर क़ब्जा कर लो, क्योंकि कानपुर, दिल्ली व कलकत्ता को मिलाने का केन्द्र-स्थान है और यहाँ रहने से दिल्ली के काम में अधिक सहायता मिलेगी और अंग्रेजों को कलकत्ता की ओर से कोई कुमक न पहुँच सकेगी। यह बात सबकी समझ में आ गई और सब ने नाना साहब को अपना नेता चुन लिया और वे कानपुर को लौट पड़े। यहाँ पर लौट कर नाना साहब ने अपने को अंग्रेजों के विरुद्ध घोषित किया और कानपुर के कमांडर सर ह्यू व्हीलर को सूचना भेज दी कि उनके क़िले पर आक्रमण होगा। इधर क़िले पर गोलाबारी प्रारम्भ हुई, उधर नाना ने शहर के प्रबन्ध

के लिए अदालत बनाई, जिसमें ज्वालाप्रसाद व अज़ीमुल्ला ख़ाँ व बाबा भट्ट जज बनाये गये और ये लोग सब प्रकार के फ़ौजी व सिविल मुक़दमे करते थे। जब अंग्रेज़ों का क़िला टूटने पर हुआ और उन्होंने आत्म-समर्पण करने का निश्चय किया तब अज़ीमुल्ला ने ही उनसे शर्तें ठीक की थीं। इसके बाद २८ जून को नाना साहब ने कानपुर में नहर के पूर्व ओर, जहाँ आजकल पनचक्की है, एक शानदार दरबार किया और इसमें नाना साहब महाराज तथा अज़ीमुल्ला ख़ाँ उनके वाइसराय घोषित किये गये। तोपों की सलामी दगी। १ जुलाई को बिठूर में उनका राजतिलक महोत्सव बड़ी धूम के साथ हुआ.जिसमें अज़ी-मुल्ला ख़ाँ उनके दाहिने तरफ़ उपस्थित थे।

अज़ीमुल्ला ख़ाँ के शेष जीवन के बारे में इतिहास कुछ भी प्रकाश नहीं डालता। न तो नाना साहब के प्रवास में उनकी चर्चा होती है, और न तात्या टोपे के रोमांचकारी भ्रमण में ही हम अज़ीमुल्ला को उनके साथ पाते हैं। झाँसी, कालपी, ग्वालियर आदि स्थानों के युद्धों में रानी लक्ष्मीबाई के सहायकों में भी उनका नाम सुन नहीं पड़ता। बिहार के रण-बाँकुरे कुँवर-सिंह के साथ भी वे नहीं देख पड़ते। अज़ीमुल्ला कहाँ चले गये, वे १८५८ में जीवित थे या नहीं, उनके उज्ज्वल जीवन की अन्तिम झाँकी कैसी थी इन विषयों पर हमें कुछ भी नहीं मालूम। हाँ, केवल इतना मालूम है कि सन् १८५८ के अन्त में कर्नल विलियम्स की अध्यक्षता में एक सरकारी जाँच कमीशन नियुक्त हुई, जिसने नाना साहब, बाबा भट्ट, बालाराव, राव

साहब, तात्या टोपे, अज़ीमुल्ला आदि के विद्रोह में शामिल होने और नेतृत्व के बारे में जाँच की। उस कमीशन के सामने एक महत्वपूर्ण गवाह लाला नानकचन्द खत्री भी थे। उनसे विद्रोह के पहले ही से नाना साहब से खटपट रह चुकी थी, और उनके मालिक से नाना साहब ने अपनी हुकूमत के दिनों में लम्बा जुर्माना वसूल किया था। विद्रोह के समय नानकचन्द अपनी डायरी में घटनाओं को नोट कर लिया करता था। चूँकि वह नाना साहब का विरोधी और अंग्रेजों का भक्त और मुख़बिर था, उसने विरोधी दृष्टिकोण से सब घटनाओं का वर्णन किया है। स्पेशल कमीशन ने नानकचन्द की डायरी को बहुत महत्व दिया और उसे वेदवाक्य मान लिया। अज़ीमुल्ला आदि दोषी क़रार दिये गये।

अज़ीमुल्ला के अन्तिम दिन चाहे जैसे बीते हों, इसमें संदेह नहीं कि वे श्रीमन्त नाना साहब पेशवा के दाहिने हाथ थे और सत्तावनी महाक्रांति के इतिहास में उनकी गाथा स्वर्णाक्षरों से लिखने के योग्य है।

१४—नवाब वंश

आग़ामीर—कानपुर के आधुनिक इतिहास में यहाँ के नवाब-वंश का भी थोड़ा-बहुत महत्व है। इस वंश के प्रथम पूर्वज मोतमुद्दौला आग़ामीर थे जो लखनऊ के नवाब वज़ीर (बाद को बादशाह) ग़ाज़ीउद्दीन हैदर के प्रधान सचिव थे।

इनके पहले इस पद पर हकीम मेहदी अली ख़ाँ थे। पर ग़ाज़ी-उद्दीन हैदर ने हकीम मेहदी को हटाकर अपने सुहृद आग़ा मीर को यह पद दिया। आग़ा मीर साधारण कुल में उत्पन्न हुए थे, पर अपनी प्रखर प्रतिभा, कार्यकुशलता, वाक्चातुरी एवं कूट-नीतिज्ञता के कारण वे ग़ाज़ीउद्दीन हैदर के दाहिने हाथ बन गये। शासन की पूरी बागडोर इन्हीं के हाथ में आ गई। उधर ईस्ट इण्डिया कम्पनी का लखनऊ-स्थित प्रतिनिधि (रेज़ीडेंट) सदा इसी घात में रहता था कि किस प्रकार अवध के आन्त-रिक शासन पर अंग्रेज़ी प्रभाव बढ़े और इसीलिए शासन में सुधार करने की चेतावनी कम्पनी की सरकार द्वारा बार-बार अवध के बादशाह को दी जाती थी। सुधारों की आड़ में कम्पनी अपना उल्लू सीधा करना चाहती थी। आग़ा मीर की चतुरता की परीक्षा इसी में हुई कि उन्होंने अंग्रेज़ों के सुधार-जाल को फैलने न दिया, और साथ ही साथ वे बादशाह ग़ाज़ी-उद्दीन हैदर और अंग्रेज़ी हुकूमत दोनों के विश्वासपात्र बने रहे। पर ग़ाज़ीउद्दीन के पुत्र और उत्तराधिकारी नसीरुद्दीन हैदर की अपने पिता के सचिव आग़ा मीर से नहीं पटती थी। ग़ाज़ी-उद्दीन समझ गये थे कि उनके मरण के उपरान्त उनका उत्तरा-धिकारी आग़ामीर से पूरा बदला चुकावेगा, और इसीलिए वे हमेशा अपने पुत्र और सचिव के बीच में मैत्री स्थापित करने का प्रयत्न किया करते थे। फिर भी आग़ा मीर अपने भविष्य से आशंकित था। आग़ा मीर ने अपने भविष्य को सुरक्षित रखने के निमित्त ग़ाज़ीउद्दीन हैदर को यह सलाह दी कि वह

कम्पनी की सरकार को उसकी आर्थिक दुरवस्था के सुधारने के लिए एक करोड़ रुपये का ऋण दे जिसका व्याज सदा के लिये ५ प्रतिशत नियत कर दिया जाय और यह शर्त भी लगा दी जाय कि यह ऋण ग़ाज़ीउद्दीन हैदर का व्यक्तिगत ऋण माना जाय और प्रति वर्ष इसके व्याज की रक़म ग़ाज़ीउद्दीन ही के व्यक्तिगत व्यय के लिए अदा की जाय। इसी व्याज की आय से ग़ाज़ीउद्दीन अपने आश्रितों को सहायता देता रहे। इन आश्रितों में आग़ा मीर का प्रथम स्थान रहे और उसे समस्त व्याज की आधी रक़म कम्पनी सरकार स्वयं देती रहे। इस प्रकार आग़ा मीर और उसके वारिसों को ढाई लाख रुपये सालाना की स्थायी पेंशन बाँध दी गई। इसके मानी ये हुए कि आग़ा मीर चाहे जहाँ रहे उसे उसके गुज़ारे के लिए एक अच्छी ख़ासी रक़म सदा मिलती रहेगी। अंग्रेज़ सरकार भी उससे ख़ुश हो गई और अपना भविष्य भी सुरक्षित हो गया।

ग़ाज़ीउद्दीन हैदर के मरने के बाद नसीरुद्दीन हैदर अवध की गद्दी पर बैठा। पहले कुछ समय तक नये बादशाह ने अपने पिता के पुराने मन्त्री आग़ा मीर के साथ अच्छा व्यवहार किया, क्योंकि उसके ऊपर कम्पनी सरकार का वरदहस्त था। पर लार्ड विलियम बेंटिंक की तटस्थता की नीति से लाभ उठाकर उसने आग़ा मीर से बदला चुकाने की ठानी। उसने आग़ा मीर के ऊपर ग़ाज़ीउद्दीन के शासन-काल में बहुत सी रक़म ग़बन करने का अभियोग लगा कर उसकी जायदाद ज़ब्त करने का विचार किया। पर कम्पनी की सरकार की सहायता से

उसके ऊपर ये इल्ज़ाम न लग पाये। फिर भी आग़ा मीर अपने पद से हटा दिया गया और कम्पनी की एक फ़ौजी टुकड़ी उसे अवध के इलाक़े से हटाकर गंगापार कानपुर में छोड़ आई। यह घटना अक्टूबर सन् १८३० की है। इस प्रकार आग़ा मीर कानपुर आये। वे अपने साथ अपने सब परिवार को भी कानपुर लेते आये।

आग़ा मीर कानपुर में पहले जुही के एक बँगले में सवादा कोठी के पास ठहरे, और फिर ग्वालटोली के पास बख़शी ग्रांड के बँगले को ख़रीद कर उसी में सपरिवार रहने लगे। यह परिवार तभी से 'ग्वाल टोली के नवाब' के नाम से कानपुर में प्रसिद्ध है।

नवाब आग़ा मीर के दो बीबियाँ थीं—एक को ख़ास महल और दूसरी को ख़ुर्द महल कहते थे। ख़ास महल से केवल एक लड़की हुई जो अल्पायु हुई। ख़ुर्द महल से ४ लड़के और दो लड़कियाँ हुईं। लड़कों के नाम नवाब बाक़र अली ख़ाँ, अली नक़ी ख़ाँ, निज़ामुद्दौला बहादुर और मुहम्मद अली ख़ाँ उर्फ़ नन्हें नवाब थे। अपनी एक लड़की का बिवाह उन्होंने अपने भाई के लड़के नवाब सैयद अली हुसेन के साथ कर दिया। तभी से वे "नवाब दूल्हा" कहलाये। नवाब दूल्हा साहब ने रामनारायण बाज़ार में मुंशी रामनारायण खत्री की जायदाद ख़रीद कर वहीं अपना निवास-स्थान बनाया। ये और इनके वंशज, "रामनारायण-बाज़ार अथवा कुरसवाँ के नवाब" कहलाये। मई १८३२ में नवाब आग़ा मीर का देहान्त हो गया।

ग्वालटोली ही में उनका मक़बरा है। अपने सञ्चित, धन और उद्योग से इन दोनों नवाबी परिवारों ने काफ़ी जायदाद कानपुर शहर में ख़रीदी। और कुछ ज़मीन्दारी भी ली। जहाँ आजकल तिलक हाल और श्रद्धानन्द पार्क हैं वहाँ "ख़ुर्द महल" था जो नवाब आग़ा मीर की छोटी बीवी की जायदाद थी। प्रयाग-नारायण तथा गुरुप्रसाद के मन्दिरों की ज़मीन का अधिकतर भाग भी इन्हीं नवाबों के परिवार में पहले था।

नन्हें नवाब—सन् १८५७ में जब नाना साहब ने अंग्रेज़ी हुकूमत के विरुद्ध विद्रोह किया तो उन्होंने पहले ही से यह प्रयत्न किया कि यह संग्राम हिन्दुओं का ही विद्रोह होकर न रहे। इसलिए उन्होंने नन्हें नवाब से इसमें सहयोग देने की प्रार्थना की। पर नन्हें नवाब अंग्रेज़ी हुकूमत के ख़िलाफ़ नहीं लड़ना चाहते थे। जब नाना साहब ने उनके मकान के सामने सैनिक प्रदर्शन किया तो नन्हें नवाब भी नाना के सहयोगी बन गये। नन्हें नवाब के स्वतन्त्रता-संग्राम में सम्मिलित हो जाने से विद्रोह का रूप ही बदल गया। कानपुर तथा आसपास के मुसलमानों पर इसका प्रभाव पड़ा। अवध के एक प्राचीन सम्भ्रान्त परिवार के इस संग्राम में शामिल होने से अंग्रेज़ों द्वारा अवध-राज्य के हड़प लेने की नीति लोगों के हृदय में ताज़ी बनी रही और संयुक्त-पेशवाई और नवाबी मोर्चे ने गुल खिलाया। पर यह मोर्चा था कमज़ोर। नन्हें नवाब पहले ही से फिसल रहे थे और जब नाना साहब ने बिठूर में अपना राज-तिलक कर भगवा झंडा फहराया, तो नन्हें नवाव ने इसे पसन्द

नहीं किया। वे तो अवध की बादशाही और मुग़लशाही के पुनरुद्धार के स्वप्न देख रहे थे। नानकचन्द ने अपनी डायरी में, जिसकी चर्चा अन्यत्र हो चुकी है, यह लिखा है कि नानासाहब और उनके सवारों ने नन्हें नवाब की ऐसी दुर्गति की कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता और बलात् नन्हें नवाब को विद्रोही का चोला धारण करना पड़ा। पर बाद को वह कहता है कि नन्हें नवाब के अन्य भाई और नवाब दूल्हा भी बाग़ी हो गये। पर नानकचन्द की डायरी पर पूरा विश्वास नहीं किया जा सकता। विद्रोह के समाप्त होने पर नवाब-परिवार को कोई दंड नहीं दिया गया और उनके वसीक़े क़ायम रहे जो अभी तक मिल रहे हैं। नन्हें नवाब को पहले फाँसी की सज़ा का हुक्म हुआ था, पर बाद को माफ़ी मिल गई, और फिर वे इराक़ में सपरिवार जा बसे। वहाँ उनके परिवार वाले अभी हैं।

नवाब दूल्हा—नवाब दूल्हा के वंशज अभी तक काफ़ी सम्पन्न हैं जिनमें से कुछ सरकारी नौकरियों में हैं। नवाब दूल्हा के पुत्र नवाब अकबर हुसेन, नवाब मुज़फ़्फ़र हुसेन तथा अहमद हुसेन थे। मुज़फ़्फ़र हुसेन के तीन पुत्रों में नवाब सुलतान हुसेन की मृत्यु कुछ वर्ष पहले हो चुकी है। अन्य दो पुत्र नवाब ख़ाक़ान हुसेन साहब और नवाब सुलेमान हुसेन साहब इस परिवार के सबसे वृद्ध प्रतिनिधि हैं। नवाब ख़ाक़ान हुसेन साहब को उर्दू और फ़ारसी शायरी से विशेष रुचि है। आपने शिया-मत पर एक पुस्तक

भी प्रकाशित की है। कानपुर के शिया मुसलमानों में इस परिवार की काफ़ी प्रतिष्ठा है। लखनऊ की संस्कृति की पाँच परम्पराओं को यह परिवार वर्तमान स्थिति में यथाशक्ति चला रहा है।

नवाब सुलतान हुसेन के चार पुत्र हैं—मुस्तफ़ा हुसेन, मुर्तज़ा हुसेन, मुज्तबा हुसेन और महमूद हुसेन। नवाब ख़ाक़ान हुसेन के पुत्रों के नाम हैं—क़ैसर हुसेन और अनवर हुसेन। तीसरे भाई नवाब सुलेमान हुसेन के आशिक़ हुसेन, मुहम्मद हुसेन, हैदर हुसेन, बाक़र हुसेन और आफ़ाक़ हुसेन ये पाँच पुत्र हैं।

अन्तिम परिशिष्ट

१—कानपुर-ज़िले में अंग्रेज़ों की पुरानी क़ब्रें

कानपुर-जिले में अंग्रेजों की क़ब्रों में से सबसे प्राचीन कचेहरी के पीछे वाले पुराने क़ब्रिस्तान में हैं। उसमें सबसे प्राचीन क़ब्र लेफ्टिनेन्ट कर्नल जान स्टेनफोर्थ की है जिसकी मृत्यु २७ अक्टूबर १७८१ को हुई।

२० अगस्त सन् १८१७ को सर जान हार्सफ़ोर्ड की मृत्यु हुई। ये ईस्ट इण्डिया कम्पनी की फ़ौज में मेजर-जनरल थे। हाथरस के राजा दयाराम ने कम्पना की ओर दृष्टि डाली। इन्होंने लार्ड लेक की मातहती में तृतीय मराठा युद्ध को अने लड़ाइयों में भाग लिया। सन् १८१७ में लार्ड हेस्टिंग्स के

विरुद्ध विद्रोह किया। उनके विरुद्ध सफलतापूर्वक लड़कर इनका देहान्त हो गया और इसी कचेहरी वाले क़ब्रिस्तान में ये दफ़न हुए। ४६ वर्ष की लम्बी नौकरी की अवधि में इन्होंने एक दिन की भी छुट्टी नहीं ली।

लेफ्टिनेन्ट कर्नल नेशन ने तृतीय मराठा युद्ध तथा नेपोलियन के युद्ध में भाग लिया था। बिग्रेडियर के पद का चार्ज लेने के निमित्त दिल्ली जाने के पहले ही इनकी मृत्यु २ अगस्त १८२८ में हो गई।

कानपुर के अंग्रेज़ व्यापारी रिचर्ड फोली की मृत्यु ३ अगस्त १८२७ को हुई।

मेमोरियल गार्डन में १८५७ में मरे हुए. अंग्रेज़ों की अनेक क़ब्रें हैं जो अब वहाँ से हटा कर छावनी के आल सोल्स मेमोरियल चर्च में स्थानान्तरित हो रही हैं। मेमोरियल वेल और बीबीघर के स्मारक भी वहाँ से हटा दिये गये हैं और मेमोरियल गार्डन का कायापलट हो रहा है। इस स्थान में जिन व्यक्तियों की क़ब्रें थीं उनमें से प्रमुख ये थे—(१) बी० बी० थार्नहिल जो सिविल सर्विस में थे और इस सूबे के विभिन्न स्थानों—इलाहाबाद, आगरा, बदायूँ, मेरठ, फ़र्रुखाबाद, कानपुर, मुजफ्फ़रनगर, मैनपुरी, बाँदा आदि में विभिन्न पदों पर काम कर चुके थे। सन् १८५७ में ये फ़तेहगढ़ के ज़िला जज थे और १५ जुलाई १८५७ को इनका बध हुआ। (२) कैप्टन जे० यंग जिनकी ११ अगस्त १८५७ में हैजे से मृत्यु

हुई। (३) कैप्टन एच० डी० कैम्पबेल १६ अगस्त १८५७ को ये भी उसी बीमारी से मरे।

आल सोल्स मेमारियल गिर्जा, उसी स्थान में बनाया गया है जहाँ ह्वीलर की क़िलेबन्दी थी। इसमें उन अनेक अंग्रेज़ों की स्मृति में तख़्तियाँ लगी हुई हैं जो १८५७ में काम आये थे। इनमें से मेजर-जनरल सर एच० ह्वीलर, उनकी पत्नी, उनके पुत्र लेफ़्टिनेन्ट ह्वीलर, लेफ़्टिनेन्ट-कर्नल ई० विगेन्स, मेजर डवल्यू लिंडसे, विगेडियर जनरल जैक, कैप्टेन सर जी० पार्कर, मेजर सी० लारकिंस, मेजर विहार्ट, मेजर हिलर्सडन, सी० जी० हिलर्सडन (कलेक्टर), मि० मैक्सवेल (व्यापारी), टी० ग्रीनवे (व्यापारी), एस० ग्रीनवे (व्यापारी), डबल्यू० ए० स्टेसी (डिपुटी कलेक्टर) आदि के नाम प्रमुख हैं।

मीरपुर के क़ब्रिस्तान में कैप्टेन सर विलियम पील की क़ब्र है। ये इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध प्रधान मन्त्री (१८२१-४२) सर राबर्ट पील के पुत्र थे। २७ अप्रैल १८५८ को कानपुर में इनका देहान्त हुआ। ये शाही बेड़े में उच्च अधिकारी थे। इन्हें अपनी वीरता के कारण "विक्टोरिया क्रास" की उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी।

क्राइस्ट चर्च में मेज़र स्टर्लिङ्ग, कैप्टेन मर्फ़ी आदि के प्रति स्मारक लगे हुए हैं। ये भी १८५७ में काम आये। सी० मैकिंटोश, उनकी पत्नी, जे० ए० मैकिंटोश, उनकी पत्नी की यादगार में भी तख़्तियाँ हैं। ये लोग हिन्दुस्तानी पोशाक पहन कर एक

पुल के नीचे छिपे पाये गये थे और विद्रोहियों द्वारा मा गये।

बिल्हौर रेलवे स्टेशन के पास किन्हीं लेफ्टिनेन्ट स्मिथ क क़ब्र है। ये शायद जेम्स या जान स्मिथ थे जो १९वीं शताब्द के प्रारम्भ में किसी लड़ाई में मारे गये।

इसके अतिरिक्त हार्नेस फ़ैक्टरी (क़िले) के भीतर बिग्र डियर एन० विलसन की क़ब्र है जिनकी २८ नवम्बर १८५७ व मृत्यु हुई। एग्रीकल्चर कालेज और फ़ार्म के क्षेत्र में कैप्टेन ई क्यूरी की क़ब्र है तथा और भी कुछ क़ब्रें हैं।

२—सम्राट् अकबर के फ़र्मान की नागरी प्रतिलिपि

जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर पादशाह ग़ाज़ी

चूँ ब अर्ज़ मुक़द्दसे मुअल्ला रसीद के बमूजिबे अमले मामू अज आवनो अने जद्दिन बतरीक़ शुद आमद मुबलिग़ पाँज़ हज़ार रुपया नानकार व फ़ी बीघा मजरूआ यक तंगः दस्त् मालिकी अज मवाज़अ मिल्कियत परगना बिठूर सरक क़न्नौज बसीगे जमीनदारी जब्ततुल इक़रान रामचन्द चन्दे मुक़र्रर अस्त ब ऊ वजह नानकार व दस्तूर मालिकयत रा क़ाबि व मुतसर्रिफ़ अस्त इल्तिमासे फ़र्माने आलीशान दारद हुक् जहाने मलाअ आलमे मुतीअ सादिर शुद के मुबलिग़ नानक व फ़ी बीघा दस्तूरे मालकियत बसीग़ाए ज़मीन्दारी अज़ मौज मालकी परगनए मज़कूर बदस्तूर साबिक़ बशर्ते क़ब्ज़ व तसरु



सरसैयाघाट का प्राचीन मंदिर



अज़ इब्तिदाये यूनायल हस्बुल जमन मुक़र्रर व मुऐय्यन बाशद के हासिलाते वजूह मस्तूरा फ़स्ल ब फ़स्ल व साल बसाल सर्फ़ मईशत .खुद नमूदा दरदौलते ख्वाही कमाही कोशिदा बन्दुवाये बक़ाये दौलत अबद इस्माल इश्तिग़ाल मी नमूदा बाशद मी बायद के हुक्काम व अम्माल व जागीरदारान व करोरियाने हाल व इस्तक़बाल ईं हुक्म वाला रा मुस्तमर दानिश्ता वजूह मज़बूरा रा माफ़ व मर्फ़ुउल क़लम मुक़र्रर व मुसल्लम शिना-ख्तह व तसर्रुफ़े ऊ बाज़ गुज़ारन्द इल्ला तग़ैयुर व तबदील बरौं रा न देहन्द व बवजह मनुअवजूह मज़ाहमत न रसानंद दरीं बाब सनदे मुजद्दद न तलबद।

तहरीर फ़ीरोज़े फ़र्वर्दी नौज़दहुं माह .खुर्दादे इलाही सन् ३९।

हिन्दी-अनुवाद

जबकि श्रीमान् सम्राट् की सेवा में प्रार्थनापत्र पहुँचा पैतृक परम्परा के अनुसार उस पर कार्य किया गया और १५ हज़ार रुपया नानकार और प्रति बीघा एक तंगा कृषि-भूमि की मालिकी का परगना बिठूर सरकार कन्नौज की ज़मीन्दारी मद्धे हमारे परमश्रेष्ठ मित्र रामचन्द्र चन्देल के लिए नियत किये गये। और वह नानकार और मालिकयत की प्रथा के कारण वह उसका अधिकारी और स्वामी हो गया है। और यह आज्ञा विश्वविजयी बादशाह की है कि उस परगने के मौज़ों की

ज़मीन्दारी के बारे में नानकार और प्रति बीघा मा
प्राचीन परम्परा के अनुसार और उसके अधिकार और
की शर्तों के साथ यूनायल (?) के प्रारम्भ से नियत हु
उससे वसूल की हुई रक़म वह प्रति फ़सल व साल अपने
में लाये और सदा सम्राट् के पुण्य प्रताप के लिए आ
देते रहें, और सब हाकिम व आमिल व जागीरदार व
जो हैं या होंगे वे इस आज्ञा को प्रचलित समझ कर उ
छूट व अधिकार इस लेख द्वारा दिये गये हैं उसमें को
वर्तन व घटती-बढ़ती न करें और उसमें कोई
न डालें।

यह लेख .खुर्दाद इलाही महीने की १९वीं तारी
फ़र्वर्दी के दिन सन् इलाई ३९ को लिखा गया।

सहायक सामग्री की तालिका

१. लाला दरगाहीलाल वकील दीवानी-अदालत कानपुर विरचित "तारीखे-जिला कानपुर" ३ भाग (उर्दू)। प्रथम भाग 'शोलयेतूर' प्रेस कानपुर में, द्वितीय अज़ीज़ी प्रेस कानपुर में और तृतीय शोलयेतूर प्रेस में छपा। तीसरे भाग में अप्रैल सन् १८७६ में प्रकाशन की तिथि दी हुई है। पहले दो भाग अवश्य इसके पहले छपे होंगे। तीनों भागों में क्रमशः १६२, १५९ और २०५ पृष्ठ हैं। पृष्ठ बड़े साइज़ १२"×८" के हैं। इन ५२७ पृष्ठों में वर्णित कानपुर के इतिहास और तत्सम्बन्धी उपयोगी बातों के अतिरिक्त अनेक नक़्शे और तालिकायें हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह ग्रन्थ लेखक के कठिन परिश्रम, शोध और गवेषणा का परिणाम है। इसमें दी हुई सामग्री का हमने अपने ग्रन्थ में बहुत अधिक उपयोग किया है।

२. कानपुर-गज़ेटियर—युक्तप्रान्त के ज़िलों के गज़ेटियरों में १९वीं जिल्द कानपुर के सम्बन्ध में है। इसके लेखक श्री एच० आर० नेविल आई० सी० एस० थे जो इस ज़िले में बन्दोबस्त अफ़सर की हैसियत से कई वर्ष तक कार्य कर चुके थे और सरकारी काग़ज़पत्रों की सहायता से उन्होंने इस ग्रन्थ

की रचना की। इसका प्रकाशन सन् १९०९ में गवर्नमेंट प्रेस इलाहाबाद से हुआ। सरकारी प्रकाशन होने के कारण इसकी प्रामाणिकता और विशेषतः इसमें दिये हुए आँकड़ों पर सन्देह नहीं हो सकता। श्री नेविल ने अवश्य लाला दरगाहीलाल के ग्रन्थ का अवलोकन किया होगा, किन्तु अंग्रेज़ अफ़सर होने के नाते उन्होंने कहीं इस भारतीय लेखक के ग्रन्थ की ओर संकेत तक नहीं किया है। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि नेविल साहब ने इस गज़ेटियर के लिखने में बहुत सावधानी और दायित्व से काम लिया है। यह बात दूसरी है कि यत्र-तत्र कुछ स्थलों पर उन्होंने भद्दी भूलें भी की हैं और विदेशी दृष्टि से कुछ घटनाओं को देखा है। पर दरगाहीलाल के ग्रन्थ के साथ-साथ यह ग्रन्थ भी कानपुर के इतिहास के अध्ययन के लिए परमोपयोगी है। गज़ेटियर का दूसरा संस्करण भी प्रकाशित हुआ है, पर उसके मुख्य भाग में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। इस बीच में शिवराजपुर और नरवल की तहसीलें टूट जाने से स्थानीय भूगोल में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है, पर गज़ेटियर वैसाही छाप दिया गया है। इसलिए हमें अपने इतिहास के लिखने में उन परिवर्तनों का पूरा ध्यान रखना पड़ा जिनकी चर्चा तक गज़ेटियर में नहीं है। फिर भी हम उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों से बहुत उपकृत हुए हैं।

३. इलियट और डाउसन का भारतीय इतिहास, भाग ४ (अंग्रेज़ी)।

४. अबुल फ़ज़्ल की आईने-अकबरी का ब्लाकमैन और जैरेट-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद।

५. ग़ुलाम हुसेन ख़ाँ-रचित सियारुल मुताख़रीन का अंग्रेज़ी अनुवाद रेमाण्ड कृत।

६. फ़ास्टर—अर्ली ट्रैवेल्स इन इण्डिया।

७. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव—अवध के प्रथम तीन नवाबों का इतिहास—२ भागों में।

८. सर यदुनाथ सरकार—लेटर मुग़ल्स (अरविन के ग्रंथ का नवीन संस्करण), दी हाउस आफ़ शिवाजी, फ़ाल-आफ़ दी मुग़ल एम्पायर आदि।

९. हेनरी बीवरिज—ए काम्प्रीहेंसिव हिस्ट्री आफ़ इण्डिया, ३ भाग।

१०. मिल और विल्सन—हिस्ट्री आफ़ ब्रिटिश इण्डिया।

११. स्लीमन—(१) रैम्बुल्स ऐण्ड रिकलेक्शन्स आफ़ एन इण्डियन आफ़िशियल (२) ए जर्नी थ्रू दी किंगडम आफ़ अवध।

१२. के और मैलीसन—हिस्ट्री आफ़ दी इण्डियन म्यूटिनी।

१३. शेरार—डेली लाइफ़ ड्यूरिंग दी इण्डियन म्यूटिनी।

१४. ट्रेविलियन—कानपुर।

१५. फ़ोर्ब्स मिचेल—रेमीनीसेंज़ आफ़ दी इण्डियन म्यूटिनी।

१६. राबर्ट्‌स—फार्टीवन इयर्स इन इण्डिया।

१७. एडवर्ड टामसन—दी अदर साइड आफ दी मेडल।

१८. विनायक दामोदर सावरकर—दी फर्स्ट वार आफ इण्डियन इंडिपेंडेंस (नवीन संस्करण)।

१९. पारसनीस—झाँसी की रानी।

२०. मार्डन रिव्यू आदि में श्री गोविन्द सखाराम सरदेसाई के लेख नाना साहब आदि पर।

२१. होल्म्स—हिस्ट्री आफ दी इण्डियन म्यूटिनी।

२२. श्रीधर मुरलीधर—जंगनामा (नागरी प्रचारिणी सभा)।

२३. पद्माकर—हिम्मतबहादुर-विरदावली (सम्पादक लाला भगवानदीन।)

२४. गोरेलाल तिवारी—बुन्देलखंड का इतिहास (नागरी-प्रचारिणी सभा)।

२५. जर्नल आफ इण्डियन हिस्ट्री।

२६. जर्नल आफ दी यू० पी० हिस्टारिकल सोसाइटी।

२७. इण्डियन हिस्टारिकल कार्टरली।

२८. गुप्त—पेशवा बाजीराव द्वितीय (अंग्रेजी)।

२९. मिराते-मदारी (खुदाबख्श लाइब्रेरी की हस्तलिखित प्रति)।

३०. राहुल सांकृत्यायन—बुद्धचर्या।

३१. नन्दलाल दे—दी जिओग्रेफिकल डिक्शनरी आफ ऐंशेंट एण्ड मिडीवल इण्डिया।

३२. कनिंहम—दी जिओग्रेफी आफ़ एन्शेंट इण्डिया।

३३. भारतीय जनगणना की रिपोर्ट सन् १९४१ (युक्त-प्रान्त)।

३४. अपर इण्डिया चेम्बर आफ़ कामर्स की पचास वर्ष की रिपोर्ट।

३५. यू० पी० चेम्बर आफ़ कामर्स की पचीस वर्ष की रिपोर्ट।

३६. बंदीजन परमेश—रामेश्वर-बिलास।

३७. शिवप्रसाद तिवारी—गौड़ क्षत्रियेतिहास।

३८, जाजमऊ और बिठूर पर लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी के विस्तृत लेख "दैनिक प्रताप" में प्रकाशित।

३९. कानपुर के प्रसिद्ध पुरुष (नारायणप्रसाद अरोड़ा द्वारा सम्पादित)।

४०. कानपुर के विद्रोही (सम्पादक—नारायणप्रसाद अरोड़ा)।

४१. कुँवर सुरेशसिंह—हमारे पक्षी।

———

शुद्धि-पत्र

इस पुस्तक में यत्र-तत्र छापे की कुछ भूलें रह गई हैं और कुछ अशुद्धियाँ लेखन की असावधानी से भी हुई हैं। मुख्य अशुद्धियों के निराकरण के निमित्त यह शुद्धि-पत्र दिया जाता है।

पृ० ४५ पंक्ति १—चिड़ियों की नामावली में गलार का नाम रह गया है। लड़के इसे 'गलगलिया मौसी' के प्यारे नाम से पुकारते हैं। यह सर्वत्र पाई जाती है और कौए की भाँति झुंड

पृ० ५९ अंतिम पंक्ति—जेजाकमुक्ति के स्थान में जेजाकभुक्ति पढ़िए।

पृ० ८६ पंक्ति ८—सपई के बाद (चंदेलों की) बढ़ा लीजिए। पंक्ति ९ में बिनौर के स्थान में नरवल पढ़िए।

पृ० १०६ पंक्ति ८—धोंढुपंत के स्थान में धोंडुपंत।

पृ० १२६ पंक्ति १६—दीनापुर के स्थान में दानापुर।

पृ० १४० पंक्ति १६—संवत् १९१४ के स्थान में १९०४।

पृ० १५५ पंक्ति २१ को पंक्ति १९ के बाद छपना चाहिए था और फिर २०, २२, २३ आदि।

पृ० १५९ अंतिम पंक्ति—अजीम शेरवानी हुमायूँ के स्थान में अजीम हुमायूँ शेरवानी।

पृ० १८७ में घाटों के वर्णन में गोला घाट, सत्तीचौरा घाट, मैसेकर घाट, कोयला घाट, गंगाकुटीर घाट, बंगाली घाट और सिद्धनाथ घाट के नाम और बढ़ा लीजिए।

पृ० २०९ पंक्ति ९—कानपुर की द्रुतगामी उन्नति का यह प्रमाण है कि सन् १९४८ में लिखी हुई बातें अब बहुत कुछ पुरानी हो गई हैं। अब यहाँ दो एडीशनल (अतिरिक्त) जिलाधीश हैं, एक नगर के लिए और एक देहात के लिए। इसी प्रकार अब यहाँ एक सीनियर सुपरिंटेंडेंट पुलीस और दो अन्य सुपरिंटेंडेंट पुलीस हैं--एक नगर के लिए और दूसरा देहात के लिए।

पृ० २२५ पंक्ति २--सन् १८४९ के स्थान में १८७९।

पृ० ,, पंक्ति ३--अमेरिकन युद्ध के स्थान में अमेरिकन गृह-युद्ध।

पृ० २२९ नीचे की दो पंक्तियाँ इस प्रकार पढ़िए :—

"इन सब के बनाने में कुल ७७ लाख रुपये खर्च हुए। पहले सब लाइनों में·········।" कुछ प्रतियों में इन पंक्तियों के कुछ टाइप टपक जाने से जगह खाली हो गई है।

पृ० २३२ पंक्ति ३—यह हवाई अड्डा (सवादा के मैदान वाला) अब सार्वजनिक उपयोग के लिए है। चकेरी वाला अड्डा केवल सैनिक उपयोग के लिए है।

पृ० २४१ पंक्ति ७ -'दूसरा बन्दोबस्त' के स्थान में 'तीसरा बन्दोबस्त' पढ़िए।

पृ० २७२ अंतिम पंक्ति--"इसलिए...... ..." इसे काट दीजिए।

पृ० २७३ प्रथम पंक्ति--पूरी पंक्ति काट दीजिए और दूसरी से "हो सकेगा" काट दीजिए।

पृ० २८७ पंक्ति २०--पिछलीगावँ के स्थान में पिप्पिली-गावँ।

पृ० २८८ पंक्ति ४ और १५--वही।

पृ० ३०२ मिडिल स्कूल अब जूनियर हाई स्कूल कहलाते हैं।

पृ० ३०४ के स्थान में २०४ छप गया है।

पृ० ३१६ पंक्ति ७--सन् ११०९ के स्थान में सन् १७०९ पढ़िए।

पृ० ३१६ पंक्ति ९--साँवलसिंह के स्थान में सावन्तसिंह।

पृ० ३२२ पंक्ति १३--श्री पञ्चवकत्रेश्वर के स्थान में श्री पञ्चवक्त्रेश्वर।

पृ० ३२८ पंक्ति १३ शीर्षक में बरई-गढ़ के स्थान में बरई-गढ़ होना चाहिए।

पृ० ३९८ पंक्ति ९--"जिनके पास कुव थे। ल १२ ग" के स्थान में "जिनके पास कुल १२ गाँव थे।" पढ़िए।

पृ० ३९९ पंक्ति ४--गौड़ों के बाद 'की' बढ़ाइए।

पृ० ४०० पंक्ति ५--"स्वर्णाणरों के" के स्थान में "स्वर्णाकरों से" पढ़िए।

पृ० ४२५ अंतिम पंक्ति - तिलसरी के स्थान में तिलसहरी।

पृ० ४६७ पंक्ति १५—तोपे के स्थान में टोपे।

पृ० ४७४ पंक्ति १४—अन्यान्य के स्थान में अन्याय।

पृ० ४८९ पंक्ति १६—शीर्षक में तात्या टापे के स्थान में तात्या टोपे।

पृ० ५०१ पंक्ति १—'उनकी जा' के स्थान में 'उनकी प्रजा'।

संरक्षक

निम्नलिखित सज्जनों ने कानपुर-इतिहास समिति के संरक्षक बनकर और प्रत्येक ने १०१) रुपया देकर समिति की बड़ी सहायता की और इतिहास को प्रकाशित करने के लिए समिति को प्रोत्साहित किया, जिसके लिए उन्हें अनेक धन्यवाद।

१. श्री शिवनारायण जी टण्डन
२. ,, बालकृष्ण जी महेश्वरी
३. ,, हरप्रसाद जगदीश प्रसाद
४. ,, रामरतन जी गुप्त
५. ,, पद्मपत जी सिंघानिया
६. ,, गयाप्रसाद ट्रस्ट
७. ,, रामस्वरूप जी मरतिया
८. ,, पुरुषोत्तमलाल जी कपूर
९. ,, हरिशंकर जी बागला
१०. ,, मोहम्मद बशीर साहब
११. ,, बुद्धूलाल जी मेहरोत्रा
१२. ,, रामदेव जी मरोलिया
१३. ,, देवशर्मा जी
१४. ,, देवीदास जी भगत
१५. ,, दयाराम जी कानोडिया
१६. ,, हरगोविन्द जी मिश्र

१७. श्री पद्मराज जी जैन
१८. ,, मनोहरलाल जी जैन
१९. ,, उमाशंकर जी मेहरोत्रा
२०. ,, डा० एस० सेन
२१. ,, देवकुमार जी जैन
२२. ,, रामनाथ जी सेठ
२३. ,, ब्रजेन्द्रस्वरूप जी
२४. ,, किशोरचन्द जी कपूर
२५. ,, रामजी मेहरोत्रा
२६. ,, भवानीप्रसाद गिरधरलाल
२७. ,, सालिगराम जी बजाज
२८. ,, हाफिज मोहम्मद सिद्दीक़
२९. ,, नवलकिशोर जी भरतिया
३०. ,, हरेकृष्ण जी सोमाणी
३१. ,, हीरालाल जी सूतवाले
३२. ,, गोविन्दनारायण जी तिवारी
३३. ,, कैलाश कम्पनी
३४. ,, विश्वनाथ जी खन्ना (उर्फ बसन्ती बाबू)
३५. ,, लल्लू प्रसाद जी मिश्र
३६. ,, मँगतूराम जी जयपुरिया
३७. ,, डा० जवाहरलाल जी
३८. ,, मुकुन्दलाल जी सोनकर
३९. ,, रूपचन्द जी जैन

४०. श्री कैलाशनाथ जी महेश्वरी (स्वर्गीय)
४१. ,, चुन्नीलाल जी गर्ग
४२. ,, रामनारायण जी गर्ग
४३. ,, इन्द्रसिंह जी
४४. ,, शिवदानमल जी
४५. ,, कामताप्रसाद जी
४६. ,, कृष्णलाल जी गुप्त
४७. ,, अयोध्याप्रसाद जी भार्गव
४८. ,, धनीराम जी भल्ला
४९. ,, ऊलन एण्ड काटन क्लाथ एजेंसी
५०. ,, रुद्रप्रसाद जी बाजपेयी
५१. ,, देवीसिंह जी भार्गव
५२. ,, लल्लूमल जी दलाल
५३. ,, मन्नालाल मुर्लीधर
५४. ,, कालीचरन जी
५५. ,, विली नरोना साहब
५६. ,, वी० पी० श्रीवास्तव
५७. ,, निहालचन्द किशोरीलाल
५८. ,, डा० अब्दुल समद साहब
५९. ,, बाबूलाल जी बागला
६०. ,, लक्ष्मणदास ट्रस्ट
६१. ,, रामकुमार जी नेवटिया (स्वर्गीय)

कानपुर का इतिहास

(दूसरे भाग की रूपरेखा)

१. कानपुर का औद्योगिक और व्यावसायिक विकास

२. कानपुर के राजनीतिक जीवन का इतिहास

३. कानपुर में श्रमजीवी आन्दोलन

४. कानपुर का सांस्कृतिक इतिहास; साहित्य, स्थापत्य, मूर्ति-निर्माण, चित्रकला, संगीत आदि

५. शिक्षा के प्रसार और उन्नति का इतिहास

६. धार्मिक गति-विधि का इतिहास

७. समाज-सुधार और समाज-सेवा

८. ग्रामीण जीवन की झलक

९. स्थानीय स्वायत्त शासन का इतिहास—म्युनिसिपल बोर्ड, डिवेलपमेंट बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, छावनी बोर्ड, गाँव-पंचायत आदि

१०, प्रसिद्ध आधुनिक वंशों और व्यक्तियों का इतिहास

११. प्रसिद्ध लोकोपकारी संस्थाओं का इतिहास

१२. कानपुर-नगर और जिले के कुछ प्रमुख व्यक्ति

इस भाग में भी १०० के ऊपर चित्र और एक-दो मानचित्र आर्ट पेपर पर होंगे। पृष्ठ-संख्या ५०० के ऊपर।